ॐ

सर्वज्ञ वीतरागाय नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

(भाग-७)

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

: गुजराती संकलन :
जीतुभाई नागरदास मोदी
प्रशम जीतुभाई मोदी
सोनगढ़

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार
सोनगढ़, जिला-भावनगर (गुजरात)
मोबा. 09722833143

प्रथम आवृत्ति : प्रति 1000

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
2. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
3. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
4. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
5. **चिन्तन जीतुभाई मोदी,** क्रमबद्ध निवास, 45 कहान नगर सोसाइटी, सोनगढ़ - 364250 (सौराष्ट्र)
   मोबा : 09662524460
6. **पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन**
   द्वारा मुकेश आयरन स्टोर, गुरु कहान मार्केट, बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)
   मोबा : 09461768086
7. **श्री प्रदीप मानोरिया,** मिल रोड, अशोकनगर, (म.प्र.), मोबा : 09425132060
8. **श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट,**
   पंच बालयति जिनालय, एरोड्रम रोड, साधनानगर, इन्दौर (म.प्र.)
9. **श्री अश्विनभाई ए. शाह,**
   बी-21, रुस्तमजी आदर्श हेरीटेज ऑफ मार्वे रोड,
   आदर्श काम्पलेक्स विहार, मलाड (वेस्ट) मुम्बई-64 , मोबा : 09820124378

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

तीर्थंकरदेव का जन्म जगत के कल्याण के लिये होता है, इसी प्रकार अनन्त-अनन्त उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का जन्म, इस निकृष्ट काल में यहाँ जन्मे हुए और भविष्य में भी यहाँ जन्म लेनेवाले अल्प संसारी जीवों को भाग्यशाली बनाने के लिये तथा उन्हें संसार-समुद्र से पार उतारने के लिये हुआ था। अन्तिम सैंकड़ों वर्षों का जैन इतिहास कहता है कि भव्य जीवों के तारणहार ऐसे महान सन्त यदि कोई हुए हों तो उनमें कृपासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्री ही प्रधान पुरुष हैं। उन्होंने इस भौतिक युग को अध्यात्मयुग में परिवर्तित करके पंचम काल के अन्त तक टिका रहे - ऐसा अध्यात्मयुग सृजित किया है।

ऐसे अध्यात्मयुगसृष्टा, अध्यात्म क्रान्तिवीर पूज्य गुरुदेवश्री की 45-45 वर्ष प्रवाहित अध्यात्म गंगा का अमृतपान करनेवाले महान भाग्यशाली भव्य मुमुक्षुओं को तो उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के अभ्यास द्वारा आज भी पूज्य गुरुदेवश्री साक्षात्रूप से अनुभव में आ रहे हैं, परन्तु उनके दर्शन-श्रवण और सत्संग का जिन्हें साक्षात् लाभ प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे भव्य जीवों को, इन महापुरुष ने जो द्रव्यदृष्टि प्रधान दिव्यदेशना का प्रपात बहाया, उसका साक्षात्वत् लाभ मिले, वह इस **गुरु कहान : दृष्टि महान** के प्रकाशन का हेतु है।

यह जीव अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक तक जा आया, अनन्त बार नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंग धारण किया, अनन्त बार समवसरण में जा आया, तथापि कोरा रह गया, उसका मुख्य कारण यदि कोई हो तो वह एक ही है कि द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना को इस जीव ने कभी ग्रहण नहीं किया—ऐसा पूज्य गुरुदेवश्री करुणा से बारम्बार कहते थे और इसीलिए उस द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना का उन्होंने जीवनपर्यन्त प्रपात बहाया है। पूज्य बहिनश्री भी कहती थीं कि 'मानो कोई बड़े आचार्य उपदेश देते हों, वैसे दृष्टि के विषय का अपूर्व स्पष्टीकरण होता था' ....'दृष्टि का विषय आवे, तब उछल जाते थे।' यद्यपि उनकी सर्वांगी उपदेश गंगा में न्यूनाधिक योग्यतावाले सर्व जीवों को आत्म-लाभ हो, ऐसा निश्चय-व्यवहार का सम्पूर्ण उपदेश बोध बहा है। मुमुक्षु की पात्रता कैसी हो, अशुभ से बचने को शुभ में जुड़ान कैसा हो, इत्यादि उपदेश देने पर भी कहीं किसी को मुख्यता न हो जाये तथा उसमें जोर दिये बिना उस व्यवहारमार्ग प्रकाशन के साथ मुख्यरूप से तो द्रव्यदृष्टि मार्ग प्रकाशक निश्चय की ही मूसलाधार वर्षा की है। जिससे भद्र जीव अनादि के संस्कारवश मन्दकषाय आदि व्यवहारमार्ग में न अटककर, निश्चयमोक्षमार्ग को यथार्थ समझकर उसका ही ग्रहण करके यह भव सफल करने के लिये स्वानुभूति का सत्पुरुषार्थ अपनायें।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अध्यात्मयुग का सृजन किया ही है परन्तु बहुत स्पष्ट कहें तो वस्तुत: वे द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक हैं क्योंकि जिस द्रव्यदृष्टि प्रधान निश्चय के बोध से जीव निश्चयाभास के डर से भयभीत होते थे, उसके बदले आपश्री के प्रताप से भव्यजीव दिन-रात उस निश्चय का घोलन, चिन्तन श्रवण करने में ही जीवन की धन्यता अनुभव करते हैं।

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक पूज्य गुरुदेवश्री की उपदेश अमृत वाणी को श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के तत्कालीन प्रमुख श्री नवनीतभाई झवेरी की दीर्घदृष्टि से टेप में संगृहित करके चिरकालपर्यन्त सुरक्षित बनायी तथा लगभग 9000 घण्टे की इस गुरुवाणी को स्वर्गीय श्री शान्तिलाल रतिलाल शाह परिवार ने अद्यतन टेक्नोलॉजी द्वारा मात्र 16 डीवीडी में तथा तीन वीडी (Blueray Disk) में (जनवरी 2010 तक में) प्रसिद्ध करके मुमुक्षु जगत पर परम उपकार किया है, जिस कारण भावी के भव्य जीव भी आत्महित के मार्ग में सरलरूप से प्रयाण कर सकेंगे। ऐसे होने पर भी, पंचम काल के प्रभाववश कितने ही तत्त्व के अभ्यासियों द्वारा द्रव्यदृष्टि प्रधान तत्त्वज्ञान के पुरुषार्थ में भय प्रकाशन करते देखकर पूज्य गुरुदेवश्री के 9000 टेप प्रवचनों में से द्रव्यदृष्टि प्रधान विशेष पुरुषार्थ प्रेरणादायक प्रवचन चुन-चुनकर **गुरु कहान : दृष्टि महान** रूप से सीडी प्रवचन मुमुक्षु समाज को उपलब्ध कराने की हमें भावना जागृत होने से हमने भाग 1 से 11 तक प्रसिद्ध किया, जिसका श्रवणपान करते हुए गुरु-भक्तों का ध्यान गया कि सीडी प्रवचन का श्रवण करते समय हाथ में अक्षरश: गुरुवाणी की पुस्तक हो तो प्रवचन का भाव विशेषरूप से समझना सरल बने। इसलिए गुरु भक्तों की भावना को साकार करने का निर्णय किया और हिन्दी भाषी समाज भी इन प्रवचनों का लाभ ले, इस भावना से एक मुमुक्षु परिवार द्वारा इस प्रकल्प की सातवीं पुस्तक प्रकाशित हो रही है। मुमुक्षु परिवार की अनिच्छा के कारण उनका नाम प्रसिद्ध नहीं किया जा रहा है। विदित हो कि हिन्दी में प्रकाशित इस प्रकल्प के भाग 1 और 2 में गुजराती 'गुरु कहान : दृष्टि महान' भाग 1 से 3 तक समाहित कर लिये गये हैं।

इस पुस्तक प्रकाशन के दो मुख्य प्रयोजन हैं - (1) जिन्हें करुणासागर गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-श्रवण का लाभ नहीं मिला, ऐसे भव्य जीवों को गुरुदेवश्री के द्रव्यदृष्टि प्रधान अन्त:करण समझने का सौभाग्य प्राप्त हो तथा (2) पंचम काल के प्रभाव में आकर प्रमाण के लोभ में अटककर द्रव्यदृष्टि के मार्ग में नि:शंकरूप से प्रयाण करने में हिचकिचाहट न हो, इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री की भव्य जीवों को संसार-समुद्र से उभर लेने की करुणा सफलता को प्राप्त हो।

अन्त में, पूज्य गुरुदेवश्री 91 वर्ष की उम्र में भी जिस द्रव्यदृष्टि की प्ररूपणा करते हुए अन्दर से उछल पड़ते थे उस द्रव्यदृष्टि प्रधान उपदेश को **गुरु कहान : दृष्टि महान** के माध्यम से शीघ्र ग्रहण करके भावी अनन्त काल गुरु के सान्निध्य को प्राप्त करे - ऐसी भावना के साथ....

संकलनकार / अनुवादक

अर्पण

जो वर्तमान युग में क्रमबद्धपर्याय का शंखनाद करनेवाले के रूप में जैन जगत् में प्रसिद्ध हैं; जो जैन जगत् में समयसार के प्रखर प्रचारक के रूप में मशहूर हैं; जो द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जनहार हैं; जिन्होंने शास्त्रों के शब्दों में छिपे हुए आचार्यों के गूढ़ भावों को खोलने की अद्‌भुत शक्ति द्वारा भव्य जीवों पर वचनातीत परम उपकार किया है; जिनकी शीतल छत्रछाया में जीवन व्यतीत करने का परम सौभाग्य हमारे पिताश्री को प्राप्त हुआ था, उन असीम करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति धर्मपिता पूज्य गुरुदेवश्री को, उनके ही द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचनों के अमूल्य खजाने में से चुने हुए 25 प्रवचनों के संकलनरूप यह **'गुरु कहान : दृष्टि महान'** भाग-7 अर्पण करते हुए हम जीवन की धन्यता अनुभव कर रहे हैं।

– संकलनकार

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्म युगस्त्रष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(सम्पूर्ण जीवनदर्शन, संक्षिप्त में)

ऐवा ए कलिकालमां जगतनां कंई पुण्य बाकी हतां,
जिज्ञासु हृदयो हतां तलसतां सद्वस्तुने भेटवा;
ऐवा कंईक प्रभावथी गगनथी ओ कहान! तुं ऊतरे,
अंधारे डूबतां अखंड सत्ने तुं प्राणवंतुं करे।

वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकरदेव के पूर्व के भोगभूमि के एक भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की इनकी काललब्धि पकने पर आकाश में से दो-दो मुनिराज उतरते हैं। अन्तिम तीर्थंकरदेव के पूर्व के सिंह के भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की उनकी काललब्धि पकने पर, आकाश में से दो-दो मुनिराज घोर जंगल में उतरते हैं। उपादान तैयार होने पर मानो कि निमित्त को स्वयं उपस्थित होना पड़ता है-इस न्याय से, लाखों भव्य जीवों की तत्त्वजिज्ञासा-तृप्ति का काल पकने पर, सीमन्धर सभा में देशना का श्रवण-पान करके स्वर्ग जाने को सक्षम ऐसे राजकुमार का जीव, मानो कि भवीजन भाग्यवश अपना मार्ग बदलकर गगन में से यहाँ भरतभूमि में उतरा!

भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ठ तथा आचार्य शिरोमणि श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव आदि निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्तों द्वारा शास्त्र में सुरक्षित वीतरागमार्ग जब रूढ़िगत साम्प्रदायिकता की देहाश्रित बाह्यक्रिया और अध्यात्म तत्त्वज्ञान शून्य भक्तिमार्ग के अन्धकार में डूब रहा था, ऐसे इस कलिकाल में वीतरागमार्ग के अखण्ड सत् को प्रवर्तन करने के लिये भारतदेश के गुजरात राज्य में भावनगर जिला के उमराला गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा के गर्भ से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज दिनांक 21-04-1890, रविवार को प्रातः सबेरे तेजस्वी कहान सूर्य का उदय हुआ।

सात वर्ष की उम्र में पाठशाला में लौकिक शिक्षा ग्रहण करना शुरु किया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि प्रतिभा, मधुर भाषीपना, शान्तस्वभाव, गम्भीर मुखमुद्रा तथा स्वयं करने का स्वभाव होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों में तथा विद्यार्थियों में प्रिय हो गये। विद्यालय में तथा जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था परन्तु विद्यालय के लौकिक अभ्यास से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और गहरे-गहरे ऐसा लगता था कि मैं जिसकी शोध में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में मातुश्री के अवसान से पिताजी के साथ पालेज जाना हुआ। चार वर्ष पश्चात् पिताजी का स्वर्गवास होने पर सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यापार में संलग्न हुए।

व्यापार की प्रवृत्ति के समय भी वे किंचित् भी अप्रमाणिकता चला नहीं लेते थे। सत्यनिष्ठ, नीतिमत्ता, निखालिसता, और निर्दोषता से उनका व्यवहारिक जीवन सुगन्धित था; इसके साथ ही उनका आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध की ओर ही था। दुकान में भी धार्मिक

पुस्तकें पढ़ते। वैरागीचित्तवाले कहान कुँवर रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते, तब उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते, जिसके फलस्वरूप सत्रह वर्ष की उम्र में उज्ज्वल भविष्य की सूचना करता बारह लाईन का काव्य — 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' की रचना की थी।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि के आहार-पानी तथा अथाणा (अचार) का त्याग किया था। सत्य की शोध के लिये दीक्षा लेने के भाव से बाईस वर्ष की युवावय से दुकान का परित्याग किया और गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया था। पश्चात् चौबीस वर्ष की उम्र में (विक्रम संवत् 1970) जन्मनगरी उमराला में लगभग 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय के वैरागी साधु हीराजी महाराज के समीप दीक्षा अंगीकार की थी। दीक्षा के समय हाथी पर बैठने जाते हुए धोती फटने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक गुरुवर को शंका हो जाती है कि कुछ गलत हो रहा है।

दीक्षा लेने के पश्चात् सत्य के शोधक इस महात्मा ने स्थानकवासी तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में ही पूरा किया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चाएँ चलीं—कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र तो प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व के संस्कार के बल से उन्होंने दृढ़तापूर्वक सिंह-गर्जना की कि 'जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म और पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुलटे पुरुषार्थ से नाश करता है।'

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन उद्धार का और लाखों मुमुक्षुओं के महान् पुण्योदय सूचक एक मंगलकारी पवित्र प्रसंग बना :

बत्तीस वर्ष की उम्र में विधि की किसी धन्य पल में दामनगर में दामोदर सेठ द्वारा श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित समयसार नामक महान परमागम, गुरुदेवश्री के कर-कमल में आया और उसका अध्ययन तथा चिन्तवन करते-करते पूर्व के संस्कार के बल से अन्तर में आनन्द और उल्लास उमड़ने से इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — 'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी हुई परिणति ने निज घर देखा अर्थात् आपश्री को वैशाख कृष्ण आठ के दिन सम्यग्दर्शन हुआ।

विक्रम संवत् 1982 के चातुर्मास से पूर्व राजकोट में श्री दामोदरभाई लाखाणी ने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को प्रदान किया। जिसे पढ़ने से स्वयं के हृदय की अनेक बातों का समर्थन इस ग्रन्थ में से प्राप्त हो जाने से वे उसके वाँचन में इतने ओतप्रोत हो जाते थे कि उस समय उन्हें खाना-पीना और सोना भी नहीं रुचता था। तत्पश्चात् अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेश कुछ ऐसी स्थिति उन्हें असह्य हो गयी; इसलिए अन्तर में बहुत मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय छोड़ने का निर्णय किया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थल की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में 1991 के फाल्गुन कृष्ण पंचमी के दिन निवास किया और महावीर जन्मकल्याणक के दिन (विक्रम संवत् 1991, चैत्र शुक्ल तेरह) दोपहर सवा बजे भगवान पार्श्वनाथ

के फोटो के समक्ष सम्प्रदाय के चिह्न मुँहपत्ती का त्याग किया और घोषित किया कि — 'अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं, मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।' सिंह समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने, पैंतालीस वर्ष की उम्र में अन्तर में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

'स्टार ऑफ इण्डिया' में सवा तीन वर्ष दौरान जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान अत्यन्त छोटा पड़ने लगा; इसलिए भक्तों ने इन परम प्रतापी सत्‌पुरुष के लिये निवास और प्रवचन का मकान 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने विक्रम संवत् 1994 के वैशाख कृष्ण आठ के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह 'स्वाध्यायमन्दिर' जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीर शासन की प्रभावना का केन्द्र बना रहा।

यहाँ दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे-बड़े लगभग 183 ग्रन्थों का गहराई से अभ्यास किया। उनमें से 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये; जिसमें समयसार पर तो 19 बार अध्यात्म वर्षा की थी। प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह, अष्टपाहुड, परमात्मप्रकाश, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी अनेक बार प्रवचन किये।

विक्रम संवत् 1981 में गडढ़ा में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य शान्ताबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1985 में वढ़वाण में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1986 में वींछिया में पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन और प्रवचन श्रवण के लिये दोनों बहिनों को जाना होने पर वहाँ प्रथम बार दोनों बहिनों का परिचय हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री ने परिवर्तन करने के पश्चात् सोनगढ़ में दोनों बहिनों ने साथ में रहना शुरु करके जीवनपर्यन्त साथ रहकर पूज्य गुरुदेवश्री की देशना द्वारा अपनी-अपनी आत्मसाधना करते रहकर शासन की अत्यन्त भक्तिपूर्वक सेवा की थी। गुरुशासन-प्रभावना में दोनों बहिनों का उल्लेखनीय विशेष योगदान रहा था।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 के फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन श्री नानालालभाई इत्यादि जसाणी भाईयों के योगदान द्वारा नवनिर्मित श्री दिगम्बर जिन मन्दिर में कहानगुरु के मंगल हस्त से श्री सीमन्धरादि भगवन्तों की पंचकल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर जिन मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही देखने को मिलते थे। ऐसे क्षेत्र में गुरुदेवश्री की पावन प्रेरणा से प्रथम जिन मन्दिर निर्मित हुआ। प्रतिदिन दोपहर प्रवचन के पश्चात् जिन मन्दिर में आधे घण्टे भक्ति में जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे। बहुत बार आपश्री अति भाववाही भक्तिपान कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धिपूर्वक का था।

विक्रम संवत् 1997 में दिगम्बर जैन समाज के तत्कालीन प्रमुख दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज, श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके सोनगढ़ पधारे; पूज्य गुरुदेवश्री का

प्रवचन सुनकर तथा तत्त्वचर्चा करके इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गुरुदेवश्री को लक्ष्य करके कहा कि — 'तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं जाते; यहाँ कुछ ऐसा योग है-ऐसा हमें लगता है।'—अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री भविष्य में तीर्थंकर होंगे—ऐसा दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख आचार्य को लगा था।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों-मुनिवरों तथा आत्मानुभवी पण्डितवर्यों के ग्रन्थों, पण्डित श्री हिम्मतभाई जे. शाह के गुजराती में अनुवादित श्री समयसारादि परमागम और पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर प्रवचनों की पुस्तकें प्रकाशित करने का कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943) से शुरु हुआ। उस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहरा रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने हम सब पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश देश-विदेश के समस्त मुमुक्षुओं को नियमित प्राप्त होता रहे, इस हेतु से सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के मगसर (दिसम्बर 1943) महीने से 'आत्मधर्म' नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के स्थापक आध्यप्रमुख मुरब्बी श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी के सम्पादन तले प्रारम्भ हुआ। आज भी आत्मधर्म गुजराती तथा हिन्दी भाषा में नियमितरूप से प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्ध करता हुआ 'श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' सितम्बर 1950 से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभूतिविभूषित इन चैतन्य विहारी महापुरुष की मंगल वाणी पढ़कर तथा सुनकर हजारों स्थानकवासी, श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैन धर्म के अनुयायी हुए। अरे... मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का सिंचन हो इस हेतु से सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने से गर्मी का बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षणवर्ग शुरु हुआ। बड़ों के लिये प्रौढ़ शिक्षणवर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने में प्रारम्भ किया गया था।

पूज्य गुरुदेवश्री की देशना का सामर्थ्य प्रसिद्ध करता एक प्रसंग ईस्वी सन् 1946 में बना। अजमेर निवासी श्री निहालचन्द्रभाई सोगानी सोनगढ़ आये और प्रथम बार ही पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन का लाभ सम्प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री का एक ही प्रवचन सुनकर रात भर आत्म मन्थन करते-करते प्रातः काल अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव प्राप्त करके जैन जगत को प्रतीति करायी कि यदि तुम्हारा पुरुषार्थ और गुरु के प्रति अर्पणता गाढ़ हो तो इन महापुरुष की देशना इतनी प्रखर है कि इनका एक ही प्रवचन-श्रवण भव्यजीवों के भवान्त का प्रबल निमित्त बनने की सामर्थ्य रखता है।

विक्रम संवत् 2003 में निर्मित भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचनमण्डप के शिलान्यास प्रसंग पर इन्दौर के सर सेठ हुकमचन्दजी, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अत्यन्त अहोभाव से बोले थे कि 'आपके पास मोक्ष जाने का सीधा रास्ता है।'

विक्रम संवत् 2003 में पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल छत्रछाया में 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्

परिषद' का तीसरा अधिवेशन पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी (बनारस) की अध्यक्षता में आयोजित किया गया था, जिसमें दिगम्बर जैन समाज के सुप्रसिद्ध बत्तीस विद्वानों ने लाभ लिया था। पूज्य गुरुदेवश्री की देशना से प्रभावित होकर उन्होंने सर्व सम्मति से एक विशाल प्रस्ताव पारित किया था जिसमें स्पष्टरूप से उल्लेख किया गया कि '....भगवान कुन्दकुन्द की वाणी समझकर महाराजश्री ने मात्र स्वयं को ही पहचान है—ऐसा नहीं परन्तु हजारों-लाखों मनुष्यों को एक जीवन उद्धार के सत्यमार्ग पर चलने का उपाय दर्शा दिया है.....'

दिगम्बर जैन समाज के मूर्धन्य पण्डितश्री कैलाशचन्द्रजी ने अपनी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री की विशेषता दर्शाते हुए लिखा कि यदि कानजीस्वामी इस युग में न हुए होते तो हमारे लिये समयसार ग्रन्थ मात्र दर्शनीय रह जाता अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री के कारण समयसार जैसे ग्रन्थ का स्वयं को अभ्यास करने का सुयोग प्राप्त हुआ था। फिर से उसी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री का दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा कि कानजीस्वामी निमित्त को नहीं मानते, ऐसा नहीं है लेकिन वे निमित्त से कुछ नहीं होता है - ऐसा मानते हैं। इस प्रकार मूल दिगम्बर सम्प्रदाय में भी समयसार स्वाध्याय युग सृजक पूज्य गुरुदेवश्री की प्रतिभा प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी।

लाडनूँ निवासी श्री रतनलाल गंगवाल के पिताश्री बच्छराजजी, पूज्य गुरुदेवश्री की महिमा सुनकर सोनगढ़ आये; अत्यन्त प्रभावित होकर उन्होंने पूज्य बहिनश्री बेन की छत्रछाया में बालब्रह्मचारी बहिनों के आवास के लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका ब्रह्मचर्याश्रम' का विक्रम संवत् 2008 में निर्माण किया।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित श्री समयसारादि पाँचों परमागम संगमरमर में उत्कीर्ण करके 'श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर' का उद्घाटन विक्रम संवत् 2030 में सोनगढ़ में छब्बीस हजार भक्तों की उपस्थिति में श्री साहू शान्तिप्रसादजी के हस्त से हुआ था।

ट्रस्टी श्री नेमिचन्दजी पाटनी (आगरा) के सफल संचालन में श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त विक्रम संवत् 2013 (ईस्वी सन् 1957) तथा विक्रम संवत् 2023 (ईस्वी सन् 1967) में — इस तरह दो बार समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मंगल विहार हुआ था। इसी प्रकार विक्रम संवत् 2015 (ईस्वी सन् 1959) और विक्रम संवत् 2020 (ईस्वी सन् 1964) में — इस तरह दो बार दक्षिण और मध्य भारत में मंगल विहार हुआ था। इस मंगल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासु जीवों ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये और आपश्री की भवान्तकारी अमृतमयी वाणी सुनकर अनेक भव्यजीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। फलस्वरूप भारत भर में महती धर्म प्रभावना हुई और सोनगढ़ के इन सन्त के प्रति लोगों में श्रद्धाभक्ति का उत्साह जागृत हो उठा। यात्रा के दौरान अनेक स्थानों से लगभग 80 अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये।

पौने छह महीने की 800 मुमुक्षु यात्रियों के साथ निकली हुई विक्रम संवत् 2013 की श्री सम्मेदशिखरजी की प्रथम यात्रा के समय ईसरी आश्रम में दिगम्बर जैन समाज के अनेक प्रसिद्ध विद्वानों की उपस्थिति में क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णीजी के साथ पूज्य गुरुदेवश्री की वात्सल्यता

भरी बातचीत हुई; तब वर्णीजी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि 'स्वामीजी की प्रसन्न मुद्रा मुझे बहुत पसन्द आयी और मुझे ऐसा लगा कि इस आत्मा के द्वारा समाज का कल्याण होगा।' तत्पश्चात् मधुवन (शिखरजी) में अनेक दिगम्बर मुनियों, विद्वानों, वर्णीजी सहित अनेक त्यागियों और पाँच हजार से अधिक श्रोतागण के समक्ष पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन श्रवण से प्रभावित होकर सैकड़ों पण्डितों के विद्यापति पण्डित बंशीधरजी (इन्दौर) ने हिम्मतपूर्वक स्पष्ट प्रसिद्ध किया कि '.....आपकी वाणी में तीर्थंकरों का और कुन्दकुन्दस्वामी का ही हृदय है।' भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन-सत्समागम से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे अपनी रूढ़िगत मान्यता छोड़कर पूज्य गुरुदेवश्री के अनुयायी बन गये।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले तथा कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों का रहस्योद्घाटन करनेवाले इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को श्री नवनीतभाई झबेरी की दीर्घ दृष्टि के कारण श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट द्वारा ईस्वी सन् 1959 से नवम्बर 1980 तक टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षितरूप से उपलब्ध हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में ही भारत भर में-विशेषरूप से हिन्दी समाज में तथा नैरोबी, लन्दन, स्वीटजरलैण्ड, हांगकांग, अमेरिका, केनाड़ा आदि विदेशों में अगणित संख्या में टेप रील तथा कैसेटों से ट्रस्ट के कैसेट विभाग द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का मुमुक्षुओं ने लाभ प्राप्त किया था। हाल में सी.डी. युग शुरु होने पर स्वर्गीय शान्तिलाल रतिलाल शाह के परिवार द्वारा यह मंगलवाणी देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है, यह ऐसा प्रसिद्ध करती है कि भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को पंचम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

दशलक्षण पर्यूषण पर्व के दौरान भारतभर में अनेक स्थलों से पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिये प्रवचनकार भेजे जाते हैं। पर्यूषण में सर्व प्रथम बाहर गाँव-राजधानी दिल्ली में-वाँचन करने के लिये सोनगढ़ से खीमचन्दभाई सेठ गये थे। वे तथा श्री लालचन्दभाई मोदी (राजकोट) और श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' (कोटा), पूज्य गुरुदेवश्री की सूक्ष्म तत्त्व प्ररूपणा का प्रचार करनेवाले अग्रेसर वक्ताओं में थे / हैं। प्रवचनकारों को भेजने की इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में जागृति आयी थी और आज भी देश-विदेश में पर्यूषण पर्व में सैंकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतराग वाणी का डंका बजाते हैं। डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के निर्देशन में नये-नये विद्वान तैयार करने के लिये श्री पूरणचन्दजी गोदिका द्वारा आचार्यकल्प पण्डित श्री टोडरमलजी की स्मृतिरूप से जयपुर में श्री टोडरमल स्मारक भवन का ईस्वी सन् 1967 में निर्माण हुआ, जिसका उद्घाटन पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में आपश्री के आशीर्वाद से हुआ था। नये प्रवचनकार विद्वानों को प्रवचन पद्धति के लिये प्रशिक्षित करने के लिये प्रतिवर्ष प्रशिक्षण वर्ग जयपुर से प्रारम्भ किया गया था। उत्तर गुजरात तथा हिन्दी प्रान्त में पूज्य गुरुदेवश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार

में पण्डित श्री बाबूभाई फतेपुरवाले का विशेष योगदान रहा था।

भगवान श्री महावीरस्वामी के पश्चात् इस युग में जब बौद्ध सम्प्रदाय का बहुत प्रभाव था, तब समर्थ आचार्यश्री अकलंकदेव ने तत्कालीन प्रमुख बौद्ध आचार्य के साथ वाद-विवाद करके उनकी पराजय करने से जैन समाज में जय-जयकार हुआ था; इसी प्रकार अक्टूबर 1963 में खानियां (जयपुर) में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रखर पण्डितों और कानजीस्वामी के अनुयायीरूप से प्रसिद्ध पण्डित श्री फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री के बीच कितने ही दिनों तक लिखित प्रश्नोत्तर द्वारा तत्त्वचर्चा होने पर, पण्डित श्री फूलचन्दजी द्वारा उन पण्डितों की रूढ़िगत मान्यताओं का शास्त्रों के आधार द्वारा पराजय होने से पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यन्त भावविभोर होकर जैनदर्शन के सत्यमार्ग की विजय सम्बन्धी पण्डित फूलचन्दजी के लिये अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था कि — पण्डित फूलचन्दजी ने बहुत काम किया है, बहुत मेहनत की है। शास्त्र से आधार देकर बराबर सच्ची श्रद्धा को टिका रखा है। ऐसा यह एक पण्डित निकला! शास्त्र के पण्डितरूप से पढ़कर स्व-आश्रय और पर-आश्रय इस बोल को टिका रखा; बहुत जोरदार बात है। हजारों बोल ओहो...हो...! बहुत ज्ञान है। अभी चलता यह पन्थ-विपन्थ, उसमें यह बात बाहर रखना! बहुत हिम्मत की है। इस ऐतिहासिक प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री की अत्यन्त भावविभोर प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर भक्त रोमांचित हो गये थे।

जन्म-मरण से रहित होने के सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्य विहारी पुरुष के मंगलकारी जन्मोत्सव मनाने की शुरुआत 59 वें वर्ष से हुई। 75 वीं हीरक जयन्ती के प्रसंग पर समस्त भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित 800 पृष्ठ का एक सजिल्द अभिनन्दन ग्रन्थ इन भावी तीर्थाधिनाथ को भारत सरकार के तत्कालीन मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में मुम्बई में अर्पण हुआ था। योगानुयोग थोड़े ही दिनों में वे भारत के प्रधानमन्त्री बने थे।

विक्रम संवत् 2037 के कार्तिक कृष्ण सात, दिनांक 28-11-1980, शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष देहादि का लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तर्ध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज ज्ञायक में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने भरतक्षेत्र में से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। जैसे नव पल्लवित वटवृक्ष शुरुआत में स्वयं अपनी विशालता को समृद्ध करता हुआ विशालकाय बन जाने के बाद, उसमें से अनेक वटवृक्षों का नवसृजन करता है, इसी प्रकार सोनगढ़ के इन सन्त ने शुरुआत में स्वयंभूरूप से अध्यात्मयुग का नवसृजन किया और उनकी विशाल प्रभावना छाया में देश-विदेश में—जयपुर, देवलाली, अलीगढ़, दिल्ली, गाँधीनगर, सोनागिर, बांसवाड़ा, इन्दौर, द्रोणागिर, नागपुर, गजपंथा, कोटा इत्यादि तथा नैरोबी, लन्दन, अमेरिका इत्यादि क्षेत्रों में-स्थापित संस्थाओं द्वारा आपश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार द्वारा आपश्री द्वारा नवसृजित अध्यात्मयुग को युग के अन्त तक टिका रखने का भी आपके पुण्य प्रताप से बना है। इस प्रकार आपश्री वीतरागी शासन को प्राणवन्त करते गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग के एक महान और असाधारण व्यक्ति थे। उनके

बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से आत्मसात भी किया।

श्री वीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् इन धारावाही 45 वर्षों का समय (वीर संवत् 2061 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980।) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्ण काल था। जो कोई मुमुक्षु अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी जाते थे, उन्हें तो वहाँ चतुर्थकाल का ही अनुभव होता था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 दौरान पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के निर्देशन में तथा पूज्य शान्ताबेन के भक्ति उल्लासपूर्ण संचालन में सौराष्ट्र-गुजरात उपरान्त भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में-इस प्रकार कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मंगल प्रतिष्ठा इन धर्मयुगस्त्रष्टा सत्पुरुष के करकमल द्वारा हुई थी।

आपश्री की अध्यात्मदेशना के प्रभाव से श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर, श्री समवसरण मन्दिर, श्री मानस्तम्भजी, श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर, श्री पंचमेरु-नन्दिश्वर जिनालय जैसे जिनायतनों के निर्माण से आज स्वर्णपुरी जैनजगत में आत्मसाधना का तीर्थधाम बन गया है और निकट भविष्य में 41 फीट की भगवान श्री बाहुबली के खड्गासन जिनबिम्ब की तथा जम्बूद्वीप के अनेक जिनबिम्बों की स्थापना होने पर पूज्य गुरुदेवश्री की साधनाभूमि स्वर्णपुरी आकर्षक अजायबीरूप से विश्व के नक्शे में स्थान प्राप्त करेगी।

इन विदेहदशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्जवल था, उतना बाह्य जीवन भी पवित्र था। पवित्रता और पुण्य का सहजयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही देखने को मिलता है। उनकी अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत सम्भाषण, करुण और सुकोमल हृदय उनके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव थे। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय, यही उनका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति वे हमेशा सतर्क और सावधान थे। वे जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित, मात्र अपनी ही साधना में तत्पर रहे। भावलिंगी मुनियों के वे परम उपासक थे।

स्वयं चतुर्थ गुणस्थानवर्ती साधक होने पर भी उनका जीवन-व्यवहार और परिणाम की स्थिति अत्यन्त उच्चकोटि की थी। तीर्थंकर का द्रव्य होने से जगत के जीव आत्मकल्याण को प्राप्त करें-ऐसी करुणा वर्तती होने से 91 वें वर्ष में भी गाँव-गाँव में विहार करके भव्यजीवों की तत्त्व जिज्ञासा शान्त करते थे, तथापि वे इतने निस्पृही थे कि उन्होंने कभी भी किसी को भी जिनमन्दिर बनाओ या स्वाध्यायमन्दिर बनाओ, ऐसा कहना तो दूर रहा, संकेत तक नहीं किया था।

जीवों के आत्मकल्याण की करुणा होने पर भी इतने निर्ममत्वी थे कि कभी किसी को भी पूछा नहीं था कि तुम रोज स्वाध्याय करते हो न?

कोई व्यक्ति जीवनपर्यन्त तत्त्वज्ञान न समझने से पूज्य गुरुदेवश्री का विरोध करता हो और उस व्यक्ति को अपने अज्ञान के लिये पश्चाताप होने पर पूज्य गुरुदेवश्री से क्षमा याचना करता हो, तब पूज्य

गुरुदेवश्री को शर्म... शर्म... अनुभव में आती थी और कहते थे कि भूल जाओ... भूल जाओ... भगवान ने भी अपने भूतकाल में भूल करने में कुछ बाकी नहीं रखा था। तुम भगवान हो-ऐसा हम देखते हैं और तुम भगवानरूप से देखो-ऐसी तो निर्मानता थी।

तत्त्वविरोध के कारण दैनिक पत्र में और पत्रिका में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अनुचित लेख छपें तो भक्त उनका विरोध करनेवाले हों तो आपश्री कहते है कि भाई! हमारा कोई विरोधी नहीं है। कोई हमारा विरोध नहीं करता, हम किसी को विरोधी नहीं देखते, हम तो सबको भगवानरूप से देखते हैं। चाहे जैसा लेख लिखकर विरोध करनेवाला भी यदि प्रवचन सुनने आता हो तो उसे सभा में आगे बैठने बुलाते और प्रवचन में वात्सल्यभाव से उसे सम्बोधित करते। पूरे जीवन दौरान किसी भी व्यक्ति ने कैसा भी विरोध किया हो, वह भी यदि एक बार पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-सत्समागम में आता तो वह जीवन भर उनका अनुयायी बन जाता। क्षमावाणी के दिन प्रवचन सभा में प्रसिद्धरूप से कहते कि किसी जीव को हमारे द्वारा पर्यायदृष्टि से देख लिया गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं। सब जीव भगवान हैं - ऐसी तो उनकी करुणामय क्षमा भावना थी।

जीवन में निस्परिग्रही तो ऐसे कि पैंतालीस-पैंतालीस वर्षों तक स्वाध्यायमन्दिर के एक ही कमरे में रहे कि जहाँ जिनवाणी-स्वाध्याय के लिये एक बैठक, सोने के लिये एक गद्देवाली बैंच और त्यागी को योग्य मात्र चार जोड़ी कपड़े! और स्वाध्याय के लिये सैकड़ों शास्त्रों से भरी हुई अलमारियाँ!!

देश और दुनिया में क्या हो रहा है, यह जानने का कौतुहल नहीं होने से कभी भी न्यूज पेपर तक पढ़ा नहीं था।

रसना के अलोलुपी-नि:स्वादी तो इतने कि जीवनभर कभी भी दो-तीन सब्जी के अतिरिक्त न तो कोई सब्जी चखी थी, मूँग की दाल के सिवाय न तो कोई दाल या कढ़ी चखी थी, न तो कोई चटनी, मिर्च चखी थी, न तो कोई मिठाई या फरसाण अथवा मुखवास चखा था। मानो कि कोई त्यागी-व्रती हो, वैसा उनका जीवन था।

करुणाशीलता का सागर होने पर भी, तत्त्व में इतने निर्भीक और सत्यमार्ग प्रवक्ता थे कि किसी भी लौकिक महानुभाव का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता था। एक प्रतिष्ठित श्रेष्ठी तथा एक त्यागी व्रती द्वारा उद्दिष्ठ भोजन सम्बन्धी कुछ स्वयं कहने सम्बन्धी पूज्य गुरुदेवश्री को संकेत किया जाने पर आपश्री ने बहुत स्पष्टरूप से कहा कि अपने लिये बनाया हुआ आहार—उद्दिष्ट भोजन—प्राण जाये तो भी मुनिराज नहीं लेते। देशकाल के नाम से सर्वज्ञ कथित शुद्ध आम्नाय का उल्लंघन कैसे किया जाये? विक्रम संवत् 1994 में स्वाध्यायमन्दिर के उद्घाटन प्रसंग पर भावनगर के महाराजा श्री कृष्णकुमारसिंहजी (देश के प्रथम राज्यपाल-मद्रास के) सोनगढ़ आये; उन्हें आपश्री ने प्रवचन में कहा कि थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी, बड़ा माँगे वह बड़ा भिखारी-वर्ष में पाँच हजार चाहिए हो, वह छोटा भिखारी और पाँच लाख चाहिए हो, वह बड़ा भिखारी! श्रीमद् राजचन्द्रजी को अपने धर्मगुरु माननेवाले राष्ट्रपिता गाँधीजी विक्रम संवत् 1995 में राजकोट में प्रवचन में आये। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपनी तत्त्व की मस्ती में कहा

कि मैं दूसरे की सेवा कर सकता हूँ - ऐसा माननेवाला मूढ़ है। यह बात गाँधीजी को इतनी अधिक स्पर्श कर गयी कि कितने ही वर्षों के बाद उन्होंने किसी से पूछा कि मुझे मूढ़ कहनेवाले महाराज अभी कहाँ विचरते हैं ?

गुण प्रशंसक तो इतने कि किसी ने भी शासन सम्बन्धी प्रशंसनीय कार्य किया हो - चाहे वह अपना शिष्य भले हो तो भी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे।

- ऐसी अनेक उच्चकोटि की परिणति और अध्यात्म तत्त्वज्ञान से भरपूर उपदेश के सुसंगम के कारण प्रथम परिचय में ही श्रोता उनके प्रति भावविभोर बनकर उनके अनुयायी बन जाते थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन अनुभूति विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से, सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा, युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से समझाया था। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान का स्वपरप्रकाशकपना इत्यादि समस्त आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से बाहर आये थे। 'सैंकड़ों शास्त्रों के हमारे मन्थन का यह सार अन्दर से आया है।' — इस 'क्रमबद्धपर्याय' के शंखनाद द्वारा आपश्री ने जैन जगत को आन्दोलित किया। जैसे श्री समयसार का स्मरण करे तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना नहीं रहता; इसी प्रकार क्रमबद्धपर्याय शब्द कान में पड़े तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना रहना असम्भव है। आज देश-विदेश में लाखों जीव मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह आपश्री का ही परम प्रताप है।

करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति, सम्यग्ज्ञानविभूषित इन महात्मा की महिमा का वर्णन शब्दातीत है; मात्र अहोभाव से अनुभवगम्य है।

'तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर! तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर!' — ऐसा महामन्त्र मुमुक्षुओं को देकर, भक्तों को भगवान बनने की प्रेरणा करनेवाले इन महापुरुष ने प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पन्थ जगत् में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थंकर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासनस्तम्भ श्री कहान गुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!

भवभीरु भव्यात्मा के भव का अभाव करनेवाले सत्पुरुष का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!

हे ज्ञान पोषक सुमेघ तुझे नमूँ मैं
इस दास के जीवनशिल्पी तुझे नमूँ मैं॥

- जीतूभाई नागरदास मोदी, सोनगढ़

अनुक्रमणिका

क्र.	शास्त्र	गाथा/श्लोक	तारीख	प्रवचन नं.	पृष्ठ
१.	श्री नियमसार	१५९	१८-०७-१९८०	१८५	१
२.	श्री समयसार	२७२	१९-१०-१९७९	३३४	१४
३	श्री समयसार कलश टीका	२७१-२७२	०६-०१-१९६६	२७२	२८
४	श्री समयसार कलश टीका	१७३	२३-१२-१९७७	१८३	३६
५	श्री नियमसार	४१, ४८-४९	१०-०९-१९६९	८	५१
६	श्री समयसार	६	०५-१२-१९७१	२०	६८
७	श्री समयसार	७	२२-०७-१९६१	१५	८१
८	श्री नियमसार	११०, १५६-१५९	१२-०४-१९५५	४०९	९६
९	श्री समयसार कलश टीका	१४०	०९-११-१९७७	१४४	११३
१०	श्री समयसार	७५	१३-१०-१९६१	१०२	१२८
११	श्री समयसार कलश टीका	२७१	२९-०९-१९७७	४६३	१४४
१२	श्री समयसार	२७१	१३-०१-१९७१	५७५	१५७
१३	श्री समयसार	६	२७-०९-१९७३	५१२	१७२
१४	श्री नियमसार	१५, २६	१०-०३-१९७३	२७	१८५
१५	श्री नियमसार	१५	११-०३-१९७३	२८	१९८
१६	श्री समयसार	१८१-१८३, १२५	१९-०६-१९७९	२५७	२१०
१७	श्री समयसार	१८१-१८३	२०-०६-१९७९	२५८	२२५
१८	श्री नियमसार	१५९, २७१	१७-०७-१९८०	१८४	२३९
१९	श्री नियमसार	४८-४९, ७२	२५-०९-१९६९	१६	२५१
२०	श्री नियमसार	५०	२७-०९-१९६९	१८	२६७
२१	श्री नियमसार	१२९-१३०	११-१२-१९७९	१०३	२८३
२२	श्री समयसार	२७१	१७-०२-१९७४	६२९	२९५
२३	श्री समयसार	३०८-३११, १९४	२७-१२-१९७९	३७९	३०६
२४	श्री नियमसार	१८७, ३०६-३०७	१६-१२-१९७१	२०४	३२१
२५	श्री समयसार	२११-२१२	०९-०६-१९८०	४०६	३३५

ॐ

श्री परमात्मने नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्रव्यदृष्टिप्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

(भाग ७)

१

श्री नियमसार, गाथा - १५९, प्रवचन - १८५
दिनांक - १८-०७-१९८०

नियमसार, शुद्धोपयोग अधिकार। यहाँ यह कहना है कि आत्मा पर का तो कुछ कर नहीं सकता। अपने में अपनी पर्याय में पर्याय उलट-पलट कर सकता है। पर में तो कुछ कर नहीं सकता; और पर को जानना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! कहाँ ले जाना है? पर को जानता है, वह पर में तन्मय होकर नहीं जानता; पर से भिन्न रहकर जानता है। अपने अस्तित्व में स्व और पर को जानने की ताकत है, तो अपने अस्तित्व में ही जानता है। पर के अस्तित्व से और अस्तित्व में नहीं जानता। आहाहा! पर का कर तो नहीं सकता। निश्चय से तो अपने राग का भी कर्ता नहीं है। पर्यायदृष्टि मिथ्यादृष्टि में कर्ता है। आहाहा! स्वभावदृष्टि में उसका कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि द्रव्य पर दृष्टि करते हुए स्व-पर को जानना स्वयं से स्वतः होता है। यह बात चलती है।

फिर से लेते हैं। '**पराश्रितो व्यवहारः**' जितना पराश्रित हो, उस सबको व्यवहार कहते हैं। **ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, व्यवहारनय से वे भगवान...** आहाहा! **परमेश्वर**

परमभट्टारक आत्मगुणों का घात करनेवाले... निमित्त से कथन है। **घातिकर्मों के नाश द्वारा...** अपने गुण में घात करने में निमित्त है। उस निमित्त का भी अपने गुण से घात करके। उन्हें निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। पर का घात करना, वह अपने अधिकार की बात नहीं है। वह परमाणु की पर्याय अपने पलटने के काल में पलटती है। यहाँ राग-द्वेष नहीं किये तो उसने पलटायी—उसने कर्म का नाश किया—ऐसा व्यवहार कहने में आता है। ओहोहो! यहाँ तक व्यवहार। यहाँ तो अभी बाहर का यह करना... यह करना... और यह करना... आहाहा! पर का तो कुछ करता नहीं, परन्तु अपने में राग होता है, उसका भी परमार्थ से कर्ता नहीं है। परमार्थ से तो उसे जाननेवाला भी नहीं है। अपने ज्ञानस्वभाव में स्व-पर प्रकाशक शक्ति होने से अपने को जानता है। पर को जानता है - ऐसा कहना, वह व्यवहारनय है।

व्यवहारनय से वे भगवान परमेश्वर परमभट्टारक आत्मगुणों का घात करनेवाले घातिकर्मों के नाश द्वारा प्राप्त सकल-विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन द्वारा त्रिलोकवर्ती तथा त्रिकालवर्ती... त्रिलोकवर्ती-त्रिकालवर्ती। आहाहा! तीन लोक में वर्तनेवाले और तीन काल में वर्तनेवाले। **सचराचर...** आहाहा! **द्रव्य-गुण-पर्यायों को...** द्रव्य अर्थात् वस्तु; गुण अर्थात् उसकी शक्ति; पर्याय अर्थात् उसकी अवस्था। प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय को एक समय में जानने की ताकत है। **एक समय में जानते हैं और देखते हैं।** आहाहा!

शुद्धनिश्चय से परमेश्वर महादेवाधिदेव सर्वज्ञवीतराग को, परद्रव्य के ग्राहकत्व,... परद्रव्य के जाननेवाले और परद्रव्य के देखनेवाले। **परद्रव्य के ग्राहकत्व, दर्शकत्व, ज्ञायकत्व आदि के विविध विकल्पों की सेना की उत्पत्ति मूलध्यान में अभावरूप होने से...** मूल में है नहीं। आहाहा! पर को ग्रहण करना, पर को जानना, पर को देखना... आहाहा! यह अपने मूल ध्यान में नहीं है। **वे भगवान त्रिकाल-निरुपाधि,...** आहाहा! निर-अवधि—मर्यादारहित **नित्यशुद्ध...** त्रिकाली शुद्ध द्रव्य और पर्याय सादि-अनन्त।

नित्यशुद्ध ऐसे सहजज्ञान और सहजदर्शन द्वारा निज कारणपरमात्मा को,... आहाहा! निज कारणपरमात्मा, त्रिकाली चीज़, ध्रुव चीज़। आहाहा! **स्वयं कार्य (रूप) परमात्मा होने पर भी,...** आहाहा! अपने स्वरूप में केवलज्ञान और केवलदर्शन **कार्यपरमात्मा होने पर भी, जानते हैं और देखते हैं।** अपने को देखते-जानते हैं। आहाहा! पूर्ण स्वरूप प्रगट हुआ, तो भी अपने को देखते-जानते हैं। आहाहा! **किसप्रकार? इस ज्ञान का धर्म तो,...** इस ज्ञान का स्वभाव; जो ज्ञान अपना स्वभाव है, उसका स्वभाव धर्म **दीपक की भाँति,...** दीपक की भाँति। अपना ज्ञान का स्वभाव दीपक की भाँति... आहाहा! **स्व-परप्रकाशकपना है।** जैसे

दीपक अपने को प्रकाशित करता है और घट-पटादि पदार्थों को प्रकाशित करता है; उसी प्रकार आत्मा अपने को ज्ञान-दर्शनरूप जानता है। अपने को जानता है। आहाहा!

घटादि की प्रमिति से प्रकाश-दीपक (कथंचित्) भिन्न होने पर भी... घटादि की प्रमिति से प्रकाश-दीपक (कथंचित्) भिन्न होने पर भी। पररूप प्रकाशित चीज़ से दीपक कथंचित् भिन्न है। आहाहा! **घटादि की प्रमिति से प्रकाश-** आहाहा! **दीपक (कथंचित्) भिन्न...** अपने से कथंचित् भिन्न है। अपने को जानता है और जाननेवाला, ऐसे कथंचित् भिन्न है। आहाहा! स्वयं को जानता है और जाननेवाला भी स्वयं, वह भी कथंचित् भिन्न है। आहाहा! तो परचीज़ की बात ही कहाँ करना? परचीज़ तो भिन्न है ही। आहाहा! परचीज़ के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है, स्पर्श नहीं है। परचीज़ के साथ स्पर्श नहीं है, प्रवेश नहीं है। आहाहा! अपनी चीज़ में दीपक जैसे प्रमिति और प्रमाण, स्वयं अपने को जानता है और जाननेयोग्य, ऐसे कथंचित् भिन्न पड़ता है। आहाहा! **घटादि की प्रमिति से प्रकाश-दीपक (कथंचित्) भिन्न होने पर भी स्वयं प्रकाशस्वरूप होने से...** दीपक का प्रकाश स्वयं है। आहाहा! **स्व और पर को प्रकाशित करता है;...** आहाहा! दीपक अपने में रहकर स्व और पर को प्रकाशित करता है। आहाहा!

आत्मा भी... यह थोड़ी सूक्ष्म बात है। **ज्योतिस्वरूप होने से व्यवहार से त्रिलोक और त्रिकालरूप पर को...** आहाहा! प्रकाशस्वरूप होने पर भी, चैतन्य का प्रकाश स्वभाव, जानने का स्वभाव, ऐसा होने पर भी... आहाहा! **आत्मा भी ज्योतिस्वरूप होने से व्यवहार से त्रिलोक और त्रिकालरूप पर को...** आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें। अपना प्रकाशस्वभाव स्व-परप्रकाशक होने पर भी, पर को व्यवहार से जानता-देखता है। **त्रिलोक और त्रिकालरूप पर को तथा स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मा को (स्वयं को) प्रकाशित करता है।** व्यवहार से। अपने को और पर को जानना, यह दो में व्यवहार हुआ। आहाहा! अपने को भी जाने और पर को भी जाने, यह व्यवहार हो गया। पर को जानना, यह (व्यवहार हो गया)। समझ में आता है यह? बहुत सूक्ष्म बात! आहाहा! चैतन्य ज्योत... दीपक जैसे स्वयं में रहकर स्वयं को प्रकाशित करता है और घटपटादि को प्रकाशित करता है। वह अपने में रहकर, यह व्यवहार। ऐसे ज्योतिरूप चैतन्य आत्मा अपने को जानता है और त्रिलोक तथा त्रिकाल जो अपने से भिन्न है, उन्हें व्यवहार से जानता है। आहाहा!

श्रोता : पर को जो व्यवहार से जानता है और अपने को निश्चय से जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने को निश्चय से। व्यवहार हो गया न? परवस्तु, वह व्यवहार;

स्ववस्तु, वह निश्चय। स्व को जानना, वह निश्चय; पर को जानना, वह व्यवहार। आहाहा! पर को अपना मानना, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! और अपने स्वभाव में पर से कुछ होता है, मुझमें पर से फेरफार होता है, यह भी मिथ्याभ्रान्ति है, परन्तु अपने में जानने की ताकत है, वह त्रिकाल और त्रिलोक को जाने... आहाहा! उसे भी व्यवहार कहा जाता है। ओहोहो! यहाँ तक कहाँ जाए? अभी तो यहाँ पर का करना है, पूरे दिन पर का करना और मदद करना, सहायता करना, पर के कार्य करना, इसके बिना कमा किस प्रकार सके? पच्चीस-पचास हजार का बारह महीने का खर्च हो। वह सब कमावे, दुकान चलावे, यह करे, यह करे तो यह सब होता है या नहीं? आहाहा! कुछ नहीं होता। यह पच्चीस-पचास हजार का आना या न आना, वह परमाणु की पर्याय की ताकत है।

गुजराती में ऐसा कहा जाता है न? हिन्दी में भी है। 'दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।' नाम है? परन्तु वह जो चीज़ आनेवाली है, वह आयेगी। एक परमाणु का फेरफार नहीं होगा। जितने परमाणु, जितने प्रमाण में आनेवाले होंगे, वे आयेंगे; नहीं आनेवाले होंगे, वे नहीं आयेंगे। आत्मा उसमें कुछ ला सके या घटा सके या फेरफार कर सके (नहीं)। आहाहा! दाल, भात, रोटी खाने में भी कम खाना और अधिक खाना, यह आत्मा नहीं कर सकता।

श्रोता : चबाकर तो खाना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा चबा सकता ही नहीं न! आत्मा पर को चबा सकता ही नहीं। पर को छूता ही नहीं। आहाहा!

दुनिया में तो ऐसा कहा जाता है कि पेट में कहीं दाँत नहीं है, इसलिए बराबर चबाकर खाना कि जिससे अन्दर जाकर पचे। आहाहा! सब मिथ्या है। एक परमाणु का दबा सके या छू सके, ऐसा नहीं होता। आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग है। वीतराग-तीन काल का ज्ञान, त्रिकाली सर्वज्ञ परमात्मा सब जानते हैं। परन्तु कहते हैं कि सर्व को जानते हैं-ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा!

श्रोता : पर को जाने, वह व्यवहार...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर है न? जिसमें तन्मय होकर न जाने, वह व्यवहार है। आत्मा शरीर को तन्मय होकर नहीं जानता। आत्मा अरूपी, शरीर रूपी। आहाहा! दाल, भात, रोटी रूपी, जड़ और आत्मा चैतन्य। वह चैतन्य पर को स्पर्श कर खाता है-पीता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! लो! ऐसी बात! पर से तो बिल्कुल पंगु है। अपने में पुरुषार्थ करके परमात्मा हो सकता है। पर के लिये तो पंगु है।

श्रोता : परमात्मा तो सर्वशक्तिमान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपनी शक्ति में। अपनी शक्ति अपने में। यह प्रश्न भी उठा है कि आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं तो एक शक्ति ऐसी भी होनी चाहिए, वह लाओ तो क्या तकलीफ है? पर का कर सके, ऐसी एक शक्ति होवे तो क्या तकलीफ है? यह भी प्रश्न उठा था शास्त्र में। अपने को जानता है, वैसे पर को भी जानता है और पर का कर सकता है, अनन्त शक्तियाँ है तो उसमें एक शक्ति यह लेना। परन्तु ऐसी कोई शक्ति नहीं होती। आहाहा!

अपने स्वरूप में पर का तो कर्ता नहीं, राग का कर्ता नहीं, परन्तु राग को और पर को जानना, यह भी व्यवहार है। आहाहा! जानना, वह व्यवहार है। करने का तो है ही नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग किसे रुचे? पूरे दिन काम करना हो। अब अन्दर से भिन्न पड़कर मुर्दा हो जाए। पर के लिये तो मुर्दा हो जाए, तब हो। आहाहा!

आत्मा भी ज्योतिस्वरूप होने से व्यवहार से त्रिलोक और त्रिकालरूप... आहाहा! तीन काल को जाने, यह भी व्यवहार है। आहाहा! वस्तु को जाने, यह तो व्यवहार है, परन्तु तीन काल को जाने, यह भी व्यवहार है, क्योंकि परचीज़ है। आत्मा अपने को, अपने में जानता है, यह भी एक भेद है, व्यवहार है। यह पहले आ गया। आत्मा, आत्मा को जानता है, यह भी व्यवहार है। वह तो ज्ञायक, ज्ञायक ही है, बस! आहाहा! यह पहले आ गया। समझ में आया?

पर का कर्ता नहीं, पर को जानता नहीं, अपने में अपने को जानता है। ज्ञायक, ज्ञायक को जानता है, यह भी व्यवहार है। यह व्यवहार भी अभूतार्थ है। ज्ञायक, ज्ञायक है। जाननेवाला, जाननेवाला है, बस! किसे जानता है, यह प्रश्न नहीं। जाननेवाला है। आहाहा! अपने को जानता है, यह भी व्यवहार है। अरे! पहले आ गया है। समयसार में (आ गया है)। ऐसी बात बैठना! पूरे दिन व्यवहार क्रियाकाण्ड में रचापचा (हो), एक तो पूरे दिन दुकान में रचापचा हो, उसमें से थोड़ा समय लेकर शाम को सामायिक करना। एकाध शाम को और एकाध सवेरे उठकर। यह आसन बिछाकर णमो अरिहंताणं... तिक्खुत्तो... ऐसा करके हो गयी सामायिक, हो गया धर्म, लो! अरे! भाई! यह धर्म नहीं है। आहाहा!

अपनी चीज़ पर को स्पर्श नहीं करती तो पर को जाने, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। क्या कहा? अपनी चीज़ पर को स्पर्श नहीं करती तो पर को जानना, ऐसा कहना भी व्यवहार है। आहाहा! अपने में भेद करना कि ज्ञान आत्मा को जानता है, यह भी व्यवहार है। यह सद्भूतव्यवहार है। पर को जानता है-ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहार है। आहाहा!

अब ऐसा धर्म का उपदेश! पूरे दिन यह करना - करना चले, उसमें कुछ जानने में भी तू तुझे जानता है और जाननेवाला, जाननेवाले को जानता है, ऐसा भेद भी व्यवहार है। आहाहा! पर को जानता है, यह तो व्यवहार है ही, क्योंकि पर को कभी स्पर्श नहीं करता और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में कभी प्रवेश नहीं करता। आहाहा! और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! बिच्छु काटे तो बिच्छु ने शरीर को स्पर्श नहीं करता। सर्प काटे तो सर्प ने शरीर को स्पर्श भी नहीं किया। आहाहा! अब यहाँ इतने अधिक जाना! निवृत्ति कहाँ?

श्रोता : जहर तो चढ़ जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर चढ़ता है, वह तो स्वयं के परमाणुओं में (फेरफार होता है)। वह स्वयं के परमाणुओं के कारण से है। ऐसी चीज़ कठिन है। अनन्त परमाणु स्वयं में है। स्वयं में जो पर्याय होनेवाली होवे तो वह निमित्त है। निमित्त से कुछ हुआ नहीं। आहाहा! कठिन बात है। दुनिया से अलग प्रकार है। सत्य को तो सत्य रखना चाहिए। सत्य को असत्य करने से तुझे लाभ नहीं होगा। आहाहा!

ज्योतिस्वरूप भगवान आत्मा, जानन-देखन स्वभाव, वह पर को जानता-देखता है, कहना, यह व्यवहार है, क्योंकि पर में तन्मय होकर नहीं जानता, पर को स्पर्श कर नहीं जानता। पर को प्रवेश करके नहीं जानता। अपने में प्रवेश करके अपने को जानता है। आहाहा! ऐसा व्यवहार धर्म! यहाँ तो कहे-एकेन्द्रिय की दया पालो, दो इन्द्रिय की दया पालो, तस्समिच्छामि दुक्कडम करो पाप लगा हो तो। आहाहा! तस्सउत्तरीकरणेण प्रायश्चित करणेण विसोहि करणेण, कायोत्सर्ग करो। यहाँ कहते हैं, शरीर को हिला सकता नहीं, उसमें करे क्या? कायोत्सर्ग तो उसे कहते हैं कि रागरूपी परिणाम है, उसे भी स्पर्श नहीं करना और अपने आनन्द में रहना, वह कायोत्सर्ग है। आहाहा! कहाँ बाहर की और कहाँ अन्दर की चीज़! बहुत अन्तर हो गया।

यह कहते हैं **पर को तथा स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मा को (स्वयं को) प्रकाशित करता है।** आहाहा! व्यवहार से त्रिलोक को और त्रिकालरूप पर को **तथा स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मा को (स्वयं को) प्रकाशित करता है।** आहाहा! है अन्तिम लाईन? **६९ पाखण्डियों पर विजय प्राप्त करने से जिन्होंने विशाल कीर्ति प्राप्त की है, ऐसे महासेनपण्डितदेव ने भी (श्लोक द्वारा) कहा है कि:—** आहाहा! नीचे भाई ने लिखा है, टीका में कुछ अशुद्धि है। **वस्तु का यथार्थ निर्णय, सो सम्यग्ज्ञान है।** यह श्लोक का अर्थ है। आहाहा!

वस्तु का यथार्थ निर्णय (अर्थात्) जैसी चीज़ है, वैसा निर्णय होना, इसका नाम सम्यग्ज्ञान है। भगवान ने कुछ बनाया नहीं। कोई भगवान ने कुछ नहीं किया। वाणी भी भगवान ने नहीं की है। आहाहा! वाणी भी वाणी के कारण से निकली है। भगवान ने जाना है तो स्व-परप्रकाशक अपनी शक्ति है। वाणी में स्व-पर कहने की शक्ति है। वह वाणी, वाणी से निकलती है; भगवान के मुख के कारण नहीं। अभी अखबार में इसकी चर्चा चली थी। कोई कहे कि भगवान के मुखारविन्द से वाणी निकलती है। मुखारविन्द (-ऐसी) भाषा सब जगह आती है। यह शब्द बहुत जगह आता है। मुखारविन्द से वाणी निकलती है। बड़ी चर्चा चली है। अभी लेख आते हैं। कोई कहे कि मुखारविन्द से नहीं; पूरे शरीर से निकलती है। भगवान को वाणी निकलती है, वह पूरे शरीर में से निकलती है। ॐध्वनि खिरती है। यह सत्य है। आहाहा! स्वयं से निकलती है, पर से नहीं निकलती। आहाहा! वाणी भी स्वयं के कारण से निकलती है। भगवान तो वाणी में निमित्त है। निमित्त का अर्थ कि निमित्त, वाणी को कुछ नहीं करता। वाणी को ज्ञान स्पर्श भी नहीं करता। केवलज्ञानी का ज्ञान... आहाहा! वह वाणी को स्पर्श भी नहीं करता, तो भगवान वाणी के कहनेवाले हैं, यह तो व्यवहार का कथन है। आहाहा! ओहोहो!

भेदज्ञान सूक्ष्म बात है, भाई! पदार्थ को जैसा है, वैसा भिन्न, भिन्नरूप जैसा पदार्थ रहता है, जाननेवाला पर को जाने तो भी भिन्न रहता है, इसलिए पर को जानना व्यवहार कहा गया है। आहाहा! पर को जानने के काल में आत्मा अपना ज्ञान पर में तन्मय नहीं करता। पर को स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता। आहाहा! तो पर को जानता है (-यह) कहना, वह तो व्यवहार है। अपने को जाने, वह निश्चय, सद्भूतव्यवहार है। वह तो असद्भूत-झूठा व्यवहार है। आहाहा! कठिन बातें। यह सब भगवान की वाणी और शास्त्र बनाया, वह मानना या नहीं? 'ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रची आगम उपदेश, भविक जीव संशय निवारे।' निमित्त-निमित्त के कथन तो ऐसे आते हैं, परन्तु उन्हें समझना चाहिए। निमित्त-व्यवहार का कथन तो आता है।

भगवान को ऐसा अतिशय था। अतिशय तो अतिशय में है; भगवान, भगवान में है। आहाहा! बात बहुत सूक्ष्म! भगवान दिव्यध्वनि से बोलते थे। ॐकार से बोलते थे, यह भी व्यवहार है। ॐ, ॐकार से स्वतन्त्र निकलता है। आत्मा स्वतन्त्र अपने ज्ञान में जानता है, बस! आहाहा! इतने अधिक (पहुँचना)। अभी तो यह हाथ को हिला सकता नहीं, इसे ऐसे कर सकता नहीं, अंगुली से ऐसा हुआ ही नहीं। उसकी पर्याय ऐसी होने की थी तो हुई, तो

निमित्त कहने में आया। निमित्त है तो ऐसा हुआ है-ऐसा है नहीं। आहाहा! वीतराग की वाणी बहुत कठिन। प्रत्येक वस्तु जैसी है, वैसी जानी और जानकर वाणी में प्रकाश करने का स्वभाव धर्म है तो प्रकाशित हुई। आहाहा! इसलिए वाणी को भी व्यवहार से (पूज्य कही है)। पहले समयसार में आ गया। व्यवहार से पूज्य है। आहाहा! आत्मा बोल नहीं सकता; बोले, उसे जान नहीं सकता। आहाहा! क्योंकि भाषा पर है, आत्मा पर है, तो पर को जानना, कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! अब जानता है या नहीं जानता? दो का निर्णय तो करना या नहीं?

श्रोता : पहले ज्ञान को जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन जाने? प्रभु! अपने को जानता है। व्यवहार से ज्ञात होता है। अपनी पर्याय में उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने से, अपने में, अपने कारण से प्रगट हुआ है। वह चीज़ हे तो चीज़ की अस्ति से यहाँ ज्ञान प्रगट हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! उस परचीज़ का ज्ञान स्वयं से उत्पन्न हुआ है। अपने ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से। आहाहा! यहाँ तक ले जाना।

वस्तु का यथार्थ निर्णय, सो सम्यग्ज्ञान है। श्लोक का अर्थ है। है? श्लोक का है? श्लोक का अर्थ है। पहला श्लोक है न? **वह सम्यग्ज्ञान, दीपक की भाँति,...** वह सम्यग्ज्ञान दीपक की भाँति **स्व के और (पर) पदार्थों के निर्णयात्मक है...** जाननेवाला है। आहाहा! **तथा प्रमिति से (ज्ञप्ति से) कथंचित् भिन्न है।** आहाहा! जानने की क्रिया... आहाहा! कथंचित् चेतनद्रव्य से भिन्न है। आहाहा! प्रमिति जो जानने की क्रिया होती है, तो जानने की क्रिया तो एक समय की है; वस्तु त्रिकाली है। त्रिकाली में उस पर्याय का प्रवेश नहीं और उस पर्याय की उत्पत्ति स्वयं से हुई है; द्रव्य से भी नहीं। आहाहा! सब बातें ऐसी, अब लिखने जाए कब? याद रखे कब? आहाहा! सम्प्रदाय में तो बाहर की बात। एकेन्द्रिय (की दया) करो, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो और वह करते... करते... वह क्रिया मैं करता हूँ - ऐसा मानना, यह मिथ्यात्व है। आहाहा! मैं आसन बिछाता हूँ, मैं णमो अरिहंताणं बोलता हूँ... आहाहा! सब मिथ्यात्व है। गजब बात है, प्रभु! कितनों ने तो ऐसी बात कभी सुनी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **प्रमिति से (ज्ञप्ति से) कथंचित् भिन्न है।** अपने में जानने की पर्याय से भी द्रव्य कथंचित् भिन्न है। पर्याय तो एक समय रहती है और द्रव्य तो त्रिकाल है। आहाहा!

श्रोता : यहाँ तो कथंचित् अभिन्न भी कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इसकी पर्याय है न? इस अपेक्षा से। परन्तु पर्याय और द्रव्य एक नहीं है। आहाहा! पर्याय की एक समय की अवधि, द्रव्य की त्रिकाल अवधि। आहा! तो अपनी जानने की शक्ति पर्याय में गयी, वह जानने की शक्ति भी पर से तो नहीं, पर को तो जानता नहीं, परन्तु जानने की शक्ति द्रव्य की है, वह कथंचित् भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

जाननेवाला जानता है। पर को और स्व को दोनों को, पूर्ण स्वरूप भगवान जानता है, परन्तु पर को जानना, वह पर को स्पर्श नहीं करता। पर सन्मुख उपयोग गया नहीं। उपयोग तो अपना स्वसन्मुख है। भगवान का उपयोग तो स्वसन्मुख है; पर में उपयोग नहीं है और स्वसन्मुख के उपयोग में पर का ज्ञान आ गया। आहाहा! ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म! यह अन्तिम अधिकार सूक्ष्म है।

सवेरे आया था न, प्रकृति का, वह सूक्ष्म था। प्रकृति पूर्व में बाँधी हुई सबकी समान नहीं होती। जिसे जितनी जो प्रकृति हो उतनी। बँधी हुई हो, वह उदय में आवे, उसे आत्मा भोगता नहीं। आहाहा! यहाँ तो खाना-पीना-ओढ़ना-पहिनना सभी क्रिया मैं कर सकता हूँ (-ऐसा अज्ञानी मानते हैं)। आहाहा!

बात यह है, तू है कौन? तू है कौन? और तुझमें है क्या? तू आत्मा है और तुझमें ज्ञान है। तू आत्मा है और आत्मा में ज्ञान है; तो वह ज्ञान जानता है। वह अपने को जाने, यह निश्चय, क्योंकि अपने में तन्मय है। परन्तु मैंने मुझे जाना, यह भी भेद है। आहाहा! ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। यह पहले आ गया। ज्ञायक, ज्ञायक ही है। ज्ञायक अपने को जाने और पर को जाने, ऐसा नहीं; ज्ञायक तो ज्ञायक है। आहाहा! अब उसे पर की दया पालने का कहना, सत्य बोलना, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, शरीर से। शरीर को ब्रह्मचर्य में रोके रखना - यह क्रिया जड़ की है। वह अपने से रुकती है? अपने से होती है? अपने से होती है तो अपने से रुके? बात ऐसी है, बापू! भगवान का मार्ग जैसे बहुत खुल्ला करने जाए तो बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

एक परमाणु में अनन्त गुण, एक आत्मा में अनन्त गुण। वे गुण अनन्त कहना, यह भी एक भेद है। गुण-गुणी का भेद करना, यह भी व्यवहार है। आहाहा! अरे! गुण-गुणी का भेद करके रहना, यह भी विकल्प है। आहाहा! मैं ज्ञायक हूँ - ऐसा कहना, और इस विकल्प में रहना, यह भी विकल्प है। आहाहा! मैं गुणी हूँ और यह गुण है, यह भी विकल्प है। फिर द्रव्य है और गुण है और पर्याय है, यह भी विकल्प है-राग है। आहाहा!

यहाँ तो जाननेवाला जानता है, स्वयं को प्रमिति को जानता है, यह भी भेद-व्यवहार है। आहाहा! आया न अन्दर? **पदार्थों के निर्णयात्मक है तथा प्रमिति से (ज्ञप्ति से) कथंचित् भिन्न है।** जानने की पर्याय से तो भिन्न है, परन्तु अपना आत्मा कथंचित् भिन्न है। यहाँ तो यह परपदार्थ में लिया है। **दीपक की भाँति, स्व के और (पर) पदार्थों के निर्णयात्मक है तथा प्रमिति से (ज्ञप्ति से) कथंचित् भिन्न है।** आहाहा! दीपक का प्रकाश, दीपक और उसका प्रकाश प्रकाशित करता है, वह भी भिन्न हो गया, वह भी सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! दीपक पर को प्रकाशित करता है। यह तो असद्भूतव्यवहार है, झूठा व्यवहार है। आहाहा! इसी तरह आत्मा पर को जानता है, यह असद्भूतव्यवहार-झूठा व्यवहार है। आत्मा अपनी पर्याय को जानता है, यह भी सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! अब ऐसी बात कहाँ लेना? निवृत्ति नहीं मिलती।

ऐसा समय चला जाता है। मृत्यु के समीप जाता है। देह के छूटने की जो अवधि है, वह समय बदले, ऐसा नहीं है। लाख इन्द्र उतरे और कोई (डाक्टर) दवा, इंजेक्शन लगा दे और अमेरिका ले जाए और अमुक ले जाए। अभी ले जाते हैं न? अमुक दवा के लिये अमेरिका ले जाए, इंग्लैण्ड ले जाए, लन्दन ले जाए। आहाहा! लाख ले जाए। जो पर्याय जिस काल में जो होनी है, वह होगी। उसमें फेरफार करने को इन्द्र, नरेन्द्र और जिनेन्द्र (भी) समर्थ नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र सुनने को नहीं मिलती। वीतराग परमात्मा के अलावा (अन्यत्र कहीं है नहीं)। पागल जैसा लगे।

प्रत्यक्ष करते हैं न? यह कहा था न उस दिन, यह बात हुई थी। 'चिमन चकु' कहे - लो, यह किया। नहीं कर सकता... नहीं कर सकता... अरे! परन्तु प्रभु! धीर-धीर हो। ऐसा किया उसमें क्या हुआ? अन्दर में क्या हुआ? उसमें क्या हुआ? दो पदार्थ भिन्न है या नहीं? यह शरीर पदार्थ भिन्न है और आत्मा अन्दर भिन्न है, तो आत्मा की पर्याय आत्मा में हुई है, शरीर की पर्याय शरीर में हुई है। बाबूभाई! कहते हैं, यह किया, लो! क्या किया तूने? तू कौन है? कहाँ है? वह तो आत्मा है। आत्मा में तो पर्याय हुई। मैं करूँ - ऐसी पर्याय हुई भले। परन्तु वह पर्याय आत्मा में रही और यह हुई, वह तो इसके पर्याय में हुई; तो आत्मा की पर्याय इसकी पर्याय करती है, वह बिल्कुल झूठ है। आहाहा! वह तो बड़ा वकील है। (संवत्) १९९७ के वर्ष की बात है, हों! बहुत समय हो गया। ३९ वर्ष हुए। मन्दिर होता था, तब थे। आहाहा!

अब 'स्वाश्रितो निश्चयः' 'स्वाश्रितो निश्चयः' है ? (निश्चय स्वाश्रित है)' ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, (ज्ञान को) सतत निरुपराग निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही। आहाहा! अपना, हों! अन्दर अपने में। **'निरुपराग = उपरागरहित; निर्विकार।' निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण...** यह वहाँ पड़ा है प्रभु तू। **कारण निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही।**

(वह इस प्रकार :) सहज ज्ञान आत्मा से संज्ञा,... क्या कहा ? समझ में आया ? पर की बात नहीं, हों! निश्चयनय से स्व-परप्रकाशकपना है। इतना। यह क्या कहा ? कि अपने से, अपने में निश्चय से स्व-परप्रकाशक है ही। पर को प्रकाशित करता है, यह अभी प्रश्न नहीं। निश्चय से अपने में, अपने कारण से स्व-पर प्रकाशक जानना, यह निश्चय से अपने में अपने कारण से है। पर के कारण से है नहीं। आहाहा! ऐसी बात! क्या कहा ?

फिर से, **'स्वाश्रितो निश्चयः (निश्चय स्वाश्रित है)' ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, (ज्ञान को)सतत निरुपराग निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही।** क्या कहा ? ज्ञान तो अपने में ही रहता है। स्व-परप्रकाशकपना भी अपने में है। पर के कारण परप्रकाशकपना है या पर को ज्ञान स्पर्श करता है, इसलिए परप्रकाशक है—ऐसा है नहीं। निश्चयनय से तो अपने में स्व-परप्रकाशक, यह स्वरूप ही उसका है। यह तो अपना स्वतः स्वरूप है। आहाहा! यह निश्चय से, हों! स्व-परप्रकाशक। यह तो पर को जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है, परन्तु स्वयं प्रकाशक स्वभाव तो निश्चय से अपना ही है। समझ में आया ? जहाँ यहाँ व्यवहार को निश्चय कह दिया। कैसे ?

निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण निश्चयपक्ष से भी... व्यवहार तो ठीक, पर को जाने परन्तु **निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही।** क्या ? पर का प्रकाशक ऐसा नहीं। यहाँ स्वभाव निश्चय से तो स्व-परप्रकाशकपना अन्दर है। वह अपना स्वभाव अपने में है। पर को प्रकाशित करता है, इसलिए स्व-परप्रकाशक है - ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म कहाँ वाँचने जाए ? हीरा-माणेक के थोथा के कारण निवृत्ति कहाँ है ? शान्तिभाई को...

श्रोता : ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान स्वयं। ज्ञान का स्वभाव स्वप्रकाशक निश्चय से है। पर को प्रकाशित करता है - ऐसा कहना, वह व्यवहार है, परन्तु इसका स्वभाव निश्चय से स्व-परप्रकाशक निश्चयस्वभाव है। समझ में आया ? पर को जानना, वह अभी यहाँ नहीं। यहाँ

तो आतमा का स्वभाव निश्चय से स्व-परप्रकाशक निश्चय से है। वह पर को प्रकाशित करता है, इसलिए परप्रकाशक है - ऐसा नहीं। वह परप्रकाशक और स्वप्रकाशक अपना स्वभाव ही है। आहाहा! समझ में आया? वाडीभाई!

एक ओर ऐसा कहना कि पर को प्रकाशित करे, वह व्यवहार है। वह दूसरी बात है। वह तो पर को प्रकाशित करता है, परन्तु स्पर्श नहीं करता; किन्तु यह स्व-परप्रकाशक निश्चय तो स्वत: स्वभाव है। पर के कारण नहीं। पर को प्रकाशित करता है, इसलिए नहीं। स्व-परप्रकाशक निश्चय से अपना स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? प्रभु त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की। और यहाँ निश्चय से **निरुपराग निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण...** क्या कहा? कि परप्रकाश की पर्याय कहीं पर में लीन नहीं है। समझ में आया? परप्रकाश की और स्वप्रकाश की पर्याय पर में लीन नहीं है। वह स्व-परप्रकाश की पर्याय अपने में लीन है। आहाहा! समझ में आया?

फिर से, **(ज्ञान को) सतत निरुपराग निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण...** ज्ञान, ज्ञान में लीन है और ज्ञान का स्वभाव निश्चय से स्व-परप्रकाशक है। पर को प्रकाशे, यह अभी बात नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! निश्चय पर को प्रकाशे, वह ज्ञान आत्मा से अपने से अपने में लीन है। वह ज्ञान कोई पर को प्रकाशित करता है, इसलिए पर में जाता है - ऐसा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

ज्ञान तो यहाँ है और परप्रकाशक कहना, पर को प्रकाशक कहना, यह व्यवहार है, परन्तु पर की प्रकाशक की पर्याय अपने में लीन है। वह परप्रकाशक की पर्याय पर से उत्पन्न हुई नहीं और पर में है नहीं। समझ में आया? इस लकड़ी को जानना, ऐसे इस लकड़ी को जानना, वह व्यवहार; परन्तु लकड़ी सम्बन्धी का ज्ञान आया, वह ज्ञान तो आत्मा में लीन है। वह स्व-परप्रकाशक निश्चय से स्वयं अपना स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

एक ओर कहना स्व-परप्रकाशक, वह व्यवहार है। दूसरी ओर कहना, यह स्व-परप्रकाशक, वह अपना स्वभाव पर के कारण से नहीं है। वह अपना स्वभाव है, इसलिए निश्चय पक्ष है। आहाहा! ऐसी बात है। यह जवानों को समझ में आता है या नहीं?

श्रोता : जवानों को तो जल्दी समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात जिन्दगी में आयी भी न हो न!

कहते हैं—दो बात—ज्ञान अपना। वह ज्ञान पर को जानता है - ऐसा कहना, वह व्यवहार। तो निश्चय और व्यवहार दो हुए। परन्तु पर को जाननेवाला ज्ञान उस पर में लीन नहीं है। वह तो अपने में है। तो निश्चय और व्यवहार दोनों अपने में है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए निश्चय से... आहाहा! परसम्बन्धी ज्ञान और अपने सम्बन्धी ज्ञान, इसमें आत्मा लीन है। पर में लीन नहीं। पर को जानता है तो पर में लीन नहीं। पर को जानने की शक्ति की लीनता तो अपने में है। आहाहा! इसलिए उसे निश्चयनय से **निश्चयनय से भी...** क्या कहा? ऐसा कैसे कहा?—कि व्यवहार से तो पर को जानता है, यह तो ठीक, परन्तु निश्चय से भी स्व-परप्रकाशक स्वभाव लीनता अपने में है। आहाहा! 'भी' कहा न 'भी'? पर की अपेक्षा लेकर पर को जानता है, ऐसा कहना, यह व्यवहार है, परन्तु स्व-पर को जानने की शक्ति है, वह अपने में लीन है। वह परप्रकाशक शक्ति कहीं पर में लीन नहीं है। आहाहा!

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२

श्री समयसार, गाथा - २७२, प्रवचन - ३३४
दिनांक - १९-१०-१९७९

समयसार २७२ गाथा। कलश हो गया है।

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणएण।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं॥२७२॥

हरिगीत

व्यवहारनय इस रीत जान, निषिद्ध निश्चयनयहि से।
मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्ष की प्राप्ति करे॥२७२॥

टीका - आत्माश्रित (अर्थात् स्व-आश्रित) निश्चयनय है,... स्व-आश्रित है न? प्रवचनसार १८९ गाथा में ऐसा कहा कि 'शुद्धदव्य निरूपणस्वरूप निश्चयनय।' राग-विकार आत्मा की पर्याय में होता है, इसलिए वह ज्ञेय का अधिकार है, इसलिए उसमें शुद्धद्रव्य के कथन अपेक्षा से निश्चयनय से राग और विकार पर्याय में अपने में है। निश्चयनय से। पर्याय इसकी है न? ज्ञेय का अधिकार है न? ज्ञेय की परिपूर्णता, उसका अपना स्वरूप... विकार होवे तो भी निश्चयनय से अपने में ही है। आहाहा! वहाँ शुद्धद्रव्य के निरूपणस्वरूप निश्चय, ऐसा कहा। शुद्धनय नहीं कहा। शुद्धद्रव्य निरूपणस्वरूप निश्चयनय और अशुद्धनयस्वरूप व्यवहारनय। कर्म के निमित्त से होता है - ऐसा कहना, वह अशुद्धनयरूप व्यवहारनय का कथन है और विकार पर्याय में होता है, यह स्व-आश्रित अपने में अपने से होता है; इसलिए उसे शुद्धद्रव्य निरूपण निश्चय कहा है। यह ज्ञानप्रधान कथन में ज्ञेय की व्याख्या की।

यहाँ दर्शनप्रधान कथन में (कहते हैं), आहाहा! स्व-आत्माश्रित निश्चयनय। आत्माश्रित अर्थात् यह पर्याय नहीं। यहाँ तो त्रिकाली ज्ञायकभाव स्व, उसका नाम स्व-आश्रित। ऐसे तो कहेंगे, निश्चय से मुनि मोक्ष को प्राप्त होते हैं। इसका अर्थ निश्चयनय से प्राप्त होते हैं अर्थात् निश्चय का विषय है जो ध्रुव ज्ञायकभाव है... आहाहा! उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है और उसके अवलम्बन से वह मुक्ति का मार्ग होता है। आहाहा! बहुत

सूक्ष्म बात, भाई! अनन्त काल से इसने स्वद्रव्य की चैतन्यशक्ति का सामर्थ्य क्या है, उसकी प्रतीति की ही नहीं।

यहाँ आत्माश्रित का अर्थ स्व-आश्रित किया। वह पराश्रित शब्द है न, बाद में टीका में? पराश्रित, तो यहाँ आत्माश्रित अर्थात् स्व-आश्रित। अपना स्वरूप जो है, पूर्ण आनन्द ज्ञायक चैतन्यसत्ता... यह तो कल दोपहर को कहा था न कि जिसकी पर्याय में यह ज्ञात होता है, जिसके अस्तित्व में यह ज्ञात होात है, वह जाननेवाली पर्याय है, वह तो अपने अस्तित्व में-अपने में है। यह ज्ञात होता है - ऐसा कहना, यह तो व्यवहार का-असद्भूतव्यवहार का कथन है। असद्भूतव्यवहार का कथन है। आहाहा! क्योंकि जिसकी सत्ता में (अर्थात्) अभी पर्याय की सत्ता हों! जिसकी सत्ता में, ये चीजें हैं - वह ज्ञात होती हैं - उसका अस्तित्व पर्याय में ज्ञान का है। उस ज्ञान को वास्तव में तो वह जानता है; पर को जानता है—ऐसा कहना (व्यवहार है)। क्योंकि पर में तन्मय नहीं है; इसलिए पर को निश्चय से जानता है—ऐसा नहीं है और अपनी पर्याय में तन्मय है; इसलिए निश्चय से अपने को स्वयं पर्याय को जानता है। आहाहा!

अब यहाँ तो इससे आगे दूसरी बात लेंगे कि जो पर्याय है, वह द्रव्य के आश्रय से शुद्ध होती है। यह स्व-आश्रय, वह आत्मा जो स्ववस्तु है, पर्याय के अस्तित्व में यह ज्ञात होती है, वह पर्याय ज्ञात होती है परन्तु अब वह तो उस पर्याय से ज्ञायक को जानती है। यह तो समयसार गाथा १७ में आ गया है न? ज्ञान की पर्याय है, (उसका) स्व-परप्रकाशक स्वभाव होने से वह ज्ञान की पर्याय स्वद्रव्य को जानती है, तथापि उसका वहाँ लक्ष्य नहीं है। यहाँ कहते हैं कि लक्ष्य करे स्व का, उसे यहाँ आत्माश्रित कहते हैं। आहाहा! यह क्या कहा?

यह आत्मा है भगवान प्रकाश... चैतन्यप्रकाश की मूर्ति है। अब इसकी जो पर्याय है, उसमें यह ज्ञात होता है। यह ज्ञात होता है, वह पर्याय ज्ञात होती है, वह (पर) वस्तु नहीं। उस वस्तु में कहाँ तन्मय होता है? क्योंकि उस वस्तु और पर्याय के बीच तो अत्यन्ताभाव है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! जिसकी सत्ता में 'यह है'—ऐसा ज्ञात होता है, वह इसकी सत्ता ज्ञात होती है। ज्ञान की अवस्था की सत्ता का अस्तित्व ज्ञात होता है। ज्ञान की अवस्था की सत्ता का अस्तित्व ज्ञात होता है। आहाहा! परन्तु वह अस्तित्व की पर्याय का भी व्यवहार है। पर्याय है, वह व्यवहार है; द्रव्य है, वह निश्चय है। अभी यहाँ यह लेना है।

वहाँ (प्रवचनसार) १८९ (गाथा में) ऐसा कहा कि शुद्धद्रव्य निरूपण—शुद्धद्रव्य के

कथन की अपेक्षा से पर्याय में राग है, यह निश्चयनय है। स्व में है, इस अपेक्षा से। यहाँ कहते हैं कि यहाँ दर्शन प्रधान कथन है; इसलिए स्व-आश्रित अर्थात् पर्याय नहीं, गुणभेद नहीं; अकेला ज्ञायकभाव जो त्रिकाली भूतार्थ सत् साहेब सत्स्वरूप प्रभु, पूर्ण शुद्ध ध्रुव, उसके आश्रित निश्चयनय है। यह पहली लाईन का अर्थ होता है। आहाहा!

निश्चयनय है, वह तो ज्ञान की पर्याय है, परन्तु वह विषय करती है द्रव्य को; इसलिए उसे स्व-आश्रित निश्चयनय कहा। समझ में आया? नय तो ज्ञान की पर्याय है परन्तु वह निश्चय ज्ञान की पर्याय है... यह तो शान्ति से समझनेयोग्य बात है। बापू! वह त्रिकाली ज्ञायक को विषय करती है। इसलिए उसे त्रिकाली को यहाँ निश्चयनय कहा जाता है। आहाहा! स्व-आश्रित निश्चयनय, ऐसा कहा न? स्व-आश्रित निश्चयनय।

भगवान पूर्णस्वरूप है। जिस पर्याय में पर ज्ञात होता है, उस पर्याय में आत्मा ज्ञात होात है, तथापि उसका लक्ष्य वहाँ नहीं है। क्या कहा? जिस ज्ञान की पर्याय में यह... यह... ज्ञात होता है - ऐसा कहते हैं, वह तो पर्याय ज्ञात होती है, तथापि वह पर्याय ज्ञात होती है, उस पर्याय में द्रव्य भी ज्ञात होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह वस्तु जो है, वह पर्याय में ज्ञात होती है, क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। यह स्व-प्रकाशक है, इसलिए ज्ञान की पर्याय, द्रव्य को, त्रिकाली को जानती है, तथापि उसका लक्ष्य वहाँ नहीं है; उसका लक्ष्य पर्याय और राग पर होने से वह (द्रव्य) जानने पर भी जानता नहीं।

यहाँ तो स्व-आश्रित से जानता है - ऐसा कहते हैं। लक्ष्य बदला है। आहाहा! समझ में आया? आत्माश्रित अर्थात् वह व्यवहार का 'पराश्रित' शब्द है न, इसलिए यहाँ 'स्व-आश्रित' (कहा है)। स्व-आश्रित, वह निश्चयनय है। स्व-आश्रित ज्ञायक अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, ध्रुवस्वभाव, वह स्व-आश्रित, उसे निश्चयनय कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

पराश्रित (अर्थात् पर के आश्रित) व्यवहारनय है। अब उसके सामने (लेते हैं)। जिसके दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम उत्पन्न होते हैं, वे सब पराश्रित हैं। पराश्रित हैं, इसलिए वह व्यवहार है और इसलिए इसका वह निषेध करनेयोग्य है - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! अब यहाँ कितने ही (अज्ञानी) यह कहते हैं कि व्यवहार करते हुए सराग चारित्र से वीतरागी चारित्र होता है। यहाँ कहते हैं कि उसका तो निषेध करना है। निषेध करने पर जो स्व का आश्रय हो, उसे निश्चय कहा जाता है। जिसका निषेध करना है, उसके आश्रय से निश्चय में-अन्तर में जाया जाएगा? समझ में आया?

हाँ, कितनी ही जगह कहा है कि व्यवहार साधन है, साधक है; निश्चय साध्य है। यह तो साधक का ज्ञान कराया है। मोक्षमार्गप्रकाशक २५६ पृष्ठ। व्यवहार कहा है न? (तो कहते हैं) - वह तो निमित्त आदि का ज्ञान कराने को कहा है। निमित्त है, उसका ज्ञान कराने को कहा है। आदरणीय है और आश्रय करनेयोग्य है - ऐसा नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई! कहो, नवरंगभाई! ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ एक सेकेण्ड के असंख्यातवें भाग में एक समय की पर्याय है, वह तो ठीक, परन्तु अन्दर वह पर्याय स्वयं वास्तव में तो व्यवहार है और त्रिकाली जो वस्तु है-ज्ञायकस्वरूप है, वही स्वयं निश्चय है। निश्चय और व्यवहार इस प्रकार है। अब यहाँ व्यवहार में तो पराश्रितभाव हो, उसे व्यवहार बताना है। समझ में आया? वरना तो पर्यायमात्र व्यवहार है। पंचाध्यायी। पर्यायमात्र व्यवहार है। केवलज्ञान हो या मोक्षपर्याय हो, तो भी वह व्यवहार है। क्योंकि वह पर्याय एक समय की अवधिवाली-नाशवान है। भगवान त्रिकाली अविनाशी शुद्ध चैतन्य है, वही निश्चय है, वही सत्य है और वही आत्मा है। आहाहा! अब ऐसा निर्णय कब करे?

ऐसा जो निश्चय स्व-आश्रित है, तब व्यवहार पराश्रित है। वहाँ व्यवहार पर्याय है, ऐसा न लेकर... पर्याय स्वयं व्यवहार है। बनारसीदास (की) परमार्थ वचनिका में भी आया है न? कि निश्चय मोक्षमार्ग है... वह व्यवहार है। पर्याय है न! (इसलिए व्यवहार है)। आहाहा! एक समय की अवधिवाली चीज़ और पलटती चीज़ और नाश होनेवाली चीज़, उसे यहाँ व्यवहार कहा है। चाहे तो निश्चयमोक्षमार्ग हो। जो यहाँ निश्चयनय आश्रित निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं, उसे यहाँ निश्चयमोक्षमार्ग को व्यवहार कहते हैं। किस अपेक्षा से? त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से भेद है, इसलिए अभेद की अपेक्षा से भेद को व्यवहार कहा जाता है। यहाँ अपेक्षा दूसरी है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार पराश्रित है। व्यवहारनय है न? वह व्यवहारनय पराश्रित है, इसलिए अकेली पर्याय नहीं। पर के आश्रित होता दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का शुभभाव या अशुभभाव, पराश्रित होता भाव वह व्यवहारनय का आश्रित है। अब ऐसी बातें! एक तो निश्चयमोक्षमार्ग। यह तो राग है, वह व्यवहार है तो इसे (निश्चयमोक्षमार्ग को) निश्चय कहा, परन्तु द्रव्य की अपेक्षा से तो त्रिकाल द्रव्य है, वह निश्चय है और पर्याय है, वह स्वयं ही, निश्चयमोक्षमार्ग है वह स्वयं ही व्यवहार है। क्योंकि यह तो आ गया न कि मोक्षमार्ग की पर्याय और मोक्ष दोनों द्रव्य में नहीं है। आहाहा!

मोक्ष की पर्याय और मोक्ष के मार्ग की पर्याय द्रव्य के ऊपर तैरती, ऊपर तैरती है। जैसे पानी के घन में तेल की बूँद ऊपर तैरती है, वैसे मोक्ष की पर्याय, मोक्ष के मार्ग की पर्याय भी द्रव्य से ऊपर तैरती है, अन्दर प्रवेश नहीं करती। आता है न कलश ? ऊपर तैरती है। पहले कलश में आता है। अब यहाँ यह नहीं लेना है। यहाँ तो मात्र पराश्रित जितना भाव है, उसे व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! अब ऐसी अपेक्षाओं का पार नहीं होता।

श्रोता : यहाँ मोक्ष की पर्याय है, वह अन्तर में जाती है या वह भी ऊपर तैरती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाये, वह बात भी नहीं है। वह पर्याय द्रव्य के प्रति ढलती है, इसलिए आश्रय किया, ऐसा कहने में आता है। यह तो कहा गया है। पर्याय जो निर्मल होती है, वह निश्चय से षट्कारक परिणमन से होती है। सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यग्दर्शन की पर्याय वह कर्ता, कर्म, करण (आदि षट्कारक से स्वयं से होती है)। पर्याय की कर्ता (पर्याय), (पर्याय का) कर्म पर्याय, पर्याय का कार्य पर्याय, पर्याय का साधन पर्याय, पर्याय का अपादान पर्याय... थी-थकी, थी-थकी आता है न ? अपादान। वास्तव में वह उपादान लिया है और उसका आधार भी वह, इसलिए पर्याय के षट्कारक पर्याय से है। परन्तु फिर भी वह पर्याय स्वतन्त्ररूप से लक्ष्य वहाँ करती है, वह स्वयं कर्ता होकर करती है। पर का आश्रय हुआ, इसलिए पराधीन है, ऐसा नहीं है। यह क्या कहा ? समझ में आया ? आहाहा!

यहाँ तो मात्र पराश्रित व्यवहार कहा, वह व्यवहार वास्तव में तो पर्याय स्वयं ही व्यवहार है, तथापि वह यहाँ अभी नहीं लेना है। यहाँ तो आत्मा के अतिरिक्त परपदार्थ की एकताबुद्धिरूप अध्यवसान है, उसे छुड़ाया है। दूसरे को बचाऊँ, जिलाऊँ, सुधारूँ, ऐसा करूँ, वह एकत्वबुद्धि छुड़ायी है तो साथ में आचार्य कहते हैं कि जैसे पर के आश्रय से एकत्वबुद्धि छुड़ायी है तो मैं तो ऐसा कहता हूँ कि पराश्रित व्यवहार ही छुड़ाया है। क्योंकि एकत्वबुद्धि भी पर के आश्रय से है और दया, दान, व्रत, रागादि हो, वह भी पर के आश्रित है। आहाहा! इसलिए भगवान ने तो व्यवहार ही छुड़ाया है। यह व्यवहार यह पर्याय छुड़ानी है, अभी ऐसा नहीं लेना है। आहाहा!

इसे होनेवाला जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव, शास्त्र का ज्ञान (होता है)। वह सब व्यवहार है, विकल्प है। आहाहा! इसे भगवान ने छुड़ाया है। क्योंकि वह पराश्रित है। आहाहा! शास्त्रज्ञान, वह भी पराश्रित है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग भी पराश्रित है। पंच महाव्रत के परिणाम भी पराश्रित, अणुव्रत के परिणाम भी पराश्रित हैं। आहाहा! यहाँ इन दो लाईन में (भरा है)। **आत्माश्रित (अर्थात् स्व-आश्रित) निश्चयनय है,...** निश्चयनय

है, वह तो ज्ञान का अंश है परन्तु स्व पूर्ण वस्तु को ही निश्चयनय कहा है। उसका आश्रय करनेयोग्य जो चीज़ है, उसे निश्चयनय कहा है। समझ में आया? ग्यारहवीं गाथा में कहा न? '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' (पर्याय की) गौण करके पहले ऐसा कहा कि व्यवहार अभूतार्थ है। पर्याय को गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा। पर्याय को गौण करके 'नहीं', ऐसा कहा न वहाँ? और द्रव्य को मुख्य करके वह 'है' ऐसा कहा। उसको (पर्याय को) असत्यार्थ कहा था, वह तो गौण करके असत्यार्थ कहा था। पर्याय है अवश्य परन्तु गौण करके उसे असत्य कहा। अब यहाँ व्यवहार है अवश्य; जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक स्व-आश्रित दृष्टि और अनुभव भी है और जरा पराश्रित का रागभाव भी है। है, उसका निषेध है न? आहाहा! समझ में आया? अब निवृत्ति कहाँ इसमें? बनिये को निवृत्ति कब मिले? आहाहा! ऐसा मार्ग है। व्यवहार पराश्रित है, वह यह।

वहाँ, पूर्वोक्त प्रकार से पराश्रित समस्त अध्यवसान... अब यह पराश्रित व्यवहार कहा, उस व्यवहार के दो प्रकार करके निषेध करते हैं। **पराश्रित समस्त अध्यवसान (अर्थात् अपने और पर के एकत्व की मान्यतापूर्वक परिणमन)...** मैं पर का कर सकता हूँ, पर को प्राप्त कर सकता हूँ, पर को छोड़ सकता हूँ, पर को ले सकता हूँ, दूसरे को सुखी कर सकता हूँ, दु:खी कर सकता हूँ, दूसरे का मोक्ष करा सकता हूँ, दूसरे को बन्ध करा सकता हूँ, जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ—ऐसी जो परद्रव्य के साथ की एकत्वबुद्धि, वह अध्यवसान। वह **बन्ध का कारण होने से...** वह अध्यवसान बन्ध का कारण होने से। आहाहा! **मुमुक्षु को...** मुमुक्षु को आहाहा! जो मोक्षार्थी है, मोक्ष जिसका प्रयोजन है। आहाहा! ऐसे **मुमुक्षुओं को उसका (अध्यवसान का) निषेध करते हुए...** उस अध्यवसान का निषेध अर्थात् एकत्वबुद्धि का (निषेध करते हुए)। मैं उसे प्राप्त कर सकूँ, उसे छोड़ सकूँ, उसे मदद कर सकूँ, उसे ऐसा कर सकूँ, सुखी कर सकूँ इत्यादि। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य की एकत्वबुद्धि का अध्यवसान, उसका निषेध कराते हुए **निषेध करते हुए ऐसे निश्चयनय के द्वारा वास्तव में व्यवहारनय का ही निषेध कराया है,...** एकत्वबुद्धि का निषेध कराया है, वह पर के आश्रय से जो व्यवहार होता है, उसका निषेध कराया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बात है, बापू! मार्ग बहुत अलौकिक। आहाहा! अनन्त काल से भटकता है। श्रीमद् में आता है न? 'अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान, सेवे नहीं गुरु-सन्त को' सेवा की नहीं अर्थात् वहाँ पैर दबाना होगा। यह चौथी गाथा में भी आता है। स्वयं तो समझा नहीं परन्तु समझे उनकी सेवा की नहीं। '**सुदपरिचिदानुभूदा**' सेवा का अर्थ यह कहते हैं, वह (तूने) माना नहीं।

श्रोता : सिद्धान्त कहते हैं, वह स्वीकार रखना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह सिद्धान्त ऐसा कहते हैं। कहने का आशय यह है। सेवा करना अर्थात् क्या पैर दबाना है? उन्होंने जो कहा, इसमें है न? आ गया है। चौथी (गाथा में) **अपने में अनात्मज्ञपना होने से (स्वयं आत्मा को नहीं जानता होने से) और दूसरे आत्मा को जाननेवालों की संगति-सेवा नहीं की होने से...** अन्त में है, पहले पैरेग्राफ की अन्तिम दो लाईन। है? जाननेवालों की संगति अर्थात् सेवा नहीं की होने से। आहाहा! संस्कृत में '**उपासना**' '**परेषामात्मज्ञानामनुपासनाच्च**' है न? सेवा नहीं की। '**अनुपासनाच्च**' अर्थात् सेवा नहीं करने से। संस्कृत टीका है। उसका अर्थ संगति की तो संगति करना, वह व्यवहार है परन्तु उन्होंने जो कहा है, उस प्रकार से माना नहीं और जाना नहीं, वह उसने संगति और सेवा की नहीं। आहाहा! काम बहुत कठिन, जन्म-मरणरहित की बातें, बापू! कठिन, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, एकपने की बुद्धि जिन्होंने—प्रभु ने छुड़ाई। क्योंकि स्वद्रव्य और परद्रव्य के बीच तो अत्यन्त अभाव है। इसलिए दूसरे का कुछ करे, यह तो किसी प्रकार बनता नहीं। क्योंकि जो द्रव्य है, वह निकम्मा तो किसी काल में हो नहीं सकता। अर्थात्? जो द्रव्य है, वह निकम्मा अर्थात् पर्याय के कार्यरहित द्रव्य कभी हो ही नहीं सकता। पर्याय के कार्य बिना का कभी कोई द्रव्य नहीं हो सकता। अब निकम्मा कोई नहीं है तो उसका काम दूसरा किस प्रकार करे? आहाहा! समझ में आया? जरा सूक्ष्म बात है।

श्रोता : पूरी दुनिया दूसरे का काम करती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया करती नहीं। रामजीभाई सब बहुत करते थे। सलाह देते थे न उसको? ढेबरभाई। ढेबरभाई आते थे, उन्हें सलाह देते थे। एक महीने कैद में जाना पड़ा न। वह तो एक विकल्प हो और वाणी निकलने की थी। आहाहा! ऐई! शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा पर की एकत्वबुद्धि जब छुड़ाते हैं तो वह पर की एकत्वबुद्धि-मिथ्यात्व, वह व्यवहार है। इस अपेक्षा से तो मैं ऐसा मानता हूँ कि पर के आश्रय का सम्पूर्ण व्यवहार छुड़ाया है। आहाहा! **निषेध करते हुए ऐसे निश्चयनय के द्वारा वास्तव में व्यवहारनय का ही...** है? एकान्त नहीं? **व्यवहारनय का ही निषेध कराया है,...** बिल्कुल व्यवहारनय, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह सब व्यवहार है, उसका निषेध कराया है। वे बन्ध के

कारण हैं। आहाहा! कठिन काम। जगत कहाँ झुका है और कहाँ झुकना चाहिए, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं कि **वास्तव में व्यवहारनय का ही...** आहाहा! भगवान ने जब एक द्रव्य जो आत्मा, वह दूसरे द्रव्य की कोई भी (पर्याय कर सकता नहीं, ऐसा कहा क्योंकि), पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता, इसलिए उसकी पर्याय यह कर नहीं सकता, तो भी एकत्वबुद्धि से (अपने को) कर्ता मानता है, उसका यहाँ निषेध किया है, तो हम ऐसा कहते हैं कि पर के आश्रित जितना व्यवहार होता है, उसका निषेध किया है। पर के आश्रय की एकत्वबुद्धि का निषेध किया। उसके साथ पराश्रित व्यवहार; एकत्वबुद्धि भले न हो। आहाहा! दोनों पराश्रित हैं। आहाहा! अब ऐसी बातें! निवृत्ति कहाँ है? कान्तिभाई! पूरे दिन धन्धा-पानी और... आहाहा! उसमें ऐसी बातें... सब अवसर आ गया है, कहते हैं। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में (कहते हैं)। आहाहा!

व्यवहारनय का ही निषेध कराया है, क्योंकि व्यवहारनय के भी पराश्रितता समान ही है... यह क्या कहा? जैसे पर को जिलाऊँ, मारूँ, मोक्ष कराऊँ, (ऐसी) पराश्रित एकत्वबुद्धि छुड़ायी है, उसी प्रकार सब पराश्रित का व्यवहारनय समान ही हैं। जैसे एकत्वबुद्धि ऐसे पर के आश्रय से होनेवाला विकल्प, राग चाहे तो दया, दान, देव-गुरु की श्रद्धा, देव-गुरु-परमात्मा की श्रद्धा का राग, वह सब व्यवहार है, उसे यहाँ छुड़ाया है। आहाहा! समझ में आया? लोगों को बहुत कठिन पड़ता है परन्तु क्या हो, भाई! मार्ग यह है। आहाहा!

श्रोता : हस्तावलम्बन है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हस्तावलम्बन, यह तो निमित्त का कथन किया है, है ही नहीं। हस्तावलम्बन जानकर कथन किया है, परन्तु उसका फल संसार है। है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **कि व्यवहारनय के भी पराश्रितता समान ही है (जैसे अध्यवसान पराश्रित है, उसी प्रकार व्यवहारनय भी पराश्रित है,...)** आहाहा! अब यहाँ (अज्ञानी कहता है कि) पराश्रित व्यवहार से स्व-आश्रित निश्चय होता है। व्यवहार-राग की दशा, उसकी दिशा, राग की दशा की दिशा परसन्मुख है और सम्यग्दर्शन के निश्चय की दशा, उसकी दिशा स्वसन्मुख है। आहाहा! समझ में आया? दोनों का पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। अब दोनों का मेल किस प्रकार करना? अब वह कहता है, व्यवहार साधन कहा है न? साधन से निश्चय

साध्य होता है, ऐसा जगह-जगह जयसेनाचार्य में, द्रव्यसंग्रह में ब्रह्मदेवसूरि में आता है। वह तो वहाँ निमित्त का ज्ञान कराया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में (लिखा है कि) व्यवहार का निमित्त आदि का ज्ञान कराया है कि यह था। परन्तु वह आदरणीय है और उससे निश्चय होता है, यह बात वहाँ है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

(जैसे अध्यवसान पराश्रित है, उसी प्रकार व्यवहारनय भी पराश्रित है, उसमें अन्तर नहीं है)। आहाहा! जैसे एक द्रव्य भगवान आत्मा, वह परद्रव्य का कुछ भी करे, प्राप्त करे छोड़े, ऐसा कुछ है ही नहीं, तथापि पर के साथ की एकत्वबुद्धि भगवान ने छुड़ायी है तो हम तो ऐसा ही कहते हैं कि जितना पराश्रित व्यवहार है, वह सब भगवान ने छुड़ाया है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य महासन्त.. आहाहा! केवली के मार्गानुसारी, एक-दो भव में तो केवल (ज्ञान) लेनेवाले हैं। केवल (ज्ञान) लेकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! उनकी यह वाणी है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। वाणी तो वाणी की है।

और इस प्रकार यह व्यवहारनय... आहाहा! **इस प्रकार निषेध करने योग्य ही है;...** बिल्कुल पर के साथ एकत्वबुद्धि और पर का आश्रय—दोनों छोड़नेयोग्य ही है। पर के साथ एकत्व की बुद्धि और पर के आश्रय से होनेवाला भाव, सब छोड़नेयोग्य ही है। आहाहा! कठिन काम है। **इस प्रकार यह व्यवहारनय निषेध करने योग्य ही है;...** 'ही' कहा है। एकान्त नहीं होता? निषेधनेयोग्य ही है। कथंचित् आदरणीय और कथंचित् निषेधनेयोग्य, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ ऐसा कहते हैं कि सरागचारित्र से वीतरागचारित्र होता है। यहाँ तो इन्कार करते हैं। उसकी रुचि छोड़कर—परसन्मुख के दशा के भाव की रुचि छोड़कर, स्वसन्मुख के भाव की रुचि में जाए, उसे पर का निषेध हो जाता है। आहाहा! निषेध करना भी नहीं पड़ता। आहाहा! राग के त्याग का कर्तापना तो नाममात्र है, आया न? हैं? आहाहा! राग का ग्रहण तो ठीक, (त्यागकर्ता भी नहीं है।) वैसे तो ग्रहण-त्याग कहा, प्रवचनसार १८९ (गाथा)। आत्मा में राग का ग्रहण-त्याग है, वह निश्चय से है, शुद्धद्रव्य के निरूपण के निश्चय से है। राग (को) ग्रहण करता है, उत्पन्न करता है और व्यय करता है। ग्रहण-त्याग है और पंचास्तिकाय में तो ऐसा भी कहा कि पर्यायमात्र द्रव्य में संयोग होती है और वियोग होता है। आहाहा! विकार की तो बात क्या करना, परन्तु निर्विकारी पर्याय का उत्पाद, वह द्रव्य के साथ संयोगसम्बन्ध है। और उसका व्यय होता है, वह वियोग है। आहाहा!

ऐसा जो स्वद्रव्य, उसका आश्रय करने के लिये परद्रव्य की एकताबुद्धि और परद्रव्य

के आश्रय से होनेवाला व्यवहार, उसे छुड़ाया है। सूक्ष्म बात है, भाई! सहज गाथा ही यह आयी। आठ दिन से बन्द था। २७१ गाथा तक आ गयी थी। आहाहा!

इस प्रकार... इस प्रकार, अर्थात्? जैसे स्व का पर कर सकता है, आदि एकत्वबुद्धि का निषेध (किया है), उसी प्रकार पर का आश्रय होता भाव, उसका भी निषेध एक ही विधि से है। आहाहा! व्यवहारश्रद्धा, व्यवहारचारित्र अर्थात् दया, दान के परिणाम, शास्त्र का व्यवहारज्ञान, वह सब व्यवहार है, वह निषेधनेयोग्य है। आहाहा!

अब वे यहाँ कहते हैं कि इससे साधन होता है। शास्त्र में शब्द ऐसे हैं। जयसेनाचार्यदेव की टीका (में ऐसा आता है)। इसलिए उन ज्ञानसागर में जयसेनाचार्यदेव की टीका में से समयसार बनाया। अमृतचन्द्राचार्य में से नहीं। है न? वे विद्यासागर साधु हैं, (ये) उनके शिष्य हैं। वे नहीं मानते हैं। पंचाध्यायी, टोडरमल और बनारसीदास के ग्रन्थ नहीं। आचार्य का लाओ, आचार्य का लाओ और चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण नहीं मानते। अब यह कहते हैं कि स्वरूपाचरण चौथे से है। यह तो सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। हैं?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे से शुरु होता है। राग का उपयोग है, (वह) हटकर ऐसे जाता है, इसलिए अरागी उपयोग, वह शुद्ध उपयोग ही है। स्वद्रव्य का आश्रय होना, वह शुद्ध उपयोग ही है, अकेली परिणति नहीं। शुरुआत पहली, हों! ...समझ में आया? आहाहा! जहाँ उपयोग शुद्ध उपयोग है, शुभराग को जहाँ छुड़ाने को कहा, तब अब आश्रय करनेयोग्य यहाँ कहा, तो वह आश्रय करनेयोग्य परिणाम जो हुए, वे परिणाम शुद्ध ही हैं, वास्तव में उपयोग ही है और चौथे से स्वरूपाचरण है। यह विद्यासागर इनकार करते हैं। उन्होंने फिर हाँ की है, मनोहरलालजी (ने) चौथे में होता है। उसमें कहा, उसमें है न? सिद्धान्त प्रवेशिका में। कुछ मति, कुछ मति कल्पना से क्रियाकाण्ड में ऐसे जुड़ गये हैं, इस कारण तत्त्व की दृष्टि का (लोप हो गया)।

क्रियाकाण्ड भी ऐसा कहाँ है? नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसा द्रव्यलिंग भी कहाँ है? यह तो किसी के लिये नहीं, बापू! ऐसा नहीं, हों! यहाँ तो कहा न कि आहाहा! धर्मध्यान का आज्ञाविचय और अपायविचय का विचार करते हुए, अपायविचय। आहाहा! आज्ञाविचय— परमात्मा क्या कहते हैं, उसका विचार यह आज्ञाविचय। अपायविचय में कर्म का विपाक दुःखरूप है तो (मैं) और सभी आत्माएँ कर्म से रहित होओ। प्रभु! आहाहा! ऐसा कहते हैं।

किसी को नुकसान न होओ। आहाहा! द्रव्यसंग्रह में अपायविचय का ऐसा अर्थ किया है। द्रव्यसंग्रह है न? अपायविचय। सभी आत्मायें परमात्मा होओ। हमारी पवित्र भावना तो यह है, भाई! कोई नुकसान में न रहो। आहाहा! ऐसा विचार अपायविचय में धर्मध्यान में करता है। ऐई! बताया था न? इसमें से बताया था? नहीं? नहीं? अपायविचय कितने में कहा था?

अन्तरआत्मा किसे कहना कि चौथे गुणस्थान में अशुद्धलेश्यावाले जीव को जघन्य अन्तरात्मा कहना। परन्तु वह है उसमें, धर्मध्यान का निकालो न, धर्मध्यान में है न? अपायविचय। इस ओर के पृष्ठ पर है। यहाँ ध्यान का विषय है न पीछे? ३५ अक्षर का... द्रव्यसंग्रह में आता है। पंच परमेष्ठी... पंच परमेष्ठी। धर्मध्यान का आज्ञाविचय, उसके अपायविचय के अर्थ में है। सब जीव परमात्मपद को प्राप्त करो, ऐसा विचार करना। आहाहा!

भेदाभेद रत्नत्रय की भावना के बल से हमारे अथवा अन्य जीवों के कर्म का नाश कब होगा, इस प्रकार का चिन्तवन, उसे अपायविचय... कहते हैं। सब कर्मों का नाश (होओ)। अपायविचय, १८३ पृष्ठ है। **इस श्लोक में कहे क्रम के अनुसार पदार्थ का निश्चय करना, वह आज्ञाविचय है।** भगवान ने कहा वह। वह पहला धर्मध्यान का बोल। दूसरा—**भेदाभेद रत्नत्रय की भावना के बल से हमारे अथवा अन्य जीवों के कर्म का नाश कब होगा, इस प्रकार का चिन्तवन, उसे अपायविचय नाम का दूसरा धर्मध्यान जानना।** सब जीव परमात्मा हो जाओ, बापू! आहाहा! तू भगवान है न! बापू! ऐसी भावना है, देखो! आहाहा! दशलक्षणी में भाई ने ऐसा लिखा है न?

श्रोता : तीर्थंकर प्रकृति बँध जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग। यह तो अपायविचय में (आया)। भाई हुकमचन्दजी दशलक्षण पर्व में एक-एक पूरा करते हुए लिखते हैं कि यह मेरी पवित्र भावना है। सब पूर्णानन्द को प्राप्त करो, ऐसी पवित्र भावना से मैं विराम पाता हूँ। है? अन्त में। आहाहा! यह तो अपने ब्रह्मदेव टीकाकार में से निकाला। वह (हुकमचन्दजी) तो गृहस्थ (ऐसा कहते हैं)। तभी आत्मायें प्रभु पूर्ण आनन्दस्वरूप हैं न, नाथ! आहाहा! सब कर्मरहित होकर (सबका) मोक्ष होओ। आहाहा! कोई भी प्राणी (दु:खी न होओ)। दूसरे का मोक्ष करा दूँ, यह अलग वस्तु। वह बन्ध-मोक्ष के परिणाम में एकत्वबुद्धि हुई और यह दूसरे सबके आत्मायें पूर्णानन्द को प्राप्त होओ, मैं और सब, यह अलग वस्तु है।

श्रोता : यह भावना करनेयोग्य न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भावना तो अन्दर की एकाग्रता की है। यह एकाग्रता की है। भले विकल्प साथ में है परन्तु मूल एकाग्रता है। धर्मध्यान है न? निश्चय धर्मध्यान है, वह शुद्ध निर्मल है, विकल्प नहीं। आहाहा! वैसे तो दस प्रकार के धर्म से ही शुभभाव कहा है; नहीं तो है तो चारित्र के भेद, परन्तु वह विकल्प उठता है न? दशलक्षणी पर्व। शुभभाव कहा है, परन्तु वह अपेक्षित है। बाकी तो अन्दर... आहाहा! पूर्ण स्वरूप परमानन्द का नाथ! मेरी सत्ता पूर्ण है, ऐसी ही मुझे भी पूर्ण प्रगट होओ। सब भगवान आत्माओं को पूर्ण होओ। आहाहा! कोई शत्रु या दुश्मन-मित्र है ही नहीं। सब भगवान आत्मायें हैं। आहाहा! अपायविचय में यह विचार करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ (कहते हैं) **व्यवहारनय निषेध करने योग्य ही है;...** यहाँ तो जरा अपाय का विचार आया कि यह निषेधयोग्य है, वहाँ तो फिर यह कहा कि सब जीव (कर्मरहित होओ)। परन्तु यह अपनी भावना है। भले विकल्प साथ में-साथ में आता है, परन्तु मूल तो अन्दर एकाग्रता है। सभी जीव पूर्णानन्द को प्राप्त होओ! मैं भी पूर्णानन्द को प्राप्त हो जाऊँ। हमारे और दूसरे दोनों को। दोनों का आया न? आहाहा!

इस प्रकार यह व्यवहारनय निषेध करने योग्य ही है; क्योंकि आत्माश्रित निश्चयनय का आश्रय करनेवाले ही... आहाहा! भगवान आत्मा का आश्रय करनेवाले... **निश्चयनय का आश्रय करनेवाले ही...** एकान्त कहा। व्यवहार का आश्रय करनेवाले मोक्ष जाते हैं, उसका निषेध किया। आहाहा! ऐसा है। मार्ग तो ऐसा है, बापू! **क्योंकि आत्माश्रित निश्चयनय का आश्रय...** आत्माश्रित निश्चयनय (कहा है), देखा? **करनेवाले ही...** आहाहा! जो आत्मा के आश्रय से जो पर्याय प्रगट होती है, वह आत्मा के आश्रय से हुई, वह निश्चयनय हुई। आहाहा!

पूर्णानन्दस्वरूप भगवान, पूर्ण ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से होनेवाला... आहाहा! उसकी ही मुक्ति होती है। **निश्चयनय का आश्रय करनेवाले ही (कर्मों से) मुक्त होते हैं...** आहाहा! **और पराश्रित व्यवहारनय का आश्रय तो एकान्ततः मुक्त नहीं होनेवाला अभव्य भी करता है।** आहाहा! व्यवहार का आश्रय तो अभव्य भी करता है। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार अभव्य और भव्य (भी) मिथ्यादृष्टिरूप से गया। व्यवहार तो बहुत किया। ऐसा व्यवहार किया कि उसकी चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे, परन्तु वह तो सब पराश्रित राग की क्रिया थी। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! वीतरागमार्ग वीतरागभाव से उत्पन्न होता है। आहाहा!

यह वीतरागभाव स्व आश्रय से उत्पन्न होता है। क्योंकि स्वयं स्ववस्तु ही वीतरागभाव स्वरूप है। अकषायस्वरूप कहो, चारित्रस्वरूप कहो, वीतरागस्वरूप कहो, पूर्णानन्द पवित्र स्वरूप कहो, उस भगवान के आश्रय से वीतरागता होती है। आहाहा! और पराश्रय से तो अकेला व्यवहार ही-राग ही होता है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा में तो यहाँ तक कहा, **'परदव्वादो दुग्गई'** आहाहा! प्रभु ऐसा कहते हैं कि मैं परद्रव्य हूँ। तेरा लक्ष्य यदि (तुझसे) छूटकर मेरे ऊपर जाएगा तो राग होगा, इसलिए उसकी दुर्गति अर्थात् चैतन्य की गति नहीं मिलेगी। आहाहा! मोक्षपाहुड़। अब यहाँ (लोग) कहते हैं कि भक्ति से कल्याण होता है। यह भगवान कहते हैं कि मेरी भक्ति करे तो राग होगा। राग, वह चैतन्य की गति नहीं, दुर्गति है। इसलिए चाहे तो स्वर्ग मिले परन्तु वह गति कहीं सिद्धगति नहीं न, वह दुर्गति ही है। आहाहा!

पराश्रित व्यवहारनय का आश्रय तो एकान्ततः मुक्त नहीं होनेवाला... कभी मुक्त नहीं होगा। ऐसे व्यवहारनय का आश्रय तो अभव्य करता है। इसमें यह क्या नया किया? आहाहा! यह व्रत पालन किये, अपवास किये और प्रतिमाएँ लीं। ऐसा (करके) नौवें ग्रैवेयक में गया। ऐसी तो अभी क्रिया भी नहीं है, ऐसा तो अभी शुभभाव भी नहीं है। आहाहा!

पराश्रित व्यवहारनय का आश्रय तो एकान्ततः मुक्त नहीं होनेवाला... कभी मुक्त नहीं होगा। **अभव्य भी करता है।** अभव्य भी, क्यों कहा? भव्य भी करता है और अभव्य भी करता है, ऐसा। भव्य नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया, उसने निर्दोष पंच महाव्रत ऐसे पालन किये, भगवान की श्रद्धा, देव-गुरु-शास्त्र की (श्रद्धा ऐसी की कि) सिर काटे तो भी दूसरा न माने, ऐसी व्यवहारश्रद्धा की है, परन्तु यह सब परद्रव्य की (श्रद्धा)। आहाहा! ऐसा व्यवहार तो अभव्य भी करता है, जिसकी कभी मुक्ति भी नहीं होगी, तो फिर भव्य ने भी मिथ्यादृष्टिरूप से ऐसा अनन्त बार किया है। आहाहा! बहुत कठिन काम।

श्रोता : अशुद्ध व्यवहार है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पराश्रित व्यवहार सब अशुद्ध है, मलिन है।

श्रोता : दोनों में शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी नहीं, अभी यह नहीं। अभी सम्यग्दर्शन निश्चय, यह नहीं। व्यवहार सम्यग्दर्शन आदि है, वह अभी लेना है। निश्चय है, वह तो निर्मल स्व-आश्रित जाते हैं। अभी यह है। निश्चयमोक्षमार्ग पर्याय है, उसे व्यवहार कहना, वह किस

अपेक्षा से ? वह तो त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से इसे व्यवहार कहा। वह दूसरी अपेक्षा है और इसे निश्चय कहना किस अपेक्षा से ?—कि जब इस राग को व्यवहार कहते हैं, तब अरागी मोक्षमार्ग की पर्याय को निश्चय कहते हैं, इस अपेक्षा से। राग को जब व्यवहार कहते हैं, तब अरागी पर्याय को निश्चय कहते हैं। अरागी पर्याय को जब व्यवहार कहते हैं, तब द्रव्य को निश्चय कहते हैं। आहाहा! अब बनियों को इतना सब याद किस प्रकार रहे ? ऐसा है, बापू! मार्ग का... आहाहा!

पराश्रित व्यवहारनय। वह तो पराश्रित है। यह किया और यह छोड़ा, यह लिया और वह दिया, शास्त्रज्ञान किया, दया पालन की, व्रत किये, भक्ति की और पूजा की, करोड़ों-अरबों के दान दिये। वह तो सब व्यवहार है, पराश्रित है। **एकान्ततः मुक्त नहीं होनेवाला...** एकान्त अर्थात् कभी मुक्त नहीं होगा, ऐसा। जिसका एक भव भी घटता नहीं, ऐसा व्यवहार तो अभव्य भी करता है। आहाहा! इसलिए दूसरों को भी व्यवहार को छोड़ना। जब अभव्य भी व्यवहार अनन्त बार करता है, तो भी भव-मुक्ति नहीं होती, इसलिए उसे व्यवहार छोड़नेयोग्य है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

३ **श्री समयसार कलश टीका, कलश - २७१-२७२, प्रवचन - २७२**
दिनांक - ०६-०१-१९६६

साध्य-साधक अधिकार, कलश-टीका का आठवाँ श्लोक चलता है, भावार्थ है।

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,.. क्या अधिकार है यह ? ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान तीनों मैं एक ही हूँ। मैं जाननेवाला और छह द्रव्य ज्ञात हों - ऐसा मैं नहीं, इतना मैं नहीं। समझ में आया ? वस्तु एकरूप निर्विकल्प अभेद है - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। मैं जाननेवाला और छह द्रव्य ज्ञात हो - ऐसा, इतना वह मेरा ज्ञेय नहीं। ज्ञात होनेयोग्य वस्तु ज्ञात हो और मैं जाननेवाला, इतना मैं ज्ञेय नहीं और इतना ज्ञानमात्र भी मैं नहीं, ऐसा। क्या कहा ? समझ में आया ?

छह द्रव्य ज्ञात हों - ज्ञेय, उतना ज्ञेयमात्र मैं नहीं। उसे जाननेवाला ज्ञान, उतने ज्ञानमात्र मैं नहीं और (ज्ञेय) जो ज्ञात होता है, वह ज्ञेय ज्ञात नहीं होता, वह ज्ञान मेरी पर्याय ज्ञेय होकर मुझे ज्ञात होती है। समझ में नहीं आया ? उस ज्ञान की पर्याय में जो ज्ञेय ज्ञात होते हैं, वह ज्ञेय नहीं, वह तो मेरी ज्ञानपर्याय है और वह ज्ञानपर्याय मेरे सम्पूर्ण द्रव्य, गुण-पर्याय तीनों को जानती है। अकेले स्वज्ञेय पर को जानती है - ऐसा नहीं, और वह ज्ञेय पर है, इतना नहीं। मैं तो ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञायक तीनों होकर मैं ज्ञेय हूँ। जाननेवाला भी मैं, ज्ञात होनेयोग्य भी मैं और जाननेवाला ज्ञान, वह (भी) मैं। जाननेवाला ज्ञायकभाव भी मैं, जाननेवाला ज्ञान भी मैं, ज्ञात होनेयोग्य तीनों ज्ञेय भी मैं। सूक्ष्म है, फूलचन्दभाई !

श्रोता : ज्ञेय कहाँ रहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ, वे ज्ञेय उसमें गये। यहाँ क्या है ? इसकी एक समय की पर्याय में ज्ञात हुए, वह तो ज्ञान की पर्याय हुई और उस ज्ञान की पर्याय जितना भी नहीं, और उस ज्ञेय को जाने, वह वास्तव में उसे जानना, वह भी मैं नहीं। कहते हैं, देखो ! तीनों आये या नहीं ? अन्तिम शब्द क्या आया ?

ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः ऐसा ज्ञेय हूँ। अन्तिम शब्द है न ? भाई ! तीसरी लाईन

का पहला ज्ञेय। संस्कृत और अन्तिम **ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः** ऐसा ज्ञेय। समझ में आया? मैं तो ज्ञान, मैं ज्ञाता, मैं ज्ञेय, ये तीनों होकर मैं ज्ञेय। बात बहुत (सूक्ष्म है)। यह कहा न? देखो, **मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,..** धर्मात्मा अपने आत्मा को पर से भिन्न करके ज्ञात होने योग्य भी मैं, और जाननेवाला भी मैं, जाननेयोग्य भी मैं और जाननेवाला भी मैं - ऐसे वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ। मुझे **वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,..** पर ज्ञात होनेयोग्य को जानता हूँ - ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? ये अभेद वस्तु है, यह निर्विकल्प अवस्था होने पर वह ज्ञेय, ज्ञायक और ज्ञाता तीन वहाँ दृष्टि में भेद नहीं रहता - ऐसा बताना है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन-दृष्टि होने से, सम्यग्दर्शन की दृष्टि होने से दृष्टि के विषय में यह ज्ञेय, यह ज्ञाता और ज्ञान - ऐसे तीन भेद नहीं रहते। समझ में आया? स्वयं जाननेवाला, स्वयं जानने में आनेयोग्य और स्वयं ज्ञायक-तीनों वह एक ही है। जाननेवाला ज्ञान, ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय और पूरा ज्ञायक, यह सब एक ही हूँ। गजब बात, भाई!

भूतार्थ वस्तु एक स्वरूप से है। ऐसी अन्तर ज्ञेय.. दूसरा तो प्रश्न कहीं रहा कि निमित्त को जानता हूँ, या निमित्त मुझे ज्ञात होता है, यह नहीं। यहाँ तो मैं जानता हूँ और मैं जानने में आनेयोग्य हूँ। ऐसा अभेद और ज्ञायक भी मैं हूँ - ऐसी अभेददृष्टि अन्तर में करना, इसका नाम निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया?

दृष्टि में... पहले कहा था न? बन्ध और मोक्ष के पड़ते विकल्प तो दूर हो, पश्चात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भंग भी दूर रहो अथवा शक्ति के अनन्त गुण की शक्ति के भेद भी दूर रहो, फिर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भंग-भेद दूर रहो। अब ज्ञेय, ज्ञायक और ज्ञाता के तीन भेद भी मुझमें नहीं। अरे बात! कहो, नेमिदासभाई! बाहर से देखने से कितना अन्दर देखा जायेगा?

जैसे मैं देखनेवाला हूँ और यह ज्ञात होता है - ऐसे नजर करके करता है या नहीं? ऐसे मैं देखनेवाला हूँ और यह ज्ञात होता है, ऐसा भेद भी उसमें-अन्दर में नहीं है - ऐसा कहते हैं। यह बात तो बहिर्बुद्धि में गयी कि यह ज्ञेय ज्ञात होते हैं और मैं जाननेवाला, यह बात तो बहिर्बुद्धि में गयी परन्तु मैं एक ज्ञात होनेयोग्य और मैं ज्ञान द्वारा जानता हूँ और ज्ञायक-ऐसे तीन प्रकार भी, वस्तु पर दृष्टि पड़ने से तीन प्रकार-भेददृष्टि नहीं रहती। ओहोहो!

श्रोता : अद्वैत ब्रह्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्वैत ब्रह्म यह स्वयं अकेला है। पूरे सब आत्मा की यहाँ बात नहीं है। द्वैतमय भासित नहीं होता। नहीं आ गया पहले ? (कलश ९) **उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं** वस्तु तो वस्तु है, गुण है, पर्याय है परन्तु सब ज्ञेय है, सब का जाननेवाला ज्ञान हूँ और पूरा होकर मैं ज्ञायक हूँ। ओहोहो ! गजब बात, भाई ! क्योंकि सामने छह द्रव्य ज्ञेय है, वह तो ज्ञान की एक पर्याय-बहिर्मुख पर्याय के विषय में उतना ज्ञान तो आ जाता है। क्या कहा ? छह द्रव्य हैं, अनन्त सिद्ध हैं, निगोद है, वह तो ज्ञान की एक बहिर्मुख परलक्ष्यी पर्याय में उतना तो ज्ञान आ जाता है। उतना मैं नहीं। मैं तो उस पर्यायसहित पूरा द्रव्य और गुण का-पर्याय का पिण्ड वह मेरा ज्ञेय है, उसका मैं जाननेवाला हूँ और ज्ञायकपने वह मैं ही हूँ। कहा न ?

इसलिए मेरा नाम ज्ञान,.. क्यों कहते हैं ? वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ, (इसलिए) मेरा (नाम) ज्ञान है। ज्ञेय को जानूँ, परज्ञेय को जानूँ; इसलिए मेरा नाम ज्ञान - ऐसा नहीं। क्या कहा ? **मैं अपने स्वरूप को वेद्य..** अर्थात् जनाने योग्य और वेदक अर्थात् जानने योग्य - ऐसा **जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान,...** है। मुझे ही मैं ज्ञात होनेयोग्य हूँ और जाननेवाला हूँ, दूसरा कोई है नहीं। ऐसी अन्तर्मुख में वस्तुस्वरूप की दृष्टि होने से, उसे देखने से, उसे देखने से और देखनेवाला ऐसा भेद भी न रहने से, इसे - वस्तु को देखता हूँ और मैं देखनेवाला ज्ञान हूँ - ऐसा भेद भी नहीं रहने से, स्वज्ञेय को मैं जाननेवाला स्वयं वेदने योग्य और वेदनेवाला स्वयं ज्ञायक भी मैं हूँ - ऐसी एकरूप अन्तर्दृष्टि होना, उसे निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं। आहाहा ! गजब बात, भाई ! समझ में आया ?

मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ,.. मैं मेरे द्वारा जाननेयोग्य हूँ, मैं पर द्वारा जाननेयोग्य - ऐसा हूँ नहीं। **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** है। देखो ! **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** है। ज्ञान भी मैं हूँ, वेद्य-वेदकरूप से जाननेवाला मैं ज्ञान; मेरे द्वारा मैं मुझे जानता हूँ, इसलिए मैं ज्ञेय हूँ। आहाहा ! अभी तो बाहर में सब विवाद हो रहा है। देह की क्रिया और वाणी की क्रिया से धर्म होता है और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से धर्म होता है.. ये तो कहीं बाहर रह गये। यह उनका ज्ञान (हो), उतना भी मैं नहीं - ऐसा कहते हैं। मुझे उनके सन्मुख देखकर मुझे ज्ञान हो - ऐसा नहीं है। आहाहा ! व्यवहार के ज्ञान को मैं जानूँ, व्यवहार ज्ञेयरूप से उसे जानूँ, इतना ज्ञेय भी मैं नहीं और उतना जाननेवाला ज्ञान की पर्याय, इतना भी मैं नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ज्ञायकस्वभाव चिदानन्दमूर्ति वह ज्ञात होनेयोग्य है, वह जाननेवाला ज्ञान और मैं मेरे द्वारा ज्ञात होता हूँ; इसलिए मैं ज्ञेय हूँ। समझ में आया ?

ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता। आहाहा! ऐसा का ऐसा अनन्त बार भटक मरा है। स्वयं कौन है, उसे देखने को निवृत्त नहीं होता। बाहर को देखने में विकल्प है और बन्ध का कारण है, दुःख का कारण है। समझ में आया? यहाँ तो ऐसा सिद्ध करते हैं कि राग-द्वेष तो मैं नहीं परन्तु राग-द्वेष को जानने की पर्याय होती है, उतना भी मैं नहीं और राग-द्वेष ज्ञेय, वह वास्तव में ज्ञेय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह व्यवहार जो विकल्प उठता है - दया, दान, भक्ति, यह तो विकल्प का उत्थान वृत्तियाँ हैं; वे चैतन्यस्वरूप नहीं हैं। वे वृत्तियाँ उठें, उन्हें जानूँ और वे वृत्तियाँ ज्ञेय - ऐसा नहीं है। और उन्हें जानना, ऐसी पर्याय हो, उतना ज्ञान - ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब सूक्ष्म, भाई! आत्मतत्त्व को पहुँचने के लिये अभेदपना होना चाहिए उसके बदले कहाँ के कहाँ विपरीतता में चढ़ा दिया बेचारे को। मर जाता है, हैरान होकर चला जाता है। समझ में आया?

वस्तु अन्दर सच्चिदानन्द स्वरूप है। आत्मा तो सत् शाश्वत् ज्ञानानन्द की मूर्तिस्वरूप है। उसके स्वरूप में, कहते हैं पर के कारण मैं जानूँ - ऐसा नहीं; पर को जानने की पर्याय, उतना मैं नहीं परन्तु मेरा स्वभाव मैं स्वयं ही मेरे ज्ञेय को जानता हूँ, जाननेवाला मैं हूँ और जाननेयोग्य मैं हूँ। इत्यादि शक्ति का-अनन्त शक्ति का सत्व वह ज्ञायक, वह भी मैं हूँ। ऐसे चैतन्यद्रव्य में अभेदरूप से आत्मा में अनुभव करना, यह उसका नाम अनुभव और सम्यग्दर्शन है। आहाहा! सिर घूम जाये ऐसा है न इसमें तो?

श्रोता : इसमें तो देव, गुरु धर्म की श्रद्धा भी नहीं रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी अब... देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा तो कहीं रह गयी राग में। यह इसके ज्ञान और ज्ञेय, ज्ञान नहीं और वह ज्ञेय नहीं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। देव, गुरु हैं, वस्तु है, छह द्रव्य है, सब है, उसमें देव-गुरु नहीं आये? सिद्ध आये, गुरु आये, देव आये। सब आया उसमें? शास्त्र नहीं आये उसमें? सब आये परन्तु वे छह द्रव्य जो आत्मा के अतिरिक्त हैं, उतना ही मेरा ज्ञेय है - ऐसा नहीं। मैं तो पूरे मेरे आत्मा द्वारा मुझे जानूँ, वह मैं ज्ञेय हूँ। आहाहा! और छह द्रव्य को जानने की पर्याय जितना ज्ञान मैं नहीं हूँ। मैं तो पूरे द्रव्य-गुण-पर्याय को - पूरा को जानूँ - ऐसा वह ज्ञान मेरा है। आहाहा! समझ में आया? वजुभाई! बहुत सूक्ष्म... मशीन में तो एकदम (ऐसा) करे और वहाँ दस हजार-बीस हजार पैदा हों, चलो, चलो आँकड़ा इकट्ठा कर डालें।

इसकी एक समय की पर्याय में लोकालोक ज्ञात हो बहिर्मुख में, इतना भी मेरा ज्ञान

नहीं, इतना वह मेरा ज्ञेय नहीं – ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्या कहते हैं ? यह जगत चौदह ब्रह्माण्ड है और खाली भाग है। अनन्त खाली भाग है न ? खाली... खाली.. खाली.. खाली.. अनन्त.. अनन्त.. वह मेरा ज्ञेय और मैं उसे ज्ञान की अवस्था में जानूँ, इतना वह ज्ञेय नहीं और उसे जाननेवाली पर्याय, उतना यह ज्ञान नहीं। छोटाभाई ! मैं तो सारे द्रव्य-गुण मेरे अनन्त गुण का पिण्ड ज्ञायक, उसे मैं ज्ञेयरूप से ज्ञान में जानूँ और ज्ञायक भी मैं, ऐसे तीन प्रकार के भेद भी मेरी चीज़ में नहीं। ऐसी वस्तु की अनुभूति होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, इसका नाम आत्मा का साक्षात्कार, इसका नाम मुक्ति का उपाय (है)। धर्मचन्दजी ! ऐसा सब करने जायेंगे तो फिर यह कोई करेगा नहीं – यह मन्दिर, मन्दिर की पूजा (कोई करेगा नहीं)। एक तो युवक करते नहीं और फिर यदि ऐसा उनके समक्ष रखोगे तो युवक नास्तिक होकर भागेंगे। अरे ! सुन न अब ! उसके करने के काल में ऐसा विकल्प आये बिना नहीं रहेगा। भक्ति आदि हो परन्तु वह शुभभाव है। वह हो, उसका किसने इनकार किया है परन्तु वह शुभभाव, वह आत्मा का इतना ही ज्ञेय है – ऐसा नहीं। पूरे लोकालोक का ज्ञेय, परन्तु इतना ही ज्ञेय है – ऐसा नहीं। और पूरे लोकालोक को जानने की पर्याय इतना ज्ञानमात्र हूँ – ऐसा भी नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त जिसके एक ज्ञानगुण में अनन्त केवलज्ञान समा गया। एक समय में लोकालोक को जाने, वह मतिश्रुत में भी ज्ञात हो और केवल में भी ज्ञात हो परन्तु ऐसी-ऐसी तो अनन्त पर्यायें जिसके एक गुण में समा जाये, ऐसे-ऐसे अनन्त गुणों का एकरूप, वह मेरा ज्ञेय; उसे जाननेवाला ज्ञान, वह ज्ञान; वह पूरा ज्ञायक, वह मैं एक हूँ। समझ में आया ?

यह लकड़ी नहीं ज्ञात होती – ऐसा अभी तो कहते हैं। लकड़ी ज्ञात नहीं होती, ज्ञान की पर्याय उसरूप परिणमित हुई है, वह जानती है, तथापि वह ज्ञेय है, उतना ही ज्ञेय मेरा है – ऐसा नहीं। यह लकड़ी का दृष्टान्त दिया, इसी प्रकार लोकालोक। मेरा ज्ञेय जाननेयोग्य लोकालोक है, इतना मेरा ज्ञेय नहीं। मेरा ज्ञेय तो अनन्त गुण का पिण्ड पूरा ज्ञायक द्रव्य-गुण-पर्याय पूरा वह मेरा ज्ञेय है और इस लोकालोक को जानने जितनी ज्ञान की पर्याय – अवस्था, उतना मेरा ज्ञान नहीं है। मेरा ज्ञान तो अनन्त द्रव्य, गुण का पिण्ड ऐसा भगवान आत्मा, उसके गुण-पर्याय को जानने का ज्ञान ऐसे ज्ञानवाला मैं। वह तो मैं का मैं हुआ। जानने योग्य भी मैं, जाननेवाला भी मैं और ज्ञायक भी मैं। धर्मचन्दजी ! गजब बात, भाई ! ऐसी बात ! यह आत्मविद्या है। समझ में आया ?

श्रोता : बाहर में तो सब उड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में उड़ गया है न! अन्दर में है ही कब? था तब उड़े न? बाहर का रहेगा। जब तक राग है, राग है, तब तक हो, दिखेगा। क्रिया भी शरीर की होनेवाली होगी वह होगी, पूजा-भक्ति जो होनेवाली है, (वह होगी) परन्तु इसके स्वरूप में देखो तो मूल दृष्टि में वह विकल्प और उसका ज्ञान तथा उसके सामने ज्ञेय, इतना आत्मा नहीं। ऐसी दृष्टि में आत्मा को न ले, तब तक अन्य विकल्प और अन्य को व्यवहार भी नहीं कहा जाता - ऐसा कहते हैं। शोर मचाते हैं (कि) युवक नास्तिक हो जायेंगे। बापू! सत् वस्तु है, वह सत् समझने से वह सत् से भ्रष्ट होगा? समझ में आया? ऐसे तो अनादि से भ्रष्ट है ही। वस्तु की स्थिति-सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द कन्द आत्मा के अनन्त गुण का एक रसकन्द, उससे तो पतित है ही। राग को अपना मानता है, शरीर को अपना मानता है अथवा वर्तमान अल्पज्ञ दशा, इसकी स्वयं की इतनी है - ऐसा मानता है, वह पतित तो है। समझ में आया?

महा चैतन्यसागर भगवान आत्मा अनन्त गुण का सागर चैतन्य रत्नाकर है। जिसके एक-एक गुण में पूरे लोकालोक को जाने - ऐसी एक-एक पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय जिसके एक गुण में पड़ी है। ऐसे अनन्त गुण का (पिण्ड) भगवान आत्मा, वह मेरा ज्ञेय है। लोकालोक ज्ञेय नहीं - ऐसा कहते हैं। उसे जानना, वह मेरा ज्ञान है और वह सब होकर पूरा मैं ज्ञायक हूँ। आहाहा! समझ में आया? रवजीभाई! समझ में आता है यह? यह समझ में आता है - ऐसा कहते हैं न! अन्य बाहर का तो सब समझ में आता है न! गजब बात भाई! ऐसी।

ज्ञाता। ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं है। क्या कहते हैं? मुझमें ऐसा ज्ञात होने योग्य, जाननेवाला, सब शक्ति का पिण्ड, वह ज्ञायक - ऐसे नामभेद वचन में, बोलनेमात्र हो; वस्तु में भेद नहीं। वस्तु अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य हीरा पूरा अखण्ड है। उसे अन्तर में नजर में लेना और उसमें अभेद में अनुभव करना, उसका नाम धर्म और शान्ति है। इसके बिना धर्म और शान्ति कहीं तीन काल में अन्यत्र है नहीं। समझ में आया?

जगत की चीज़ होती है तो देखने के लिये नज़र रखकर ऐसी सूक्ष्मता से देखता है परन्तु देखनेवाला उसे वह देखनेवाले स्वयं को कैसे देखना, इसका इसे पता नहीं होता, यह नजर से पर को टकटकी करके देखना चाहता है, वह नज़र स्वयं कौन है - ऐसा देखने की नज़र नहीं करता।

श्रोता : ऐसा क्यों नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करता नहीं, इसलिए नहीं होता। कैसे होगा ? मलूकचन्दभाई ! आहाहा ! बाहर में पाँच-पचास लाख रुपये (का) धावा पड़ता हो, वहाँ नजर टकटक किया करता है। यह पैसे आये, यह आमदनी हुई, यह बढ़े। क्या बड़ा परन्तु तुझे, धूल बढ़ी।

श्रोता : परन्तु इतनी बात का सुख कितना है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का ढ़ेर है उस समय। 'यह मुझे मिले' ऐसा भाव दुःख का ढेर है। मूढ़ होकर मानता है कि सुख है। वह तो कौन इनकार करे ? कहो, यह निर्णय करना पड़ेगा न ? क्या कहते हैं ? क्या होगा ? मलूकचन्दभाई ! अभी अनुभव होता है या नहीं थोड़ा-थोड़ा ? यह तो अनादि का ऐसा ही है, धूल में भी कुछ नहीं। व्यर्थ ही मानकर बैठा है। आहाहा !

भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति है। आत्मा में नित्य अतीन्द्रिय आनन्द रस पड़ा है, उसे आत्मा कहते हैं। यह पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे आत्मा नहीं, वे तो विकार हैं। शरीर, वाणी, मन तो मिट्टी, जड़ है। अतीन्द्रिय आनन्द है, इतना भी मैं ज्ञेय नहीं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा ! और उसका ज्ञान करूँ, उतना भी मेरा ज्ञान नहीं और अतीन्द्रिय आनन्द एक उतना भी मैं ज्ञायक नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु (में) ऐसे तो अनन्त-अनन्त गुण आत्मा में हैं। स्वभाव है न ? स्वभाव को क्षेत्र की मर्यादा की आवश्यकता नहीं है, उसके सामर्थ्य की आवश्यकता है। एक-एक अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय प्रभुता - ऐसे अनन्त गुणरूप एक का जो ज्ञान, वह ज्ञान और वह ज्ञायक मैं और वह मेरा ज्ञेय; दूसरा ज्ञेय - ऐसा नहीं। परन्तु इन तीन के भेद भी वचनमात्र हैं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अपने में ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता, यह वचन का कल्लोल है, वचन की कल्लोल है, विकल्प की कल्लोल है; वस्तु में यह नहीं ऐसा कहते हैं। देखो !

ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् इस वस्तु के तीन नाम भले ही रखे, मुझमें ही मुझमें, हों ! पर के साथ कुछ नहीं। मैं अनन्त गुण का पिण्ड ज्ञायक, मैं स्वयं ज्ञान, सबको जानूँ - ऐसा मैं ज्ञान और मैं मुझे मेरे द्वारा ज्ञात होऊँ - ऐसा मैं ज्ञेय, यह नाम भेद हो... समझ में आया ? वस्तु भेद नहीं। वस्तु में ये तीन प्रकार नहीं हैं। वस्तु तो एकाकार सब है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञायक एक ही वस्तु है। समझ में आया ? छहढाला में आता है, आता है या नहीं ? ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान।

वह सब यहाँ से लिया है। **उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं** भगवान स्वरूप में जहाँ अन्तर में अनुभव में आवे, (वहाँ) नय की लक्ष्मी छुप जाती है, निक्षेप कुछ दिखता नहीं, प्रमाण-प्रमाण सब अस्त हो जाता है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं है। समझ में आया? गुड़ कहो, मिठास कहो और गुड़ की मिठास कहो, सब एक ही है। इसी प्रकार ज्ञेय कहो तो भी मैं; जाननेयोग्य हो तो भी मैं; जाननेवाला हो तो भी मैं और ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड ज्ञायक हो तो भी मैं। कहो, अब इसमें उड़ जाता है या नहीं सब? अन्दर की दृष्टि में वह कुछ है ही नहीं। जब अन्तर्दृष्टि में स्थिर न रह सके, तब ऐसा शुभविकल्प होता है। दया, दान, भक्ति, पूजा आदि होते हैं। इतना भी ज्ञेयरूप से मैं - ऐसा उस समय ज्ञानी नहीं मानता और उसके ज्ञानरूप से उसका ज्ञान, उतना ज्ञान हूँ - ऐसा भी नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इस चैतन्य के अन्तर के रहस्य और मर्म इसने कभी देखे नहीं हैं। अनन्त काल से घिसटकर मर गया। त्यागी हुआ, साधु हुआ, बाबा हुआ, मर गया। दीक्षा ली, दीक्षा। समझ में आता है न? लोंच किया, मुँडाया, अनन्त बार परन्तु इस आत्मा का ऐसा भान (किये बिना) वह सब व्यर्थ गया। आहाहा!

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायौ

यह आत्मज्ञान की बात है। समझ में आया? लो! यह श्लोक पूरा हुआ।

४

श्री कलश टीका, कलश - १७३, प्रवचन - १८३
दिनांक - २३-१२-१९७७

कलश टीका, १७३ कलश (चलता है)। भावार्थ है। अन्तिम चार लाईनें हैं न? सूक्ष्म अधिकार है। भगवान जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं कि पर को जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, दूसरे जीव को मैं सुविधा दे सकता हूँ, यह भाव मिथ्यात्वभाव है। जरा सूक्ष्म बात है।

बन्ध अधिकार है न? तो मैं आत्मा और दूसरा आत्मा, उसे मैं जिला सकता हूँ, दूसरे को मैं मार सकता हूँ, दूसरे को मैं सुख दे सकता हूँ, सुविधा दे सकता हूँ, दूसरे को मैं असुविधा दे सकता हूँ, इत्यादि-इत्यादि क्रिया मैं कर सकता हूँ, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। जैन-परमेश्वर उसे मिथ्यात्व कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। बन्ध अधिकार है न?

यह तो ठीक, पर की एकत्वबुद्धि का तो निषेध किया। यह आत्मा परपदार्थ का कुछ कर सकता, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। क्योंकि परपदार्थ भिन्न स्वतन्त्र पदार्थ है, उसे यह स्वतन्त्र आत्मा पर का (कुछ) करे, ऐसा तीन काल में नहीं बनता। यह बात तो एक ओर रही। पर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, यह बात तो मिथ्यात्व है परन्तु आचार्य—कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचन्द्राचार्यदेव दिगम्बर सन्त तो ऐसा कहते हैं कि जब भगवान ने पर की एकत्वबुद्धि का त्याग कराया, पर को जिलाऊँ—बचाऊँ ऐसी बुद्धि का त्याग कराया तो मैं ऐसा मानता हूँ कि पर के आश्रय से जितना व्यवहार (होता) है, वह भी त्याज्य है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

धर्मी जीव (कि) जिसे धर्म प्रगट हुआ है (अर्थात्) मैं आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वरूप हूँ - ऐसी जिसे अन्तर में वस्तुस्वभाव की दृष्टि और अनुभव हुआ, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं, उसे धर्म की पहली सीढ़ी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म की पहली सीढ़ी जिसे प्रगट हो तो उसे कहते हैं कि पर की एकत्वबुद्धि का तो त्याग है, परन्तु पर के आश्रय से जो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के भाव होते हैं, वह भी बन्ध का कारण है; इसलिए ज्ञानी को वे भी त्याज्य अर्थात् हेय हैं। आहाहा! यह सूक्ष्म बात है। यह कहा। भावार्थ है न? भावार्थ है? कलश में अन्तिम लाईन है, अन्तिम चार लाईन!

भावार्थ इस प्रकार है कि पूर्वोक्त मिथ्या भाव जिसके छूट गया, उसके समस्त व्यवहार छूट गया। आहाहा! जिसे मिथ्यात्व का नाश होता है और अपने चैतन्यस्वरूप के अनुभव की सम्यक् दृष्टि हुई... आहाहा! उसे सकल व्यवहार त्याज्य है, दृष्टि में उसका आदर नहीं है। व्यवहार आता है, परन्तु वह त्याज्य है, दृष्टि में उसे हेय मानता है। सम्यग्दृष्टि जीव को व्यवहार का भाव—दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा, भक्ति के भाव आते हैं, परन्तु वह व्यवहार है, बन्ध का कारण है। आहाहा! जो सम्यग्दृष्टि जीव—धर्म की पहली सीढ़ी—मोक्षमहल की पहली सीढ़ी, वह सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाले को पर को जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, यह बुद्धि तो नाश को प्राप्त हो गयी है, परन्तु पर के आश्रय से जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव आता है, वह भी सम्यग्दृष्टि को दृष्टि में उसका हेयपना है, अर्थात् त्याज्य है। दूसरे प्रकार की बात है। न्यालभाई! (यह) सब कभी सुना नहीं, मुम्बई में ऐसे के ऐसे हैरान हो गये।

श्रोता : रखड़पट्टी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची, बापू! रखड़पट्टी की है, बापू! अन्दर यह भगवान आत्मा कौन है, इसकी खबर नहीं होती और मैं पर का कर दूँ, पर को आहार दे सकूँ, पानी दे सकूँ, औषध दे सकूँ... यह सब कार्यकर्ता यह अभिमान करते थे। न्यालभाई! सही बात है न? यह तो जानने के लिये बात है न! आहाहा! हम ऐसा कर देते हैं, दुनिया को व्यवस्था कर देते हैं, मकान बना देते हैं, कुँआ खोद देते हैं, तालाब बना देते हैं, औषध और दवाखाना बना देते हैं, दवाखाना! दवाखाना को क्या कहते हैं? हॉस्पीटल! लोगों को दवा मिले... कहते हैं कि पर की क्रिया आत्मा कर सकता ही नहीं। आहाहा!

श्रोता : निमित्त तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ क्या? (कार्य) होता है, तब उसे निमित्त कहा जाता है, परन्तु उससे हुआ, यह बात है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान!

तेरा स्वरूप तो अन्दर सच्चिदानन्द है। सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु आत्मा है। आहाहा! उसकी जिसे दृष्टि हुई, अभी सम्यग्दर्शन (हुआ है), हों! चारित्र बाद में, चारित्र तो अलौकिक बातें हैं! यहाँ तो प्रथम सम्यग्दृष्टि को (ऐसा भान हुआ है कि) अपने अतिरिक्त पर का कोई भी कार्य किंचित् एक तिनके के दो टुकड़े कर सकूँ, वह मैं नहीं हूँ। समझ में आया? यह तुम सब उल्टे धन्धे करते हो न! हीरा बेचे और हीरा के पैसे लिये। यह मान्यता झूठी है, कहते हैं। आहाहा!

परमात्मा जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा 'सीमन्धर' भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा साक्षात् विराजमान हैं। वहाँ पहले कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में (गये थे)। यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव दिगम्बर सन्त थे। (इस परमागममन्दिर में) यह बीच में है न? वे वहाँ भगवान के पास गये थे, आठ दिन वहाँ रहे थे। आहाहा! वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये हैं। तो यहाँ 'बन्ध अधिकार' में ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु तो ऐसा कहते थे... आहाहा! कि एक आत्मा दूसरे द्रव्य का कुछ कर नहीं सकता और कर सके, ऐसी मिथ्यादृष्टि की मान्यता है, वह जैन नहीं है, उसे जैन की श्रद्धा नहीं है। आहाहा! तदुपरान्त पर की एकत्वबुद्धि तो छुड़ाई परन्तु पर के आश्रय से जो भाव होता है—दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, शुभभाव (होता है), वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! सम्यग्दृष्टि को वह भी हेय है। समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग कोई अलौकिक है! ऐसी चीज़ सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा! जिसमें है, उसकी भी उन्हें खबर नहीं।

भावार्थ इस प्रकार है कि पूर्वोक्त मिथ्या भाव जिसके छूट गया,... (अर्थात्) पर की कर्ताबुद्धि छूट गयी है और पर के आश्रय से जो व्यवहार उत्पन्न होता है, वह भी दृष्टि में से छूट गया है। आहाहा! (व्यवहार) रहा परन्तु दृष्टि में से छूट गया है। उसका आश्रय नहीं और इसका आदर नहीं। ऐसी बात है, बापू! भगवान! अनादि काल से हैरान होकर दुःखी होकर भटकता है। अपनी चीज़ क्या है? और पर क्या है? उसका कुछ भान नहीं है, भेदज्ञान नहीं है। पर से मेरी चीज़ भिन्न है और मुझसे परचीज़ भिन्न है, तो भिन्न (पदार्थ का) मैं कुछ कर नहीं सकता। आहाहा!

श्रोता : परस्पर एक-दूसरे को मदद करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन मदद कर सकता है? यह तो निमित्त की अपेक्षा से उपग्रह कहने में आया है। परस्परोग्रहो! वह तो उसके कारण से वहाँ होता है, तब निमित्त हो, उसे कहने में आता है कि यह निमित्त है, बस! परन्तु उससे पर में हुआ है, (ऐसा नहीं है), किंचित्मात्र नहीं होता। आहाहा! अरे!

यहाँ प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि **मिथ्या भाव जिसके छूट गया,...** जिसकी मिथ्याश्रद्धा छूट गयी है... आहाहा! और जिसे अन्दर सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी (प्रगट हुई), यह छहढाला में आता है 'मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी' आहाहा! यह सम्यग्दर्शन अपूर्व चीज़

है, भाई! हम देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं, नवतत्त्व को भेद से मानते हैं, वह सम्यग्दर्शन है, ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा!

यहाँ तो पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, वह पूर्ण आनन्द और पूर्ण द्रव्य की दृष्टि जिसे अन्तर में हुई, ऐसे सम्यग्दृष्टि को वह सर्व व्यवहार हेय कहने में आया है। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत कठिन! है अन्दर?

मिथ्या भाव जिसके छूट गया, उसके समस्त व्यवहार छूट गया। है इसमें? यह कलश अमृतचन्द्राचार्य का है। दिगम्बर (सन्त)! मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हैं और यह कलश हैं, वे अमृतचन्द्राचार्यदेव के हैं, उनकी टीका राजमलजी ने की है। राजमल जैनधर्म के मर्मी थे, उसमें से बनारसीदास ने समयसार नाटक बनाया है।

यहाँ कहते हैं कि जिसे मिथ्यात्व छूट गया... आहाहा! **उसके समस्त व्यवहार छूट गया।** आहाहा! दृष्टि में से पर की एकत्वबुद्धि तो छूट गयी परन्तु पर के आश्रय से जो व्यवहार—दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत आदि के भाव (होते हैं), वे भी दृष्टि में से छूट गये। व्यवहार छोड़नेयोग्य है, आदर करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को व्यवहार आता है, परन्तु उसे हेयरूप से मानता है। उपादेयरूप से ग्रहण करनेयोग्य है, ऐसा आदर नहीं करता। आहाहा! मिथ्यादृष्टि, जिसे जैन की खबर नहीं कि क्या चीज़ है, वह शुभभाव को आदरणीय मानकर, उससे मुझे परम्परा कल्याण होगा, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि व्यवहार को आदरणीय मानता है। समझ में आया? एक लाईन में तो बहुत (भर दिया है)। पंक्ति, पंक्ति कहते हैं न?

भावार्थ इस प्रकार है कि पूर्वोक्त मिथ्या भाव जिसके छूट गया, उसके समस्त व्यवहार छूट गया। दृष्टि में कोई भी व्यवहार का आदर रहा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। यह श्लोक ही ऐसा ऊँचा है! **कारण कि मिथ्यात्व के भाव तथा व्यवहार के भाव एक वस्तु है।** आहाहा! गजब बात है, प्रभु! जितनी पर की एकताबुद्धि मिथ्यात्व है, वह व्यवहार है और पर के आश्रय से उत्पन्न होनेवाले दया, दान, व्रत (के भाव), वह व्यवहार है, उसे अपनी मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। जितना व्यवहार है, उतना मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! दो लाईन में तो पूरे जैनदर्शन का सार भर दिया है! यह बात जैन परमेश्वर के श्रीमुख से निकली हुई बात है! आहाहा! अरे! जगत के प्राणी कहाँ-कहाँ (धर्म) मानते हैं और चीज़ कहाँ रह गयी, यह खबर नहीं है। आहाहा!

व्यवहार कैसे छूट गया? सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व का नाश हुआ तो सब व्यवहार हेय-

छूट गया। क्यों ? है ? **मिथ्यात्व के भाव तथा व्यवहार के भाव एक वस्तु है।** आहाहा! पर के आश्रय से जितना राग आदि शुभ (भाव) होता है, उससे मुझे लाभ होगा, (ऐसा मानता है) तो जितना व्यवहार है, उतना मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! वीतराग परमेश्वर जिनेश्वरदेव का मार्ग समझना अपूर्व पुरुषार्थ है!

अनन्त काल में एक सेकेण्डमात्र भी वह समझा नहीं। वैसे तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' यह छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार' मुनि के व्रत लिये, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण (पालन किये)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' नौवें ग्रैवेयक गया, 'पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आहाहा! यह महाव्रत के परिणाम, दया, दान, व्रत के परिणाम (होते हैं), वह राग है, वह आस्रव है और दुःख है। आहाहा! ऐसा होने पर भी आत्मज्ञान नहीं हुआ। स्वर्ग में भी अनन्त बार उत्पन्न हुआ। दिगम्बर मुनि पंच महाव्रत लेकर, हजारों रानियाँ छोड़कर (जंगल में गया)। राग है, वह दुःख है। आहाहा! ऐसा होने पर भी, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो। पै निज आतम ज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ ? यह पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति का जितना व्यवहार है, वह सब राग है, वह सब दुःख है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

आतमज्ञान—पुण्य-पाप के परिणाम से रहित मेरी चीज़ अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा मेरा है... आहाहा! 'घट-घट अन्तर जिन बसै, घट-घट अन्तर जैन।' बनारसीदास समयसार नाटक (में लिखते हैं।) 'घट-घट अन्तर जिन बसै' भगवान आत्मा अन्दर जिनस्वरूपी है। वीतरागी स्वरूप ही आत्मा का है, तो वीतरागस्वरूप है, तो पर्याय में केवली परमात्मा वीतराग हो जाते हैं। है, उसमें से हो जाते हैं। प्राप्त की प्राप्ति है। आहाहा! 'घट-घट अन्तर जिन बसै, घट-घट अन्तर जैन।' जैनपना कहीं बाहर में नहीं। आहाहा! राग की एकताबुद्धि तोड़कर व्यवहार से भी लाभ नहीं और मेरे आनन्दकन्द प्रभु के आश्रय से मुझे लाभ है, ऐसी बुद्धि हुई, उसने जिनस्वरूप को जाना, इसलिए उसे जैन कहने में आता है। यह सम्प्रदाय में तो सब जैन... जैन... कहते हैं। आहाहा!

परमात्मा जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं, 'घट-घट अन्तर जिन बसै' अरे! परन्तु यह सब परमात्मा है ? अन्दर जिनस्वरूपी ही है। पुण्य और पाप के भाव हैं, वह राग है, उस शुभ-अशुभराग से भिन्न भगवान जिनस्वरूप ही विराजता है। आहाहा! ऐसे जिनस्वरूप आत्मा का जिसे अन्तर में अनुभव हुआ, वह जैन कहने में आता है। यह क्रिया ऐसी-ऐसी क्रिया करता है, इसलिए जैन है, ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

कहते हैं, **मिथ्यात्व के भाव...** गजब बात है न! विपरीत मान्यता के भाव और **व्यवहार के भाव...** भाई! यह तो ऐसा शब्द ही कभी सुना नहीं, लो! सेठ! आहाहा! जिनेन्द्रदेव के श्रीमुख से सुनकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव सन्देश लाये हैं। महाविदेह में प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त गये थे। आहाहा! संवत् ४९, दो हजार वर्ष पहले (गये थे), आठ दिन रहे थे। साक्षात् समवसरण में भगवान की वाणी सुनी और कितने ही शंका-समाधान श्रुतकेवली, गणधर आदि के निकट किया। आहाहा! और वहाँ से आकर इस भरतक्षेत्र में... वे तो भरतक्षेत्र के मुनि थे न! यहाँ आकर यह समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़ बनाये। यहाँ भगवान का सन्देश ऐसा था, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जितना पर के आश्रय से व्यवहार है, वह धर्मी को हेय है। आहाहा! अधर्मी को उपादेय है और धर्मी को हेय है, यह बात है। ...भाई! यह ऐसी बातें हैं। लोगों को ऐसा लगे, अर..र..! हाय... हाय... यह तो व्यवहार का लोप हो जाता है। यहाँ तो प्रभु यह कहते हैं, व्यवहार आता है; आत्मज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, राग को-व्यवहार को हेय माना तो भी व्यवहार तो आता है। आता है परन्तु हेयरूप से आता है, ज्ञानी उसे उपादेयरूप से नहीं मानते। आहाहा! समझ में आया?

सच्चे सन्त हो, जिनका प्रचुर स्वसंवेदन लक्षण है। मुनि का लक्षण क्या? प्रचुर स्वसंवेदन, जिनका लक्षण है। प्रचुर अर्थात् बहुत आनन्द का वेदन जिसका लक्षण है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन जिनका भावलिंग का लक्षण है, ऐसे मुनि को भी पंच महाव्रत आदि के विकल्प आते हैं। आहाहा! परन्तु वे हेय हैं, हैं वे आस्रव, हैं वे दुःख। आहाहा! भारी कठिन काम। एक भाई ने कहा था न (कि हिन्दी में लो तो) यह हिन्दी लिया। भाई कहते थे न! फिर पूछा था (तो खबर पड़ी की) बहुत लोग हैं। इसलिए हिन्दी लिया। भाई ने कहा था। आहाहा!

भगवन्त! तेरा स्वरूप कोई अलौकिक है, नाथ! तुझे तेरी खबर नहीं, प्रभु! आहाहा! तेरी चीज़ में तो शरीर, वाणी, मन तो है ही नहीं, कर्म तो है ही नहीं। पाप के परिणाम—हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, पाप के परिणाम भी आत्मा में नहीं हैं और दया, दान, व्रत, भक्ति के पुण्य परिणाम भी आत्मा में नहीं हैं। क्योंकि नव तत्त्व हैं। तो नव तत्त्व में हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना पापतत्त्व में जाते हैं और दया, दान, भक्ति, तपस्या के पुण्यभाव आते हैं, वे पुण्यतत्त्व में जाते हैं, तो नव तत्त्व में पुण्य-पाप तत्त्व से भगवान भिन्न तत्त्व है। आहाहा! पढ़ते हो या नहीं वहाँ कभी? पढ़ते हो? कभी-कभी या प्रतिदिन?

श्रोता : किसी दिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी दिन होगा? प्रतिदिन हीरा का पाप करना और यह किसी दिन? शान्तिभाई! यह भाई कहते हैं, मैं किसी दिन पढ़ता हूँ। इसका अर्थ क्या? पूरे दिन हीरा के (धन्धे के) पाप करना (और) किसी दिन यह (करना)? आहाहा!

श्रोता : कितने घण्टे पढ़ना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे...! परन्तु...

श्रोता : पढ़ते हैं, तब दो-तीन घण्टे पढ़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ते हैं, तब दो-तीन घण्टे पढ़ते हैं। नहीं पढ़ते, तब कुछ नहीं! बात तो है ऐसी कहते हैं। अरे! भाई! यह तो हमेशा (होना चाहिए)। भोजन बिना किसी दिन चलता है? उसी प्रकार यह तो खुराक है। भगवान की-वीतराग की वाणी, दिगम्बर सन्तों की वाणी, वह तो वीतराग की वाणी है। ऐसी वस्तु अन्यत्र कहीं है ही नहीं। कोई पन्थ, मत में कहीं नहीं है। ऐसी वाणी के लिये तो प्रतिदिन प्रभु! दो-चार घण्टे तो निकालना चाहिए। वाँचन के बिना यह बात नहीं बैठती। एकदम अनजाने व्यक्ति को तो (ऐसा लगे कि) यह तो क्या कहते हैं? आहाहा!

श्रोता : इसमें कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं, उसमें से यह समझ में आता है।

आत्मा के अतिरिक्त जितने परपदार्थ हैं, मैं स्त्री को, परिवार को, पुत्र को पाल सकता हूँ, यह बात एकदम मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

श्रोता : हम पूरे दिन मिथ्यात्व में ही रहते लगते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से मिथ्यात्व में ही पड़े हैं। निहालभाई ने अभी नहीं कहा? हम रखड़पट्टी में रहे हैं। भाई ने ऐसा कहा न? बात सत्य है, बापू! यहाँ तो बापू! तत्त्व की बात है भगवान! आहाहा!

तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं, जितना मिथ्यात्वभाव है, उतना व्यवहार भाव है। यह समयसार नाटक में भी आता है। केवली उकत है। जितना मिथ्यात्वभाव, उतना व्यवहार भाव। अर्थात्? कि पर के आश्रय से जितना राग उत्पन्न होता है, उसे अपना मानना, वह मिथ्यात्व है और अपने अतिरिक्त परद्रव्य की कोई भी क्रिया मैं कर सकता हूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई!

श्रोता : बराबर डंका बजा!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डंका तो भगवान का है न! बात तो यह सत्य है। क्या करे, प्रभु! लोग ऐसा भी कहते हैं कि अरे रे! यह तो व्यवहार का नाश होता है। प्रभु! परन्तु व्यवहार किसे कहते हैं? तुझे खबर नहीं है।

जिसे आत्मदर्शन हुआ हो, आत्मज्ञान हुआ हो और सम्यग्दर्शन में आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का थोड़ा स्वाद आया हो, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उस सम्यग्दृष्टि को व्यवहार आता है। अन्दर में स्थित नहीं रह सकता, तब व्यवहार—व्रत, तप, भक्ति, पूजा के भाव आते हैं। आते हैं तो भी वे हेय हैं, आस्रव हैं, बन्ध का कारण है, ऐसा समकिती मानता है। आहाहा! धर्मचन्दजी! जितना मिथ्यात्वभाव है... है?

कारण कि मिथ्यात्व के भाव तथा व्यवहार के भाव एक वस्तु है। आहाहा! गजब बात की है! व्यवहार भाव आता है तो मिथ्यात्व है, ऐसा नहीं। परन्तु व्यवहार भाव मेरा है—ऐसी मान्यता, वह मिथ्यात्वभाव है, तो जितना व्यवहार है, उतना मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। इस मान्यता की अपेक्षा से (बात है)। आहाहा!

आत्मा में जितना पर के आश्रय से (भाव होता है), भगवान की भक्ति का भाव आया, वह भी पर के आश्रय से हुआ है, राग है और राग अपना माना है, वह मिथ्यात्वभाव है। अरे रे! आहाहा! क्योंकि वह रागतत्त्व, पुण्यतत्त्व है। भगवान ज्ञायकतत्त्व चैतन्यमूर्ति भगवान चैतन्यस्वरूपी प्रभु भिन्न है। उस चैतन्यतत्त्व में व्यवहार का जो दया, दान, व्रत, आदि का राग (उठता है), वह मेरा है और मुझे उससे लाभ होगा, तो जितना मिथ्यात्व है, उतना व्यवहार कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? बनारसीदास ने उसमें (लिखा है)। जितना मिथ्यात्वभाव उतना व्यवहारभाव। 'केवली उकत' है। (अर्थात्) सर्वज्ञ भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें से यह निकाला है। पूरा समयसार नाटक इस कलश (टीका में से) बनाया है। आहाहा! अरे रे!

जिनेन्द्र वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि, उनकी वाणी ऐसे नहीं होती। भगवान की वाणी, हम बोलते हैं, ऐसी भाषा उनको नहीं होती। वे तो वीतराग हैं। ॐध्वनि उठती है, आहाहा! एकाक्षरी! 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे' त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मुख में, महाविदेह में प्रभु विराजते हैं। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि।' ॐ आवाज अन्दर से आती है। ऐसी भाषा उन्हें नहीं होती। क्योंकि वीतराग हो गये

हैं। जो रागी प्राणी हैं, उन्हें भेदवाली भाषा है। वीतरागी हों, उनकी भाषा एकाक्षरी ॐकार ध्वनि आती है। आहाहा! वीतराग के अतिरिक्त यह बात कहीं है नहीं। आहाहा!

यह परमात्मा के मुख में से (वाणी आती है, ऐसा कहा जाता है, बाकी तो) पूरे शरीर में से भाषा आती है। परन्तु लोग देखते हैं कि यह भाषा है, ऐसा विचारकर मुख कहा है। शास्त्र में ऐसा शब्द प्रयोग किया है। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारै' अकेले मुख में से भाषा नहीं आती। भगवान को तो होंठ बन्द होते हैं, तालु हिलता नहीं और पूरे शरीर में से ॐ ऐसी ध्वनि उठती है। आहाहा! शान्तिभाई! यह तो दूसरी बातें हैं। आहाहा!

भगवान पूर्ण आनन्द वीतराग हो गये हैं। आहाहा! सर्वज्ञ केवली ही तीन काल-तीन लोक को एक समय में जानते हैं। आहाहा! उनकी वाणी ॐ एकक्षरी (होती है)। उसमें सात सौ भाषायें आती हैं। सुननेवाले अपनी भाषा में समझते हैं परन्तु भगवान के मुख में से ॐ ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारै, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारै। भगवान की वाणी में से आगम रचते हैं। भगवान की वाणी में से आवे, उसे आगम कहते हैं, हों! आहाहा! देखो, यह सब परमागम है। इनमें पौने चार लाख अक्षर हैं। यह सब परमात्मा की वाणी है। सन्तों की वाणी, दिगम्बर मुनियों की वाणी है। पौने चार लाख अक्षर हैं, मशीन से उत्कीर्ण हैं, हिन्दुस्तान में पहला-पहला है। मशीन कहीं आयी नहीं। यहाँ इटली से मशीन आयी थी, यहाँ है। उससे ये पौने चार लाख अक्षर उत्कीर्ण हुए हैं, इसलिए इसे परमागम (मन्दिर) कहा जाता है। परमागम मन्दिर कहा जाता है। पौने चार लाख अक्षर! सोने के अक्षर साठ हजार करने थे। लोग कहते थे। हमने कभी कहा नहीं कि तुम इतना करो। लोग कहे कि हमें यह करना है। साठ हजार सोने के अक्षर! मैंने इनकार किया, भाई! हम जंगल में हैं, तुम साठ हजार सोने के अक्षर (लिखना चाहते हो)। बन्द रखा, पन्द्रह हजार करके बन्द कर दिया। यह बनने का हो, वहाँ बनता है, उसे बनानेवाला आत्मा ऐसा माने कि मैंने बनाया! आहाहा! कठिन बातें हैं। उसका भाव शुभ हो परन्तु वह शुभ भी पुण्य है, वह भी पराश्रित भाव है और उससे धर्म माने तो मिथ्यात्व है। आहाहा!

श्रोता : धर्म का कारण माने तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण-फारण बिल्कुल नहीं है। धर्म वीतरागी पर्याय का कारण, कारणपरमात्मा आत्मा है। त्रिकाली भगवान सच्चिदानन्द प्रभु! सर्वज्ञ भगवान ने कहा, वह आत्मा। दूसरे कहते हैं, वह नहीं। ऐसा जो अन्दर आत्मा पूर्णानन्द का नाथ (विराजता है),

जिसे प्रभु कारणपरमात्मा कहते हैं, वह कारणपरमात्मा धर्म की पर्याय का कारण होता है। आहाहा! बहुत अन्तर, बात-बात में अन्तर! आहाहा!

यहाँ तो इतने शब्द का अर्थ महाकठिन है। **कारण...** क्या कारण? **कि मिथ्या भाव जिसके छूट गया, उसके समस्त व्यवहार छूट गया। कारण...** अब कहते हैं, इसका हेतु? **कि मिथ्यात्व के भाव तथा व्यवहार के भाव एक वस्तु है।** आहाहा! जितना पर का कर सकता हूँ, यह मिथ्यात्व भाव है, यह व्यवहार है और पर के आश्रय से होनेवाला व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव, वह भाव भी पराश्रित लक्ष्यवाला भाव है। उसे अपना मानना अर्थात् जितना मिथ्यात्वभाव है, उतना व्यवहार भाव कहने में आता है। आहाहा! यह कठिन बातें हैं! साधारण लोगों को तो पागल जैसा लगे, ऐसा है। यह क्या लगायी है? भगवान ने ऐसी लगायी है, बापू! तू सुन!

बापू! तीन लोक के नाथ, गणधर और इन्द्रों के बीच ऐसा फरमाते थे। आहाहा! गणधर और इन्द्र तथा बाघ और सिंह और नाग जंगल में से समवसरण में चले आते थे। आहाहा! ऐसी धर्मसभा के भगवान की यह वाणी थी। उस वाणी की रचना यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ने दो हजार वर्ष पहले की थी। पश्चात् हजार वर्ष के बाद अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त हुए, उन्होंने यह टीका और कलश बनाये। आहाहा! कठिन बात है, सेठ! मिथ्यात्वभाव और व्यवहारभाव एक (वस्तु) यह क्या कहते हैं? अर्थात् इसका अर्थ दूसरा है, हों!

व्यवहारभाव, वह मिथ्यात्वभाव नहीं है। व्यवहारभाव है, वह तो ज्ञान के ज्ञेयरूप से वस्तु है। परन्तु वह व्यवहार है, वह मेरा है और मुझे लाभ करेगा अर्थात् जितना मिथ्यात्वभाव, उतना व्यवहार कहने में आया है। आहाहा! व्यवहारभाव, वह मिथ्यात्वभाव होवे, तब तो समकिती-ज्ञानी को व्यवहार तो आता है, भगवान की भक्ति, विनय, पूजा का भाव तो आता है। वह भाव होता है, वह मिथ्यात्वभाव नहीं है परन्तु वह भाव मेरा है, ऐसा माने इतना मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि पुण्यतत्त्व भिन्न है, ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू!

जैनधर्म को समझना बहुत कठिन काम! जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! 'जिन सो हि है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, इसी वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म' आहाहा! 'जिन सो हि है आत्मा' यह जो जिनस्वरूपी वीतरागमूर्ति! अकषाय स्वभाव का पिण्ड प्रभु आत्मा है। तीनों काल में, हों! आहाहा! यह 'जिन सो हि है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म,' पुण्य और पाप आदि भाव और सब पर, वह कर्मजन्य

उपाधि है। आहाहा! इस भगवान आत्मा के स्वभाव में उस उपाधिभाव का अभाव है। उसके बदले वह उपाधिभाव मेरा है, मुझे लाभ करेगा, ऐसी मान्यता, वह मिथ्यात्व है। इसलिए जितना मिथ्यात्वभाव (होता है), उतना व्यवहारभाव है, इस अपेक्षा से कहने में आया है। व्यवहारभाव, वह मिथ्यात्वभाव होवे तो व्यवहार तो मुनि को भी आता है। आत्मज्ञानी ध्यानी आनन्द के अनुभवी, अतीन्द्रिय आनन्द जिन्हें उल्लसित हो निकला है, उनका नाम मुनि है। उन्हें भी पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं, भगवान की भक्ति का राग आता है, परद्रव्य का विनय करे तो इतना राग है। यह राग है, वह मिथ्यात्व नहीं है परन्तु जितने प्रकार का राग है, उतने प्रकार का मुझे लाभ होगा, यह सब व्यवहार, वह मिथ्यात्व है—ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? कितनों ने तो पहले सुना भी नहीं होगा, क्या है यह? वीतराग तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव की दिव्यध्वनि का यह सार है। आहाहा!

जितने मिथ्यात्वभाव **तथा व्यवहार के भाव एक वस्तु है।** देखा? क्या कहा यह? मिथ्यात्वभाव—विपरीत मान्यता का भाव और व्यवहारभाव—दोनों एक चीज़ है। अर्थात्?—कि जितना व्यवहार है, उतना मेरा माना, वह मिथ्यात्वभाव है और उतना व्यवहारभाव है। मानने की अपेक्षा की बात है, हों! आहाहा! व्यवहारभाव आवे, वह मिथ्यात्व है, ऐसा नहीं है। व्यवहार तो सन्तों को भगवान की भक्ति, विनय, नमस्कार, नामस्मरण, णमो अरिहन्ताणं का स्मरण, ऐसा भाव तो आता है परन्तु वह तो राग है किन्तु राग को अपना माने तो जितना व्यवहार (भाव है), उतना मिथ्यात्व (भाव) है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! व्यवहार है, वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा नहीं है।

श्रोता : यह गजब स्पष्टीकरण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा है, बापू! क्या हो? यह तो भगवान की पैढ़ी है, भाई! त्रिलोकनाथ परमात्मा की... आहाहा! उनकी पैढ़ी का स्पष्टीकरण करना कठिन है, बापू! आहाहा!

यहाँ यह कहा, कोई ऐसा ले लेवे कि मिथ्यात्वभाव और व्यवहार भाव एक वस्तु है, तो फिर जिसे व्यवहार हो, वह मिथ्यादृष्टि है (परन्तु) ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! व्यवहार तो जब तक वीतराग न हो, आत्मा परमेश्वर पद को प्राप्त न करे, तब तक साधक जीव को बीच में व्यवहार आता है, परन्तु उस व्यवहार को हेय माने। और उस व्यवहार को उपादेय माने तो जितना मिथ्यात्वभाव, उतना व्यवहारभाव—ऐसा कहने में आया

है। आहाहा! समझ में आया? न्यालभाई! बराबर सुनाई देता है न? सुनाई देता है? ऐसा मैंने कहा। समझ में आता है, (इसमें) अभी देरी है। ठीक, अभी आये तो। ऐसी बातें, बापू! क्या करें? आहाहा!

अरे.. भगवान! तेरी चीज़ अन्दर कोई अलग है। आहाहा! उस भिन्न चीज़ को भिन्न चीज़ के साथ मिलावे तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहना है। भिन्न चीज़ हो, गणधर को भी भगवान के विनय का भाव आवे। अरे! शास्त्र रचे, वह भी विकल्प है, राग है। भाव आता है। आहाहा! परन्तु वह आदरणीय है, वह हितकर है, वह उपादेय है—ऐसा मानना, इसका नाम मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इसलिए ऐसा कहा कि **मिथ्यात्व के भाव तथा व्यवहार के भाव एक वस्तु है।** दोनों एक वस्तु है, कहते हैं। आहाहा! राजमल टीका करते हैं! और उनके समयसार नाटक में पद बनाये हैं। बनारसीदासजी (ने बनाये हैं)। आहाहा! हैं न वह? यह निकला, पृष्ठ यह निकला! 'असंख्यात लोक प्रमाण जो मिथ्यात्वभाव...' इसमें से निकाला है। 'असंख्यात लोक प्रमाण...' यह क्या कहा? कि आत्मा में शुभभाव असंख्य प्रकार के हैं, शुभभाव के असंख्य प्रकार हैं। दया के, दान के, भक्ति के, पूजा के, व्रत के, अनुकम्पा के ऐसे शुभभाव के असंख्य प्रकार हैं।

'असंख्यात लोक प्रमाण जो मिथ्यात्वभाव, वह व्यवहारभाव केवली उकत है' आहाहा! जितने मिथ्यात्वभाव हैं, उतना व्यवहार (भाव है), ऐसा केवली भगवान फरमाते हैं। वह इस अपेक्षा से, हों! व्यवहार अपना माने, इस अपेक्षा से। व्यवहार आवे, उसे मिथ्यात्वभाव है, ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु व्यवहार को उपादेयरूप से (माने)। राग है, वह मेरी चीज़ है, (ऐसा माने), वह राग व्यवहार आत्मा की चीज़ है, यह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! आत्मा की होवे तो आत्मा में से निकल न जाए। निकल जाए, वह (चीज़) आत्मा की नहीं है। सिद्ध भगवान को राग नहीं रहता, निकल जाता है। इसलिए राग आत्मा की चीज़ नहीं है। आहाहा!

'असंख्यात लोक प्रमाण जो मिथ्यात्वभाव, वह व्यवहारभाव केवली उक्त्व है, जिनको मिथ्यात्व गयो...' आहाहा! बनारसीदास ने इसमें से बनाया है। 'जिनको मिथ्यात्व गयो सम्यक्त्व दरश भयो तै नियत लीन व्यवहार से मुक्त है।' यह बात है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप में उसकी लीनता है। व्यवहार है परन्तु उसमें वह हेयबुद्धि से, उससे मुक्त है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अभी बनारसीदास की मश्करी करते हैं। बनारसीदास और टोडरमलजी अध्यात्म की

भाँग पीकर नाचे थे ! अरे रे ! ऐसी नहीं कहा जाता, प्रभु ! टोडरमल जैसे मोक्षमार्गप्रकाशक के रचनाकार, बनारसीदास। आहाहा ! ऐसा स्वयं को नहीं जँचता, इसलिए उन्हें उड़ाया। अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे हैं, ऐसा कहा। अरर ! अरे ! भाँग हो, बापू ! तुझे खबर नहीं है, भाई !

'नियत लीन...' यह भाषा आयी, इसलिए उन्हें विवाद उठा। 'व्यवहार से मुक्त है' व्यवहार आता है परन्तु अन्दर में मुक्त, उसका आश्रय, आदर नहीं है। आहाहा ! 'निर्विकल्प निरुपाधि आतम समाधि साधी' सम्यग्दृष्टि तो राग को नहीं साधता। अपना निजस्वरूप शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द प्रभु का ही अन्दर में साधन करता है। आहाहा ! समझ में आया ? 'निर्विकल्प निरुपाधि' उपाधि बिना। राग व्यवहार है, उसकी उपाधिरहित भगवान आत्मा अन्दर है। उसे 'आतम समाधि साधी, सुगम मोक्ष पंथ को ढुकत है।' आहाहा ! गृहस्थाश्रम में बनारसीदास जैसे भगवान की वाणी है, वैसा फरमाते हैं, कहते हैं। आहाहा ! तिर्यंच को सम्यक् दृष्टि हो और सिद्ध को (सम्यग्दर्शन) होवे, (उसमें) सम्यग्दर्शन में क्या अन्तर है ? पशु को सम्यग्दर्शन है। ढाई द्वीप के बाहर असंख्य तिर्यंच पशु हैं। असंख्य समकिती हैं ! वहाँ आत्मज्ञानी अनुभवी पंचम गुणस्थानवाले हैं ! ढाई द्वीप के बाहर तिर्यंच हैं। आहाहा ! टोडरमलजी कहते हैं कि तिर्यंच का समकित और सिद्ध के समकित में क्या अन्तर है ? अन्दर स्थिरता, स्वरूप की रमणता में अन्तर है। समझ में आया ? समकिती की वाणी और वीतराग की वाणी में कुछ अन्तर (नहीं है), सत् की श्रद्धा में अन्तर नहीं।

'सुगुण मोक्षपन्थ को ढुकत है ते ही जीव परमदशा में स्थिररूप होय के...' आहाहा ! है ? वह जीव—सम्यग्दृष्टि राग को हेय मानकर अन्दर स्वरूप में स्थिरता करना चाहता है। आहाहा ! जितना आनन्दस्वरूप में स्थिर होऊँ, उतना मेरा चारित्र है। आहाहा ! चरना, रमना, जमना। सम्यग्दर्शन में आनन्द का जो भान हुआ... आहाहा ! उसमें अन्दर आनन्द में जितनी स्थिरता हो, उसका नाम चारित्र है। आहाहा ! पंच महाव्रत के परिणाम, वे कहीं चारित्र नहीं हैं, वह तो राग है, आस्रव है। अरे ! बात की खबर भी नहीं, वहाँ क्या हो ? अनन्त काल ऐसा का ऐसा गया। आहाहा !

'धर्म में ढुके न कर्म सो रुकत है' बनारसीदास कहते हैं कि समकिती तो अपने स्वरूप में अन्दर झुकते हैं। 'न कर्म सो रुकत हैं।' राग में रुकता नहीं है, आ जाता है परन्तु अन्दर जाता है। आहाहा ! स्वरूप आनन्द का नाथ प्रभु ! अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा, उसमें ढुकत है। आहाहा ! धर्मी की सन्मुखता और झुकाव आनन्द के ऊपर है। राग आता है

परन्तु झुकाव और आश्रय उसका है नहीं। आहाहा! गजब काम, भाई! है? इस (कलश का) यह श्लोक है, हों! वह अपने चलता है वह।

(यहाँ कहते हैं), **कैसा है व्यवहार?** अब मिथ्यात्वभाव और व्यवहार एक कहा, वह इस अपेक्षा से। अपना माने इस अपेक्षा से। तब (कहते हैं), **कैसा है व्यवहार?** है? '**अन्याश्रयः त्याजः**' आहाहा! क्योंकि व्यवहार है, वह अन्य का आश्रय है, उसमें स्व का आश्रय नहीं है। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, नित्यानन्द सहजात्मस्वरूप प्रभु का आश्रय ले तो धर्मदशा होती है। व्यवहार पराश्रित है। आहाहा!

भावपाहुड़ में ८३ गाथा में कहा है। भावपाहुड़, अष्टपाहुड़ है न? कुन्दकुन्दाचार्यदेव का अष्टपाहुड़! पूजा और व्रत, वह जैनधर्म नहीं है, ऐसा ८३ गाथा में लिखा है। धर्म तो मोह और क्षोभरहित आत्मा के परिणाम को धर्म कहते हैं। मिथ्यात्व और रागरहित अन्दर की दृष्टि और स्थिरता को भगवान धर्म कहते हैं। आहाहा! साधारण समाज को बात बैठती नहीं, इसलिए उड़ा दी है कि 'नहीं...' एकान्त है... एकान्त है। व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है, यह अनेकान्त है, ऐसा नहीं है। अन्तर के आश्रय से ही धर्म होता है, पर के आश्रय से नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? आहाहा! अनेकान्त को एकान्त में खतौनी कर डाला और एकान्त को अनेकान्त (खतौनी कर डाला)। व्यवहार से भी कल्याण होगा और निश्चय से भी होगा, दोनों साधन हैं। यहाँ तो इनकार करते हैं। आहाहा!

'**अन्याश्रयः**' कहते हैं कि व्यवहार और मिथ्यात्व एक क्यों (कहे)? क्योंकि व्यवहार अन्य के आश्रय से होता है। दया, दान, पूजा, भक्ति, वह तो अन्य के-पर के लक्ष्य से होते हैं, वे स्व के लक्ष्य से (होते) नहीं और अन्य आश्रय होने से वे त्याज्य हैं। स्व का आश्रय हो, वह उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? यह तो दो लाईन में, तीन लाईन में सब समाहित हो गया! ऐसा है। न जँचे, उसे ऐसा लगता है कि यह तो एकान्त है, एकान्त है। ऐसा कहते हैं न? लोग कहते हैं। एकान्त तो उसे कहते हैं कि व्यवहार है ही नहीं और अकेला निश्चय है तो (एकान्त कहलाये)। व्यवहार, व्यवहार के स्थान में है परन्तु वह त्याज्य है। धर्मी को व्यवहार आता ही नहीं, ऐसा नहीं है परन्तु वह व्यवहार त्याज्य है। क्यों? '**अन्याश्रयः**' (है इसलिए त्याज्य है।)

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भाव (होता है), उसे आत्मा का आश्रय है और व्यवहार का राग (होता है) उसे अन्य आश्रय है। आहाहा! इतनी दीपक जैसी बात है! शन्तिभाई! यह

सब समझना पड़ेगा, हों! बाहर में धूल में कुछ नहीं है। हैरान होकर मर जाएगा। आहाहा! यह पैसा दो-पाँच दस करोड़ मिले, धूल! तो हो गये हम सेठिया! धूल भी नहीं है। आहाहा! सेठ तो वह कहलाये, प्रभु! आनन्द का नाथ पुण्य के राग से भिन्न है, उसे श्रेष्ठ ऐसी आत्मा चीज़ है, उसे अनुभव करे और माने, वह सेठ-श्रेष्ठ कहलाता है; बाकी सब भिखारी और रंक कहलाते हैं।

आहाहा! भाषा क्या ली है? अन्य का अर्थ विपरीत लिया है। अर्थात्? कि आत्मा जो आनन्दस्वरूप है, उसका आश्रय नहीं और उसके विपरीत पर अन्य है, उसका आश्रय व्यवहार में है। इसलिए अन्य का अर्थ विपरीत किया है। **विपरीतपना वही है अवलम्बन जिसका,...** आहाहा! जो पूजा, भक्ति, दया, दान, व्रत के परिणाम हुए उसमें तो अन्य का अवलम्बन है। क्योंकि उसमें लक्ष्य (पर) के ऊपर है, इसलिए वह व्यवहार त्याज्य है और अन्तर शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु उपादेय है और इसमें से निर्मल दशा प्रगट होती है, वह भी उपादेय है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

५

श्री नियमसार, गाथा - ४१, श्लोक - ४८-४९, प्रवचन - ८
दिनांक - १०-०९-१९६९

दशलक्षणी पर्व का तीसरा दिन है। आर्जवधर्म। आर्जव।

श्रोता : रोज एक-एक... करने का?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक करने का यहाँ तो। कथन करने का एक-एक। करना तो एकसाथ है। आत्मा में सम्यग्दर्शन प्रगट करके। चारित्र का आराधन तो प्रतिदिन करना। यह तो कथन दस प्रकार का क्रमसर है। कहो, सेठी! एक दिन में एक-एक करना न, ऐसा कहते हैं। करने का प्रश्न कहाँ है? यहाँ तो आत्मा अनादि... यह दस दिन पर्यूषण के हैं। दशलक्षणी पर्व कहने में आते हैं। यह बारह महीने में तीन बार आते हैं। माघ में, चैत्र में और भाद्रपद में। यहाँ यह भाद्रपद में विशेष (प्रकार से मनाते हैं)। आत्मा, मोक्ष का कारण तो वास्तव में चारित्र है और चारित्र होने से पहले उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान प्रगट होना चाहिए। सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए बिना चारित्र नहीं होता। और चारित्र के बिना दस प्रकार का आराधन वास्तव में नहीं होता। यहाँ तीसरा आर्जव का दिन है। सरलपना।...

क्या कहते हैं? मन में जो बात हो, उसे ही वचन द्वारा प्रगट करना। मन में कुछ हो, और वचन में कुछ कहना, वह तो माया है। मन में कुछ... हो और वचन में कुछ दूसरा बोले। इसे आचार्य आर्जव धर्म (नहीं) कहते हैं। मीठी-मीठी बात करके दूसरे को ठगना, उसे अधर्म कहते हैं, आर्जव धर्म आर्जव से विरुद्ध, उसमें आर्जव धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यहाँ यह लिया है। आर्जव धर्म से—निश्चय आर्जव धर्म जो सरलता है, वह तो मुक्ति का कारण है परन्तु बीच में विकल्प उठता है, उससे पुण्य बँधता है तो स्वर्ग का कारण (बनता है)। पाठ में ऐसा लिया है। अधर्म नरक में ले जाता है। ....आर्जव शुभभाववाला होवे तो वह स्वर्ग में जाता है और उससे विरुद्ध होवे तो नरक में जाता है। समझ में आया? इसलिए आर्जव धर्म पालन करनेवाले भव्य जीवों को किसी के साथ माया से नहीं वर्तना चाहिए। ....

आचार्य कहते हैं, यदि एक बार भी किसी के साथ मायाचार की जाए, तो वह मायाचारी बहुत कठिनता से... अहिंसा, सत्य मुनियों के गुण को फीका बना देता है। दूसरे विश्वास भी नहीं कर सकते, यह तो मायाचारी है। उसके गुण आदरणीय नहीं रहते। मायारूपी मकान में नाना प्रकार के क्रोधादि शत्रु छिपे हुए हैं। मायाचारी को क्रोध भी होता है, मान भी होता है, लोभ भी होता है, ऐसा कहते हैं। उस मायाचार से उत्पन्न हुए पापी जीव अनेक प्रकार की दुर्गति मार्ग में भ्रमण करते हैं। इसलिए धर्मात्मा को माया को अपने निकट भी नहीं आने देना चाहिए। सरलता-आर्यपना तो, ऐसी सरलता, हृदय से सरलता। चार प्रकार के नामकर्म बँधते हैं न? उसमें यह आता है। अवक्रमन, अवक्रवचन, अवक्रकाया। चार बोल आते हैं या नहीं? चार प्रकार से नामकर्म बँधता है न? अविसंवाद... समझ में आया? सरलता का मन, सरलता की वाणी, ऐसा सरलपने का भाव, हों! और किसी के साथ झगड़ा आदि नहीं करना, ऐसा शुभभाव हो तो स्वर्ग में जाता है और शुभ से भिन्न अपने आनन्दस्वरूप की सरलता की परिणति हो तो साथ में मुक्ति भी होती है। लो! यह दो गाथाएँ हुई।

अब चलता अधिकार। नियमसार गाथा ४१ वीं चलती है। यहाँ आये हैं, देखो! टीका में अन्त में।

पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं। है? चार भाव आवरणसहित हैं। क्या अर्थ किया था, खबर है? कल ही किया था। ठीक, पोपटभाई ने पकड़ा अभी। लो! यह खबर नहीं, कहते हैं। क्या कहते हैं? आत्मा में जो पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वह उदयभाव है। वह उदय की पर्याय है और जो सम्यग्दर्शन तथा चारित्र जो उपशमभाव होता है, वह भी आत्मा की एक निर्मल पर्याय है, उपशम पर्याय। और एक क्षयोपशम पर्याय होती है—ज्ञान की, दर्शन की, वीर्य की, श्रद्धा आदि की पर्याय क्षयोपशम अवस्था होती है और एक क्षायिक अवस्था होती है—केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक समकित इत्यादि। तो ये **चार भाव आवरणसंयुक्त होने से...**

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवरणसहित। किस अपेक्षा से आवरणसहित कहा? कि राग-द्वेष, दया, दान, भाव तो आवरणवाले हैं, वे स्वयं दुःखरूप और विकार हैं, परन्तु उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक जो निर्मल पर्याय है, उसमें कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा लेकर उन्हें आवरणवाले कहा गया है। समझ में आया? कल कहा था।

पाँच भाव में चार भाव तो आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं। आहाहा! इसलिए आवरण संयुक्त कहा है। समझ में आया? आत्मा की पर्याय में दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव— उदयभाव, यह आश्रय करनेयोग्य नहीं, धर्म का कारण नहीं। और जो उपशम, क्षयोपशम क्षायिक, वीतरागी पर्याय प्रगट हुई हो, क्षायिक समकित, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है। कल चला था। समझ में आया? पण्डितजी! बाबूलालजी! देखो! यह तो हिन्दी में लिया। कल चला था।

चार पूर्व अर्थात् ऊपर कहे हुए। प्रत्येक का विस्तार किया है। उपशम के कितने भेद हैं? समझ में आया? आत्मा परमस्वाभाविक भावरूप त्रिकाली परमपारिणामिकभावस्वरूप नित्य है। वस्तु आत्मा की पर्याय में जो उत्पाद-व्यय होता है, राग का, क्षायिक समकित का या क्षयोपशम समकित का या क्षयोपशमज्ञान का या क्षयोपशमचारित्र का, वह जो आत्मा में पर्याय उत्पन्न होती है, वह उत्पाद-व्ययवाली है। उत्पाद-व्ययवाली है तो वह व्यवहार है, वह व्यवहार है। वह व्यवहार आदरणीय नहीं है। सेठ! आहाहा! समझ में आया? पाँच भाव में एक परमपारिणामिक त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, नित्य भाव, सहजानन्दस्वभाव का समुद्र पूर्ण स्वरूप ध्रुव, कूटस्थ, निष्क्रिय, जिसमें राग की क्रिया तो नहीं परन्तु मोक्ष की और मोक्ष के मार्ग की क्रिया भी जिसमें नहीं है, ऐसा जो ध्रुव आत्मा परमस्वभावभाव, वह आश्रय करनेयोग्य है। धर्मी को वह भाव आश्रय करनेयोग्य है, आश्रय करनेयोग्य है ध्रुव।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....है ही नहीं। आश्रय करता है, शुभ का आश्रय करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? शुभ का आश्रय करे तो मिथ्यादृष्टि है और शुद्ध प्रगट हुआ और उसका आश्रय करने जाए तो विकल्प उठते हैं, वह पुण्यबन्ध का कारण है।

श्रोता : .... भला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भला-बला कोई है ही नहीं। भला एक आत्मा स्वभाव त्रिकाली है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! नियमसार का अधिकार है। नियमसार का अर्थ—मोक्ष का मार्ग। निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयसम्यग्ज्ञान, निश्चयचारित्र, वह पर्याय है, वह मोक्षमार्ग की पर्याय है, वह संवर, निर्जरा की विकाररहित वीतरागी पर्याय है। वह भी यहाँ कहते हैं कि आश्रय करनेयोग्य नहीं है। डॉक्टर! सुना भी नहीं होगा, यह क्या होगा? जयनारायण! भगवान की भक्ति करो। उससे धूल भी नहीं होगा। सुन न अब। लाख-करोड़ भक्ति करे, वह

तो राग है। राग का आश्रय तो नहीं, परन्तु सम्यग्दृष्टि को तो पूर्ण परमात्मस्वभाव नित्यानन्द ध्रुव का आश्रय है। क्योंकि उसका आश्रय करने से निर्मल वीतरागी पर्याय नयी प्रगट होती है। समझ में आया?

पूर्वोक्त चार भाव... भाव शब्द से पर्याय। विकारी पर्याय, उपशम पर्याय, क्षयोपशम पर्याय अथवा क्षायिक पर्याय। चार भाव अर्थात् चार पर्याय। **आवरणसंयुक्त होने से...** क्योंकि उनमें कर्म के अभाव की निमित्तता आती है। इस अपेक्षा से इन्हें आवरणसहित कहा गया है। वह **मुक्ति का कारण नहीं हैं।** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र निमित्त मुक्ति का कारण नहीं है। उसका प्रेम-राग लगा, वह मुक्ति का कारण नहीं है। परन्तु उपशम-क्षयोपशम, क्षायिकधर्म की दशा प्रगट हुई हो, वह भी मुक्ति का कारण नहीं है। समझ में आया? वीतरागस्वभाव, भाई! अलौकिक है। लोगों को मिला नहीं। बाहर की मजदूरी में जिन्दगी गँवाते हैं। शोभालालजी! समझ में आया?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी आयेगा न, अभी आया नहीं। अब आयेगा।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय नहीं। वह तो त्रिकाली गुण है। यह अभी आयेगा। कल कहा था। कि चार पर्याय, भाव अर्थात् पर्याय, चार पर्याय आवरणसंयुक्त हैं। क्योंकि निमित्त की (अपेक्षा थी)। राग, दया, दान, भक्ति में निमित्त की अपेक्षा है, और उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में निमित्त के अभाव की अपेक्षा है। अपेक्षित भाव है, इसलिए इन चार को आवरण संयुक्त कह दिया है। आहाहा! समझ में आया? अलौकिक मार्ग है, भाई! दुनिया को सुनने को नहीं मिलता, इसलिए एकान्त है, एकान्त है।... अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! तीन लोक का नाथ चिदानन्द, अनन्त सिद्ध जिसके पेट में—गर्भ में स्थित हैं, ऐसा ध्रुव परमात्मस्वरूप तेरा है।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान है, वह भी सापेक्ष है। ज्ञानावरणीय का निमित्तरूप से अभाव हुआ, उसे भी आवरणसहित कहा जाता है। केवलज्ञान की पर्याय भी आश्रय करने लायक नहीं है। आहाहा! गजब बात, भाई!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ कहा? वह निरपेक्ष किस अपेक्षा से? स्वभाव की अपेक्षा से

प्रगट हुआ, इस अपेक्षा से निरपेक्ष है और निमित्त की अपेक्षा से लो तो सापेक्ष है। केवलज्ञान, वह निरपेक्ष, ऐसा कहा था न? चौदहवीं गाथा। वह तो निरपेक्ष का अर्थ जिसे अब आवरण का, वर्तमान निमित्त का बिल्कुल अंश नहीं रहा, उस अपेक्षा से निरपेक्ष है। परन्तु निमित्त का अभाव हुआ, इस अपेक्षा से सापेक्ष है। आहाहा! गजब, भाई! पोपटभाई! यह सब ध्यान रखना पड़ेगा। यह कल दोपहर का पूछा तो आया नहीं। पैसे का कितना याद रहता है। 'थाणा' में इतने डाले हैं, उसमें यह डाले हैं, अहमदाबाद में यह डाले हैं। ऐई! चिमनभाई! यह तुम्हारे रिश्तेदार थे। आहाहा!

भगवान! यह देह, वाणी, मन की क्रिया तो पर जड़ है, उसके साथ आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं है। अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम उठते हैं, वह राग-शुभराग है, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है और वह धर्म नहीं है। अब आत्मा अन्दर ध्रुव चिदानन्द भगवान, परमस्वभावभाव, नित्यानन्द, निष्क्रिय, वर्तमान पर्याय से दूर (वर्तता है)। आहाहा! चाहे तो क्षायिक समकित की पर्याय हो, क्षायिक चारित्र की पर्याय हो, एक समय की पर्याय से ध्रुवतत्त्व दूर है। क्योंकि एक पर्याय में ध्रुवतत्त्व आता नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! सेठ! यह समझना पड़ेगा, हों! अध्धर-अध्धर नहीं चलेगा। आहाहा!

पर शरीर, वाणी कर्म से तो भगवान दूर है परन्तु दया, दान, व्रत के परिणाम से दूर प्रभु है, परन्तु उसकी उत्पाद-व्यय की धर्म की वीतरागी पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, क्षायिक समकित की पर्याय, एक समय की अवस्था से प्रभु दूर है। ध्रुवतत्त्व भगवान पर्याय में नहीं आता।

श्रोता : तादात्म्य सम्बन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तादात्म्य सम्बन्ध नहीं। नित्य के साथ तादात्म्य सम्बन्ध हो तो पर्याय नित्य हो जाए और या द्रव्य क्षणिक हो जाए। क्या कहते हैं? सुनो। इन भाई ने इस प्रकार से प्रश्न रखा, एक समय की पर्याय के साथ त्रिकाली ध्रुव यदि तादात्म्य हो तो या पर्याय नित्य हो जाएगी और या नित्य, क्षणिक हो जाएगा। ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! अलख का घर पहचानना, यह अलौकिक बात है, भाई! यह साधारण की बात नहीं है। आहाहा! 'अलख ने केम करि ओलखवो' भजन आता है। 'फकीरे काढ्यो फतवो' यह सब फतवा निकाले, व्यवहार बिना होता नहीं, अमुक बिना होता नहीं—फतवा सब फकीर जैसा है। ऐई! भगवान! फतवा समझते हो? फतवा को क्या कहते हैं? फतवा। खोटा, खोटा। फतवा का अर्थ खोटा। आहाहा! देखो तो सही।

भगवान आत्मा की पर्याय में, अवस्था में चार प्रकार की अवस्था होती है। एक समय की अवस्था। चाहे तो राग हो, चाहे तो क्षायिक समकित हो, चाहे तो केवलज्ञान हो, (सब) एक समय की अवस्था है। एक समय की पर्याय की अपेक्षा, उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है। इस अपेक्षा से उसे निमित्त का, कर्म का अभाव निर्मल पर्याय में देखकर अपेक्षा आयी तो कहते हैं कि चारों पर्यायें आवरणवाली है। निरावरण प्रभु ध्रुव त्रिकाली निरावरण वस्तु है। समझ में आया? आहाहा!

पूर्वोक्त चार भाव... भाव अर्थात् पर्याय अर्थात् अवस्था। पर्यायदृष्टिवन्त को कहते हैं कि पर्याय पर जिसका लक्ष्य है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक समकित नहीं होता। आहाहा! कहते हैं कि **चार भाव आवरणसंयुक्त होने से...** आवरणसहित अर्थात् निमित्त की अपेक्षावाले और अभाववाले। **मुक्ति का कारण नहीं हैं।** अब मुक्ति का कारण कौन है? **त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है...** त्रिकाल भगवान ध्रुव, जिनबिम्ब अविनाशी। पर्याय तो विनाशीक है। चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय हो, चाहे तो क्षायिक समकित की पर्याय हो, वह विनाशीक है। एक समय की पर्याय विनाशीक है। आहाहा!

त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है... तीनों काल ध्रुव भगवान कि जिसमें कोई आवरण नहीं है, कोई अपेक्षा नहीं है, ऐसा ध्रुव जिसका स्वरूप है। **ऐसे निरंजन...** जिसमें अंजन नहीं, मैल नहीं। **निज परम पंचम भाव...** देखो! निज परम पंचम भाव। ये चार भाव भी हैं। परन्तु यह तो त्रिकाली ध्रुव निज परम पंचम भाव **(-पारिणामिकभाव की) भावना से...** ऐसे पंचम भाव की भावना से। भावना शब्द से ध्रुवस्वभाव में एकाग्रता से। पर्याय तो वापस उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक है परन्तु ध्रुव में एकाग्रता है, पर्याय में एकाग्रता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

बाहर का जहाँ सम्हालने जाए, वहाँ अन्दर का खो जाता है। बाहर का याद करने जाए, वहाँ अन्दर का खो जाता है, उसकी खबर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ तो ऐसे-ऐसे करूँ, पर्याय को ऐसे करूँ, पर्याय से सुधारूँ, बाहर को ऐसे सुधारूँ - यह दृष्टि मिथ्यात्व है। पर्याय की सम्हाल करने गया, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? '...'! यह तो अलौकिक बात है। ऐसी बात तो किसी समय निकले, तब सुनने को मिलती है, कहीं हर समय (नहीं आती)। पाठ शास्त्र का होवे तो कहलाये।

भगवान आत्मा, देखो! आत्मा, जिसे निश्चय आत्मा कहते हैं। निश्चय आत्मा, वह तो

पर्याय से भिन्न जो ध्रुव है, वह निश्चय आत्मा है। पर्याय के आत्मा को व्यवहार आत्मा कहते हैं। वह व्यवहार अभूतार्थ। वह व्यवहार सत्य आत्मा नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! अमरचन्दभाई! भगवान! कहते हैं, पर्यायमात्र व्यवहार का विषय है। द्रव्य, वह निश्चय का विषय है। आहाहा! उस पर्याय में रहकर यह ध्रुव है, ऐसा भी माने तो पर्याय में ध्रुव को दूर रखा है। परन्तु पर्याय ध्रुव में प्रवेश करने पर, अन्दर प्रवेश करने पर ध्रुव में एकाकार होती है, उसे पंचम भाव की भावना कहा जाता है। आहाहा! बसन्तकुमारजी! उसे रट है या नहीं? उसे रट है। प्रश्न करते थे। समझ में आया? अरे! भगवान! कहते हैं, तीन लोक का नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, वह सन्त कहते हैं। वह शास्त्र में भाषा द्वारा बात आ गयी। ओहोहो!

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं। पर्याय द्रव्य में जाए, एकाकार हो। तो यह पर्याय यहाँ ले जाए, यह भी खोटी बात है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो ध्रुव पर दृष्टि गयी, तो यह पर्याय अन्दर में प्रवेश हुई, ऐसा कहने में आता है। सूक्ष्म बात है, भाई! चलती पर्याय के साथ, वर्तमान चलती उस पर्याय को अन्दर में झुकाऊँ, यह भी पर्यायदृष्टि हो गयी। कैसे झुके? यह चलती पर्याय तो है। अब जब दूसरे समय में अन्दर में झुकानी है, वह पर्याय तो है नहीं। पण्डितजी! यहाँ तो अलौकिक बात है। राग की तो बात ही नहीं। दया, दान, भक्ति के विकल्प से लाभ होता है, यह बात तो तीन काल में नहीं है परन्तु चलती पर्याय में यह पर्याय मैं अन्दर झुकाऊँ। क्या झुकाये? वह तो उत्पन्न हुई है और जो पर्याय उत्पन्न हुई नहीं, उसे झुकाना, वह क्या है? इसका अर्थ यह है कि ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा में दृष्टि जाने पर वह पर्याय नयी उत्पन्न हुई और द्रव्य का अवलम्बन लिया। समझ में आया? ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। नहीं समझ में आये, ऐसा नहीं है। सादी भाषा में भाव आता है। कठिन बातें नहीं हैं। आहाहा! क्या गम्भीर तत्त्व!

कहते हैं कि **त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है...** जिसका त्रिकाल निरुपाधिस्वरूप भगवान ध्रुव, **ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव...** भगवान का पंचम भाव भगवान के पास रहा। सिद्ध के द्रव्य का पंचम भाव सिद्ध के पास रहा। हमारे किस काम का? यहाँ तो कहते हैं कि हमारी पर्याय भी हमारे काम की नहीं है। आहाहा! क्योंकि पर्याय में से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। नयी पर्याय, वीतरागी पर्याय उत्पन्न होने की खान तो ध्रुव है। ध्रुव भगवान की भावना, पंचम भाव की भावना। है न? पण्डितजी! देखो! परमपारिणामिकस्वभाव, ध्रुव,

चैतन्यद्रव्य, ध्रुव, उस पंचम पारिणामिकभाव की भावना से, उसकी एकाग्रता से, उसकी एकाग्रता से पंचम गति में, मोक्षगति में **मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,...** कहो, समझ में आया ? कहो, भीखाभाई ! हीराभाई ने रखा है या नहीं साथ में ? आहाहा !

भगवान आत्मा त्रिकाली ध्रुवबिम्ब। काँच होता है न ? दर्पण-दर्पण। दर्पण का दृष्टान्त आता है। भाई ने तो बहुत दिया है, निहालभाई ने। यह दर्पण है न दर्पण ? दर्पण को क्या कहते हैं ? शीशा, दल। ऊपर की पर्याय में सब अवस्था होती है। उस पर्याय के अतिरिक्त का पूरा दल है, उसमें तो वह पर्याय-वर्याय है नहीं। दर्पण का दल है, जो ध्रुव दल है, उसमें तो वर्तमान पर्याय दर्पण में अन्दर नहीं है। जो दर्पण में यह लाल, पीला आदि दिखता है, वह तो दर्पण की एक समय की पर्याय है। वह पर्याय दर्पण का जो दल है, पिण्ड है, पूर्ण स्कन्ध है, उसमें पर्याय का अभाव है। वह पूरा दर्पण एक पर्याय में आ नहीं जाता। आहाहा ! भारी कठिन, भाई ! और दर्पण की एक समय की पर्याय, उसके दल में प्रवेश नहीं करती। दोनों भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा ध्रुव दल, नित्य दल, सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण, वह एक समय की अवस्था में नहीं आता और एक समय की अवस्था ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। आहाहा ! गजब बात, भाई ! समझ में आया ? कहो, पन्नालालजी ! ऐसी बात है। यह हिन्दी में आया ? हिन्दी में भी जो भाव हों, वे आवें न, दूसरा कहाँ से आयेगा ?

शरीर, वाणी की क्रिया जड़ की जड़ में है, मन की मन में, वाणी की वाणी में, जड़ की-शरीर की जड़ में और दया, दान, व्रत, भक्ति का आदि का विकल्प उठता है, वह राग आस्रवतत्त्व में है; और उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तत्त्व उत्पन्न हो तो एक समय की पर्याय तत्त्व में है, ध्रुवतत्त्व में वह नहीं है। गजब बात, भाई !

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...ऐसा है या नहीं ? निर्णय करो। पहले निर्णय तो करो। सामान्य जो ध्रुव है, एक समय में यदि आ जाए तो एक समय की अवस्थामात्र ध्रुव हो जाए और एक समय की विशेष अवस्था है, विशेष अवस्था चाहे तो क्षायिक समकित की हो, केवलज्ञान की हो, वह एक समय की अवस्था यदि ध्रुव में—सामान्य में प्रवेश कर जाए तो एक समय की अवस्था नित्य हो जाए। पर्याय तो अनित्य है। धर्मचन्दभाई ! सूक्ष्म बात है। कहो, सेठ ! पूछेंगे तो आयेगा या नहीं ? दाँत निकालते हैं (हँसते हैं)।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयत्न कहाँ इतना अधिक करते हैं ? दरकार करते हैं अभी ? इतनी अधिक दरकार नहीं। आहाहा!

अन्दर भगवान चिद्घन है, ज्ञान का दल है, आनन्द का दल है, ध्रुवबिन्द है, जिसमें अनन्त सिद्ध की पर्यायें जिसके दल में अन्दर स्थित हैं, ऐसा चिद्घन ध्रुव परमस्वभावभाव, उसमें चार पर्याय नहीं है। वह भाव दूर है। आहाहा! यह तो कहीं बात! सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त यह मार्ग अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। तीन काल-तीन लोक में नहीं है। ओहो!

यहाँ तो कहते हैं, पंचम भाव की भावना, ऐसा कहा न ? पर्याय में रहकर पर्याय की भावना करे तो भी वह तो पर्याय में खड़ा है, ध्रुव में नहीं खड़ा। पर्याय में दया, दान, व्रत आदि का लक्ष्य करे और वहाँ रहे तो वह तो पर्यायबुद्धि, अंशबुद्धि हुई। वह पर्याय में रमता है, मिथ्यात्व में रमता है। समझ में आया ?

यहाँ तो भगवान आत्मा निज परमभाव, पंचम भाव। भगवान आत्मा का निज अर्थात् अपना परमभाव, पंचम भाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, स्वभावभाव, सदृशभाव, सामान्यभाव। समझ में आया ? ऐसे दल की भावना से। वह भावना वीतरागी पर्याय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह पंचम भाव की भावना है। आहाहा! यह नियमसार देखा है या नहीं ? पढ़ा है या नहीं ? पण्डितजी! नहीं पढ़ा।

श्रोता : अभिप्राय की भूल...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...पूरी। होवे तो पूरी और न होवे तो कुछ नहीं। समझ में आया ? नहीं तो निर्णय करो। पहले विकल्प सहित भी ऐसा निर्णय न हो, उसे निर्विकल्प दृष्टि कभी नहीं होती। समझ में आया ? आहाहा! 'प्रभु! तारी पासे रे प्रभु नहीं बेगलो।' इस पर्याय में आये नहीं, ऐसा तेरा प्रभु स्थित है न भगवान! आहाहा! वह तो मोक्षमार्ग की पर्याय और मोक्ष की पर्याय तो दूर है, वेगलो है। आहाहा! देखो तो सही भेदज्ञान! ऐसी भावना से, ऐसी पंचम भाव की भावना से। पंचम भाव त्रिकाली है। भावना, वह वर्तमान पर्याय है। परन्तु इस पंचम भाव की भावना से ऐसे ध्रुव सन्मुख दृष्टि करने से जो एकाग्र हुआ, उसका नाम भावना कहते हैं। उस भावना में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आ जाते हैं। पाठ है ?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी ठिकाने नहीं पड़ता। रात्रि में पूछना। कहो, समझ में आया ? यह तो अलौकिक मार्ग है। यह ऐसे के ऐसे पकड़ में आ जाए, ऐसा वहाँ नहीं है।

भगवान ध्रुवस्वरूप है, उसकी भावना। भाव की भावना। त्रिकाल ध्रुव की भावना, उसकी भावना। पर्याय की नहीं, राग की नहीं। निमित्त की नहीं, राग होओ, शुभराग होओ, यह थोड़ा है तो बढ़ो-यह तो दृष्टि पर्यायबुद्धि, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

श्रोता : त्रिकाल ध्रुवस्वभाव की भावना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, त्रिकाल ध्रुवस्वभाव की भावना, अन्तर में एकाग्रता, ध्रुव में एकाग्रता। वह एकाग्रता है तो पर्याय, परन्तु उस ध्रुव सम्बन्धी में लीनता। पर्याय में पर्याय की लीनता नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे! मार्ग तो देखो! तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द से भरा है, प्रभु! कहते हैं कि इस पर नजर करने से इसमें एकाग्र होवे, वह भावना। उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ध्रुव के लक्ष्य से, आश्रय से जो दशा हुई, उसे यहाँ भावना कहते हैं। यह भावना अर्थात् कल्पना, ऐसा नहीं। इसमें एकाग्रता, लीनता। ध्रुव में लीन, ध्रुवबिम्ब में दृष्टि का पसार, ध्रुव में दृष्टि का पसार, ध्रुव में दृष्टि का विस्तार, दृष्टि में पूरे ध्रुव को कब्जे में कर लिया है। ऐई! धर्मचन्दजी!

ऐसी **भावना से पंचम गति में...** देखो! **पंचम भाव की भावना से पंचम गति में मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,...** अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान भी ध्रुव पारिणामिकभाव के आश्रय से वर्तमान सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, सम्यक्चारित्र होता है। आगे बढ़ते हुए शुक्लध्यान भी ध्रुव के आश्रय से होता है। आगे बढ़कर केवलज्ञान भी ध्रुव के आश्रय से होता है और पूर्ण सिद्धदशा भी ध्रुव के आश्रय से होती है। बात ऐसी है। समझ में आया? पंचमभाव की, **परम पंचम भाव की...** क्योंकि पर्याय को भी पारिणामिकभाव की पर्याय कहा जाता है। यह दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के परिणाम हैं, वे कर्म के निमित्त की अपेक्षा से उदय, परन्तु पारिणामिकभाव की अपेक्षा से पारिणामिकभाव की पर्याय। इसी प्रकार उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक भी परमपारिणामिकभाव की अपेक्षा से पारिणामिक पर्याय (कहलाते हैं)। परन्तु उस पर्याय से भिन्न त्रिकाली परमपारिणामिक। समझ में आया? कहा न? डॉक्टर को ख्याल नहीं रहा। क्या कहा? अभी क्या कहा?

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा ही नहीं। ख्याल में लिया ही नहीं।

आत्मा में जो पुण्य-पाप का भाव होता है, उसे निमित्त की अपेक्षा से उदय कहो, परन्तु पारिणामिकभाव परमभाव है, वह पर्यायरूप से परिणमता है तो उसे भी पारिणामिकभाव की पर्याय (कहा जाता है)। परमपारिणामिक भिन्न।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कुछ नहीं अभी। ऐसा करके स्पष्टीकरण कर दिया। वह तो पारिणामिक रागादि विकल्प जो दया, दान, काम, क्रोध के, मिथ्यात्व के परिणाम हैं, वे भी पारिणामिकभाव की पर्याय है। पर्याय है। परमपारिणामिक वह ध्रुव। आहाहा! यह कहा था। तुम्हारा ध्यान नहीं था। समझ में आया? बापू! मार्ग तो ऐसा कोई अलौकिक है। लोगों को ऐसे का ऐसा अपनी कल्पना से पढ़े, कल्पना से बैठावे और कल्पना से वीतरागमार्ग से उल्टा माने और हम वीतरागमार्ग कहते हैं, ऐसा कहे।

यहाँ तो कहते हैं, परम पंचम भाव क्यों कहा? परम पंचम भाव, परम पंचम भाव ध्रुव है और उसकी पर्याय राग—दया, दान, काम, क्रोध की पर्याय, वह भी पारिणामिकभाव की एक समय की पर्याय है। इसे पारिणामिकभाव कहते हैं। परमपारिणामिक नहीं।

श्रोता : पारिणामिक...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पारिणामिक है। कहा न? और यहाँ तो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक—चारों पर्याय को अन्तर की अपेक्षा से, निज की ओर की अपेक्षा से उन चारों को पारिणामिक की पर्याय कहते हैं। कर्म की अपेक्षा से उन्हें उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक कहते हैं परन्तु वह पारिणामिकभाव की जो पर्याय है, वह पारिणामिकभाव पर्याय है, परन्तु ध्रुव है वह पंचम पारिणामिक त्रिकाल भाव है। आहाहा! सेठ! यह तो सब भ्रमणा हो जाती है। वहाँ दुकान में बैठे हों तो मानो ऐसा लगता है कि बड़े होशियार।

इसमें कहाँ याद रखने की बात है? तत्त्व की सीधी बात है। आहाहा! त्रिकाली भगवान जो ध्रुव है, वह परमपारिणामिकभाव और उसकी चार पर्याय है, वह पारिणामिकभाव की पर्याय अंश है। पारिणामिक भी अंश है परन्तु वह परमपारिणामिक नहीं। समझ में आया? परमपारिणामिक ध्रुव भगवान आत्मा नित्यानन्द पर्याय से भिन्न, उसकी भावना से। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की एकाग्रता से नहीं। उस ध्रुव की एकाग्रता से **पंचम गति में मुमुक्षु (वर्तमान काल में)...** धर्मात्मा मोक्ष जाते हैं। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह भी पंचम भाव की एकाग्रता से होती है। आहाहा! यह तो वे कहते हैं न? तीन करण से शुभभाव से होता है। अब तीन करण गये उनकी पर्याय। सुन न! भारी विवाद करते हैं। बड़े विद्वान, बापू! वे विद्वान नहीं कहलाते हैं। यहाँ कहेंगे। देखो! अभी आयेगा। आहाहा!

भगवान आत्मा मैं जो हूँ, वह तो पर्याय से भिन्न हूँ, मुझमें पर्याय परिणमो परन्तु मैं परिणमन पर्याय में नहीं आता। परिणमन करना, वह तो पर्याय का धर्म है; मेरा धर्म नहीं। आहाहा!

पंचम गति में मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,... एक ही मार्ग है, ऐसा कहते हैं। तीन काल का एक ही मार्ग है। और कोई पंचम काल के लिये दूसरा मार्ग तथा महाविदेह का दूसरा मार्ग और भरत का दूसरा मार्ग, ऐसा है नहीं। भूतकाल का दूसरा मार्ग, भविष्य काल का दूसरा मार्ग, कठिन पंचम काल में दूसरा मार्ग, (ऐसा है नहीं)।

इसीलिए तो स्पष्टीकरण किया है। आहाहा! भाई! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्मल पर्याय, जो नियमसार है। निश्चयमोक्षमार्ग, हों! व्यवहारमोक्षमार्ग मार्ग है ही नहीं। विकल्प, मोक्षमार्ग है ही नहीं। निश्चयमोक्षमार्ग कि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान निर्मल चारित्र की वीतरागी पर्याय, वह पंचम भाव ध्रुव के आश्रय से, उसमें एकाग्रता से उत्पन्न होती है। और उस पंचम भाव के आश्रय से यहाँ आत्मा को केवलज्ञान और मुक्ति होती है **(भविष्य काल में) जाएँगे...** भविष्य अनन्त काल है, उसमें भी इस ध्रुव स्वभाव की एकाग्रता से मोक्ष जाएँगे। वीतराग में दूसरा कोई मार्ग नहीं है। **और (भूतकाल में) जाते थे।** जाते थे। गत काल में भी ध्रुव पंचम भाव की एकाग्रता से भूतकाल में अनन्त (जीव) मोक्ष गये हैं, वर्तमान में जाते हैं और भविष्य में जाएँगे। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' यह एक ही परमार्थ का पन्थ है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : महासिद्धान्त की है।

[अब ४१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं—] तो टीका हुई। अब श्लोक ।

अञ्चितपञ्चमगतये पञ्चमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः।
सञ्चितपञ्चाचाराः किञ्चनभावप्रपञ्चपरिहीणाः।।५८।।

(ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यरूप) पाँच आचारों... पाँच आचार, आचार पर्याय। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, तप और वीर्य-पाँच वीतरागी पर्याय, वीतरागी दशा, निर्विकल्प दशा। इन **पाँच आचारों से युक्त और किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित...** मुनि कहते हैं न? मुनि की बात मुख्य लेनी है न? **किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित...** मुनि को तो एक वस्त्र के टुकड़े का भी परिग्रह नहीं होता। वस्त्र का एक टुकड़ा हो और मुनिपना माने तो वह मिथ्यादृष्टि है।

श्रोता : व्यवहार पंचाचार।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार पंचाचार भी नहीं, वह तो विकल्प है। यहाँ तो निश्चय पंचाचार की बात है। आहाहा! समझ में आया?

पाँच आचारों से युक्त और किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित... इससे सहित और इससे रहित। अस्ति-नास्ति किया है। **ऐसे विद्वान...** ऐसे विद्वान। इसे विद्वान कहते हैं और इसे ज्ञानी कहते हैं। बाकी शास्त्र की पढ़ाई पढ़े और विपरीतता करे, वे विद्वान नहीं। है इसमें? देखो! **ऐसे विद्वान पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिये...** पूजनीय पंचम गति—मुक्ति को **प्राप्त करने के लिये पंचम भाव का स्मरण करते हैं।** स्मरण शब्द से (आशय यह कि) पंचम भाव में एकाग्र होते हैं। स्मरण करते हैं अर्थात् ऐसे स्मरण नहीं। पंचम भाव को याद करके एकाग्र होते हैं। आहाहा! गजब बातें, भाई!

आत्मा के पुरुषार्थ की अन्दर विकाररहित, निर्विकार की रचना होना, वह वीर्याचार है। वीतरागी पर्याय की रचना होना, वह वीर्याचार का काम है। व्यवहार आदि पंच विकल्प है, वह व्यवहार ही नहीं, वह बन्ध का कारण है। वह आत्मा के स्वभाव का कारण है ही नहीं। आहाहा! ...

विद्वान पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिये... पंचम भाव को। पंचम भाव अर्थात् पंचम त्रिकाली भाव, उसका स्मरण अर्थात् एकाग्रता करता हैं तो उसकी मुक्ति होती है, मुक्ति होती है। पंचम भाव की एकाग्रता से मुक्ति होती है, ऐसा कहा न? ध्यान रखो। यह तो अलौकिक बात है, भाई! यह तो केवलज्ञानी की सभा है। यह तो सब केवलज्ञानी की बात है। समझ में आया? आहाहा! दूसरा श्लोक

सुकृत-मपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं
त्यजतु परम-तत्त्वाभ्यास-निष्णातचित्तः।
उभय-समय-सारं सार-तत्त्व-स्वरूपं,
भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः।।५९।।

समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है;... आहाहा!

श्रोता : समस्त शुभभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार समकित, व्यवहारचारित्र, व्यवहार ज्ञान, वह सब राग भोगियों के भोग का मूल है। आहाहा!

श्रोता : मुनि की बात चलती है न, दूसरे को बाधा नहीं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी की, समकिती की यहाँ बात चलती है। जो कुछ शुभभाव है, वह भोगियों के भोग का मूल है, आत्मा के भोग का वह मूल नहीं है। समझ में आया ? शुभभाव **भोगियों के भोग का मूल है;...** धर्मी के अनुभव के भोगनेवाले को वह शुभभाव नहीं होता। है तो अपना है, उससे लाभ नहीं मानते। आहाहा ! गजब बात, भाई ! फिर लोग सोनगढ़ के नाम से कहते हैं न कि भाई ! यह भगवान कहते हैं या सोनगढ़ कहता है ? इसमें कौन कहता है, सुन तो सही ! ऐई !

श्रोता : दूसरा अर्थ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा अर्थ क्या है, उसमें से निकाले न उल्टा...

श्रोता : भोगियों के...

पूज्य गुरुदेवश्री : भोगियों के भोग का मूल है...

श्रोता : समस्तं

पूज्य गुरुदेवश्री : समस्तं। शुभ चाहे जिस प्रकार का हो। चाहे महाव्रत के परिणाम हों, समझ में आया ? अट्ठाईस मूलगुण के हों, छह आवश्यक के हों, भगवान की भक्ति का हो, शास्त्र के वाँचन का शुभभाव हो, भगवान के नाम स्मरण का भाव हो, वह सब **भोगियों के भोग का मूल है;...** धर्मी का वह मूल नहीं है। आहाहा ! गजब काम, भाई !

श्रोता : ....माला जपे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जपे... जपे...। यह मैं पंचम भाव हूँ, पंचम भाव हूँ – ऐसा विकल्प करे तो उसमें क्या आया ? यह तो इसमें कहेंगे कि यह तो विकल्प है। आहाहा ! ध्रुव आत्मा है, शुद्ध है, अबद्ध है, निर्मल है, ध्रुव है—यह तो विकल्प है। यह सब भोगियों के भोग का मूल विकल्प है। त्रिकाल ध्रुव भगवान आत्मा में दृष्टि लगाकर एकाकार होना, वह मोक्ष का मूल है। आहाहा ! गजब बात, भाई ! अशुभभाव में था, तब वहाँ लगा था, चिपटा था। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति के शुभभाव में आया, वहाँ चिपटा। वह तो एक की एक दशा है। समझ में आया ? आहाहा !

समस्त सुकृत... समस्त सूकृत। कोई भी शुभभाव। चाहे तो दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, नामस्मरण का, णमो अरिहन्ताणं, पंच परमेष्ठी की यादगिरि ॐ... ॐ...

ॐ... (करे), वह विकल्प हैं। वह **भोगियों के भोग का मूल है;...** शोभालालजी! स्पष्ट किया। है उसे स्पष्ट किया। इसमें है या नहीं? यह पुस्तक इसीलिए तो सामने रखी है। इसीलिए रखी है।

श्रोता : निश्चय की बात है या व्यवहार की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की बात अर्थात् व्यवहार अर्थात् झूठा। झूठे की बात इसमें नहीं है। निश्चय अर्थात् यथार्थ सत्य। इस सत्य की बात है। वास्तव में यही वस्तु की मान्यता और जाननेयोग्य यही है। बाकी सब अंकरहित शून्य है। चाहे तो पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले, पूरे दिन भगवान की भक्ति णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... राम... राम... राम... राम... राम... राम... राम... राम में पश्चात् मराम हो जाए अन्दर। समझ में आया?

समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है; परम तत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनीश्वर... अर्थात् धर्मात्मा। परम तत्त्व भगवान आत्मा। परम तत्त्व। पर्याय अपरमतत्त्व है।

श्रोता : परम तत्त्व कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमतत्त्व ध्रुव। पंचम भाव परम तत्त्व। त्रिकाली पंचम भाव, वह परम तत्त्व। संवर, निर्जरा, मोक्ष भी परम तत्त्व नहीं है, वह अपरमतत्त्व है। पर्याय है।

गुण और भाव एक ही है। द्रव्य और गुण दोनों एक हैं। वह अभेद है। द्रव्य किसे कहना? गुण के पिण्ड को द्रव्य कहते हैं। गुण और द्रव्य भिन्न है?

इस भेद में अन्दर दूसरा भेद कहाँ है? जो गुण का पिण्ड है, वह द्रव्य है। द्रव्य का अर्थ क्या? द्रव्य कोई दूसरी चीज़ है? और दूसरी चीज़ कोई गुण है? अनन्त गुण का ध्रुव का पिण्ड, उसे द्रव्य कहते हैं। एकरूप कहना हो तो द्रव्य और अनन्त रूप कहना हो तो गुण। परन्तु यह गुण है और यह गुणी है, ऐसा भेद डाले तो भी विकल्प है। उसके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। अभेद की दृष्टि करने से ही सम्यग्दर्शन होता है। बाकी कोई तीन काल, तीन लोक में दूसरा कोई उसका कारण है नहीं। समझ में आया?

परम तत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले... विचिक्षण, निष्णान्त, पूर्ण। नहीं कहते कि इसमें निष्णान्त है। अमुक बात में निष्णान्त निपुण है। निष्णान्त है, परिपूर्ण है। उसी प्रकार भगवान आत्मा पंचम भाव को जानने में जो निष्णान्त है। **मुनिश्वर...** ऐसे मनवाले **भव से**

विमुक्त होने हेतु... चार गति के भव से मुक्ति के हेतु **उस समस्त शुभकर्म को छोड़ो...** पाठ में आया न ? '**भवविमुक्त्यै त्यजतु**' दृष्टि में से छोड़ो। छोड़ो अर्थात् दृष्टि के विषय में से छोड़ो। पुण्य-पाप, पुण्यादि के परिणाम दृष्टि का विषय नहीं है। उनके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

संसारतत्त्वस्वरूप ऐसे उभय समयसार को... ओहोहो ! त्रिकाली भगवान आत्मा और उसे कारणरूप भजो। उसकी निर्मल पर्याय को भजो **उभय समयसार...** उभय अर्थात् त्रिकाली ध्रुव समयसार। उसकी निर्मल एकाग्रता हुई, वह कारणसमयसार और पूर्ण केवलज्ञान हुआ, वह कार्यसमयसार। ध्रुव, वह परमकारणसमयसार है। गजब बात, भाई !

समयसार तीन (हुए)। इसमें यहाँ दो कहे, त्रिकाली ध्रुव को समयसार कहा और मोक्ष प्राप्त करने के कारणरूप जो नियमसमयसार-आत्मा की जो वीतरागी पर्याय, वह कारणसमयसार पर्यायरूप। ध्रुव त्रिकाली समयसार और कार्यरूप कार्यसमयसार सिद्धपद। परन्तु यहाँ दोनों को भजो। ध्रुव और पर्याय को भजो। भजो अर्थात् द्रव्य में एकाग्र होओ।

प्रगट होता है परन्तु वह द्रव्य का आश्रय करके। ध्रुव समयसार है, उसकी एकाग्रता होने से मोक्षमार्ग की पर्याय, वीतरागी पर्याय, वीतरागी समकित, वह कारणसमयसार है, उसे भजो। **इसमें क्या दोष है ?** ऐसा कहा, देखो ! '**कोऽत्र दोषो मुनीशः**' अरे ! यह छोड़ना और इसमें भजना, इसमें क्या दोष है, ऐसा कहते हैं। शुभपरिणाम छोड़ना, छोड़कर क्या करना ? परन्तु छोड़कर अन्दर एकाग्र होना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? भगवान के पास जाए तो भगवान ऐसा कहे, मेरे सामने देखना छोड़ दे, तेरे सामने—सम्मुख देख।

श्रोता : भारी फटकार...

पूज्य गुरुदेवश्री : खटका लगता है। फटकार यह कि तू हमारे सामने मत देख। तेरे पास पूर्ण है, उस ओर देख। ध्रुव की ओर दृष्टि दे, तुझे लाभ होगा। बाकी हमारे सन्मुख होने से भी लाभ नहीं होगा। आहाहा ! यह तो वीतराग कहते हैं, हों ! दूसरे तो ऐसा कहते हैं—हमें भजो, हमें आहार-पानी दो और लड्डू (दो), तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। ऐई ! यहाँ तो कहते हैं कि भावलिंगी मुनि को आहार-पानी दे तो उस विकल्प से पुण्य बँधेगा। संवर-निर्जरा जरा भी नहीं होगी। आहाहा ! समझ में आया ? श्वेताम्बर में भगवती में तो यह लेख है... साधु को निर्दोष आहार-पानी दे तो परित संसार करे। ऐसा मूल पाठ है। मूल कथन ही पूरे तत्त्व से विरुद्ध के हैं परन्तु अब क्या हो ?

तीन सूत्र। उनमें बड़ा विवाद उठा है। एक सूत्र ऐसा है कि मुनि को निर्दोष पानी दे और सदोष थोड़ा हो तो बहुत निर्जरा और थोड़ा पाप। यह श्वेताम्बर ने ले लिया। करो साधु के लिये इसमें थोड़ा पाप लगेगा, परन्तु निर्जरा बहुत है। धूल में भी नहीं। भगवती (सूत्र) में तीन सूत्र हैं। एक सूत्र में कथारूप के साधु को निर्दोष आहार-पानी देने से एकान्त निर्जरा होगी। किंचित् पाप... यह भगवतीसूत्र में है। और अस्वरूपी को देने से... यह तेरापन्थी ने पकड़ा। अरे रे!

यहाँ तो कहते हैं कि कथारूप के तीर्थंकर तीन लोक के नाथ हों, पहले गृहस्थाश्रम में हों। उन्हें भिक्षा दे तो शुभराग होगा। संसार परित-फरित परद्रव्य के आश्रय से नहीं होगा। समझ में आया? आहाहा! लो, ४१ गाथा हुई। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

६

श्री समयसार, गाथा - ६, प्रवचन - २०
दिनांक - ०५-१२-१९७१

समयसार छठवीं गाथा चलती है। पूरे समयसार की शुरुआत यहाँ से होती है। छठी गाथा। आचार्य महाराज कहते हैं जो यह आत्मा है, आत्मा—ज्ञायकभाव—जाननस्वभाववाला आत्मा, वह आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है अर्थात् उसमें चौदह गुणस्थान की दशा-भेद उसमें नहीं है। वह तो ज्ञायकभाव चैतन्यस्वभाव ऐसा का ऐसा अनादि से है। वह शुभ-अशुभभाव अपनी पर्याय के... कारण नहीं परन्तु वह शुभाशुभभाव कर्मबन्धन का कारण है। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, अशुभभाव—आर्तध्यान, रौद्रध्यान इत्यादि, ये सब भाव कर्म की उत्पत्ति में निमित्त है। उसरूप आत्मा हुआ ही नहीं। जिस भाव से कर्मबन्धन होता है, उस भावरूप तो आत्मा होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। अन्दर चैतन्यस्वरूप ज्ञान का पिण्ड प्रभु, वह पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव तू युक्त हुआ नहीं, होता नहीं। इसलिए यह त्रिकाली ज्ञायकभाव, वही आत्मा है और उसकी दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। धर्म की पहली दशा। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, यहाँ तो अपने तीसरे, चौथे पद का अधिकार चलता है। भगवान आत्मा ज्ञायकभाव, वह शुभ-अशुभभावरूप नहीं होता, इसलिए वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। ऐसे ज्ञायकभाव में पुण्य-पाप के भाव का निषेध आता है। समझ में आया? पुण्य-पाप के दोनों भाव, ज्ञायकभाव की दृष्टि होने पर इसमें शुभ-अशुभभाव नहीं आते, यह सिद्ध होता है। अब यहाँ चौथे पद का अधिकार चलता है। जाना कि यह आत्मा है, यह ज्ञायकभाव है, तो जानने से उसका नाम ज्ञायक पड़ा। ज्ञायक नाम पड़ा तो उसे परचीज़ ज्ञात होती है, ऐसा ज्ञात हुआ। तो कहते हैं कि वह क्या है? यह कहते हैं, देखो! है न?

क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ... क्या कहते हैं? अपने ज्ञान की वर्तमान पर्याय में जो ज्ञेय अर्थात् राग-द्वेष, पुण्य-पापभाव जो व्यवहार है, उसे जाननेरूप

ज्ञान अपनी पर्याय में, अस्तित्व में परिणमित हुआ है। द्रव्य तो शुभाशुभभावरूप परिणमा नहीं है परन्तु पर्याय भी शुभाशुभभावरूप परिणमति नहीं है, ऐसा कहते हैं। परन्तु शुभाशुभभाव जो हुआ है, उस प्रकार से ज्ञेयाकाररूप ज्ञान की परिणति अपने से होती है। आहाहा! समझ में आया? जैसे त्रिकाली ज्ञायकभाव शुभाशुभभावरूप नहीं हुआ, वैसे वर्तमान दशा ज्ञान की परिणति जो स्व-पर प्रकाशक की दशा होती है... समझ में आया? वह पुण्य-पाप के भाव, उनरूप भी पर्याय परिणमित नहीं होती। समझ में आया? बात तो सूक्ष्म है। आत्मदर्शन, जैनदर्शन कहो या आत्मदर्शन कहो, वह सूक्ष्म है।

कहते हैं कि भगवान! तेरी चीज़ जो है, वह तो ज्ञायकस्वरूप, ज्ञानस्वरूप विराजमान ध्रुव है। वह चीज़ शरीर और जड़रूप तो नहीं होगी, परन्तु वह चीज़ पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभावरूप भी नहीं होती। वह तो नहीं होती परन्तु वैसी दृष्टि करनेवाले को ऐसा ज्ञायकभाव... ऐसी दृष्टि करनेवाले को... शुभ-अशुभभाव का तो निषेध हो गया। ज्ञायकभाव शुभाशुभरूप नहीं होता तो दृष्टिवन्त (को) भी शुभाशुभभावरूप ज्ञायक नहीं हुआ, ऐसी दृष्टि हुई। समझ में आया? अब तुदपरान्त अभी तो पर्याय की बात चलती है। चन्दुभाई!

पर्याय में ज्ञान की दृष्टि हुई तो ज्ञायकभाव त्रिकाली शुद्ध चैतन्य है - ऐसी दृष्टि होने से जो ज्ञान का परिणमनरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भाव जो हुआ, उसमें शुभ-अशुभभाव भिन्न रह गये। उस शुभ-अशुभभाव को जाननेवाली पर्याय है परन्तु वह पर्याय शुभाशुभभावरूप होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? पर्याय शुभाशुभरूप नहीं हुई परन्तु शुभाशुभभाव का ज्ञान करती है, वह ज्ञान का स्वभाव है, परन्तु वह शुभाशुभभाव है तो यहाँ ज्ञानाकार की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐई! सुन्दरलालजी! समझ में आया? यह समझना पड़ेगा। बाहर की धूल में कुछ नहीं है।

चैतन्यबिम्ब प्रभु का भान हुआ, उसे पकड़कर पर्याय हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान जो धर्म की प्रथम दशा (हुई) तो उसकी दशा में जो ज्ञान परिणमा, वह ज्ञान की पर्याय... धर्मी की दृष्टि में तो द्रव्य आया है। समझ में आया? उसे दृष्टि में द्रव्य आया है, तो ज्ञायकभाव जैसे शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं तो दृष्टिवन्त भी शुभाशुभरूप पर्याय में नहीं होता। ...भाई! आहाहा!

इसका अस्तित्व, मौजूदगी। ज्ञायकभाव का भान हुआ... ...ज्ञान हुआ, पर का लक्ष्य छोड़कर अपना द्रव्य चैतन्य भगवान, उसकी उपासना करने से जो पर्याय प्रगट हुई... उपासना करने पर यह द्रव्य शुद्ध है, यह तो ठीक, वह तो ज्ञायक में गया, अब इस पर्याय में

शुभराग हुआ, उसे ज्ञान की पर्याय जानती है। जैसा दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का राग आया, जैसा आया, उसे ज्ञानाकार—जैसा ज्ञेय है, वैसा ज्ञानाकार परिणमता है, परन्तु वह ज्ञेय है, इसलिए ज्ञानाकार की परिणति-पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! जीव अधिकार है न! अस्तित्व सिद्ध करते हैं।

ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायकरूप से... ज्ञेयाकार अवस्था में अर्थात्... ? कहो, समझ में आया? समझाणु कांई, हमारी गुजराती भाषा है। समझ में आता है? यह हिन्दी भाषा है। कहते हैं, सूक्ष्म बात है, भाई! ....और यह तो ...वाला है। तो भाषा ...भाव ... नहीं। तो कहते हैं कि ...भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति प्रभु, वह चैतन्यस्वभाव, वह वस्तु; ये पुण्य-पाप अचेतन, जिनमें ज्ञान का अंश नहीं, इन शुभाशुभभाव में ज्ञान का अंश नहीं है, निश्चय से वे तो अचेतन-जड़ हैं। तो चैतन्यस्वभाव उन जड़रूप कैसे हो? ऐसा ज्ञान शुभाशुभरूप हुआ नहीं परन्तु उन्हें जाननेवाला, उन्हें जाननेवाला, उस समय में जो जानने की पर्याय हुई, उसमें जो रागादि ज्ञात होते हैं, उन्हें जानती है और ज्ञेयाकाररूप ज्ञान हुआ, तो वह ज्ञेय है तो ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? यह गाथा तो... देखो न! रतिभाई और सब अहमदाबाद से आये हैं न? इन लोगों ने सबको कहा है, हों! कि यह चन्दुभाई बोले, रतिभाई बोले, रतिभाई बोले और बाबूभाई बोले। सब.. है कहा। कोई-कोई और कहीं... ऐसा नहीं। ऐई! चन्दुभाई!

श्रोता : सच्ची बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है? परन्तु उसमें सच्ची बात कहाँ है? ऐई! अहमदाबादवाले!

इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! ऐसा जिसे समझना है, उसे ऐसे साधारण... मान-अपमान का स्वाद नहीं हो सकता। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा तीर्थंकरदेव ने कहा, वह आत्मा, हों! आगे आयेगा न आगे। सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा का पूरा रूप हो, उसे जानना। आता है न आगे? श्रद्धा। अर्थात् अकेली आत्मा की श्रद्धा, ऐसा नहीं।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा नहीं। सर्वज्ञ ने कहा वह। है न इसमें? किस गाथा में है? दूसरे ऐसा कहते हैं ऐसा मानेंगे तो ऐसा नहीं है। सर्वज्ञ ने कहा वह। अभी फेरफार... किस गाथा में? २२ गाथा। इसमें कहाँ आता है? २३ गाथा? २४। यह तो हिन्दी आया न, इसलिए इसमें

भूल गये। आत्मा चैतन्य है, मात्र इतना अनुभव में आवे तो इतनी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है या नहीं? यह तो हिन्दी है, इसलिए पृष्ठ बदल जाता है... कहते हैं कि यदि इतनी श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा जाए तो सबको सम्यक्त्व सिद्ध होगा। आहाहा! वे कहते हैं न, सब सम्यग्दृष्टि हैं। अर्थात् सर्वज्ञ की वाणी में, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर केवलज्ञानी परमात्मा की वाणी है। आत्मा की स्वरूप कहा है, वैसा श्रद्धान होने से भी निश्चय सम्यक्त्व होता है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा ज्ञायक कहा है। अकेला ज्ञायकभाव। वापस परिपूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड। असंख्यप्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड, ऐसा आत्मा। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हो सकती। समझ में आया? एक गुण नहीं परन्तु अनन्त गुण उसमें हैं और असंख्य प्रदेश भगवान आत्मा है, ऐसा सर्वज्ञ ने देखा है। ऐसा त्रिकाली ज्ञायकभाव, उस पर दृष्टि करने से, दृष्टि द्रव्य में पसरने से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, उसका नाम धर्म कहा जाता है और जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान व्यवहार को जानता है, तो व्यवहार जैसा है, वैसा ज्ञानाकार ज्ञान हुआ, तो व्यवहार से हुआ अथवा व्यवहार की अस्ति है, तो ज्ञानाकार हुआ, ऐसा नहीं है। द्रव्य भी स्वयं स्वतन्त्र है, और पर्याय भी स्वयं से स्वतन्त्र है। छठवीं गाथा सूक्ष्म है। समझ में आया?

कहते हैं **ज्ञेयाकार अवस्था में...** अर्थात् जो रागादि, दया, दान का विकल्प जो है, उसका ज्ञान किया, द्रव्य का ज्ञान किया। द्रव्य का तो ज्ञान किया परन्तु ज्ञान की पर्याय में राग का ज्ञान हुआ। तो कहते हैं कि **ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** उसे भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ है। मैं जाननेवाला हूँ, ऐसा ज्ञात हुआ है। मैं राग को जाननेवाला हूँ, ऐसा नहीं। समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म है, लोगों को मिला नहीं, इसलिए लोगों को ऐसा लगता है कि (मार्ग नया निकाला है)। **स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी...** क्या कहते हैं? **ज्ञेयाकार अवस्था में...** है तो ज्ञान की अवस्था। पुण्य-पाप के भाव, ज्ञानाकार हुआ, वह ज्ञेयाकार हुआ न? तो ज्ञेयाकार की अवस्था में भी ज्ञान की अवस्था, उस अवस्था में भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ। वह तो मैं जाननेवाला हूँ, ऐसा जानने में आया? मैं रागरूप हूँ और राग से जाननेवाला हूँ, ऐसा हुआ नहीं। चन्दुभाई! ऐई! कल्याणभाई! ऐसा मार्ग है।

कहते हैं कि व्यवहार के विकल्प जो उठते हैं, उन्हें भी जानना, ऐसा नहीं है। वह तो

है, वैसा ही ज्ञान की पर्याय का परिणमन अपने अस्तित्व से अपने में अपने कारण से होता है। अब ऐसी चीज़ को इसे मानने, स्वीकार करना तो, उसे मान-अपमान का सवाल नहीं रहता। कहो, समझ में आया? आहाहा! छोटाभाई! यह आये, तब बात आवे न? आहाहा!

कहते हैं कि इस ज्ञेयाकार की अवस्था में भी है तो अवस्था अपनी ज्ञानाकार की। समझ में आया? अपनी ज्ञानपर्याय में ज्ञेय-द्रव्य का तो ज्ञान हुआ परन्तु वह राग हुआ, उसका भी ज्ञान हुआ। तो कहते हैं, ज्ञेयाकार की दशा में ज्ञायकरूप से जानने में आया। मैं जाननेवाला, ऐसा प्रसिद्ध हुआ है। मैं रागरूप हूँ और राग को जाननेवाला हूँ, ऐसा प्रसिद्ध हुआ है? मैं जाननेवाला हूँ, ऐसा प्रसिद्ध हुआ है। समझ में आया?

स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी, दीपक की भाँति... दीपक, दीपक। दीपक कहते हैं न? हिन्दी में क्या कहते हैं? दीपक। हिन्दी में पाठ है। **दीपक की भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व (एकता) होने से ज्ञायक ही है...** क्या कहते हैं? दीपक की भाँति आत्मा को कर्ता-कर्म का अनन्यपना होने से अर्थात् आत्मा ज्ञायक, वह कर्ता है और राग की पर्याय जो अपने में ज्ञात हुई, वह अपना कर्म है, वह अपना कार्य है। वह राग अपना कार्य है और राग है तो ज्ञान की पर्याय हुई, वह उसका कार्य है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? राग तो पृथक् है। अन्यत्व कर्ताकर्म है।

ज्ञायक भगवान आत्मा ज्ञात हुआ, उसी समय पर्याय में राग भी ज्ञात हुआ, वह तो ज्ञायकरूप से प्रसिद्ध पर्याय हुई है, रागरूप से और राग के कारण से प्रसिद्ध हुई है, ऐसा है नहीं। भारी सूक्ष्म, भाई! अब इसमें निवृत्ति मिलती नहीं। शास्त्र पढ़ो, वाँचन करो, और यह ज्ञान हो गया। यह तो कहते हैं कि इस शास्त्र को पढ़ने के काल में भी... आहाहा! वह ज्ञान की पर्याय शास्त्र जैसा सामने है-ज्ञेय, उस प्रकार से यहाँ विकल्प उठा, उसके आकार से यहाँ ज्ञान परिणमित हुआ। तब उस ज्ञान का परिणमन, वह शास्त्र है, वैसा हुआ—ऐसा नहीं है। ऐसा शास्त्र है, इसलिए ज्ञान की पर्याय हुई, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है तो ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा है नहीं। सत् का स्वरूप ऐसा है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! जैनदर्शन अर्थात् वस्तुदर्शन, विश्वदर्शन, आत्मदर्शन।

कहते हैं कि **दीपक की भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व...** कर्ता भिन्न और कर्म भिन्न, ऐसा नहीं होता। क्या कहा? **स्वयं जाननेवाला है, इसलिए स्वयं कर्ता...** ज्ञान की पर्याय में राग को और अपने को जाननेवाला स्वयं है। तो राग को जानने में स्वयं... आहाहा! गजब बात

है न! शास्त्र तो ज्ञान की पर्याय में शास्त्र जानने में आया, वैसा ज्ञेय है, वैसी ज्ञायक की पर्याय स्वयं से हुई तो शास्त्र से हुई, शास्त्र की अस्ति है तो ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है परन्तु उस समय भी ज्ञायक की प्रसिद्धि है। मैंने जाना, ऐसी पर्याय की प्रसिद्धि है। जाननेवाले की पर्याय की प्रसिद्धि है। ज्ञेय की-शास्त्र की प्रसिद्धि नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, **स्वयं कर्ता...** आहाहा! अलग ही टीका है। दिगम्बर जैन सन्त वस्तु की स्थिति का अस्तित्व धर्मधुरंधर की तरह टिका रखा है। ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं है नहीं। ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया? ओहोहो! कहते हैं कि भगवान आत्मा तो ज्ञायक है ही परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान में उस ज्ञायक का भान हुआ तो वह पर्याय में स्वयं तो ज्ञात हुआ ही, परन्तु साथ में व्यवहाररत्नत्रय के रागादि हुए और शरीर की क्रिया हुई या शास्त्र के शब्द कान में पड़े तो उस ज्ञेयाकार ज्ञान की अवस्था स्वयं से हुई है, किसी शब्द से या राग से ज्ञान की पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। वहाँ ज्ञान की पर्याय की प्रसिद्धि है, वहाँ शास्त्र की और राग की प्रसिद्धि नहीं है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! जन्म-मरण का अन्त... रास्ता तो यह है। सत् से असत् टलता है। कहीं असत् से असत् नहीं टलता। नहीं टलता समझते हो... असत् से असत् का नाश नहीं होता। ओहोहो!

भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप में शुभाशुभ नहीं तो शुभाशुभ का परिणमन ज्ञायकभाव से नहीं होता। वह सत् त्रिकाल है। अब पर्याय भी सत् है। स्व को और राग को जानने की पर्याय हुई, तो भी कहते हैं कि जानने की जो पर्याय हुई, वह जानने की पर्याय ज्ञायकपने को प्रसिद्ध करती है। यह शास्त्र ऐसा है और राग ऐसा है, ऐसा प्रसिद्ध करती है-ऐसा नहीं है। आहाहा! निमित्त की प्रसिद्धि करती है, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! नैमित्तिक जो अपनी पर्याय ज्ञानाकाररूप हुई, उसकी प्रसिद्धि है। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं? ऐई! जयन्तीभाई! ...नहीं तो वह... आहाहा! ऐसा है, भगवान!

चैतन्य अस्ति अर्थात् विद्यमानरूप प्रभु! इसका जहाँ भान हुआ तो उसकी पर्याय की मौजूदगी का अस्तित्व, वह शास्त्र को सुनने से हुआ या राग से हुआ, ऐसा नहीं है और दूसरी बात, वह अपना आत्मा ज्ञायक होने से कर्ता है। क्योंकि कर्ता स्वयं स्वतन्त्र परिणमित हो, उसे कर्ता कहते हैं, तो आत्मा कर्ता होकर राग और निमित्तरूप से अपेक्षा करके परिणमन करता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? शास्त्र का निमित्त है और राग है तो उसकी अपेक्षा से ज्ञान की पर्याय होती है और यह निमित्त कौन है? - ऐसी प्रसिद्धि होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अकेले लॉजिक-न्याय से सिद्ध करते हैं। लोगों को अभ्यास नहीं होता। बाहर की

प्रवृत्ति में जहाँ-तहाँ रुक गये हैं। यह यात्रा की, पूजा की, दया पालन की, व्रत किये, तप किये, यह हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। समझ में आया? उस समय जो राग हुआ, तो ज्ञायक का जहाँ भान हुआ, तो ज्ञायक की वर्तमान पर्याय में उस राग सम्बन्धी अपना ज्ञानाकाररूप परिणमन हुआ, उसकी प्रसिद्धि है, राग की प्रसिद्धि नहीं। समझ में आया? ऐई! '...'! मार्ग तो ऐसा है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर सर्वज्ञदेव परमात्मा की दिव्यध्वनि में यह आया है। यह मार्ग है। बालक मानो, वृद्ध मानो, स्त्री मानो, पुरुष मानो, देव माने, नारकी मानो (परन्तु) मार्ग यह है।

कहते हैं कि **स्वयं जाननेवाला...** है। वह राग को भी पर की अपेक्षा बिना स्वयं जाननेवाला है। **इसलिए स्वयं कर्ता...** वह जानने की पर्याय स्वयं से हुई है, उसका कर्ता ज्ञायक है। उसका कर्ता यह शास्त्र और राग है, वह कर्ता और ज्ञान की स्व-परप्रकाशक पर्याय उसका कर्म, उसका कार्य—ऐसा है नहीं। समझ में आया? **स्वयं जाननेवाला, इसलिए स्वयं कर्ता और अपने को जाना...** यह क्या कहा? इस राग को और निमित्त को नहीं। उस समय में भी स्व-परप्रकाशक जो अपनी पर्याय है, उसे जाना है। राग-व्यवहार को जाना और पर को जाना, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! सद्भूतउपचार प्रमाण का विषय जो है न, उसे उड़ाते हैं। सद्भूत नहीं। सद्भूत अपने में है। परन्तु पर को जानता है, ऐसा नहीं है, वह तो अपने को जाना, अपने को जाना। आहाहा! वह ज्ञान की पर्याय स्वयं से हुई और जैसे रागादि व्यवहार है, उस प्रकार से ज्ञान की पर्याय का परिणमन अपनी दशा में हुआ, वह **स्वयं ही कर्म...** है। वह अपने को जाना। उस पर्याय को जाना, वह कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य। समझ में आया?

फिर से, भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप त्रिकाली अस्ति अविनाशी ध्रुव, उसका ज्ञान हुआ, उस ओर का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान की पर्याय ने स्व को भी जाना और उस पर्याय में व्यवहार का भी ज्ञान हुअ। वह व्यवहार का ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो अपनी पर्याय का ज्ञान हुआ है। समझ में आया? शशीभाई! ऐसी बात है। **स्वयं जाननेवाला है...** व्यवहार को नहीं, निमित्त को नहीं, उस सम्बन्धी की पर्याय... हुई, वह स्वयं से हुई है। ज्ञायक को भी जाना और अपनी ज्ञान की पर्याय को भी जाना। अपने को जाना, राग जानने में आया, ऐसा है नहीं। आहाहा! धीरज की बातें हैं, भाई! चैतन्यमूर्ति गहरा पाताल कुँआ है। उस पर दृष्टि पड़ने से जो सम्यग्दर्शन ज्ञान हुए, वही धर्म की शुरुआत हुई। इसके बिना धर्म नहीं होता। आहाहा! तब कहे, यह व्यवहार धर्म है न? निश्चयवाले को (यह व्यवहार धर्म है)। अकेले अज्ञानी

को तो व्यवहार है नहीं। क्योंकि नय प्रगट हुए बिना व्यवहार किसे कहना? समझ में आया? निश्चय स्वभाव क्या है, यह ज्ञात हुए बिना व्यवहारनय कहना किसे? परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, परिणाम जो व्यवहार होता है, वह ज्ञात होता है, ऐसा भी नहीं है। उस समय में अपनी ज्ञान की पर्याय प्रसिद्ध हुई है। कहो, समझ में आया? ऐई! हरिभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! यह पैसा-फैसा और... धूल में नहीं।

अरे रे! राग को जानना, वह भी पोषाता नहीं। पालवतुं का अर्थ क्या?... राग को जानता है न? फिर कहते हैं, नहीं। अपनी पर्याय को जानता है, ऐई! आगे बोल में आया न? अरे! भगवान!... ऐई! आहाहा!

भगवान आत्मा, कहते हैं कि अपना ज्ञायकस्वरूप भगवान अस्ति, सत्ता महाप्रभु, पूर्ण जिसका रूप, उसकी दृष्टि हुई, और उसे ज्ञेय बनाया तो पर्याय में स्व-परप्रकाशक की पर्याय उत्पन्न हुई। अकेली स्वप्रकाशक की भी अकेली उत्पन्न नहीं हुई। क्योंकि ज्ञान का स्वभाव ही स्व-परप्रकाशक है। स्व-परप्रकाशक ज्ञान का स्वतः स्वभाव है, तो जब ज्ञायक जानने आया, तब राग भी जानने में आया, ऐसा भी कहना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस समय में अपने ज्ञान की पर्याय में अपने को, द्रव्य को और अपनी पर्याय को ज्ञानी जानता है। समझ में आया? ऐई! पण्डितजी! ऊँची गाथा है न! जैनदर्शन का प्राण है। यह ११वीं गाथा में आयेगा। इतना स्पष्टीकरण लिया।...

समाज को न जँचे, इसलिए समाज को... रखने के लिये, विपरीत अर्थ करना, यह कहीं यथार्थ है? समाज की सुगठित यथार्थ से रहती हो तो रहो, अयथार्थ से समाज की सुगठित रखने जाएगा तो तेरा अयथार्थ हो जाएगा। समाज कैसे अनुकूल रहे? और सब समाज की कैसे प्रसिद्धि हो? कि ऐसा मार्ग है, उसे रुचे, ऐसी बात यहाँ नहीं है।

वैद्य। जिसे रोग हुआ, तो वैद्य ऐसा नहीं बँधा है कि तुझे दवा... ...भाई! यह तेरा रोग मिटे ऐसी दवा दे। ... बतावे? ... क्या कहलाता है वह? ... चीज़ है। कड़वा, बहुत कड़वा। ... उसे बतावे कि तुझे अच्छा लगे-ठीक लगे ऐसी दवा बताऊँ। ऐसा है? तेरा रोग मिटे, ऐसा बताऊँ। कड़वी लगे तो भी उस कड़वी से... टूटेगा। मीठे से मर जाएगा। समझ में आया? यह आता है न? इसे बहुत बुखार आया था। तो सब चतुर व्यक्ति बोले। गृहस्थ व्यक्ति था, इसलिए कि... कोई कहे ऐसा करो... कोई कहे नीम का पानी दो, कोई कहे चिरायता दो, कोई ऐसा कहे, कोई ऐसा कहे। और एक किसान का वृद्ध निकला, वह कहे इसे शक्कर का

हलुवा दो, तो वह बीमार मनुष्य कहे, उसे भावे। ...दूसरा कहे, तेरे मरण की बात करता है। सात डिग्री के बुखार में हलुवा खायेगा तो मर जाएगा। तुझे मीठा लगे... अच्छा लगता है। मर जाएगा। यह कहे कड़वा मिटता है। परन्तु कड़वे में... तोड़ने का बताते हैं। ...सब कड़ा चिरायता... यह क्या कहते हैं ? यह कहते हैं मर जाने का, सुन न अब। तुझे मीठा लगता है परन्तु...

इसी प्रकार अज्ञानी ने व्यवहार की क्रिया करने से धर्म होता है, निमित्त से तेरे कार्य होते हैं, यह बात इसे अच्छी लगे, यह बुखार में पड़े हुए को हलुवा खानेवाले की तरह (बात है)। उसे कहा कि निमित्त से ज्ञान नहीं होता और राग से ज्ञान नहीं होता और वह ज्ञान की पर्याय स्व को जानते हुए पर को जाननेरूप स्वत: परिणमित होती है। आहाहा! यह तो सब लोप हो गया। यह तो कड़वी दवा है। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, **स्वयं जाननेवाला...** अब इसका अर्थ आया। **इसलिए स्वयं कर्ता और अपने को जाना...** अपनी ज्ञान की पर्याय में ज्ञान का जो परिणमन हुआ, उसका कर्ता तो आत्मा है। क्या उसका कर्ता वह राग और व्यवहार है ? और कर्ता की व्याख्या ? स्वतन्त्ररूप से परिणमन का कर्ता होता है। किसी की अपेक्षा कर्ता को नहीं होती। यह व्यवहार है, इसलिए जाना, ऐसी अपेक्षा जानने की पर्याय में कर्ता को नहीं होती। समझ में आया ? भाई! ऐसा भारी सूक्ष्म! वे कहें, व्रत करो, अपवास करो, ऐ..! चिमनभाई! मन्दिर की भक्ति करो, दो-पाँच-दस लाख का एक मन्दिर बना दे, कल्याण होगा। धूल भी नहीं होगा, सुन न अब। मन्दिर कौन बनावे ? कौन बनावे ? वह तो जड़ की पर्याय है। इसे दूसरा कौन बनावे ? पैसे दिये इसलिए बना है ?

यह मानता है कि मैंने यह पैसे दिये। पैसे मैंने दिये, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। क्या कहते हैं, समझ में आया ? पैसा अजीव है, वे मेरे थे, वे मैंने दिये... मूढ़ है। ऐ..! ...भाई! ऐसी बात, भाई! ...ऐसी चीज़ है। न्याय से बैठ सके, ऐसी चीज़ है। सर्वज्ञ ने सत्य का ऐसा ढ़िंढ़ोरा पीटा है, तो ऐसा तू स्वयं है। समझ में आया ?

कहते हैं **स्वयं कर्ता और अपने को जाना...** व्यवहार को नहीं, निमित्त को नहीं। ओहोहो! उस समय की ज्ञान की पर्याय में स्वयं को जाना है। वह पर्याय अपनी है। वह पर्याय पर की नहीं। पर को जाना नहीं, अपनी पर्याय को जाना है। आहाहा! कहो, भीखाभाई! ऐसी बात है। .... बराबर .... ऐसा कहे। आहाहा! वाह! गजब काम किया है न! जिसके सन्मुख

जैसा राग आया और जैसा देव-गुरु-शास्त्र... मिले वैसा ही ज्ञान हुआ। वैसा ही ज्ञान हुआ तो निमित्त के कुछ प्रतिशत है या नहीं? निमित्त का कुछ भाग है या नहीं उसमें? प्रभाव। आहाहा! प्रभाव किसका पड़ा? निमित्त की पर्याय का प्रभाव पड़ा या अपनी पर्याय का प्रभाव अपने में हुआ? आहाहा! यहाँ तो निमित्त-उपादान और निश्चय-व्यवहार सबका स्पष्टीकरण हो जाता है। समझ में आया?

ऐसे कैसे पर्याय हुई? ऐसा ज्ञान कैसे हुआ? ऐसा कैसे हुआ क्या? इसके स्व-परप्रकाशक की पर्याय का स्वकाल ऐसा है। समझ में आया? अब ऐसे विचार और मन्थन में रुके, उसके बदले दूसरे में रुक जाए, उसे यह कब समझ में आये? समझ में आया? साधारण के लिये दूसरे में रुक जाए, (उसमें) समय चला जाता है। आहाहा!

स्वयं ही... ऐसा शब्द पड़ा है, देखो! यह एकान्त हो जाता है। एकान्त ही है। स्वद्रव्य के आश्रय से अपने आत्मा का ज्ञान हुआ, तब वह ज्ञान की पर्याय राग को जानती है, ऐसी पर्याय स्वयं से परिणमित हुई है और अपने को जानती है। समझ में आया? यह अपना कार्य है। अपना ही कार्य है। 'ही' कहने से तो एकान्त हो जाएगा। थोड़ा रागादि का व्यवहार है तो उसके ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा बिल्कुल नहीं है। एकान्त कहते हैं कि अपनी पर्याय अपने से हुई है।...होता है न? यह तो व्यवहार का कथन है। दो कहते ही व्यवहार हो गया। समझ में आया? आहाहा!

अपने आत्मा का सम्यग्दर्शन त्रिकाली द्रव्य का हुआ, उस समय में जो ज्ञान की पर्याय की स्वयं से हुई, द्रव्य के आश्रय से हुई, उस पर्याय में राग और व्यवहार जानने में आया? तो कहते हैं, नहीं। वह तो अपनी पर्याय ज्ञात हुई है। समझ में आया? और वह तो अपनी पर्याय स्वयं अपना कार्य है। स्वयं अपना उस समय का कार्य है। उसके कार्य में किसी की अपेक्षा नहीं है। (यदि होवे तो) स्वयंसिद्ध कर्म और कर्ता सिद्ध नहीं होते तथा कर्ता और कर्म अनन्य होते हैं, एक होते हैं। कर्ता दूसरा और कर्म भिन्न हो, ऐसी चीज़ है नहीं। समझ में आया? अपनी ज्ञान की पर्याय में कर्ता स्वयं और कर्म उसका रागादि उसका कार्य, ऐसा भी नहीं है और राग कर्ता-निमित्त कर्ता और वह ज्ञान की पर्याय उसका कर्म अर्थात् कार्य, ऐसा भी नहीं है। क्यों शान्तिभाई? ऐसा मार्ग है। आहाहा!

एक भी बात यथार्थरूप से सत्य है, ऐसा समझे तो '**एगं जाणहि सव्वहि जाणहिं**' सबका स्पष्टीकरण इसमें आ जाता है। आहाहा! बहुत...! स्पष्टीकरण! गजब! अमृतचन्द्राचार्य,

कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा काम किया है। दिगम्बर सन्त वनवासी भगवान के पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में, दो हजार वर्ष पहले भगवान के पास गये थे। धर्मात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। श्री सीमन्धर भगवान तीर्थंकरदेव, पाँच सौ धनुष ऊँचा (शरीर), करोड़पूर्व आयु की स्थिति, अभी विराजमान हैं। दो हजार वर्ष पहले भगवान के पास गये थे। वहाँ से आकर यह बनाया। यह मैं भगवान के पास जाकर माल लाया हूँ। पिता परदेश में जाता है न? पाँच-छह दिन जाए। (बालक कहे), बापू! मेरे लिये क्या लाये? मेरे लिये क्या लाये हो? बेटा! तेरे लिये... लाया।

इसी प्रकार यह भगवान के पास गये और आये। भगवान ने ऐसा कहा, ऐसा माल मैं लाया हूँ, भाई! समझ में आया? आहाहा! यह माल मैं समयसार में भेंट देता हूँ। आता है, आहाहा! कहो, ...भाई! यह सब एक दिन में समझ में आये, ऐसा नहीं है। यहाँ कभी दो-चार दिन रह जाए और फिर बाहर में... इसका माप हो? ...किया है? कि इतने घण्टे... जाये ऐसा। किया है इसमें? कि इतने रुपये होने के बाद... आना? अवधि नहीं कि बाहर गए इसलिए... इतने... ऐसे होने के बाद घर में आना है। इसी प्रकार आत्मा को समझने के लिये कितना काल चाहिए? कि काल की अवधि नहीं डाली जाती। अन्तर्मुहूर्त में भी समझ में आता है और छह महीने में भी समझ में आता है। आता है न छह महीने का? आता है न? छह महीने में तो अवश्य समझ में आता है। धारावाही समझने में लोक तो (आता है)।

कहते हैं **(जैसे दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक...)** क्या कहते हैं? दीपक है न, दीपक? वह घट-पटादि को प्रकाशित करता है तो प्रकाश की अवस्था दीपक में है। वह दीपक ही है। वह कहीं घट-पट की अवस्था नहीं है। क्या कहा समझ में आया? दीपक है। यहाँ घड़ी दिखती है। उस देखने की अवस्था में भी प्रकाश अपना है, वह उसका प्रकाश नहीं और उसके कारण प्रकाश नहीं। अपने अस्तित्व में दीपक का प्रकाश अपने अस्तित्व में है।

दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है... दीपक प्रकाशित होता है। ...है? ...प्रकाश ... हो जाता है? इसी प्रकार आत्मा राग को प्रकाशित करे, शरीर को प्रकाशित करे, इसीलिए रागरूप हो जाता है? वह तो अपनी पर्यायरूप रहकर प्रकाशित करता है। ज्ञान के प्रकाश में रहकर प्रकाशित करता है। कार्य सूक्ष्म आया। ...भाई! तुम्हारे कलकत्ता में तो ऐसा कुछ मिले, ऐसा नहीं है। सब हैरान होने के रास्ते हैं। यह पैसा आया, धूल आयी, इज्जत बढ़ी, लाख खर्च किये, दो लाख खर्च किये। मर गया ऐसा का ऐसा

करके। तेरी पूँजी, उसमें तू क्या लाया है ? तेरी पूँजी में से कितना बाहर लाया ? यह कहता है कि अपना ज्ञान भगवान आत्मा, उसका आश्रय करने से जो ज्ञान पूँजी बाहर आयी, वह स्वयं से आयी है। राग का ज्ञान हुआ, तो राग से पूँजी बाहर आयी है, ऐसा नहीं है। भगवान कर्ता, घट-पट कर्ता और दीपक का प्रकाश उसका कार्य, (ऐसा नहीं है)। घट-पट... घट-पटादि वे कर्ता, रचनेवाले और प्रकाश की पर्याय को रचनेवाले हैं ? प्रकाश की पर्याय का रचनेवाला तो दीपक है, यह घट-पट नहीं।

प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है और अपने को-अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है, अन्य कुछ नहीं; उसी प्रकार ज्ञायक का समझना चाहिए। लो। ज्ञायक भगवान आत्मा व्यवहार और निमित्त को प्रकाशित करे तो भी आत्मा है। अपने को प्रकाशित करे तो भी आत्मा है। किसी बाहर से आता नहीं और बाहर की चीज़रूप हो जाता नहीं। आहाहा! एक घण्टे में कितना याद रहे ? याद रखने का कहाँ है ? यहाँ तो अस्तित्व इतना है, इतनी बात है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा भगवान का वीतराग का धर्म महादुर्लभ है, महा स्वतन्त्र है। वस्तु की सिद्धि की प्रसिद्धि की है। पर को जानने में अपनी पर्याय की प्रसिद्धि है। वह कहीं... निमित्त को प्रसिद्ध करते हैं, ऐसा नहीं आया। निमित्त सम्बन्धी अपना ज्ञान, अपने ज्ञान की प्रसिद्धि करता है। अब उसे जो स्व-पर का ज्ञान हुआ, वह अपने ज्ञान की प्रसिद्धि है, पर की प्रसिद्धि नहीं। ...स्वतन्त्रता। ऐसी स्वतन्त्रता ....यह सोनगढ़वाले स्वतन्त्रपर्याय को... कहते हैं। सोनगढ़वाले या यह भगवान कहते हैं ? आहाहा! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। सोनगढ़वाले सब स्वतन्त्र कहते हैं, ऐसा है नहीं। कर्म है तो विकार होता है। विकार है तो शुभभाव होता है तो... शुभभाव होता है। कर्म है तो शुभभाव होता है। शुभभाव होता है तो शुद्धभाव होता है - तीनों बातें मिथ्या है। आहाहा! भाई! यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ में आये, ऐसी बात नहीं है। क्यों ? ...भाई! इसमें पक्ष की बात कहाँ है ? यह तो वस्तु की स्थिति है। आत्मधर्म। आत्मधर्म। ...धर्मस्वभाव ज्ञायकभाव उस ज्ञायकभाव को पर्याय में जानना, वह पर्याय का धर्म है। ज्ञान का धर्म। और पर्याय में स्व-परप्रकाशक ज्ञानपर्याय हुई, वह अपनी पर्याय की स्वयं की प्रसिद्धि है। केवलज्ञान में लोकालोक का ज्ञान हुआ, वह पूर्ण ज्ञान की पर्याय की प्रसिद्धि है, लोकालोक की प्रसिद्धि नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

उसी प्रकार ज्ञायक का समझना चाहिए। अर्थात् ज्ञायक भगवान आत्मा अपने को और पर को जानना हुआ, वह स्वयं अपनी पर्याय का कर्ता है और वह ज्ञान की पर्याय हुई,

वह अपना कार्य है। कर्ताकर्म अनन्य अर्थात् एक में साथ अभेद होते हैं। ...समझ में आया? आत्मा, अपनी ज्ञानसम्पदा और पूर्ण सम्पदा। ऐसी दृष्टि हुई, उस दृष्टि के काल में भी अपने और पर के ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व हुआ, वह अस्तित्व उसका कार्य है और आत्मा उसका कर्ता है। राग और निमित्त, वह ज्ञान की पर्याय का कर्ता है और पर्याय कार्य है, वस्तु की स्थिति में ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया? लो! यह तीन-चार लाईन में एक घण्टा हुआ। ....भाई! ऐसा धर्म है। गजब काम, भाई! ...पर की दया पालना, जाओ धर्म हो गया। भगवान की भक्ति करना। उसमें कुछ समझने का है? आहाहा!

जाननस्वभाव... कोई आया नहीं। राग और पर... ये दो आये। जानन आत्मा क्या है, उसका अस्तित्व तो आया नहीं। उसके अस्तित्व की प्रसिद्धि क्या? समझ में आया? एक गाथा में तो निमित्त-उपादान... और क्रमबद्ध, परन्तु उसी समय में वह ज्ञान की पर्याय स्वयं से और... परिणमन का कार्य स्वयं से है। अपना कर्म है और अपना आत्मा कर्ता है। दीपक की भाँति। यह विशेष भावार्थ में... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

७

श्री समयसार, गाथा - ७, प्रवचन - १५
दिनांक - २२-०७-१९६१

समयसार की सातवीं गाथा चलती है। शिष्य ने प्रश्न किया। भगवान! यह आत्मा का शुद्धस्वभाव अथवा आत्मा शुद्ध है, वह क्या है? और वह कैसे ज्ञात हो? और उसे जानने से आत्मा की प्राप्ति होती है। ऐसा शिष्य का अन्तर में बन्ध से मुक्त होने का और सिद्ध को जानने का अभिप्राय है। उसे यह काल या अमुक वह देखने का नहीं है कि मुझे काल आया है या नहीं मोक्ष को समझने का, शुद्धात्मा को समझने का? उसके हृदय में यह बात नहीं है। वह तो ऐसा कहता है कि प्रभु! यह आत्मा शुद्ध जो जानना चाहिए, वह क्या है और जिसे जानने से आत्मा को शान्ति हो? एक ही सीधा प्रश्न है। कहो, समझ में आया? उसने ऐसा भी नहीं कहा कि यह हमें जानने में यह कर्म-बर्म हमारे शिथिल पड़े होंगे या नहीं? और हमारी काललब्धि पकी होगी या नहीं? समझ में आया? ऐसा प्रश्न नहीं।

उसका प्रश्न तो आत्मा शुद्धस्वरूप है, वह किस प्रकार से है और जिसे जानने से हमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो? एक ही प्रश्न है। कोई बीच में आढखील कर्म की या काल की या हम इस भविष्य में कोई ऐसा आयुष्य हमारा नरक आदि का बँध गया हो तो हमें यह समझ में नहीं आयेगा, ऐसा प्रश्न नहीं है। समझ में आया? उसे तो यह आत्मा चैतन्यमूर्ति शुद्ध क्या? उसके उत्तर में कहा। आत्मा को... यह बात कहते हैं, देखो! टीकाकार (कहते हैं)। यह छठवीं (गाथा) की सन्धि करके।

इस ज्ञायक आत्मा को... जाननहार... जाननहार...। स्वभाव ज्ञायकभाव, उसे **बन्धपर्याय के निमित्त से...** कर्म के सम्बन्ध के संग में उत्पन्न हुई अशुद्धपने की दशा, वह **तो दूर रहो,...** अब कहते हैं। वहाँ सिद्धि हुई पहली कि अशुद्धपना आत्मा में नहीं है। प्रमाद और प्रमत्तभाव, भेदभाव, पर्याय के अंश का भेदभाव, वह शुद्धस्वरूप में नहीं है, ऐसी अन्तर एकरूप शक्ति का सत्त्व, उसके ऊपर दृष्टि देने से शुद्धता का अंश हाथ में आता है, उसे दृष्टि में यह पूरा आत्मा द्रव्य शुद्ध है, ऐसा उसे बैठता है।

यहाँ कहते हैं कि यह बात अब हम दूर रखते हैं। इस... इस ज्ञायक आत्मा को बन्ध पर्याय के निमित्त से—कर्म के बन्ध की अवस्था के संग से अशुद्धपना जो भेद आता है, वह तो दूर रहो परन्तु जिसे कहते हैं, परन्तु उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी विद्यमान नहीं है, वह शुद्धस्वभाव है, उसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ऐसे तीन गुणभेद जिसमें अस्ति नहीं धराते। समझ में आया?

इसे अर्थात् **ज्ञायक आत्मा को...** दर्शन, ज्ञान और चारित्र। और वह भी एकरूप शुद्धात्मा में उन तीन का भेद अस्ति, विद्यमान, मौजूदगी धराते ही नहीं। वजुभाई! बहुत सूक्ष्म, भाई! देखो! यह सम्यग्दर्शन का विषय। प्रथम धर्म की दशा, निर्विकल्पदशा-श्रद्धा, उसके विषय में एकरूप चैतन्य है, उसमें गुण अनन्त होने पर भी उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र भेद, असाधारण धर्म की व्याख्या ली है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह भी वस्तु में भेद नहीं है। समझ में आया? वहाँ इसकी दृष्टि है।

चारित्र भी विद्यमान... अस्ति, मौजूदगी नहीं धराते। एकरूप शुद्ध वस्तु, जिसे शुद्ध कहते हैं, ऐसा जो ज्ञायक एकरूप आत्मा, जो अन्तर्मुख दृष्टि का विषय जो शुद्ध ज्ञायक, उसमें तीन गुण जो असाधारण हैं, जिनके द्वारा उसे पर से भिन्न करके पहिचाना जा सकता है, ऐसे गुणों के भेद भी भगवान ज्ञायक आत्मा अभेदस्वरूप है, उसकी अन्तर्दृष्टि देने पर वह भेद अन्तर में दिखायी नहीं देता। अर्थात् भेद है नहीं, दिखता नहीं अर्थात् भेद है नहीं। समझ में आया?

क्योंकि अनन्त धर्मोंवाले एक धर्मी में... उसमें अनन्त धर्म हैं। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अस्तित्व, स्वच्छत्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व ऐसे अनन्त धर्म धारण कर रखे हुए एक धर्मी, एक वस्तु, एक पदार्थ, उसमें जो निष्णात नहीं है। अब कहते हैं कि उसके गुणभेद बताने का कारण क्या? वस्तु में नहीं है। वस्तु एकरूप है। दृष्टि, सम्यक् उसका विषय एकरूप चैतन्य सामान्य ध्रुव, अस्तिरूप, पूर्णरूप, एकरूप, उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह सम्यग्दर्शन के विषय में भेद नहीं है। तब कहते हैं कि परन्तु भेद डालकर समझाया है न? क्योंकि अनन्त धर्मोंवाले, अनन्त स्वभाववाले, अनन्त गुण आदि धर्म का धारक एक धर्मी, एक आत्मा एकरूप है, उसमें जिसकी बुद्धि निष्णात अर्थात् निपुण अर्थात् जानपनेवाली हुई नहीं। **ऐसे निकटवर्ती शिष्यों को,...** भेद डालने का आशय कि जो कोई अभेद एकरूप चैतन्यमूर्ति है, शुद्धस्वभाव एकरूप भाव ज्ञायक परमात्मा परमपारिणामिक स्वभावरूपभाव, ऐसा जिसे ख्याल में नहीं है, उसकी श्रद्धा में नहीं है, उसकी रुचि में नहीं है, उस ओर उसका लक्ष्य गया नहीं है, इसलिए उसे **ऐसे निकटवर्ती शिष्यों को,...** निकटवर्ती के दो प्रकार हैं। जो गुरु के

पास क्षेत्र से निकट आया है और अन्तर में भी भाव में निकटवर्ती धर्म समझने के योग्य हुआ है। समझ में आया? उसे यह भेद डालकर समझाते हैं, इतना प्रसंग है। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में सत्... सत्... सत्... द्रव्य प्रगट सत् है, प्रगट सत् है। वह तो पर्याय व्यक्त प्रगट और यह अव्यक्त (जो कहा)। वह तो बाह्य के परिणमन की अपेक्षा से है। वस्तु जो है, एक समय की अस्ति पूर्ण शुद्ध, वह व्यक्त प्रगट ही है। है अस्ति, इसलिए फिर उसे और अप्रगट है, ऐसा कैसे कहना? समझ में आया? परन्तु ऐसी है एकरूप वस्तु अस्ति, सामान्य, ध्रुव, प्रगट, ऐसा होने पर भी उसका जिसे ज्ञान नहीं, उसका जिसे बोध नहीं है। ऐसे जो निष्णात अर्थात् निपुण नहीं है, उसके ज्ञान में आत्मा का अन्तर एकरूप क्या है? उसकी जिसे निष्णात विचक्षणता, विज्ञानता जिसे प्रगट हुई नहीं। **ऐसे निकटवर्ती...** निष्णात नहीं, **ऐसे निकटवर्ती...** पूछता है न कि शुद्ध आत्मा कौन है? इतना निकट हो गया है, क्षेत्र में नजदीक आया है, वहाँ उसे समझाते हैं। वहाँ समझाने जाते नहीं। समझ में आया? लो! पुस्तक भेजना और रिकार्डिंग भेजना, सुनूँगा, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह देखो! यह क्या कहते हैं?

दो बातें हैं। एक तो सुना हुआ नहीं है, ऐसा शिष्य है। सुना हुआ नहीं, सुना हुआ नहीं वह। वस्तु, एक सम्यग्दर्शन का विषय चैतन्य प्रभु अभेद, वह तूने सुना नहीं है। ग्यारह अंग पढ़ा और नौ पूर्व पढ़ा। (तो कहते हैं), नहीं। सुना नहीं। उसे सुनाऊँगा। एक बात। दूसरी कि वह स्वयं वहाँ निकट में सुनने आया है। समझ में आया? देखो! यह देशनालब्धि सिद्ध करते हैं। ज्ञानी उसे समझाते हैं, अज्ञानी नहीं। जो निकट में आया है। आये परन्तु नजदीक है। ओहोहो! अन्तरभाव में कुछ विघ्न नहीं है कि यह ऐसे प्रगट होगा या नहीं?

इसे शुद्धस्वभाव अभी रुचि में कम है, परन्तु है क्या? ऐसा भान नहीं है। इसलिए उसे दूसरा प्रश्न ही वहाँ नहीं है। कैसे होगा? कहाँ होगा? यह कहेंगे और मुझे निमित्त से होगा कहनेवाले और मेरे उपादान में शुद्ध में जागेगा या नहीं? प्रश्न ही नहीं। यह तो पाँचवीं गाथा में कह नहीं गये? दिखाऊँ तो प्रमाण करना। यह उसकी सन्धि है। आत्मा को मेरे निज वैभव से स्वभाव की एकता और राग की पृथक्ता, ऐसा जो अनेकान्त वस्तु शुद्ध प्रभु आत्मा, उसे मैं दिखाऊँगा और दिखाऊँ तो प्रमाण ही करना। दूसरी बात करना नहीं। ऐसा कहनेवाले हैं, वह ऐसा सुननेवाला है, ऐसे यहाँ दो बातें हैं। मगनभाई! अरे रे! गजब बात! बड़े तो बड़ी ही बात करते होंगे न, इसी प्रकार वस्तु की स्थिति ऐसी है। ऐसी...

स्वभाव क्या है, ऐसी जानने की जिसे धगश है, दूसरी बात नहीं। दूसरा अन्दर में रोग

अटकना कोई चीज़ नहीं है। क्या है यह ? प्रभु! हमने सुना नहीं। आप सुनाओ और हम निकट... यहाँ स्वयं आचार्य कहते हैं। शिष्य कहीं ऐसा कहता है कि मैं निकटवर्ती हूँ ? कुन्दकुन्दाचार्य में आया था या नहीं ? हमारे ऊपर गुरु ने मेहरबानी की है। ऐसा कहे कि हम पात्र थे, इसलिए हमारे ऊपर कृपा की ? ऐसा कैसे कहते हैं ? यहाँ आचार्य स्वयं कहते हैं कि वह कैसा शिष्य है कि जो ऐसा निकटवर्ती, नजदीक क्षेत्र में बैठा है, उसने भाव में एकदम सत्य समझने की जिसे धगश और अभिलाषा है। दूसरी बात नहीं है। पुण्य क्या है और पाप क्या और स्वर्ग क्या है ? यह कुछ पूछता नहीं। सब निकालकर एक ही बात पूछता है। समझ में आया ? और यह हमें पूर्व के पुण्य के सब शरीर आदि साधन मिले। इसलिए अब हमें साधन होगा, ऐसा है या नहीं ? ऐसा भी नहीं पूछता ? समझ में आया ?

यह चैतन्यदल, ज्ञायकभाव, एकरूप स्वभाव वह क्या है ? उसने कहा कि उसमें प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद नहीं है। यह बात तो एक ओर रही। वस्तु में एक समय में जो उसमें बहुत धर्म हैं। वे तो भेदवाली दशा थी। प्रमाद, अप्रमाद ऐसी थी। कालभेद से भेदभाव था। समझ में आया ? भाई! कालभेद से भेद प्रमत्त-अप्रमत्त था। अब ऐसे भावभेद से भेद नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, ज्ञायक आत्मा को बन्ध पर्याय के निमित्त से अशुद्धपने के प्रकार अर्थात् भेद पड़ते हैं, (वे दूर रहो)। भगवान आत्मा एकरूप स्वभाव है, उसमें भाव से दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि अनन्त गुण भाव वर्तमान विद्यमान हैं। है, भेद अन्दर है, परन्तु अभेद की दृष्टि में वे भेद नहीं हैं। समझ में आया ?

यह तो समयसार अर्थात् ? सर्वज्ञ की सर्वोत्कृष्ट ध्वनि का सार। अकेला मक्खन नितारा, अकेला मक्खन। कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन। सुन, यह कहते नहीं। पूछता है, उससे कहते हैं। फिर कहते हैं कि प्रमाण करना। समझ में आये परन्तु... स्पष्ट होकर आना। दूसरी बात रखना नहीं। अभी यह नहीं होगा और यह पंचम काल है, हमने पूर्व में बहुत कर्म बाँधे होंगे, इसलिए ऐसे हल्के काल में जन्मे हैं, हमें अच्छा योग नहीं और हमने बहुत काल खोटे में व्यतीत किया है, यह बात नहीं। समझ में आया ? ऐई..! देवानुप्रिया! यह क्या कहते हैं ? देखो! टालमटोल नहीं करते। यह अभी नहीं होगा, अभी नहीं पकड़ में आयेगा तो ? ऐसा नहीं है। शिष्य ऐसा यहाँ कहता है। क्या कहा ? यह तुम्हारे प्रश्न के (जवाब हैं)। यह तो सब वहाँ से लावे न!

आत्मा वस्तु है, पदार्थ है, पवित्र चीज़ है। उसकी तुझे जिज्ञासा है या नहीं ? और

जिज्ञासा नहीं तो फिर उसका अर्थ यह कि मुझे धर्म समझना नहीं है। मुझे आत्मा के समीप में जाना है, मुझे तो राग के समीप में पड़ा वह और वह करना है। तो प्रश्न ही कहाँ है उसके लिये? यह निकटवर्ती शिष्य है ही नहीं। समझ में आया? हमें तो राग करना, पुण्य करना, यह करना, वह करना, अमुक करना। क्योंकि यहाँ पहुँचा नहीं जा सकता। पहुँचा नहीं जा सकता तो फिर धर्म सुनने किसलिए आया? तुझे धर्म की जिज्ञासा है या विकार की जिज्ञासा है या संयोग की जिज्ञासा है? पहले दोनों का पृथक्करण निश्चित कर। कहाँ गये आनन्दभाई? नहीं आये? समझ में आया? नहीं आये लगते हैं।

क्या कहा? यह ऐसा कहे, महाराज! तुम बड़ी-बड़ी बातें करते हो, मुझे पकड़ में नहीं आती। ऐसे पकड़ में नहीं आती, ऐसा करके पूछता है? यह वस्तु है। प्रभु चैतन्य ज्योति क्या है? गुरु कहते हैं, मैं कहता हूँ, सुन! और सुनकर प्रमाण करना। उसमें ऐसा नहीं कि यह और अनन्त संसारी जीव होगा तो?... होगा तो? उसे भगवान ने ऐसा देखा (होगा तो)? अरे! सुन तो सही।

प्रभु! यह चैतन्य प्रभु, वह शुद्ध कौन? भाई! उसमें वर्तमान दशा और बाद की दशा और ऐसी दशाओं के भेद पड़ते हैं, वह वस्तु नहीं है। वह वस्तु में नहीं है। वह तो नहीं परन्तु चैतन्यसत्ता एक समय के भाव का पूर्ण पिण्ड एक, उसमें एकसाथ रहे हुए अनन्त गुण, उसमें यह गुण और यह गुण और यह गुण तथा यह गुणी - ऐसा भावभेद भी वस्तु की दृष्टि में शुद्ध में नहीं है। समझ में आया? तब कहे, यह समझाया किस प्रकार? अभेद तो एकरूप समझाया नहीं जाता और वह अभी पूछता है, इसलिए पूछता है, तब उसकी रुचि अन्दर में गयी नहीं, अभेद पर दृष्टि पहुँची नहीं अर्थात् एक धर्मी को वह समझता नहीं।

उसे, जो निष्णात नहीं है उसे, **ऐसे निकटवर्ती शिष्यों को,...** एकदम वीर्य की स्फुरणा चैतन्य की ओर ढलने की योग्यता हो गयी है उसे। और वह सुनने में वह नजदीकरूप से (आया है)। ऐसा भी नहीं कि महाराज! जरा शीघ्रता से बोलो न, मुझे समझ में नहीं आता, ऐसा भी नहीं। ऐई! और मैं कान से जरा कच्चा हूँ, हों! वह तो एक ध्वनि उसकी है और मुझे समझ में आये, ऐसा कहना, हों! मुझे समझ में आये, ऐसा कहना, ऐसे उपदेश देने के लिये नहीं आया है। समझ में आया? मुझे समझ में आये, ऐसा कहना। ऐई! देवानुप्रिया! यह तो बात है न? कितना बात है, देखो!

यह तो अकेले अमृत के सूत्र अमृतचन्द्राचार्य के हैं। समझ में आया? गणधर के रचे हुए सूत्रों की तो क्या बातें करना! ओहो! चार ज्ञान, चौदह पूर्व अन्तर्मुहूर्त में रचे और उत्पन्न

करते हैं। अन्तर्मुहूर्त में उत्पन्न करते हैं और रचते हैं, उनके सूत्रों की गम्भीरता की क्या बात करना! यह अमृतचन्द्राचार्य पंचम काल के ९०० वर्ष पहले के सन्त! परन्तु मानो गणधर का काम तीर्थंकर के पेट में घुसकर बात की है। गणधर जैसा करे, वैसे कुन्दकुन्दाचार्य के पेट में प्रवेश कर बात की है। समझ में आया?

कहते हैं, अरे! एक धर्मीपने जिसे ज्ञान हुआ नहीं। अनन्त धर्म अर्थात् भाव अर्थात् वर्तमान शक्तियाँ है उसमें। ऐसी अनन्त शक्तियाँ भावरूप का धारक एक धर्मी, ऐसा एक धर्मीपना जिसके लक्ष्य में आया नहीं, **ऐसे निकटवर्ती शिष्यों को, धर्मी को बतानेवाले...** यह सार में सार उपदेश की प्रणालिका की अन्तिम हद।

धर्मी, यह भगवान आत्मा एक समय में पूरा पूर्ण तत्त्व क्या है? ऐसे **धर्मी को बतानेवाले कितने ही धर्मों के द्वारा,...** कहो, समझ में आया? **कितने ही धर्मों के द्वारा,...** कितने ही अर्थात् असाधारण। नीचे अर्थ में यह करेंगे। परन्तु उसका अर्थ यह है। क्योंकि दर्शन-ज्ञान-चारित्र किया है न? उससे ना किया है, अर्थात् उससे समझाया, वे असाधारण गुण हैं। अस्तित्व और वस्तुत्व, वह नहीं। यह आत्मा, दर्शन वह आत्मा, ज्ञान वह आत्मा, चारित्र वह आत्मा, इसमें दूसरा लेंगे। आत्मा उसे परिणमन करे, वह आत्मा। यहाँ तो कहते हैं कि भेद डालकर कहना; नहीं जिसे अभेद की दृष्टि हुई, एक को पहिचाना नहीं, उसे अनेक उसके अनन्त गुण और भाव भरे हैं, उनमें से उसे मूल-मूल जो असाधारण धर्म द्वारा गुरु शिष्य को कहते हैं। समझ में आया?

धर्मी को बतानेवाले कितने ही... अर्थात् वह यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो खास आत्मा में मुख्य है, ऐसे। **धर्मों के द्वारा, उपदेश करते हुए आचार्यों का**- उपदेश करते हुए आचार्यों का **यद्यपि धर्म और धर्मी का स्वभाव से अभेद है...** यद्यपि भाव—दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि भाव और भाव धारक आत्मा दोनों का भिन्नपना नहीं है, दो का स्वभाव से एकपना है, स्वभाव से अभेद हैं। वह स्वभाव और यह स्वभाववान, ऐसा कुछ अन्दर भेद नहीं है। यह तो कथन के नाम में दो (भेद लेते हैं)। वस्तु में भेद नहीं है।

भगवान आत्मा शुद्ध एक समय का प्रभु! धर्मी अर्थात् द्रव्य, धर्मी अर्थात् शुद्धात्मा ऐसे धर्मी के कितने ही धर्मों द्वारा, अर्थात् कि उसमें रहे हुए खास-खास गुणों द्वारा **उपदेश करते हुए आचार्यों का-यद्यपि धर्म और धर्मी का स्वभाव से अभेद है तथापि...** तो भी **नाम से भेद करके—**देखो! नाम, संज्ञा, भेद, नाम अर्थात् व्यवहार। व्यवहार से भेद उपजाकर। यह लकड़ी सूखड़ की है। इसमें सुगन्ध, कोमलता, वजन एकसाथ इसमें है। परन्तु ऐसा कहते

हैं कि जो समझता नहीं यह सूखड़ एकरूप है, उसे समझाने को कहते हैं कि देखो! यह सुगन्ध, वह सूखड़। यह सुगन्ध अलग नहीं पड़ती। वस्तु तो एकरूप है परन्तु जिसे एकरूप वस्तु क्या है, उसे समझाने के लिये उसमें रहे हुए खास-खास असाधारण गुणों को लक्ष्य में लेकर शिष्य को (कहते हैं)।

अभेद है तथापि नाम से भेद करके—व्यवहारमात्र से ही ऐसा... बहुत ऐसा। व्यवहारमात्र से। दूसरा क्या उपाय? उसे नहीं एकरूप आत्मा दृष्टि में आया, उसे इस प्रकार से समझाने के अलावा दूसरी कोई रीति, उपाय है नहीं। इसलिए **व्यवहारमात्र से ही ऐसा उपदेश है कि ज्ञानी के...** अर्थात् आत्मा को। ज्ञानी को अर्थात् आत्मा को **दर्शन है...** व्यवहार से, नाममात्र से। आत्मा में सम्यग्दर्शन है। वस्तु तो एकरूप है, एकसाथ अबिनाभाव गुणों से बनी हुई है परन्तु उसे कहना क्या? आत्मा... आत्मा... करे तो वह समझे नहीं और उसमें गृहीत गुण भिन्न तो पड़ते नहीं। परन्तु पाड़े बिना समझे नहीं। इसलिए भिन्न पड़ते नहीं और पाड़ना, इसका नाम व्यवहार है। समझ में आया?

यह समयसार की पारायण लगायी है। समझ में आया? उन अन्यमति में सात दिन की पारायण नहीं कहते? पारायण। सात दिन करे और फिर हो गया, लो! सात दिन हो, उसका मोक्ष होता है। ऐ..! इतनी बार सुने उसे। क्यों मास्टर? कितनी बार? इसे खबर नहीं। कितनी बार? पारायण सुने, उसका मोक्ष होता है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो एक बार सुने, उसका मोक्ष होता है। समझ में आया? वजुभाई! सुना है या नहीं? यह उस पारायण का सुना है या नहीं? ब्राह्मण गाये। सात दिन रहना... दो घण्टे, तीन घण्टे। बादाम का दूध पीता जाए। मोक्ष हो। धूल में भी मोक्ष नहीं होता, सुन न! अभी मोक्ष किसका है? कौन है? कहाँ से होगा? ऐसी चीज़ की खबर नहीं होती। अब तान (गाकर) खींचकर,... मोक्ष होता होगा?

यहाँ तो कहते हैं कि आखिर में आखिर बात अन्तिम, धर्मी ऐसे द्रव्य को समझाने के लिये धर्मी की जिज्ञासावाले इस जीव को आचार्य, उपदेशकर्ता आचार्य ऐसा समझाते हैं। ध्यान में है और आत्मा में है, उनकी तो यहाँ बात है नहीं। इसलिए शिष्य निकटवर्ती जिज्ञासु ऐसा होता है, ऐसा लिया है और उपदेश करनेवाले आचार्य, दोनों की सन्धि की है। समझ में आया? यहाँ केवली की बात नहीं ली है। केवली ऐसा कहते हैं, भाई! यहाँ तो पंचम काल की पद्धति की शैली से बात की है। आहाहा! बात ही अपनी भूमिका से करते हैं। समझ में आया? केवली ऐसा कहते हैं। आचार्य अभी इस काल में हैं, उनकी यहाँ बात माँडते हैं। समझ में आया? यह वे भी आचार्य में... समझ में आया? उपदेश करते आचार्य। निर्विकल्प

ध्यान में बैठे, तब तो कुछ है नहीं। पूछा, उसका लक्ष्य है, उन्हें काल ही उपदेश का ऐसा वर्तता है। उन्हें स्वकाल में राग ही ऐसा विकल्प उठता है, उनकी वाणी का योग ही उपदेश में ऐसा है।

ऐसे आचार्य, उपदेश कहते हुए आचार्य (कहते हैं), यद्यपि वस्तु में और वस्तु के भाव में, उसके गुण में कुछ भेद नहीं है, प्रदेशभेद नहीं है। वस्तु के दो टुकड़े-टुकड़े (नहीं हैं)। यह भाव यहाँ और भाव का धारक यहाँ, ऐसी भी उनमें भिन्नता नहीं है। परन्तु व्यवहारमात्र से ही ऐसा उपदेश है। ज्ञानी को, धर्मी को दर्शन है। धर्मी को दर्शन है। आत्मा, वह दर्शन है। इसी प्रकार दर्शन, वह आत्मा है, ऐसे लक्ष्य अभेद में कराना है। ज्ञानी को ज्ञान है। देखो न! इसमें भी कितने ही तर्क करते हैं। ऐसी बात! अरे! भगवान! यह बात उपदेश की पद्धति और श्रोता की रीति, बापू! सुने बिना तू ऐसे का ऐसे कुतर्क करके कहे, ऐसा आचार्य (कहें)? जैन में ऐसे आचार्य होते हैं? ज्ञानी को ज्ञान नहीं, दर्शन नहीं, चारित्र नहीं। तब क्या उसे जड़ है? अरे! सुन न, प्रभु!

वह धर्म का करनेवाला जीव धर्मी एकरूप कौन है, उसकी दृष्टि हुए बिना, उसे सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता। कहाँ से लाया यह? यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह चारित्र है। पर्याय में हुआ तो हुआ, उसे उससे उसे पहिचानना है? नहीं हुआ उसे बतलाते हैं। यह आत्मा एकरूप है। इसमें व्यवहारमात्र से, कथनमात्र से, संज्ञा के भेद से वस्तु और गुण के संज्ञाभेद में भेद पड़ा। इससे ऐसे नाममात्र से ज्ञानी को ज्ञान है, आत्मा को दर्शन है, आत्मा को चारित्र है। ऐसे व्यवहार से धर्मी को समझाने के लिये, द्रव्य को समझाने के लिये, वस्तु परमभाव ज्ञायकभाव को लक्ष्य में अन्तर झुकाने के लिये ऐसे उपदेश के भेद के भाव का भेद डालकर, भावधारक भगवान को समझाया है। केवलचन्दजी! सब बात बाहर में। उस मूल चीज़ के बिना सब समझने जैसा है।

अभी धर्म, सम्यग्दर्शन धर्म वह आत्मा तेरे आत्मा को ऐसे धारता है कि तेरा आत्मा ऐसा है। कहते हैं कि ऐसे दर्शनगुण को भी श्रद्धागुण को भी भेद डालकर उसे कहना व्यवहार है। समझ में आया? ऐसा आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, कहते हैं कि वह भी एक व्यवहार हुआ, हों! वह भी एक भेद हुआ, भाव में भेद हुआ और भेद पर यदि लक्ष्य रहे तो दृष्टि अभेद में नहीं जाएगी। समझ में आया? पर की, निमित्त की रुचि में रहे और राग की रुचि में रहे और धर्म हो, सम्यक् (हो, ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि जो उसके निकटवर्ती शिष्य को भेद से समझाया है, वह समझनेवाला यदि भेद पर ही

लक्ष्य रखे, उसका हेतु तो धर्मी द्रव्य को समझाने का है। भेद लक्ष्य द्वारा यह आत्मा है, ऐसे अभेद पर यदि जाए, तो वह शुद्धात्मा को पकड़े और अनुभव कर सके। भेद समझाने के लिये है। उसके ख्याल में भी भेद (रहना नहीं चाहिए)। दूसरा कोई उपाय उसे नहीं है। जहाँ दृष्टि का तीर मारना है, वह अभेद चैतन्यमूर्ति है। उसे समझाने के लिये यह बात की है परन्तु यदि वहीं का वहीं वह चिपटा कि यह दर्शन है, वह आत्मा; ज्ञान है, वह आत्मा; चारित्र है, वह आत्मा है तो कहते हैं वह विकल्प है। वह तो एक पुण्यबन्ध का कारण, विकल्प की उत्पत्ति चेतना संग की संग में है। समझ में आया? वह तो चित्त के संग में भेद का विकल्प उठा है। उसका हेतु तो अन्दर में जाकर इसमें से हटे, तब शुद्धात्मा अभेद ऐसी दृष्टि का विषय प्राप्त होता है। समझ में आया? चन्द्रसेनजी! भाई! यहाँ तो विवाद (करे)। अरे! प्रभु! शान्त हो।

अब इस काल मनुष्यदेह आया, और पाँच-पचास वर्ष में आँखें बन्द हो जाएँगी। कहीं कोई सामने भी नहीं दिखेगा। ऐसे रिश्तेदार थे, ऐसे सम्बन्धी थे, इसमें इज्जत प्राप्त की थी, यह हमको मानते थे, वह क्या थोथा होगा? अधिक मानते थे, वह हम खोटे होंगे? एक व्यक्ति ऐसा कहता था। थोड़ा माने वह नहीं, अधिक मानते हो, उनकी बात सच्ची। अब एक भी न मानता हो, सुन न! चींटियों के नगर बहुत होते हैं। इससे कहीं मनुष्यों की संख्या में चींटियाँ आती होंगी?

वस्तु भगवान आत्मा चैतन्य द्रव्य जो है, उसे समझ सका नहीं। उसे आचार्य की, उपदेशकर्ता की पद्धति में ऐसे आत्मा को दर्शन-ज्ञान-चारित्र है - ऐसा कहा है। **परन्तु...** कहकर वापस बात करते हैं। **परमार्थ से देखा जाये...** वास्तव में वस्तु से देखने में आवे **अनन्त पर्यायों को...** पर्याय अर्थात् भेद। सब द्रव्यों के **एक द्रव्य पी गया होने से...** सब भेद-बेद एक वस्तु में कुछ भेद है नहीं। पी गया अन्दर। पीने में पानी (की अपेक्षा) मुँह बड़ा (होता है)। (इस प्रकार) यह सब अनन्त गुण पीकर एक द्रव्य बैठा है। इतना प्रभु चैतन्य एक समय का द्रव्य, वस्तु जो कि दृष्टि पड़ने पर इसे अन्तर में शुद्ध और आनन्द की परिणति होती है, ऐसा जो आत्मा, वह **अनन्त पर्यायों को...** अर्थात् भेदों को। **एक द्रव्य पी गया होने से...** वह तो गुण-गुणी का भेद परन्तु अनुपचार सद्भूतव्यवहारनय है और पर्याय तथा पर्यायवान का भेद भी अनुपचार सद्भूतव्यवहारनय है। उसमें और एक यह है और एक यह है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? लिखा है न उसमें? अमुक की पर्याय ऐसी। वह तो यहाँ तो समझाना है न? पर्याय में लक्ष्य आकर समझता है न वह तो? उनमें कहाँ लक्ष्य (करने का कार्य होता है)। गुण तो ध्रुव पड़े हैं। यह दर्शन है, यह ज्ञान है, यह ज्ञान है, यह चारित्र

अर्थात् शान्ति का धारक है, ऐसा लक्ष्य होने पर भेद डाला है, वह तो विकल्प उठा परन्तु वस्तु है, वह तो सब भेद को पीकर बैठी है।

एक द्रव्य पी गया होने से... देखो! यह दृष्टि। एक वस्तु एकरूप है। चैतन्य ज्ञायकभाव, इस पर दृष्टि में भेद नहीं होता। दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह भी अभेददृष्टि में भेद दिखायी नहीं देते, कि मैं दर्शन हूँ, मैं ज्ञान हूँ, मैं चारित्र हूँ और मैं आनन्द हूँ। ऐसा एक समय का एकरूप द्रव्य, जो अनन्त भावभेद को पी गया है, ऐसा अभेद एकरूप चैतन्यस्वभावी धर्मी, उसमें नजर करने से वह अनन्त (गुणभेद को) पी गया, ऐसा वह तो एकरूप है। भाई! देखो! यह सम्यग्दर्शन का आधार! समझ में आया? और इस सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान सच्चा नहीं होता और चारित्र तथा व्रत, तप सच्चे नहीं होते। खोटे, कल्पित सर्वज्ञ की आज्ञा के बाहर के बालतप और बालव्रत होते हैं।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : माने अर्थात्? वह कहीं ऐसा माने? ऐ..! देवानुप्रिया! यह कहते हैं वह बात सत्य है। ऐसा कहते हैं, सबको मान ही लेना, उसमें तो व्रत, तप ही करना। ऐसा न? कुछ होगा फिर। धीरे-धीरे बोलेंगे। इसमें उतरता है, हों! बात सत्य है, हों! उसमें। कुछ बोलोगे तो इसमें उतर जाएगा। कहो, समझ में आया? क्या माने? ऐसा मान ले। खल खाता हो और मैं गुड़ खाता हूँ, ऐसा मान ले तो खल गुड़ हो जाती होगी? हमें भगवान की, देव-गुरु की आस्था है, वह आस्था नहीं।

यहाँ तो नौ तत्त्व के विचार का विषय है—भेद, वह आस्था नहीं है। यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेदवाला हूँ, ऐसे भेद की आस्था, वह सम्यग्दर्शन नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि इन तीन का अन्तिम का यह बताये बिना दूसरा कोई (उपाय) रहा नहीं। इसलिए उन अनन्त धर्मों को, पर्यायों को, भावों को **एक द्रव्य पी गया होने से...** एकरूप वस्तु, एकरूप है। किंचित एकमेक मिल गये आस्वादरूप अर्थात् कि अनन्त गुणों का एकरूप स्वाद द्रव्य का है, परन्तु फिर भी प्रत्येक गुण का स्वाद अन्दर भिन्न-भिन्न है। समझ में आया? ज्ञान का स्वाद, दर्शन का स्वाद-वेदन, चारित्र का स्वाद, आनन्द का स्वाद प्रत्येक को भिन्न है। परन्तु किंचित् एकमेक मिले हुए। गुण कहीं सब एक हुए नहीं। परन्तु द्रव्य की अपेक्षा से एक हुए हैं। वे एक हुए हैं न। समझ में आया?

ऐसे कुछ—मिले हुए आस्वादवाले, अभेद,... वस्तु एक समय में पूर्ण अभेद **एक स्वभावी—का अनुभव करनेवाले को...** एक स्वभाव वस्तु का अनुभव करनेवाला। एक

स्वभाव वस्तु का अनुभव करनेवाले आत्मा को, ऐसा लो। ऐसे आत्मा को **दर्शन भी नहीं है,...** कहो, समझ में आया? एक स्वभाव। भेद के लक्ष्य से अभेद में जाकर एकरूप चैतन्य का अनुभव करने से उस पुरुष को अर्थात् आत्मद्रव्य को, उस दृष्टिवन्त को, उस दृष्टि के ध्येयवाले आत्मा में और दृष्टिवन्त को यह **दर्शन भी नहीं है,...** ख्याल में गुण-भेद नहीं है। भाव में ज्ञानभेद अलग नहीं रहता और उसके आश्रय में चारित्रभेद का भी अलग भाव नहीं रहता। कहो, समझ में आया इसमें? क्या कहलाता है यह?

यह धर्म कैसे हो? कैसे धर्मी के आश्रय से (होता है), उसकी बात चलती है। समझ में आया? धर्मी ऐसा जो एक समय में अनन्त भाव का धारक, उसे कालभेद की अशुद्धता तो कहते हैं कि हम याद नहीं करते। वह तो पहले से निकाल दिये। परन्तु उसके दल में एक के साथ सभी अनन्त भाव—गुण भरे हैं, वर्तमान मौजूद हैं, मौजूद हैं। वे दृष्टि के विषय की अपेक्षा से मौजूद नहीं हैं। समझ में आया? वर्तमान मौजूद हैं। वह तो अभी शुद्ध, प्रमत्त और अप्रमत्त यह तो फिर आवे, तब और भेद पड़े तब। आवे और जावे, आवे और जावे। प्रमत्त। वह तो नहीं, कहते हैं। यह तो एक भगवान आत्मा सत्ता स्थल के धाम में असंख्य प्रदेशी क्षेत्र में एकरूप, वास्तव में तो एकरूप यह क्षेत्र भी है और उसमें अनन्त गुणों का भाव भरा हुआ है। परन्तु जहाँ दृष्टि अभेद पर जाने पर धर्मी जीव की दृष्टि में दर्शन अलग नहीं है, ज्ञान अलग नहीं है, चारित्र अलग नहीं है। वह एक द्रव्य है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। नहीं? जयचन्दभाई! अब ऐसी बात करें तो वे कहें, यह निश्चय की बातें करते हैं। अरे! प्रभु! परन्तु निश्चय अर्थात् सच्चा। तुझे सच्चा होना है? तुझे सतिया होना है या असतिया रहना है? सतिया अपने में। वह कहे सती होऊँ, वह कहे सतिया होऊँ। तुझे सच्चा सतिया होना है या नहीं?

एक समय का प्रभु, परमब्रह्म आत्मा एकरूप, उसकी दृष्टि होने पर, उस धर्मी को दृष्टि में दर्शन, ज्ञान और चारित्र का भेद भी लक्ष्य में नहीं रहता। तब वह दर्शन का विषय अखण्ड उसकी दृष्टि में पड़ा होता है। समझ में आया? देखो! लालजीभाई! यह धर्म की बात! वह तो इतने लाख दे देवें, यदि धर्म होता होवे न! यह भी कह दे पाँचवें काल में धर्म ऐसा होता है, चौथे काल में धर्म दूसरा होता है और पाँचवें का दूसरा होता है, लो! तुझमें ताकत न हो और शक्ति न हो तो दूसरे प्रकार से भी होता है। धर्म तो होता होगा नहीं सस्ता? उस रयणसार में दूसरा कहा श्रावक का धर्म। प्रवचनसार में कहा है। नहीं आया था? उसका शुभभाव वह धर्म है और उससे मोक्ष होता है, प्रवचनसार में श्रावक के लिये ऐसा कहा। अरे! प्रभु! परन्तु पहले दृष्टि तो सम्हाल, बाद की बात वह क्या है यह? वह तो शुभभाव आया। होता है। दृष्टि

होकर चारित्र हुआ हो, वह कहीं पूर्ण यथाख्यात हुए बिना राग का शुभभाव, भक्ति आदि का आये बिना रहता है ? उससे मुक्ति होती है, ऐसा व्यवहार कहता है। नहीं हो, उसे होता है, ऐसा कहे, उसका नाम व्यवहार। उससे होता नहीं, परन्तु इसका अभाव करने से होता है। व्यवहार कहता है कि किससे होता है ? यह कथन व्यवहारनय का। समझ में आया ? यह बात तो कहीं रह गयी, अब कहते हैं।

भगवान आत्मा में एकरूप चीज़ है, उस एकाग्रता में एक लिये बिना एकाग्रता नहीं होती। गुणभेद लक्ष्य में रहे, तब तक दृष्टि द्रव्य पर और एकाग्रता नहीं होती। यहाँ तक बात है। समझ में आया ? ऐसे आत्मा को **दर्शन भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है, एक शुद्ध ज्ञायक ही है।** समझ में आया ? भगवान आत्मा ज्ञायकभाव, एकरूप भाव, शुद्धरूप एक भाव, उसकी दृष्टि होने पर एक ही अभेद है। दूसरा कुछ भेद-बेद है नहीं। वस्तु में गुणभेद है तो भी अभेद पर एकाकार हुए बिना उस भेद को भाता नहीं, तब अभेद होता है और उसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया ?

आता है कहा न ? इस दृष्टि में एकरूपता हो गयी, वही भाता है। वस्तु में एकरूपता हो गयी, वह शुद्ध का अनुभव हो। तो पूरा यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा ख्याल में आया। कहो, समझ में आया इसमें ? वह तो **एक शुद्ध ज्ञायक ही है।** आत्मा तो एक शुद्ध ज्ञायक ही है। धर्मी तो दृष्टि के विषय में एकरूप ज्ञायक ही है। धर्मी कहो या आत्मा कहो। समझ में आया ? यह सद्भूत अनुपचार गुण-गुणीभेद को उड़ा दिया। दृष्टि में तीनों को उड़ाया है। यह ज्ञान, वह आत्मा है। कहते हैं नहीं। अन्तिम में अन्तिम यह लक्ष्य करने के लिये साधन है न ?—नहीं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड में असंख्य भाग में वस्तुरूप से अनन्त भाव का भाववान एकरूप, उसकी दृष्टि होने पर धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को, ज्ञानी को आत्मा में वह भेद दिखायी नहीं देता। वह तो **एक शुद्ध ज्ञायक ही है।** ज्ञायक ही है। लो, ऐसा कहो न, ज्ञायक भी है और भेद भी है। वह ज्ञायक ही है और भेद नहीं। 'ही' यहाँ डाला है। वे कहें - नहीं, नहीं, नहीं, ऐसा होवे तो ऐसा होगा। वस्तु में एकरूपता में ज्ञायक ही है, भेद नहीं, इसका नाम अनेकान्त कहा जाता है। व्यवहार से भेद है, ऐसा ज्ञान करने के लिये है। समझ में आया ?

कितनी बात रखी है ! वह ऐसी दलील करता होगा कि यह मुझे महँगा पड़ता है। यह समझना हमें महँगा पड़ता है, हों ! तो तू समझने आया है, तुझे समझना है ? यह महँगा पड़े तो फिर इसका अर्थ यह कि तुझे समझना नहीं है। यह चीज़ बहुत महँगी, हों ! हम ले सकते

नहीं। हमारे पास पूँजी नहीं है। तो तू क्या लेने आया है ? हमारे पास उतनी पूँजी नहीं है, हों! इतना सब नहीं लिया जा सकता। तो हीरा की दुकान में क्या लेने आया ? खबर नहीं ? हीरा की दुकान में तो पचास हजार का हीरा मिलता है। वहाँ कहीं दो निंबोली में हीरा मिलता होगा ? कहो, वजुभाई ! पाँच निंबोली देकर पच्चीस लाख का हीरा मिलता होगा वहाँ ? इतनी अक्ल नहीं है तुझे ? इस दुकान में हीरा है। इसी प्रकार भगवान चैतन्य हीरा, चमकता तेज व्यक्तरूप से प्रगट नित्य उद्योत प्रकाशमान तत्त्व पड़ा है। उसकी जिसे प्रगटता लक्ष्य में, दृष्टि में लेनी है, उसे यह प्रश्न नहीं हो सकता। समझ में आया ?

भाई ! महाराज क्रमबद्ध कहते थे न ? वह क्रमबद्ध कहते थे, उस क्रम में आवे, तब यह समझ में आवे न ! तुझे किसकी रुचि है ? किसकी रुचि है तुझे ? स्वभाव की रुचि के लिये तू जिज्ञासा करता है ? या इस काल में ऐसा होगा और यह लावे, ऐसा होगा, ऐसी ही तूने लगायी है। मगनभाई ! बहुत से यह (कहते हैं)। वीरजीभाई कहते थे न ? मानो ऐसा करे। अरे ! प्रभु ! तू क्या करता है ? यह बात कैसे, किसलिए आयी और क्यों कही है ? यह तो वस्तु में दृष्टि देने से कर्तापना उड़ जाता है, उसकी शैली सिद्ध करने के लिये यह बात की है। उसका यह अर्थ हुआ।

भगवान आत्मा इस राग को करूँ या निमित्त को प्राप्त करूँ या यह करूँ, ऐसा विकल्प करूँ – ऐसे कर्तापने की बुद्धि वह मिथ्याभ्रान्ति और भ्रम है। उसे तोड़ने के लिये यह अवस्था ऐसी ही है न, उसका धारक द्रव्य तो यह है न, उस द्रव्य में गुणभेद भी नहीं है। राग का करना नहीं है परन्तु गुणभेद का कर्तृत्व भी जिस वस्तु में नहीं है। समझ में आया ? ऐसी चीज़ वस्तु एकरूप अन्तर्दृष्टि देने पर धर्मी के लक्ष्य में गुणभेद भी नहीं रहता। यह अन्दर गुण होने पर भी उसके भेद पर जिसका आश्रय नहीं है। अकेला चैतन्य, चैतन्य चमत्कार हीरा, उस पर नजर लगाने से धर्मी को दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता नहीं। समझ में आया ? भारी सूक्ष्म, भाई !

भावार्थ : इस शुद्ध आत्मा के.... विद्यमान भगवान आत्मा जो है, वस्तु है... वस्तु है... ऐसे **इस शुद्ध आत्मा के कर्मबन्ध के निमित्त से अशुद्धता होती है,...** निमित्त से आता है अर्थात् ? वापस यह विवाद। यह तो उसमें भी आया था कि बन्ध पर्याय के निमित्त से अशुद्धपना है, वह तो निमित्त के संग से किया है, इसलिए अशुद्धपना आया है। यह है इसलिए अशुद्धपना आया है, ऐसा नहीं है। इस प्रकार स्वभाव की सत्ता का आश्रय और अवलम्बन नहीं (तथा) ऐसा लक्ष्य है, इसलिए उसके निमित्त के लक्ष्य में अशुद्धपने की

उत्पत्ति तो है, है। **यह बात तो दूर ही रहो,...** इस बात को छठवीं (गाथा) में निकाल दिया। समझ में आया?

यह बात तो दूर ही रहो,... यह दूर ही रहो। और वापस ऐसा। पाठ में है न? दूर रहो, दूर रहो। ओहो! उसमें अशुद्धपना है, पुण्य-पाप के भाव दूर रहो। ऐसे... हट जाओ। अशुद्ध का मुझमें है नहीं **किन्तु उसके...** अब 'परन्तु उसे' अर्थात् क्या? यह तो नहीं परन्तु उसे दूसरा भी नहीं है, ऐसा कहना है न? **दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भी भेद नहीं है,...** भगवान एकरूप चैतन्य के दल में देखने से भेद-बेद दिखायी नहीं देते। सोनी गहने को देखे, उसमें वह कारीगरी पर उसकी नजर नहीं होती। एकरूप गहना क्या है? सोना कैसा है, उस पर उसकी नजर होती है। क्योंकि कारीगरी तो उसे आती है। उसकी क्या कीमत हो? कारीगरी के रुपये दे, ऐसा होगा उसे? कारीगरी धो डाल। तेरी कारीगरी के पैसे-बैसे धो डाल। सोना कितना है और कैसा है? इस पर उसकी नजर होती है। उसमें लाख-बाख होवे, वह भी नहीं। लाख नहीं और कारीगरी भी नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा में अशुद्धता की लाख की कीमत नहीं। उसमें यह आत्मा उससे तो नहीं तोला जाता। समझ में आया?

अब यह जरा ज्ञान और दर्शन और उसमें भावभेद पड़े हैं। उस भेद की कोई कीमत है? कहते हैं, नहीं। वह कीमत भी नहीं है। उसे **दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भी भेद नहीं है, क्योंकि वस्तु अनन्त धर्मरूप एक धर्मी है।** वस्तु है, वह अनन्त धर्मरूप अनन्त धर्मस्वभाव एक स्वभावी है। एक वस्तु है। वस्तु एक है। कहीं गुण अनन्त है, इसलिए वस्तु अनन्त है, ऐसा नहीं है। ऐसी एक (वस्तु) पर दृष्टि देना, वही वस्तु का स्वरूप है और वह जैनधर्म तथा वीतरागमार्ग की दृष्टि उत्पन्न करने का यही अवलम्बन है, दूसरा कोई अवलम्बन नहीं है। यह तो फिर एकान्त हो जाएगा, भाई! यह तो सुन न, व्यवहार होता है, राग होता है, भगवान की मूर्ति निमित्त कहलाती है, वह सब। वह तो कहे, भगवान की मूर्ति से समकित प्राप्त हुए हैं। यह 'धवल' शास्त्र में रहा। निकाचित और निधत कर्म तोड़ डाले। भगवान की मूर्ति के दर्शन से। अरे! इस मूर्ति के दर्शन से, सुन न! यह तो निमित्त से बात की है। समझ में आया? धवल में पाठ है, हों! निद्धत और निकाचित। जैसे सिंह हाथी के कुम्भस्थल को मारकर तोड़ डालता है, वैसे भगवान के दर्शन करने से मिथ्यात्व को तोड़कर चूरा उड़ा देता है। खोजे अब फिर अकेले भगवान को। अरे! वे भगवान नहीं। वे भगवान तो निमित्तरूप हैं। उन भगवान को जिन्होंने पहिचाना है, वह भगवान मेरा एकरूप है, ऐसी दृष्टिवन्त को भगवान के दर्शन से मिथ्यात्व का नाश होता है, ऐसा उपचार से कहने में आता है। कहो, समझ में आया? यह

दृष्टान्त शास्त्र में बहुत कथन आते हैं। इस प्रकार के नयों का कथन है।

परन्तु व्यवहारीजन धर्मों को ही समझते हैं,... लो! **वस्तु अनन्त धर्मरूप एक धर्मी है। परन्तु व्यवहारी...** अर्थात् समझने का अभिलाषी। अभी निश्चय की दृष्टि हुई नहीं। ऐसे **व्यवहारीजन धर्मों को ही समझते हैं,...** धर्म अर्थात् उसके गुण। **धर्मी को नहीं जानते;...** एकरूप चैतन्यद्रव्य पर उसकी नजर पड़ी नहीं। अनन्त काल से उस पर नजर पड़ी नहीं **इसलिए वस्तु के किन्हीं असाधारण धर्मों को...** ऐसा। मिलाया इतना। पण्डित जयचन्दजी ने। कितने ही जो धर्म थे, उसमें असाधारण धर्म लिये। दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह... दूसरे में तो नहीं परन्तु इसके दूसरे गुणों की अपेक्षा ये खास ऊँचे मुख्य गुण लिये हैं।

धर्मी को नहीं जानते; इसलिए... अनन्त धर्मोंरूपी एक धर्मी वस्तु है। पदार्थ। उसे नहीं जानते, इसलिए व्यवहारीजन धर्मों को समझते हैं। धर्मी को नहीं जानते। **इसलिए वस्तु के किन्हीं असाधारण धर्मों को उपदेश में लेकर...** उपदेश में लेकर। व्यवहार के कथन ऐसे आते हैं न? वाणी में लेकर। तो वाणी में ले सकता होगा? उसका ऐसा विकल्प उठा है कि इसे भेद समझाना। बस, इतनी बात है। इसलिए उपदेश में लेकर, ऐसा कहने में आया है। **अभेदरूप वस्तु में...** अभेद चैतन्य प्रभु में **धर्मों के नामरूप भेद को उत्पन्न करके...** अभेदरूप वस्तु में भी। है तो अभेद, तो भी उसमें भी धर्म अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र (ऐसे) **असाधारण धर्मों को उपदेश में लेकर अभेदरूप वस्तु में भी धर्मों के नामरूप भेद...** नामरूप भेद, हों! वस्तु में तो भेद है नहीं।

नामरूप भेद को उत्पन्न करके ऐसा उपदेश दिया जाता हैकि ज्ञानी के दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है। व्यवहार से, नाम से, संज्ञा से, कथन से, भेद से कथन किया। धर्मी को दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है। **इस प्रकार अभेद में भेद किया जाता है,...** वस्तुरूप से तो एकरूप अभेद है, तथापि अभेद में भेद ऐसे किये जाते हैं। ऐसे अर्थात् इस कारण से। वह समझा नहीं, समझाना है। एकरूप समझा नहीं। इस कारण से ऐसा अभेद में भेद करने में आते हैं। **इसलिए वह व्यवहार है।** उसे व्यवहार कहा जाता है। व्यवहार अर्थात् उपचार है। वास्तविकता नहीं।

परमार्थ से विचार किया जाए तो एक द्रव्य अनन्त पर्यायों को... अनन्त गुणों को, भेद को एक अभेद द्रव्य **अभेदरूप से पी कर बैठा है, इसलिए उसमें भेद नहीं है।** ऐसी अभेद स्वभाव पर दृष्टि करना, वह दृष्टि कराने के लिये, भेद को समझाया गया है, भेद पर खड़ा रखने के लिये नहीं। तब उसे अभेद दृष्टि में आये, तब वह शुद्ध ज्ञायकभाव है, ऐसा ख्याल में आता है और वह समझे, तब उसे धर्म होता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

८ **श्री नियमसार, गाथा - ११०, श्लोक- १५६-१५९, प्रवचन - ४०९**
दिनांक - १२-०४-१९५५

यह नियमसार परम-आलोचना अधिकार। १०९वीं गाथा के कलश हैं।

आलोचना का स्वरूप कहते हुए, यह भगवान आत्मा एक समय में एक चिद्घन है। दृष्टिपूर्वक स्थिरता द्वारा परमपारिणामिक की समताभाव से स्थापित कर, उसे संवर, उसे निर्जरा और उसे आलोचना कहते हैं। कहो, समझ में आया? एक समय में पूर्ण परमात्मा कारण शुद्ध भगवान की महिमा को अन्तरज्ञान... अन्तर में देखना, उसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव संवर और आलोचना कहते हैं। इसलिए टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है। फिर बीच में जो पुण्य के विकल्प आवें... और आलोचना करना इत्यादि... वह तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य उसका उपहास करते हैं। अरे! यह व्यवहार क्या होगा यह? मानो मशकरी, खेकड़ी, हँसी (की है)। व्यवहार आचरण में विकल्प की कुन्दकुन्दाचार्य ने मशकरी का तिरस्कार किया है। समझ में आया? क्योंकि व्यवहार आलोचना, वह आलोचना ही नहीं है। भगवान पूर्णानन्द, पूर्ण... शुद्ध चैतन्यमूर्ति को शरीर, वाणी, मन का लक्ष्य छोड़कर, पुण्य-पाप की वृत्ति की रुचि छोड़कर और उसकी अस्थिरता छोड़कर स्वरूप में स्थिरता के परिणाम द्वारा देखे, वही आलोचना, वही संवर और वही मोक्ष का मार्ग है। इस व्यवहार-फ्यवहार का तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि इसकी मशकरी-मजाक की है। अब तू कहाँ आलोचना में... स्वरूप तो उसका कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। आलोचना तो उसे अन्तर में देखे, उसे कहा जाता है। उसमें फिर बीच में शुभविकल्प उठा, उसे आलोचना, उसे प्रतिक्रमण, उसे प्रत्याख्यान, उसे यह क्या आया? यह मात्र कथन किया है, यह वस्तु है नहीं। ऐसा पद्मप्रभमलधारिदेव ने कुन्दकुन्दाचार्यदेव के श्लोक में से यह मर्म और हार्द निकालकर कहा है। यह स्वयं ने तो कहा है न? उसका प्रश्न ही कहाँ है? समझ में आया? व्यवहार-फ्यवहार की मशकरी उड़ायी है। आता है, आता है तो क्या?

एक समय में चिद्घन परमात्मा, अनन्त आनन्द का पिण्ड, पूरा समुद्र, निधि पड़ा है।

ऐसे ध्रुवस्वभाव के सन्मुख होकर स्थिर होना, वही आलोचना, संवर और मोक्ष का मार्ग है। व्यवहार की तो मशकरी की है। कहो, समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने मशकरी की है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि व्यवहार-फ्यवहार-आलोचना क्या? उसका अर्थ? स्वभाव सन्मुख होना... अरे! यह आलोचना कैसी? ...आलोचना कौन कहता है? वह स्वरूप में है नहीं। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। इसलिए सम्यग्दृष्टि ही व्यवहार की मशकरी करता है। लो! समझ में आया? भीखाभाई!

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग को, केवली को होता है? मुनि को जरा विकल्प उठे, उसकी मशकरी करते हैं कि अब तू यह बीच में आया वह वस्तु है तू? उस चैतन्यसत्ता-सन्मुख की दृष्टि होकर स्थिर हो, वही वस्तु है, वही मोक्ष का मार्ग है, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना है। बाकी बीच में राग और व्यवहार की लकड़ियाँ डालीं, कहते हैं कि उस व्यवहार-फ्यवहार का हम आदर नहीं करते। है, जानते हैं परन्तु उसका तिरस्कार करते हैं कि वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। कहो, समझ में आया? वाडीभाई! देखो तो सही। कहा न? यह पद्म अर्थात् वह १०९ श्लोक लेना। अज्ञानी आदर करता है तो संसार में रुलता है। ज्ञानी आदर नहीं करते। चैतन्य शुद्ध आनन्दकन्द की अन्तर रुचि में आदर करता है तो संसार का नाश हो जाता है। किसी व्यवहार से नाश नहीं होता। कहो, समझ में आया?

इस प्रकार इस पद द्वारा १०९ श्लोक के न्याय से परमजिनयोगीश्वर कुन्दकुन्दाचार्य ने वास्तव में व्यवहार आलोचना के प्रपंच का उपहास किया है। पाठ में... है न? '**आलोयणमिदि जाणह**' ऐसा कहा था न? वही आलोचना है, वही आलोचना है। '**जो पस्सदि अप्पाणं**' भगवान आत्मा को अन्तरस्वभाव ज्ञान द्वारा देखे। '**समभावे संठवित्तु परिणामं आलोयणमिदि जाणह**' उसे ही आलोचना जान। '**परमजिणंस्स उवएसं**' भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र का यह उपदेश कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य व्यवहार की मशकरी उड़ाते हैं। तू और आलोचना-फालोचना कहाँ से कही? तुझे कुछ कहा नहीं। परन्तु अब तेरी... लकड़ी को घोड़ा कहते हैं या नहीं? लकड़ी हाथ में रखे और फिर घोड़ा कहे। वह घोड़ा है? लकड़ी है।

श्रोता : बालक कहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बालक कहता है। वह जानता है कि घोड़ा नहीं है। बिच्छू काटे तो घोड़े पर बैठकर कहीं बाहर नहीं जाया जाता। समझ में आया?

इस प्रकार इस पद्य द्वारा परम जिनयोगीश्वर ने.... अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य ने **वास्तव में व्यवहार-आलोचना के प्रपंच का उपहास किया है।** एक आलोचना... व्यवहार कहो। जितने प्रकार के व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार चारित्र, व्यवहार धर्म अर्थात्... विकल्प, व्यवहार आलोचना, व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार प्रत्याख्यान, व्यवहार भक्ति, सबकी मशकरी उड़ा दी है। व्यवहार-फ्यवहार कुछ वस्तु नहीं है। राग देखकर तुझे धर्म कह देना? राग देखकर तुझे आलोचना कह देना? राग देखकर तुझे प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान कहना? वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है, ऐसा पद्मप्रभमलधारिदेव १०९ श्लोक (गाथा) जो कुन्दकुन्दाचार्य ने कही है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य व्यवहार की मशकरी उड़ाते हैं। तेरे व्यवहार-फ्यवहार को हम धर्म नहीं कहते और वह धर्म का कारण भी नहीं है। समझ में आया? अब श्लोक १५६।

जयत्यनघ-चिन्मयं सहज-तत्त्व-मुच्चैरिदं,
विमुक्तसकलेन्द्रियप्रकरजातकोलाहलम्।
नयानय-निकाय-दूर-मपि योगिनां गोचरं,
सदा शिवमयं परं परम-दूर-मज्ञानिनाम्।।१५६।।

पद्मप्रभमलधारिदेव का श्लोक है। भगवान आत्मा कैसा है? एक समय में सहज तत्त्व कारण भगवान ध्रुवस्वभाव, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और शुक्लध्यान और केवलज्ञान होता है। ऐसा जो भगवान एक समय में शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु, **जो सकल इन्द्रियों के समूह से उत्पन्न होनेवाले कोलाहल से विमुक्त है,...** इन्द्रियाँ और इन्द्रियों की ओर के झुकाव का भाव ही उसमें नहीं है। अतीन्द्रियस्वरूप भगवान में इन्द्रियों की ओर का झुकाव और इन्द्रियाँ उसके स्वरूप में नहीं हैं। **सकल इन्द्रियों के समूह से उत्पन्न होनेवाले कोलाहल से...** विकल्प, पाँच इन्द्रिय से **विमुक्त है, जो नय और अनय के समूह से दूर होने पर भी...** मन लिया। मन में श्रुतज्ञान के विकल्प उठते हैं। पाँच इन्द्रियाँ लीं और मन लिया। समझ में आया? भगवान आत्मा इन पाँच इन्द्रियों से तो पार है, परन्तु मन है मन, वह श्रुतज्ञान का जो विकल्प और भेद पड़े, श्रुतज्ञान अन्दर आत्मा स्वभावसन्मुख होकर सम्यक् हुआ, उसमें राग से भेद पड़े, मन के सम्बन्ध से, ऐसे **जो नय और अनय के समूह से दूर होने पर भी...** जो मन का सम्बन्ध... व्यवहार से बद्ध हूँ, स्वभाव शुद्ध हूँ, पर्याय में अशुद्ध हूँ—ऐसा जो श्रुत नयज्ञान में नय का विकल्प अर्थात् रागमिश्रित विचार उठे, उससे आत्मा दूर है। वह आत्मा में है नहीं। नय भी नहीं और अनय भी नहीं। नय भी नहीं और कुनय भी नहीं। निश्चय

और व्यवहारनय के विकल्प वे मेरे नहीं हैं और कुनय तो उसमें है ही नहीं। क्या कहा, समझ में आया?

एक समय का सहज तत्त्व परमात्मा जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय, जिसके कारण सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, ऐसी सम्यग्दर्शन की पर्याय का ध्येय जो स्वयं भगवान आत्मा ध्रुव, निश्चय और व्यवहारनय के विकल्प उससे पर हैं। परनय, कुनय। यह शरीर मेरा, वाणी मेरी, कर्म मेरे, यह नहीं, इसे कहना—ऐसे जो कुनय, उनके समूह से दूर है।

भी योगियों को गोचर है, तथापि सम्यग्ज्ञानगम्य आत्मा अपने ज्ञान से तो गम्य है। नय और कुनय से दूर है, इन्द्रिय से दूर है परन्तु सम्यग्ज्ञान की चैतन्य ज्ञान की पर्याय से गम्य आत्मा है। **योगियों...** अर्थात् स्वरूप पवित्र है, उसमें अन्तर में जुड़ान करनेवाले को-धर्मी जीव को वह आत्मा गम्य है, ज्ञानवेदन गम्य है। **जो सदा शिवमय है,...** कैसा है भगवान? सदा कल्याणमूर्ति है। शिव-शिव। अनादि-अनन्त ध्रुव चैतन्यमूर्ति स्वभाव। ध्रुव, हों! यहाँ तो कारणपरमात्मा ध्रुव है न? शिवमय-कल्याण की मूर्ति है कि जिसके आश्रय से कल्याण होता है। कल्याण की मूर्ति आत्मा के आश्रय से कल्याण होता है। व्यवहार-फ्यवहार कल्याण की मूर्ति नहीं है कि उसके आश्रय से हो।

उत्कृष्ट है... जो भगवान परमात्मा कारणशुद्ध चैतन्य शिवमय प्रभु सर्व से उत्कृष्ट है। परमात्मा सिद्ध हो, वे भी उत्कृष्ट कारणपरमात्मा से होते हैं। कहो, समझ में आया? और उससे भी यह उत्कृष्ट है। क्योंकि सिद्धपने की पर्याय भी कारणपरमात्मा में से सिद्ध को समय-समय में प्रगट हुआ करती हैं। ऐसा भगवान सच्चिदानन्द त्रिकाल सत् और ज्ञान तथा आनन्द की मूर्ति सर्व से उत्कृष्ट है।

और जो अज्ञानियों को परम दूर है,... वचन अगोचर। उसको गोचर इसे दूर है **अज्ञानियों को परम दूर है,...** राग और पुण्य और व्यवहार से धर्म माननेवाले, एक समय की पर्याय के आश्रय से धर्म होगा, ऐसा माननेवाले, निमित्त के लक्ष्य से कल्याण होगा, ऐसा माननेवाले ऐसे अज्ञानियों को वह चैतन्य परम दूर है। कहो, समझ में आया? मोहनभाई! देखो! इसे गम्य है और इसे (गम्य नहीं है)। पहले समझना तो पड़ेगा या नहीं कि वस्तु कैसी है? समय-समय में परिणामधारा और चैतन्य त्रिकाल ध्रुव है। ऐसी दो बात बराबर पकड़नी चाहिए। समय-समय के परिणाम उस काल में और त्रिकाल स्वरूप है, ऐसे स्वभाव के आश्रय से धर्म होता है। बाकी धर्म नहीं होता। कहो, समझ में आया? यह कहते हैं।

अज्ञानियों को... आत्मा में अनादि से विपरीतता घुसायी है कि यह राग होवे तो होता है, पुण्य होवे तो होता है, व्यवहार होवे तो निश्चय होता है, निमित्त ऐसा होवे तो होता है, ऐसा आहार होवे तो होता है, पानी होवे तो होता है। धूल में भी नहीं होता। अब सुन तो सही। समझ में आया? यह अज्ञानी जिसने निमित्त से और विकल्पों से और पुण्य-पाप के भाव को भेद से अथवा भेदपने से आत्मा अभेदपने को प्राप्त होता है, ऐसा अज्ञानी के अज्ञानभाव से परम दूर है। सहज तत्त्व से परम दूर है।

ऐसा यह अनघ... अनघ=निर्दोष; मलरहित; शुद्ध। चैतन्यमय सहजतत्त्व... देखो! आया। सहज तत्त्व अर्थात् कारणपरमात्मा, द्रव्य, चेतन। कैसा है? चैतन्यमय। चैतन्यमय, उसके चैतन्य का स्वभाव गुणमय है। सहज तत्त्व चैतन्यमय। और सहज तत्त्व और चैतन्यमय? चैतन्य है, वह गुण है; तत्त्व है, वह गुणी है। यह गुण-गुणी त्रिकाल एकमेक पड़े हैं।

अनघ=निर्दोष; मलरहित; शुद्ध। चैतन्यमय सहजतत्त्व अत्यन्त जयवन्त है। अत्यन्त त्रिकाल ऐसा का ऐसा कारण भगवान स्थित है। उसके अवलम्बन से सम्यक्त्व, उसके अवलम्बन से चारित्र और उसके अवलम्बन से मोक्ष होता है, इसलिए उस तत्त्व की आलोचना (अधिकार में) महिमा की है।

श्लोक १५७।

शुद्धात्मानं निज-सुखसुधा-वार्धि-मज्जन्त-मेनं,
बुद्ध्वा भव्यः परम-गुरुतः शाश्वतं शं प्रयाति।
तस्मा-दुच्चै-रह-मपि सदा भावयाम्यत्यपूर्वं,
भेदाभावे किमपि सहजं सिद्धिभूसौख्यशुद्धम्।।१५७।।

अहो! ...कैसा है भगवान आत्मा? उस सम्यग्दर्शन में विषय अर्थात् सम्यग्दर्शन का ध्येय। **निज सुखरूपी सुधा के...** अपना आनन्द जो त्रिकाली, ऐसे आनन्दरूपी जो अमृत, उसके **सागर में डूबते हुए इस शुद्धात्मा को जानकर...** वह तो आनन्दमय है। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड पड़ा है। ध्रुव-ध्रुव। चैतन्य नित्य भगवान सदृशस्वभावी भगवान, एकरूप चैतन्य निज आनन्द के अमृत के सागर में डूबता अर्थात् अमृत के सागरस्वरूप। डूबता अर्थात् आनन्दमय। पानी में जैसे मनुष्य डूब जाए तो पानी ही दिखता है। समझ में आया? ऐसा एकाकार। इसी प्रकार आत्मा आनन्दमय है। आनन्द के सागर में आत्मा डूब गया है। डूब गया इसलिए आत्मा आनन्दमय एकाकार है। त्रिकाल सच्चिदानन्द अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु है।

इस शुद्धात्मा को जानकर... लो, ऐसे शुद्धात्मा को जानकर। ऐसे शुद्धात्मा को सम्यग्दृष्टि जानकर **भव्य जीव परमगुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;...** कौन? भव्य—लायक प्राणी। एक बात। और **परमगुरु द्वारा...** यह मिथ्यादृष्टि होगा परम गुरु द्वारा? ....पढ़ा हो या नहीं? सर्वत्र गप्प ही गप्प मारी है। **भव्य जीव परमगुरु द्वारा...** सम्यग्ज्ञानी धर्मात्मा गुरु द्वारा। अर्थात् निमित्त कौन है, यह बताते हैं। सम्यक्धर्म चैतन्य को प्राप्त करने में सम्यग्ज्ञानी ही उसे प्रथम निमित्त होते हैं। उसे पहली देशना ज्ञानी से ज्ञानपने का ज्ञान निमित्तरूप से उसे होता है। उस **परमगुरु द्वारा...** भव्य जीव ने। ऐसा आनन्दमय अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्डय व्यवहार के विकल्प वे सब दुःखरूप हैं। पंच महाव्रत के परिणाम, बारह व्रत का भाव सब दुःखमय है। उस दुःखमय के कारण आत्मा आनन्दमय हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता।

ऐसा कहते हैं कि **इस शुद्धात्मा को जानकर भव्य जीव...** जानकर। देखो! भव्य लिया, अभव्य तो जानता। **परमगुरु द्वारा...** अर्थात् भव्य को भी वापस निमित्त ज्ञानी का। और स्वभाव ही शाश्वत् सुख है। कहा न पहले? आनन्द में स्थित स्वभाव है। उस **द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;...** अन्तर आनन्दमय है, ऐसा भव्य जीव जानकर परम गुरु के निमित्त और शाश्वत् सिद्ध की जो पर्याय है, ऐसे शाश्वत् सुख को प्राप्त करता है। आनन्दमय त्रिकाल है, वह नित्य। उसमें से प्रगट पर्याय हो, उस शाश्वत् सुख की दशा को प्राप्त करता है।

इसलिए, भेद के अभाव की दृष्टि से... लो! भेद के अभाव की दृष्टि। क्या कहा? गजब बात है न! एक समय का भगवान, उसकी पर्याय है और यह गुण है और यह द्रव्य है, ऐसा भेद का ही जिसमें अभाव है। समझ में आया? **भेद के अभाव की दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है...** उसमें भेद ही नहीं है। यह और चैतन्यस्वभाव और यह आत्मा, यह गुण-गुणी का भेद ही नहीं है। ऐसे **भेद के अभाव की दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है...** सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सुख द्वारा शुद्ध है। **ऐसे किसी (अद्भुत) सहजतत्त्व को मैं...** वह तो त्रिकाल ऐसा ही है, ऐसा कहते हैं।

भेद के अभाव की दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है ऐसे किसी (अद्भुत) सहजतत्त्व (त्रिकाल) को मैं भी सदा अति-अपूर्व रीति से अत्यन्त भाता हूँ। कहो, समझ में आया? ऐसा स्वाभाविक सहजानन्द परमात्मा मैं, उसे भी सदा दूसरे शुद्धिपने को उस प्रकार प्राप्त हुए और मैं भी सदा **सदा अति-अपूर्व रीति से...** देखो! यह सदा। **सदा अति-अपूर्व रीति से...** अपूर्व अर्थात् निश्चय को मुख्य करके, स्वभाव को मुख्य करके **अति-अपूर्व रीति से...** अनन्त काल में नहीं भावना की हुई, इस प्रकार से अत्यन्त। एक तो

सदा अति-अपूर्व रीति से अत्यन्त... इतने शब्द प्रयोग किये हैं। सम्यग्दृष्टि को एक समय में पूर्ण सिद्ध चैतन्य को दृष्टि में लिया, उसकी मुख्यता किसी समय टलती नहीं। परन्तु अपूर्व रीति से, अनन्त काल में कोई इस प्रकार से पकड़ी नहीं, उस रीति से **अत्यन्त भाता हूँ।** मुनि हैं न? स्वभाव में एकदम एकाग्र होता हूँ और उस एकाग्रता की आलोचना द्वारा ही मुझे मुक्ति होगी। दूसरी मुक्ति की कोई रीति या उपाय नहीं है। यह १५७ हुआ।

१५८ श्लोक

निर्मुक्त-सङ्ग-निकरं परमात्म-तत्त्वं,
निर्मोहरूप-मनघं परभाव-मुक्तम्।
सम्भावयाम्यहमिदं प्रणमामि नित्यं,
निर्वाण-योषिद-तनूद्भवसम्मदाय ।।१५८।।

सर्व संग से निर्मुक्त,... यह अन्तरतत्त्व तो सर्व संग से—संसार की पर्याय से भी मुक्त है। संसार अर्थात् एक समय की पर्याय, हों! स्त्री-पुत्र, वह संसार नहीं है। वह उदयभाव, एक समय का उदय भाव... त्रिकाल भगवान सम्यग्दर्शन का विषय है। ओहोहो! संसार में बहुत जाते नहीं। लड़का होवे तो विवाहिका को... मानो 'थाल भरयो रे मोती...।' इसमें तो एक भी मोती न हो। परन्तु... महिमा आवे ऐसा नहीं, हों! यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जिसे जिसकी रुचि, उसे बहुत महिमावन्त करता है। वह खोटा मनाया, यह तो सच्ची चीज़ है।

कहते हैं कि **सर्व संग से निर्मुक्त,...** भगवान आत्मा राग का विकल्प, तीर्थंकरपने की गोत्र का कारण राग से मुक्त है, स्वरूप में कुछ है नहीं। ऐसा चैतन्य भगवान ही सम्यग्दर्शन का कारण है, दूसरा कोई कारण-फारण नहीं है। **निर्मोहरूप,...** जिसमें जरा भी मोह नहीं है। रागादि परसन्मुख सावधान होना, वह स्वरूप में नहीं है। **अनघ...** सदा निर्दोष है, पुण्य-पाप के परिणामरहित है। उसमें पुण्य और पाप दोनों स्वरूप में नहीं है। **और परभाव से मुक्त...** विभाव नामक स्वभाव की कोई भी विकारी दशा, उससे त्रिकाल मुक्त है। **ऐसे इस परमतत्त्व को...** लो! **ऐसे इस परमतत्त्व को...** एक समय में मेरा भगवान, उसे **मैं निर्वाणरूपी स्त्री से उत्पन्न होनेवाले...** किसलिए नमन करता हूँ? किसलिए ऐसे स्वभाव के सन्मुख ढला हूँ? मुक्तिरूपी स्त्री, परमानन्दरूपी पर्यायरूपी मुक्ति, उस **स्त्री से उत्पन्न होनेवाले अनंग सुख...** अनंग—अतीन्द्रिय सुख। अनंग। अंग का सुख, वह जड़ का; अनंग सुख वह चैतन्य का। कहो, समझ में आया? यह इन्द्रियाँ और जड़ के अंग का स्पर्श करके कल्पना मानना, वह जड़ सुख, दुःख है।

मेरे **परमतत्त्व को मैं निर्वाणरूपी...** मेरी परिणति, वीतरागस्वरूप शुद्ध अवस्थारूपी मुक्ति, उस **स्त्री से उत्पन्न होनेवाले अनंग सुख के लिए नित्य संभाता हूँ (-सम्यक्रूप से भाता हूँ)...** हमेशा, नित्य समभाता हूँ। वे खाते कब होंगे और पीते कब होंगे ? यह लिखने के समय विकल्प उठता है या नहीं ? नहीं। कौन कहता है ? हम तो स्वभाव सन्मुख में ही पड़े हैं। एक समयमात्र भी सम्यग्दृष्टि का ध्येय परमात्मतत्त्व से एक समय हटता नहीं। कहो, समझ में आया ? सेठी, क्या कहते हैं ? **नित्य संभाता हूँ...** यह लिखने के समय तो विकल्प आया है। गौण कर दिया। नहीं, वह नहीं। हम तो यह। यह है अल्प, वह नहीं। पूर्ण स्वभाव प्रगटरूप से ही है, ऐसे स्वभाव को नित्य सम्यक्रूप से भाता हूँ **और नमन करता हूँ।** और उसमें ही मेरा प्र—विशेष... हो, उसे नमस्कार करता हूँ। स्वभाव चिदानन्द को। यह इसका नाम आलोचना, इसका नाम संवर, इसका नाम प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान है। भीखाभाई ! कितने प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान देखो ! लोगों ने कितने प्रतिक्रमण किये और कितनी सामायिक की। अरे ! एक भी सामायिक नहीं। सुन तो सही ! एक सामायिक होवे और मुक्ति हुए बिना रहे, ऐसा नहीं होता। यह **(-सम्यक्रूप से भाता हूँ)...** अर्थात् कि एकाग्र होता हूँ। **और नमन करता हूँ।**

१५९वाँ श्लोक।

त्यक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं,
चिन्मात्रमेक-ममलं परिभावयामि।
सन्सार-सागर-समुत्तरणाय नित्यं,
निर्मुक्तिमार्गमपि नौम्यविभेदमुक्तम् ।।१५९।।

क्या कहते हैं ? **निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर...** निजभाव अर्थात् स्वभावभाव। चैतन्यस्वभावभाव। ऐसे अपने त्रिकाली परमानन्द भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव पुण्य, विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय के भाव को छोड़कर **एक निर्मल चिन्मात्र को मैं भाता हूँ।** एक निर्मल ज्ञानमात्र सर्वज्ञस्वरूप ऐसा भगवान, उसकी मैं अन्तर में भावना करता हूँ। **संसारसागर को तर जाने के लिए,...** संसार उदयभाव, विकारभाव ऐसे सागर के विकार के उदय के विकल्पों के अनेक प्रकार को **तर जाने के लिए, अभेद कहे हुए (-जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे) मुक्ति के मार्ग को...** यह निर्वाण है न ? आज नियमसार है न ? ....अभेदमार्ग कहा।

अभेद कहे हुए (-जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे)... समझ में आया ? देखो !

वह है न ? '**आलोयणमिदि जाणह परमजिणंस्स उवएसं**' इसमें से निकाला है। भगवान ने तो मोक्ष का मार्ग अभेद एक ही कहा है। अभेद पूर्ण परमात्मा की ओर अभेद श्रद्धा, अभेद का ज्ञान और अभेद में स्थिरता, यह एक ही मोक्षमार्ग है। बीच में जो विकल्प उठे, उन्हें भगवान मोक्षमार्ग नहीं कहते। समझ में आया ? इस व्यवहाररत्नत्रय को मोक्षमार्ग नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। सेठी ! **अभेद कहे हुए...** यह इसमें से निकाला है न ? '**आलोयणमिदि जाणह परमजिणंस्स उवएसं**' उसे-अभेद को ही आलोचना कहा है। भेद पड़े, उसे आलोचना नहीं कहा। इसलिए मोक्ष का मार्ग तो भगवान ने अभेद कहा है। एक चैतन्यसत्ता के स्वरूपसन्मुख की रुचि, प्रतीति, रमणता... उसमें एकपना होना, वही एक मोक्ष का मार्ग है। बीच में भूमिकाप्रमाण व्रत, तप के विकल्प आवें, वे कहीं मोक्षमार्ग नहीं है।

अभेद कहे हुए (-जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे) मुक्ति के मार्ग को भी मैं नित्य नमन करता हूँ। दो लिये। त्रिकाल को भाता हूँ और ऐसे मुक्तिमार्ग को भी मैं नित्य नमन करता हूँ। मेरा अभेद स्वभाव चैतन्य है। देखो ! एक मोक्षमार्ग अभेद मोक्षमार्ग। व्यवहारमोक्षमार्ग और निश्चयमोक्षमार्ग, ये दो कथनमात्र है। वस्तु ऐसी है नहीं। एक ही अभेद मार्ग चैतन्यसत्ता को अवलम्ब कर जो स्थिरता श्रद्धापूर्वक करना, वह एक ही मोक्षमार्ग है। कहो, समझ में आया ? राजेन्द्रकुमारजी ! सुनने को मिलता है, इतने भाग्यशाली हैं या नहीं ? ...कहो समझ में आया ?

अभेद कहे हुए मुक्ति के मार्ग को... भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र ने मोक्ष का मार्ग अभेद एक ही कहा है। आदरनेयोग्य एक ही है और वही मार्ग है। बाकी कथनमात्र विकल्प आते हैं, उसे आलोचना कहना, वह तो कथनमात्र है। यह स्वयं ने निकाला है। ऐसे **मुक्ति के मार्ग को भी मैं नित्य नमन करता हूँ।** अन्तर झुकाव करके उसमें स्वभावसन्मुख होकर, झुकाव करके परिणमित होना, उसे यहाँ नमन कहा जाता है। बात जरा समझने में नहीं आती। ऐई ! ...भाई ! देखो यह मोक्ष का मार्ग ! यह हरितकाय की दया पालकर मोक्ष का मार्ग किसप्रकार होगा ? दूसरे को आहार देना, नहीं खाया, नहीं पिया। अब जड़ की पर्याय आत्मा में कहाँ घुस गयी थी ?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खा सकता है कि खाना-पीना (आवे) ? खावे कौन और पीवे कौन ? वह तो जड़ की पर्याय के कारण से जड़ का काल परिणमता है। आत्मा उसे

जाननेवाला है, उसे करने-फरनेवाला नहीं है। अरे! उस ओर का विकल्प उठे, वह भी स्वरूप में नहीं है। स्वरूप में-त्रिकाल में तो नहीं परन्तु अभेद मार्ग में वह बात नहीं है। कहो समझ में आया? एक समय में भगवान का आश्रय... मार्ग है... परन्तु अभेद मुक्ति का मार्ग है, उसे मैं नमन करता हूँ। १०९ गाथा हुई। लो! ११०वीं गाथा।

कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो।
साहीणो सम-भावो आलुंछण-मिदि समुद्दिट्ठं।।११०।।

जो कर्म-तरु-जड़ नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है।
स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है॥११०॥

श्लोकार्थ-अन्वयार्थ : कर्मरूपी वृक्ष का मूल छेदने में समर्थ ऐसा जो समभावरूप स्वाधीन निज परिणाम... अर्थात् त्रिकाली पारिणामिकभाव। समझ में आया? देखो! इस परिणाम में से त्रिकाली परिणाम... है। एकरूप परमस्वभाव पारिणामिकभाव, वह **कर्मरूपी वृक्ष का मूल छेदने में समर्थ ऐसा जो समभावरूप स्वाधीन निज परिणाम उसे आलुंछन कहा है।**

यह, परमभाव के स्वरूप का कथन है। परमभाव, चैतन्यस्वभाव, परमपारिणामिक।... कहा है न? परिणमे इसलिए पारिणामिक, आता है न? पंचास्तिकाय में... है। उस परिणाम को पारिणामिक। परिणाम अर्थात् त्रिकाली पारिणामिकभाव। त्रिकाल परमपारिणामिकभाव, उसका इसमें कथन और उसके आश्रय से आलोचना, संवर (होता है)। देखो! मोक्षमार्ग में आलोचना में यह चार गाथा इतनी ऊँची डाली है कि जो वर्तमान का मूल स्वभाव है। वर्तमान धर्म की पर्याय का मूल स्वभाव है और स्वभाव के मूल में से इन सब धर्मों की दशा प्रगट होती है। इसलिए आलोचना में इस प्रकार के चार बोल भगवान ने कहे हैं। इस बात का वर्णन किया है।

भव्य को... भव्य—योग्य जीव को **पारिणामिकभावरूप स्वभाव होने के कारण परमस्वभाव है।** कहो, समझ में आया? क्योंकि उसे प्रगट होने के योग्य है, इसलिए भव्य को... अभव्य का स्वभाव तो ऐसा ही है, परन्तु प्रगट होने के व्यवहार के योग्य नहीं है। पारिणामिक चैतन्यकन्द भगवान स्वभावभाव, त्रिकाल भाव ऐसा जो **स्वभाव होने के कारण परमस्वभाव है। वह पंचम भाव...** लो! वह **भव्य को पारिणामिकभावरूप स्वभाव...** एकरूप चैतन्यस्वभाव ज्ञायकभाव, वह पंचम भाव। भाव पाँच प्रकार के हैं न? उदय आदि चार विभावस्वभाव को अगोचर है। ओहो! क्या कहते हैं? पंचम एकरूप चैतन्य परमपारिणामिक

स्वभावभाव; व्यवहाररत्नत्रय जो उदयभाव है, उससे अगम्य है। इससे प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। और यहाँ चार को वापस विभाव कहा। (उदय), उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक यह चार विभावस्वभाव है। अर्थात् विशेष पर्यायरूप है।

उदयभाव, वह विकार पर्यायरूप है; उपशम है, वह निर्विकारी पर्यायरूप है, सम्यग्दर्शन.. क्षयोपशम है, वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र को आनन्द आदि अथवा वीर्य आदि की किंचित् विकार और किंचित् अविकार की अवस्थारूप है; क्षायिक पूर्ण निर्विकाररूप अवस्था है, परन्तु है वह अवस्था।

यहाँ कहते हैं कि भावना विशेष भावरूप है। इसलिए विशेष के आश्रय से स्वभावभाव गम्य नहीं होता, इसलिए चार विभावस्वभाव को अगम्य है। ओहो! टीका क्लिष्ट की है (ऐसा) वे भाई कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं परमस्वभावभाव, वह यह राग है, इसलिए व्यवहार विकल्प है, इसलिए मैं इसे प्राप्त कर सकता हूँ—हराम है, वस्तु में ऐसा नहीं है। पर्याय उपशम हुई, इसलिए अब मुझे क्षायिक होगा, उपशम के आश्रय से क्षायिक होगा—हराम है। क्षयोपशम ज्ञान हुआ, उसके आश्रय से क्षायिक होगा, क्षायिक आदि पर्याय हुई और भविष्य में होगी वह होकर आश्रय से और असत्य बात के आश्रय से मुझे केवलज्ञान होगा, यह बात है नहीं। मोहनभाई! भाई! यह तो निवृत्ति लेकर समझना चाहे तो सब समझ में आये, ऐसा है, हों! संसार का करना या यह करना? कहो, समझ में आया?

कैसा है भगवान परमस्वभाव? भगवान परमस्वभाव। परमपारिणामिकभाव की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, वह पर्याय में पर्याय के आश्रय से आत्मा को लाभ नहीं होता। यह जो चार विभाव स्वभाव को अगम्य है। कहो, सेठी! समकित को अगम्य है, ऐसा कहा। और ऊपर कहा कि गम्य है, वापस आगे कहेंगे कि गम्य है। समझ में आया? समकित को अगम्य है, ऐसा कहने का आशय कि सम्यग्दर्शन को तो गम्य है, परन्तु उस पर्याय के आश्रय के... परमपारिणामिकभाव प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? जैसे क्षायिक की पर्याय... क्षयोपशमभाव, उसमें से क्षायिक पर्याय प्रगट हो, ऐसा नहीं है। वह तो त्रिकाल स्वभाव के आश्रय से होती है। इसलिए उपशम, क्षयोपशम और औदयिकभाव से अगम्य है और क्षायिकभाव चारित्र का तो साधक को होता नहीं। और जिसे होता है, उसका लक्ष्य करने जाए तो स्वयं को लाभ होता नहीं। समझ में आया?

उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक, चार पर्याय है और पंचम भाव त्रिकाल, वह

गुण है। वह स्वभाव त्रिकाल है, नित्य है और चार हैं, वे पर्यायें हैं। पर्याय के आश्रय से परमपारिणामिकभाव प्रगट नहीं होता, ऐसा कहने के लिये चार विभाव स्वभाव को अगोचर है, ऐसा कहा। क्षायिकभाव को भी विभाव कहा। वाडीभाई! वह विशेष पर्याय है। परमपारिणामिक तो त्रिकाल सामान्य स्वभाव है। सामान्य स्वभाव है। एक समय का सामान्य गुण सदृश ध्रुव, वह... पर्याय प्रगट होने का कारण है। यह चार पर्यायें भी विशेष भाव है, वह स्वभाव प्रगट होने का कारण नहीं है। सेठी! सेठी उलझन में आता है। ऐसे वृद्ध व्यक्ति को...

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र विभावस्वभाव कहकर निकाल डाला। किस अपेक्षा से निकाला, खबर है? विभावस्वभाव, वह विशेष पर्याय है। क्षायिकभाव भी वर्तमान विशेष दशा है, कहीं सामान्य त्रिकाल स्वभाव नहीं है; और त्रिकाल स्वभाव के अवलम्बन बिना किसी का तीन काल में कल्याण हो, ऐसा नहीं है; इसलिए यह कहते हैं। सर्वज्ञ भगवान का लक्ष्य करने जाए क्षायिक पर्याय का, तो विकल्प उठते हैं। समझ में आया? ओहो! भीखाभाई!

एक ही कारण द्रव्य। उदयादि चार विभावस्वभाव को अगोचर है। उन्हें तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में पाँच भाव के जीव का स्वतत्त्व कहा है। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तथा पारिणामिक। पाँचों ही जीव के स्वतत्त्व हैं परन्तु चार पर्यायरूप तत्त्व और पारिणामिक गुणरूप जीवतत्त्व है, ऐसा कहकर यह... भी यहाँ कहते हैं कि मोक्ष का मार्ग, वह चार पर्याय—अवस्था है। उसके आश्रय से बढ़ता नहीं, उत्पन्न नहीं होता, टिकता नहीं। समझ में आया? यह आलोचना—यह आकिंचन, यह संवर के अधिकार में... यह गत काल का प्रतिक्रमण, भविष्य का प्रत्याख्यान और वर्तमान का आलोचन आता है न? प्रतिक्रमण में आता है न? परन्तु वह क्या है? सहारा है। एक समय की चैतन्यसत्ता भगवान परमात्मा स्थित है, उसके ही आश्रय से संवर होता है। संवर हुआ, उसके आश्रय से संवर नहीं होता।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह किसकी बात करते हैं? यह अवस्था किस प्रकार करेगा? स्वभाव की श्रद्धा, इसके अतिरिक्त दूसरी श्रद्धा से हो, ऐसा नहीं है। जीव दया करे, व्रत पाले, उस क्रिया अवस्था में आवे, ऐसा है नहीं। उसकी तो बात चलती है कि भाई! इस अवस्था में आवे। परन्तु कब आवे? परमस्वभावभाव की श्रद्धा करे तो आवे। बाकी कुछ क्रियाकाण्ड करे, व्रत, तप, दया, दान करे, तप करे, खाने-पीने की क्रिया में जागृति करे, उस अवस्था में

आवे, यह तीन काल में बने ऐसा नहीं है। वह तो उदय के राग की क्रिया है। उसमें कहाँ आत्मा था और धर्म था? समझ में आया? ऐसा कहते हैं, अवस्था होती है, तब होती है। अपने को क्या करना? यह किसकी बात चलती है? यह चैतन्यस्वभाव एक समय में पूर्ण है, उसकी श्रद्धा कर और व्यवहार-वर्तमान पर्याय के आश्रय से धर्म नहीं होता, ऐसी प्रतीति कर। कहो, समझ में आया?

वह पंचम भाव... त्रिकाल स्वभाव। यह गाथा किसे सुनाते हैं? शिष्य को जानने के लिये कहते हैं। ऊपर आ गया न? समझ में आया न? यह... आलोचन किया है। ...कहा था। कहते हैं ऐसा आया न? कहते हैं, परन्तु किसके लिये कहते है? स्वभाव समझना चाहता है और धर्म होना चाहता है, उसे ऐसा कहा है कि यदि तुझे संवर करना हो, धर्म करना हो, मुनिपना प्रगट करना हो तो इस परम पंचम भाव के अवलम्बन से होना है, बाकी तीन काल में किसी के कारण से होनेवाला नहीं है। कहो, समझ में आया? यह दूसरी विपरीतता लेकर बैठा है न? धीरे-धीरे कषाय मन्द करूँगा तो होगा। आहार-पानी अच्छे खाऊँगा तो होगा, घी और पानी अच्छा पीऊँगा तो होगा, घी और पानी पीने से आत्मा... होगा। कहो, समझ में आया? ऐई! सेठी! ....आकुलता का पार नहीं होता। यह करूँ... यह करूँ... यह लूँ... यह लूँ... यह लूँ... यह तो ज्ञानस्वभाव का अवलम्बन हुआ, पश्चात् सहज इस प्रकार की भूमिका का विकल्प हो, पूर्व के पुण्य के योग से ऐसा ही निमित्त का योग होता है। यह तो आकुलता का पार नहीं। अब ऐसा करूँ... अब ऐसा करूँ... कहो, समझ में आया?

चार विभावस्वभावों को अगोचर है। इसीलिए वह पंचम भाव उदय, उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम.... समझ में आया? उदीरणा सब। उदीरणा वह तो उपशमभाव, उपशम अर्थात् उदीरणा। **क्षयोपशम ऐसे विविध विकारों से रहित है।** क्षय को भी वापस विकार कहा। एक तो विभावस्वभाव कहा। चैतन्य सत्ता की दृष्टि कर, ...कर, रुचि कर। बाकी सब समझ में आये जैसा है। बाकी धर्म के साधन-फाधन कोई है नहीं। वह करे, तब निमित्त को और विकल्प को व्यवहार आरोप आता है, नहीं तो व्यवहार आरोप भी नहीं आता।

पंचम भाव... भगवान आत्मा कर्म के उदयरहित, उदीरणारहित, क्षयरहित या कर्म की उदीरणा करे, उसका पुरुषार्थ करके ऐसा करे, ऐसा कुछ नहीं है, कहते हैं। परमपारिणामिकभाव अकेली सत्ता पड़ी है। **उदय, उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम ऐसे विविध विकारों...** विकार अर्थात् विशेष कार्य। मलिनभाव, ऐसा नहीं लेना। विविध प्रकार के ऐसे वि-कार्य, उससे रहित परमपारिणामिकभाव त्रिकाल कहा है। **इस कारण से इस एक को परमपना है,...** इस

कारण से इस एक को परमपना है। एक को अर्थात् पंचम भाव। पंचम भाव, वह स्वभावभाव। चार भाव, यह विभावभाव। पंचम भाव, वह अविकारी भाव अर्थात् विविध प्रकार के कार्यरहित भाव। और ये चार भाव वे विविध प्रकार के कार्यवाला भाव। अब **इस कारण से इस एक को परमपना है,...** पंचम भाव, एक स्वभावभाव, (उसे परमपना है)।

शेष चार विभावों को अपरमपना है। राग, पुण्य-पाप के परिणाम तो अपरम हैं, उपशमभाव भी अपरम हैं; क्षयोपशम, क्षायिक भी अपरम है। तीन-तीन... की है। एक ओर स्वभावभाव, तब एक ओर चार विभावभाव पर्याय, एक ओर पंचम भाव विविध विकाररहित। विकार अर्थात् कार्यरहित, तो चार भाव पर्याय के कार्यवाले; एक ओर पंचम भाव (को) परमपना है, तब चार भाव को अपरमपना है। कहो, समझ में आया? देखो! इसका नाम भेदज्ञान है। मोहनभाई! समझ में आया या नहीं? बहुत सूक्ष्म। भाई एकत्रित हों, तब इसमें से कुछ बात निकलती है? पंचम भाव की और पारिणामिकभाव की। भाई! अब यह क्या करना? यह... लेकर बैठे हैं, अब अपने क्या करना? इसमें पैसा निकालकर कुछ दान में डालना, ऐसा विचार तो किसी समय आता होगा। भाई! वह ले जाता है, इसकी अपेक्षा डाल न कुछ। बाकी तो सब कैसे रखना और कैसे बाँटना? यह विभाजन करते हैं, देखो! समझ में आया? सेठी!

एक समय में भगवान आत्मा पंचम भाव स्वभावभाव, एक बात। वह सम्यग्दर्शन का आश्रय है। चार भाव विभावभाव, वे सम्यग्दर्शन का आश्रय नहीं है। पंचम भाव विविध प्रकार के कार्यरहित भाव, वह तो पर्यायरहित है। त्रिकाल द्रव्य है। वह कार्य की पर्याय, हों! वह ध्रुवपर्याय तो अन्दर पड़ी है। ध्रुवपर्यायसहित का परमपारिणामिकभाव। द्रव्य त्रिकाल, गुण त्रिकाल, और पर्याय ध्रुव त्रिकाल, उसे यहाँ पंचम भाव कहा जाता है। ध्रुव कारणपर्याय वह पूरा पंचम भाव नहीं है परन्तु पंचम भाव पूरा करे, वहाँ इसके द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आ जाते हैं। कहो, समझ में आया? यह पंचम भाव नहीं... पारिणामिकभाव का अंश पर्याय।

एक पारिणामिकभाव के तीन अंश हैं। द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य सामान्य शक्ति का पिण्ड, गुण शक्तिरूप, उसकी पर्याय विशेष ध्रुव। यह तीन होकर परमपारिणामिकभाव है। वह परमपारिणामिकभाव तीन होकर स्वभाव और उदयादि चार भाव होकर विभाव। ये तीन होकर परमपारिणामिकभाव उत्पाद-व्यय के कार्यरहित और चार भाव, वे विविध कार्यवाले। यह परमपारिणामिकभाव, वह एक परमपना, वे द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों होकर और चार विभाव वह अपरमपना, उसे कहीं उत्कृष्टता है नहीं। देखो! ऐसे स्वभावसन्मुख की दृष्टि और

रुचि करना। पहले उसे सुनना, उसका निर्णय करना और स्वभावसन्मुख होना, इस हेतु के लिये यह कहा जाता है। इसके अतिरिक्त यह करूँगा तो ऐसा होगा, यह करूँगा तो ऐसा होगा, यह सब रण में शोर मचाने जैसी बातें हैं। ...भाई! यह ऐसा करूँगा तो ऐसा होगा, फिर ऐसा करूँगा तो ऐसा होगा, इतने व्रत पालूँगा, इतनी तपस्या करूँगा, इतने अपवास करूँगा, इतनी कषाय को मन्द करूँगा। कहते हैं कि सब बातें भले हो, परन्तु स्वभाव को प्राप्त करने का तो यह एक ही उपाय है, दूसरा कोई उपाय है नहीं। कहो, समझ में आया?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्रिया निकाल नहीं डाली। यह सिद्ध होता है कि वीतरागी पर्याय जो क्रिया होती है, उसका आश्रय लेनेयोग्य नहीं है। इसलिए अस्ति स्थापित होती है परन्तु उसका आश्रय लेनेयोग्य नहीं है। सेठी! यह आश्रय तो अपने त्रिकाल का आश्रय लेने योग्य है और विकार की क्रिया है, परन्तु वह विभाव विकार है। उसका आश्रय लेना और उससे शान्ति-बान्ति मिले, ऐसा नहीं है। ऐसा स्थापित होता है। यह है वह दोषवाला है और यह है वह लाभदायक है। लाभदायक कौन और लाभदायक कौन नहीं, इन दो की अस्तिता सिद्ध होती है। कहो, समझ में आया?

समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव,... अब कहते हैं... कर्म की तीन प्रकार से पहिचान दी। स्वभाव, विभाव, विविध कार्यरहित, विविध कार्यवाला यह चार भाव और परमभाव... अब **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के...** आठों कर्म के जहररूपी वृक्ष। देखो! इसमें से तीर्थंकरगोत्र भी आता होगा या नहीं? तीर्थंकरगोत्र विषवृक्ष होगा या नहीं? या अमृत का जड़ वृक्ष होगा? १४८ प्रकृति के जहर का वृक्ष है। मिट्टी, धूल है। **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में समर्थ...** मूल... इसे कहते हैं। मूल वह तो फिर से उगे। खेत में... होती है न? ...गहरी न खोदे तो फिर वापस छह महीने में-बारह महीने में फिर उगे। यह तो **समस्त कर्मरूपी...** जहर के वृक्ष। अमृत का कुण्ड भगवान है। आत्मा अतीन्द्रिय अमृत का पिण्ड है। उसकी दृष्टि से, उसकी दृष्टि के आश्रय करनेयोग्य परमपारिणामिकभाव के आश्रय से **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव,...** लो! ऐसा यह परमभाव। पहली यह समझ तो करे। इसके ज्ञान में इस प्रकार से ज्ञेय होनेयोग्य है, ऐसा तो जाने और दूसरा ज्ञेय करे, उसमें कुछ लाभ है नहीं।

त्रिकाल निरावरण निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष तीव्र

मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि को, सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी, अविद्यमान ही है... क्या कहते हैं ? कि यह परमभाव एक समय में भगवान पूर्ण आनन्द अमृत का कन्द, विविध पर्याय के कार्यरहित परमभाव, स्वभावभाव और उत्कृष्ट, उस **त्रिकाल निरावरण निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से...** आत्मा त्रिकाल निरावरण है। ऐसा निज भगवान, उसके स्वरूप की जिसे श्रद्धा नहीं है, ऐसे स्वरूप की श्रद्धा नहीं करता और पुण्य तथा व्यवहार से धर्म होता है, ऐसी श्रद्धा करता है। निमित्त ऐसा अच्छा होवे तो लाभ होगा, ऐसी मिथ्यादृष्टि, ऐसे स्वरूप की श्रद्धा के प्रतिपक्ष, **तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण...** पहले स्वरूप की श्रद्धा प्रतिपक्ष है, इसलिए तीव्र कर्म मिथ्यात्व का उदय कहा है। विपरीत श्रद्धा की, इसलिए कर्म का उदय कहा है। न करे तो कर्म का उदय अपने आप खिर जाता है। पहली बात की है न भाई!

निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष.... .... है विपरीत श्रद्धा, ऐसा **तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि को,...** विपरीत दृष्टिवाले को पुण्य-पाप और निमित्त, व्यवहार और विकल्प और यह होवे तो, यह होवे तो लाभ होगा। ऐसी कु-दृष्टिवाले को **सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी,...** परमभाव है तो सही, परन्तु उसे नहीं है। क्योंकि अन्तर में माहात्म्य आया नहीं, इसलिए उसे नहीं है। है तथापि नहीं है। समझ में आया? क्योंकि विद्यमानपना उस राग को, पुण्य को, विकल्प को और एक समय की पर्याय को माहात्म्य देता है। एक समय की अवस्था... विकल्प, निमित्त एक समय की अस्तिता, उसे माहात्म्य देता है, इसलिए इसे स्वभाव का माहात्म्य नहीं है। उसकी पर्याय में ऐसा परमपारिणामिकभाव है, यह बात बैठती नहीं, इसलिए नहीं है। है तो सही। कहीं चला नहीं जाता। कहो, समझ में आया? ओहोहो!

स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण... अर्थात् उसमें मिथ्यात्व कर्म का उदय और उसमें परमपारिणामिक की ओर जुड़ता परमस्वभावभाव है, उसका माहात्म्य नहीं करता और माहात्म्य सब एक समय का उघाड़, इतना ऐसा हुआ, इतना ज्ञान हुआ, यह तो राग घटा, यह तो पुण्य किया, इसका माहात्म्य करे, ऐसा कुदृष्टि, मिथ्यादृष्टि, उसे सदा निश्चय से विद्यमानपना पारिणामिकभाव है, तथापि अविद्यमान है तथापि उसकी दृष्टि में आता नहीं, इसलिए उसके लिये तो नहीं है। उसके लिये नहीं है। समझ में आया?

एक समय की सत्ता पूर्ण शुद्ध है, उस ओर की श्रद्धा के झुकाव बिना, उसकी श्रद्धा का

जोर वर्तमान क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय या राग या संयोग अनुकूल, उसकी अस्ति को स्वीकारता है। ऐसी कुदृष्टिवन्त को परमपारिणामिकभाव जो कहा, वह अस्तिधराता होने पर भी उसके लिये अस्ति नहीं है। उसके लिये तो वर्तमान अवस्था राग और निमित्त ही अस्ति धराता है। बाकी सब उसे व्यर्थ लगता है। कहो, समझ में आया? सेठी! गाथा तो बहुत अच्छी है। ओहोहो!

विपरीत श्रद्धा, विकल्प की श्रद्धा, राग की श्रद्धा और निमित्त के अनुकूलता की श्रद्धा और सन्मुख वर्तमान पर्याय पर जिसकी बुद्धि और स्वभावभाव पर्याय कार्य है, राग में विकारी उदय भाव है, निमित्त पर है, उसकी सत्ता का उत्साह, उसकी सत्ता का उत्साह, उसकी सत्ता का उल्लास, उसकी सत्ता की महिमा और माहात्म्य (आता है), परन्तु परम स्वभावभाव का माहात्म्य नहीं आता। उसे विद्यमान अस्ति धराता होने पर भी वह परमभाव अविद्यमान ही है। विद्यमान पूँजी से अपूँजीवाला दरिद्र है। कहो, समझ में आया? पैसा तो घर में है, परन्तु मेरा पिता खर्च नहीं करने देता। इसलिए हम तो भाई पूँजी होने पर भी कंगाल हैं। नहीं कहते? कहो, समझ में आया? ऐसा ही कहते हैं। यह तो कहते हैं, यह कहता नहीं, हम कहते हैं। तेरी पूँजी का तुझे पता नहीं है और भिखारीपने का तुझे पता है। जहाँ हो वहाँ कि अरे! ...किया, राग मन्द करके क्षयोपशम ज्ञान किया। ओहोहो! अब ग्यारह अंग और नौ पूर्व का... अनन्त बार किया। उसमें क्या भला हुआ? समझ में आया? और राग की मन्दता कर-करके कष्ट सहन करके, बापू! कषाय पतला किया है और हमने कोमल प्रकृति की है। पहली प्रकृति... पहले नहीं थी। हमें दिलावे तो फुंफकार मारते थे, ऐसा कितने ही कहते हैं। अब हमारी प्रकृति कोमल है। परन्तु क्या किया? धूल किया कोमल हुई उसमें? क्या किया तूने? उसकी सत्ता, उसका माहात्म्य, उसका उत्साह, उसका प्रमोद उसे आता है परन्तु स्वभाव एक समय में पूर्ण सत्ता चैतन्य परमभाव पड़ा है। उसका माहात्म्य और रुचि— उत्साह नहीं आता। इसलिए विद्यमान होने पर भी उसके लिये तो अविद्यमान है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

९ **श्री समयसार कलश टीका, कलश - १४०, प्रवचन - १४४**
दिनांक - ०९-११-१९७७

कलश टीका, निर्जरा अधिकार, १४० कलश, फिर से।

'एष आत्मा सकलं ज्ञानं एकतां नयति' (एष आत्मा) यह प्रत्यक्ष आत्मा, ऐसा सिद्ध करना है। यह आत्मा। ज्ञान की पर्याय में यह आत्मा प्रत्यक्ष। **(एष आत्मा) वस्तुरूप विद्यमान... 'एष'** का अर्थ किया है। विद्यमान है। वस्तु है, वह विद्यमान है कहो या है कहो। ऐसा जो आत्मा **चेतनद्रव्य, जितनी पर्यायरूप परिणमा है...** अब यहाँ पर्याय को सिद्ध करना है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा जितनी वर्तमान पर्याय में पर्यायरूप परिणमित हुआ है, वह **ज्ञान—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान...** केवलज्ञानपर्याय। छद्मस्थ को केवलज्ञान नहीं, परन्तु परोक्ष रीति से केवलज्ञान ऐसा होता है, ऐसा उसे भाव होता है। तो कहते हैं कि **इत्यादि अनेक विकल्परूप परिणमा है...** वह तो भेदरूप हुआ है। भेदरूप परिणमा है। पाँच प्रकार पड़े न?

ज्ञान—उसको निर्विकल्परूप अनुभवता है। आगे कहेंगे। पर्यायें हैं अवश्य, यह बाद में कहेंगे। **अच्छा-अच्छा** में। परन्तु अनुभव, निर्विकल्प का अनुभव होता है। वस्तु की पर्याय ज्ञानरूप पाँच पर्याय है, परन्तु वह भेदरूप है तो उसके आश्रय से विचार करने पर विकल्प उत्पन्न होता है। इसलिए एकरूप वस्तु जो त्रिकाल, उसका आश्रय लेने से निर्विकल्प अनुभव होता है। भेदरहित चीज़ जो अभेद चीज़ है, उसका अनुभव। अनुभव है पर्याय, परन्तु उसका अनुभव होता है, ऐसा कहने में आता है। है तो वस्तु त्रिकाल अभेद। उसकी पर्याय में वह आती नहीं परन्तु भाषा ऐसी ली जाती है कि त्रिकाली अभेद वस्तु है, उसे अनुभव करता है। इसलिए कि उसकी सन्मुखता में उसकी पर्याय होती है, इसलिए उसे अनुभव करता है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म मार्ग।

भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार उष्णतामात्र अग्नि है,... अग्नि तो उष्णतामात्र ही है। उसे भेद से कहना। **इसलिए दाह्य वस्तु को जलाती हुई...** वह अग्नि जलनेयोग्य वस्तु को

जलाती हुई **दाह्य के आकार परिणमती है,...** अग्नि। सूखा कण्डा होता है। अडाया छाणा समझे ? साधारण कण्डे हों और सूख जाए तो अग्नि उस आकार होती है। कण्डे ऐसे दूसरे हों तो उस कण्डे के आकार अग्नि होती है, लकड़ी के आकार अग्नि होती है। उस **आकार परिणमती है, इसलिए लोगों को ऐसी बुद्धि उपजती है कि काष्ठ की अग्नि,...** यह मानो लकड़ी के आकार अग्नि हुई, इसलिए लकड़ी की अग्नि है, ऐसा लोगों को लगता है। **छाना की अग्नि, तृण की अग्नि।** तृण। **सो ये समस्त विकल्प झूठे हैं।** यह कुछ अग्नि उसकी नहीं है। उस आकार हुई है, वह ज्ञान का आकार है, कहीं ज्ञेय का आकार नहीं है। लकड़ी का आकार अग्नि में नहीं है।

अग्नि के स्वरूप का विचार करने पर उष्णतामात्र अग्नि है, एकरूप अग्नि है। उष्ण स्वरूप **काष्ठ, छाना, तृण अग्नि का स्वरूप नहीं है,...** यह तीन कहीं अग्नि का स्वरूप नहीं है। आहाहा! **उसी प्रकार ज्ञान चेतनाप्रकाशमात्र है,...** भगवान आत्मा में **ज्ञान चेतनाप्रकाशमात्र है, समस्त ज्ञेयवस्तु को जानने का स्वभाव है, इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तु को जानता है, जानता हुआ ज्ञेयाकार परिणमता है। इससे ज्ञानी जीव को ऐसी बुद्धि उपजती है...** ज्ञेयाकार परिणमता है, इसलिए ज्ञानी जीव को ऐसी बुद्धि उपजती है कि **मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान ऐसे भेदविकल्प सब झूठे हैं।** किस अपेक्षा से ? कि पर्याय के भेद हैं, वे वस्तु नहीं हैं। वस्तु तो त्रिकाली अभेद है, इसलिए उसका नाम ज्ञेयाकार तो जो ज्ञान हुआ, उस प्रकार से ज्ञानी उसे झूठा मानता है। आहाहा! जैसे लकड़ी के आकार अग्नि हुई, ऐसा नहीं है। उसी प्रकार ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। ज्ञान तो अपने आकार ही हुआ है। आहाहा!

ज्ञेय की उपाधि से मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ऐसे विकल्प उपजे हैं। भेद। **कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है।** अब यहाँ जरा है। सूक्ष्म यहाँ है। ज्ञेय अर्थात् ज्ञान में जाननेयोग्य वस्तु। बापू! प्रभु का मार्ग सूक्ष्म है। प्रभु अर्थात् आत्मा। आहाहा! ज्ञेयवस्तु अनेक प्रकार से है। ज्ञान में जाननेयोग्य चीज़ अनेक प्रकार से ज्ञेय है। अब यह सिद्धान्त यहाँ है।

जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है,... यह सिद्धान्त है यहाँ। **जैसे ही ज्ञेय का...** जैसे ज्ञेय का **ज्ञायक होता है,...** ज्ञेय ज्ञान में ज्ञात होने योग्य अनन्त अनेक हैं। अब **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है, वैसा ही नाम पाता है,...** मति का नाम मतिज्ञान पड़ा क्योंकि उसके योग्य जो ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, उससे उसका नाम मतिज्ञान पड़ा। श्रुत में परोक्षरूप से सब ज्ञेयों के आकार ज्ञान हुआ, इसलिए उसका नाम श्रुतज्ञान पड़ा। अवधि-उसके योग्य मर्यादित जो

पदार्थ, उनके आकार जानना हुआ, इसलिए अवधि नाम पड़ा। मन को जाननेवाले (ज्ञान से) कारण से मन:पर्ययज्ञान पड़ा और केवलज्ञान तीन काल के, तीन लोक के ज्ञेय को जानता है, इसलिए (केवलज्ञान नाम पड़ा)। वह **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है...** ऐसा कहा। केवलज्ञान भी **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है...** आहाहा! **वैसा ही नाम पाता है, वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है। नाम धरना सब झूठा है।** यह उसे जानता है, इसलिए मति, उसे जानता है इसलिए श्रुत, उसे जानता है इसलिए अवधि, उसे जानता है इसलिए मन:पर्यय, उसे जानता है इसलिए केवल, ये नाममात्र झूठे हैं। आहाहा! समझ में आया? वह तो ज्ञान की पर्यायमात्र है। उसे जानता है, इसलिए और उसे जानता है, इसलिए जो पाँच भेद पड़े, वे भेद झूठे हैं। आहाहा!

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच किस प्रकार से? यह पाँच हैं, उनका भिन्न-भिन्न ज्ञेय जानने का ज्ञायक है, इस अपेक्षा से वे झूठे हैं, ऐसा कहा। पर्यायरूप से है। पर्यायरूप से उसका नाम... यह कहेंगे, देखो! **वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है।** है?

श्रोता : ज्ञानमात्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ज्ञानमात्र है न? पर्याय भी ज्ञान है न? ज्ञेयाकार है, ऐसा नहीं।

श्रोता : ज्ञानमात्र है, इसलिए भेदरहित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भले न, वह नहीं। यहाँ तो ऐसा कहना है कि ज्ञेयाकार जो नाम पड़े, वे झूठे हैं। ज्ञानमात्र कहना, वह ज्ञानमात्र अर्थात्? भले पर्याय है परन्तु वह ज्ञानमात्र है। ज्ञेयाकार के कारण जो भेद पड़ा, वह उसमें नहीं है। सूक्ष्म बात है।

नाम धरना सब झूठा है। ऐसा कहा है। मति आदि श्रुत की ज्ञानपने की पर्याय है, वह ज्ञानमात्र पर्याय है, अभी त्रिकाली की बात नहीं है। समझ में आया? वह **ज्ञानमात्र है। नाम धरना सब झूठा है।** देखो! ज्ञानमात्र है, यहाँ अल्पविराम रखा है न? क्या कहलाता है वह? अल्पविराम। क्योंकि वहाँ उसका किस्सा पूरा नहीं होता। यहाँ त्रिकाली ज्ञान है, यह बात सिद्ध नहीं करना है। यहाँ तो ज्ञान की वर्तमान पर्याय में... ऐसी बात को सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होती। ज्ञान की पर्याय में जैसे ज्ञेय को जानते हुए ज्ञायक होता है, जैसे ज्ञेय को जानते हुए ज्ञायक होता है, वैसा जो उसमें नाम पड़ता है, वह झूठा है। बाकी ज्ञान पर्यायमात्र है। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... पर्यायमात्र है, यह बराबर है। आहाहा! सूक्ष्म बात

है, बापू! टीकाकार ने कितनी गम्भीर टीका की है! यहाँ से लेना, देखो! **ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है।** नाना प्रकार कहा न? तीसरी लाईन, **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है,...** ज्ञेय का ज्ञायक होता है, यह बात लेनी है। जैसे ज्ञेय का ज्ञायक है पर्याय में।

श्रोता : ज्ञेय का ज्ञायक है या अपना ज्ञायक है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। पर्याय में ज्ञेय का ज्ञायक है, **वैसा ही नाम पाता है,...** वह झूठा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कल तो बहुत कहा था। उस ज्ञेय का ज्ञायक है, ऐसे नामभेद हैं, वे झूठे हैं। आहाहा!

श्रोता : शास्त्र में सब भेद आते हैं, वे सब झूठे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे भेद इस प्रकार से झूठे हैं। पर्याय, पर्यायरूप से बराबर है। परन्तु पर्याय के पाँच भेद में जैसा ज्ञेय है, उसे जानना, इस प्रकार से ज्ञान का नाम पड़े, वह झूठा है - ऐसा कहते हैं। लालचन्दभाई! आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू!

यहाँ बाद के कलश में तो सिद्ध करेंगे। '**अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति**' यह ज्ञान की पर्याय ज्ञेय के कारण जानने के लिये उछलती है, ऐसा नहीं है। वह ज्ञान का अपना स्वभाव ही है कि ज्ञान की पर्याय स्वयं उछलती है और वह ज्ञान की अनेकता है। वस्तुरूप से एक है और पर्यायरूप से, परिणमनरूप से अनेक है। अनेक का आश्रय करनेयोग्य है या नहीं, यह प्रश्न नहीं है। परन्तु पर्याय अनेक है।

श्रोता : कोई खूँटे से बँधता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खूँटे से बँधता है, इस प्रकार से। वह किस अपेक्षा से? ज्ञेय त्रिकाल की अपेक्षा से एक है। यह अभी कहेंगे। देखो! द्रव्यार्थिकनय से एक है और पर्यायार्थिकनय से अनेक है। बाद के श्लोक में है। है—अस्ति सिद्ध करना है यहाँ। पर्याय नहीं है, नहीं ही है, ऐसा ग्यारह में कहा था। आहाहा! ग्यारहवीं गाथा में यह सब कहा था। सूक्ष्म बात है प्रभु!

आज तो धनतेरस का दिन है। धन अर्थात् लक्ष्मी, हों! यहाँ भगवान की लक्ष्मी आयेगी। भग-भग। भग अर्थात् लक्ष्मी, वान अर्थात् लक्ष्मीवाला प्रभु है। परन्तु कैसी लक्ष्मी? ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मीवाला यह प्रभु है।

यहाँ तो दो बातें सिद्ध की हैं कि त्रिकाली सत्ता भी है और वर्तमान में वह जैसे ज्ञेयों को जानने के नाम पड़ते हैं, वे झूठे। परन्तु जैसा ज्ञान परिणमता है, वह अनेकपना होना, वह

यथार्थ है। ज्ञान का पर्याय में अनेकपना होना यथार्थ है। अनेकपने में ज्ञेय की जानने की अपेक्षा से जो नाम पड़े थे, वे झूठे हैं। आहाहा! बात सूक्ष्म है, बापू! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है। आहाहा! समझ में आया?

(समयसार की) ग्यारहवीं गाथा में तो ऐसा कहा था कि पर्याय अभूतार्थ है, पर्याय है ही नहीं। इसीलिए वे ऐसा कहते हैं न? एक थे नाथूलाल, नाथूलाल प्रेमी। (वे कहते थे कि) समयसार को कुन्दकुन्दाचार्य ने वेदान्त के ढाले में ढाल दिया है। पर्याय 'नहीं' कहा सही न? परन्तु ऐसा नहीं। वहाँ 'नहीं' कहा है, वह गौण करके, पर्याय को गौण करके, गर्भित में रखकर, व्यवहार गिनकर 'नहीं है' ऐसा कहा है और त्रिकाली को मुख्य गिनकर, निश्चय गिनकर वही 'सत्य है', ऐसा कहा है। आहाहा! वह अब यहाँ सिद्ध करते हैं। कि एक स्वरूप है आत्मा, तथापि पर्यायपने अनेकपने है। परन्तु उस पर्याय में जो नाम जैसे ज्ञेय को जानने के नाम पड़ते हैं, वे झूठे हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। बनियों को व्यापार और धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। उसमें अब ऐसी बातें।

श्रोता : दृष्टान्त देकर समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लकड़ी की अग्नि का दृष्टान्त दिया न! दिया न! ध्यान कहाँ था? अग्नि का दृष्टान्त नहीं दिया? अग्नि लकड़ी आकार अग्नि, कण्डे आकार अग्नि ऐसा कहना, वह व्यवहार है। ऐसा नहीं है। अग्नि, अग्नि आकार हुई है। दृष्टान्त तो पहले आ गया। ध्यान नहीं है। समझ में आया? कण्डे की अग्नि, लकड़ी की अग्नि, पत्ते की अग्नि, तृण की अग्नि, यह बात झूठी है परन्तु अग्नि, अग्निरूप हुई है, यह बात बराबर है, वह पर्याय अग्निरूप है। आहाहा! समझ में आया? पहले दृष्टान्त देकर (समझाया)। तिनके की अग्नि, लकड़ी की अग्नि, सूखे कण्डे की अग्नि, कण्डे की अग्नि, ऐसा कहना वह झूठ है। परन्तु अग्नि उष्णतामय है। यहाँ तो अभी पर्याय की बात है, हों! उष्णतामय है। उष्णतामय है इतना। इसके आकार और उसके आकार, इसलिए ऐसा नहीं। उष्णतामात्र है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने ज्ञान में, पर्याय में, हों! यहाँ तो अभी। ऐसा है न यहाँ तो?

जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है,... इस शब्द में जोर है। तीसरी लाईन। **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है,...** जैसे जिस लकड़ी के आकार अग्नि होती है, वैसे **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है, वैसा ही नाम पाता है,...** जैसे अग्नि को लकड़ी की अग्नि, कण्डे की अग्नि, सूखे कण्डे की अग्नि नाम (मिलता है)। **वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है।** यह

पर्याय की बात है। ऐसे अग्नि को वस्तु विचारने पर उष्णतामात्र है। उसी प्रकार भगवान आत्मा की पर्याय में ज्ञान का विचार करने पर वह ज्ञानमात्र है। आहाहा! ऐसा है।

श्रोता : वस्तु स्वरूप का विचार करने पर वह त्रिकाल स्वरूप का या पर्याय का?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, पर्याय का कहा न। दो-तीन बार कह गये। जैसे वह अग्नि उष्णतामात्र है, वह भी पर्याय में। उसका भेद इसके आकार है, इसके आकार है, वह झूठा है। समझ में आया? आहाहा!

देखो! **वैसा ही नाम पाता है, वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है।** पर्याय, हों! **नाम धरना सब झूठा है।** यह क्या कहा? उसे ऐसा कहना कि यह मतिज्ञान इसे जानता है, श्रुतज्ञान इसे जानता है, अवधि इसे जानता है, ऐसा कहना झूठा है। आहाहा! समझ में आया? गजब शैली है! ज्ञेय को सिद्ध करते हैं, ज्ञेय का जानना सिद्ध करते हैं, परन्तु जैसा ज्ञेय को जानता है, वह ज्ञान ज्ञेय की ओर का है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है। लोगों को फुरसत कहाँ है? आहाहा! ऐसा भगवान...!

त्रिकाली स्वरूप है, वह तो ध्रुव है। अब तो यहाँ उसके परिणमन के दो प्रकार के विचार किये हैं। जो ज्ञान का परिणमन, जैसे ज्ञेय को जाने, वैसा ज्ञायक नाम उसे पड़ता है, उस ज्ञेय के आकार से नाम पड़े, वह बात झूठी है। समझ में आया? आहाहा! **नाम धरना सब झूठा है।** नाम धरना सब झूठा है। **ऐसा अनुभव शुद्ध स्वरूप का अनुभव है।** आहाहा! पर्याय की बात है, हों! आहाहा! शान्ति से, जरा धीरज से विचार करे, बापू! यह तो अपूर्व मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव के मुख में से दिव्यध्वनि निकली, उसका यह सब सार है। ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है। एक तो ज्ञेय सिद्ध करते हैं, ज्ञेय नहीं है—ऐसा नहीं है। एक ओर पर्याय में ज्ञेय आकार जैसे ज्ञेय को जानकर नाम पड़ता है। दो बात। तो भी वह नाम झूठा है और ज्ञान पर्यायमात्र है, यह तीन बात। इसमें कहीं पैसा-बैसा में तो हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा को पर्याय सिद्ध करनी है, परन्तु उस पर्याय के नाम में भेद पड़े कि इसे इतना जाने, इसलिए मति और इसे जाने, इसलिए श्रुत, मर्यादित पदार्थ को जाने, इसलिए अवधि, मन के भाव को जाने, इसलिए मनःपर्यय, तीन काल को जाने, इसलिए केवल, यह नाम धरना झूठा है। आहाहा! वास्तव में तो पर को जानता ही नहीं। पर को क्या जाने? परवस्तु का स्पर्श नहीं, एक-दूसरे में अभाव है, अपने में रहकर पर सम्बन्धी और अपने

सम्बन्धी का ज्ञान अपने में उछलता है। आहाहा! वह ज्ञेय के कारण उछलता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? और ज्ञेय के नाम से यहाँ नाम पड़ा है, वह भी नहीं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सामने पुस्तक है या नहीं?

ऐसा अनुभव शुद्ध स्वरूप का अनुभव है। यहाँ पर्याय की बात है। समझ में आया? जैसा ज्ञेय है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है, इसलिए उस ज्ञान की पर्याय के ज्ञेयाकार के परिणमन के नामभेद पड़े हैं, वे झूठे हैं। आहाहा! समझ में आया? समझ में आये उतना समझना, बापू! यह तो वीतराग का गहन मार्ग है। आहाहा! अनन्त ज्ञेयों को भी सिद्ध करते हैं। है न? ऊपर आया न? **कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है।** ऐसा पहले आया न? पहले यह सिद्ध तो किया। क्योंकि ज्ञेयवस्तु नाना अर्थात् अनेक प्रकार से है। अर्थात् ज्ञेय अनेक प्रकार से है, यह बात सिद्ध की। उन वेदान्त को ज्ञेय है ही नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? एक बात।

अब **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है,...** यह बाद में दूसरी बात। ज्ञेय अनेक प्रकार के हैं अर्थात् अनन्त प्रकार के हैं। अब **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है,...** जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है। समझ में आया? यह समझना तो पड़ेगा या नहीं? भाई! कठिन पड़े तो भी। हमें समझ में नहीं आता, ऐसा करके कहीं निकाला जाता है? आहाहा! अरे! ऐसे अवसर में नहीं समझेगा तो भाई! कब समझेगा? यहाँ तो पर्याय में ज्ञेय अनेक हैं, ऐसा सिद्ध करके, जैसा उस ज्ञेय का यहाँ ज्ञान होता है, वैसा उस ज्ञान की पर्याय का नाम पड़ता है। यह नाम पाड़ना झूठा है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तो सच्चा नाम क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा नाम ज्ञानपर्याय, ज्ञान की पर्याय, बस! दास! ऐसा है।

नाम धरना सब झूठा है। ऐसा कहा न? पर्यायमात्र तो सच्ची है, परन्तु उसे जैसे ज्ञेय जाने, वैसा नाम दिया है, वह खोटा है।

श्रोता : मति-श्रुत जो नाम पड़े, वे खोटे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे नाम पड़े ऐसा नहीं, मात्र ज्ञानपर्याय। आहाहा!

तत्त्वार्थसूत्र में तो परोक्ष की बात ली है। मन और इन्द्रिय द्वारा जाने, वह मतिज्ञान। वहाँ प्रत्यक्ष की बात गौण रखी है। समझ में आया? नहीं तो वास्तव में तो मति तो अपने को— स्व को जानता है। मतिज्ञान तो स्वयं स्व को जानता है। यह तो १७-१८ की गाथा में कहा है

न कि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव ही स्व-परप्रकाशक है। भले अल्प ज्ञान हो, अज्ञान हो, परन्तु उस पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। इसलिए उस ज्ञान की पर्याय में आबाल-गोपाल को, बालक से लेकर वृद्धों को, ज्ञान की पर्याय का स्वरूप स्व-परप्रकाशक होने से ज्ञान की पर्याय में पूरा आत्मा ही ज्ञात होता है। आहाहा!

श्रोता : ..... या आत्मा ज्ञात होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा ज्ञात होता है। आत्मा पर्याय में आता नहीं, परन्तु पर्याय में पूरा आत्मा ज्ञात होता है। क्योंकि उस पर्याय का स्व-परप्रकाशकपना स्वरूप है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। वे तो कहते हैं सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। लो! ऐसा था या नहीं ? वे कहते हैं मन्दिर जाओ, यात्रा करो, भक्ति करो। इस दिगम्बर में वस्त्र छोड़ो, यह करो। अरे! प्रभु! परन्तु सुन तो सही। तेरा नाथ अन्दर क्या है ? और उसकी पर्याय की स्वतन्त्रता उस-उस काल में उत्पन्न होने की स्वतन्त्र पर्याय की जाति कैसे है ? उस ज्ञान की पर्याय को जैसे ज्ञेय हैं, वैसा जानना होता है, इसलिए उस ज्ञेय के नाम से उसका नाम पड़ता है, परन्तु वह नाम झूठा है। आहाहा! समझ में आया ?

श्रोता : उसके कारण से नाम पड़े तो सच्चा नाम ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा नाम ज्ञानपर्याय। सच्चा नाम ज्ञानपर्याय, बस। नामनिक्षेप से कहते हैं तो यह कहलाता है। आत्मा को नामनिक्षेप से कहें तो आत्मा कहलाता है, बाकी आत्मा वस्तु में यह शब्द कहाँ है ? समझ में आया ? वीतराग का मार्ग अचिन्त्य और अलौकिक है, जिसका फल भी अचिन्त्य और अलौकिक है न! आहाहा!

असंख्य समय का साधकपना, भविष्य का सादि-अनन्त काल भूत से अनन्त गुणा, उसके आनन्द की प्राप्ति हो, वह उपाय कैसा होगा ? बापू! आहाहा! यह क्या कहा ? यह क्या कहा ? स्वरूप को साधने के लिये पूर्ण होने में असंख्य समय ही चाहिए। अनन्त समय नहीं चाहिए। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हुई, उसे केवलज्ञान पाने में असंख्य समय ही होते हैं। भले सात-आठ भव करे तो भी वह असंख्य समय में आ जाते हैं। आहाहा! तब उसके एक-एक समय का फल, 'अनन्त-अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा ?' आहाहा! जिसके फलरूप से... और भविष्य काल अनन्त गुणा है न! प्रत्येक के लिये भविष्य काल कितना है ? तब जिसने आत्मा को अन्दर स्वरूप में अनुभव करके साधन किया, उसके अनुभव का समय तो असंख्य समय ही है। आहाहा!

और उसके फलरूप अनन्त-अनन्त काल, जिसे अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का भोगवटा, बापू! वह क्या चीज़? आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : समझ में आया, ऐसा कहना कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, समझ में आया... परन्तु धीरे-धीरे तो कहा जाता है, बापू! आहाहा! चैतन्यसागर उछलता है न, कहते हैं। '**अच्छाच्छाः**' कहेंगे। बाद का कलश है न? कलश। '**अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति**' अन्दर से निर्मल की निर्मल धारा उछलती है। आहाहा!

श्रोता : साधक को निर्मल के पश्चात् अधिक निर्मल... अधिक निर्मल...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पूर्ण निर्मल और साधक को एक के बाद एक निर्मल धारा... निर्जरा अधिकार है न? संवर है, वह शुद्धि की उत्पत्ति की है और निर्जरा है, वह शुद्धि की वृद्धि की है और मोक्ष है, वह शुद्धि की पूर्णता है। आहाहा! और निर्जरा के प्रकार भी तीन हैं। एक, कर्म का गलना, वह तो स्वतन्त्र उसका स्वभाव; अशुद्धता का जाना, वह पर्याय में से और शुद्धता का बढ़ना - इन तीन को निर्जरा कहा जाता है। आहाहा! यह तो एक पकड़े। कर्म का खिर जाना, वह निर्जरा। किस अपेक्षा से? बापू! कर्म तो जड़ है। उसका खिरना, न खिरना वह तो... कर्म की अकर्मरूप पर्याय होना, वह तो उसका स्वभाव है। वह कहीं इसमें शुद्धता प्रगट की, इसलिए उसके अकर्मरूप हुई, ऐसा नहीं है। परन्तु जहाँ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बतलाकर जहाँ आत्मा के स्वभाव के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि (हुई), यह संवरपूर्वक निर्जरा की व्याख्या है। इसमें पहले आ गया है कि यह संवरपूर्वक निर्जरा की व्याख्या है। अज्ञानी को कर्म खिरते हैं, उसे निर्जरा नहीं कहा जाता। आहाहा! अर्थात्? संवर अर्थात् कि सम्यग्दर्शनरूपी जो संवर... आहाहा! उसके पूर्वक जो पूर्व के कर्म खिरें और अशुद्धता गले और शुद्धता बढ़े, उसे यहाँ निर्जरा कहा जाता है। तो वह तो पर्याय है। निर्जरा तो शुद्ध पर्याय है।

उस पर्याय को यहाँ कहते हैं कि इसकी पर्याय में, ज्ञान की पर्याय में जैसे ज्ञेय जाने, वैसा नाम ज्ञान का पड़ता है, तथापि वे नाम झूठे हैं। वह तो ज्ञानपर्याय... ज्ञानपर्याय... ज्ञानपर्याय... ज्ञानपर्याय... बस। लालचन्दभाई! आहाहा! समझ में आया? समझ में आये ऐसा, बापू! न पकड़ में आये, (ऐसा नहीं है)। परमात्मा भगवत्स्वरूप विराजता है। आहाहा! वह प्रभु तो भगवत्स्वरूप ही है। प्रत्येक का (आत्मा ऐसा ही है)। अरे! अभव्य का भी। आहाहा! समझ में आया?

एक बार कहा नहीं था ? (संवत्) १९८५ के वर्ष में सम्प्रदाय में चर्चा हुई थी। १९८२ के वर्ष में। यह चर्चा हुई थी। वह क्या कहलाता है ? मोहनलालजी लींबड़ीवाले ऐसा कहे कि अभव्य को मोहनीय की छब्बीस प्रकृति की सत्ता होती है, भव्य को अट्ठाईस होती है। ऐसी एक 'मोहनमाला' पुस्तक प्रकाशित की है। मुझे भेजी थी। १९८० के वर्ष में। ५३ वर्ष हुए। कहा, यह बात झूठी है। भव्य लो या अभव्य, सबको २६वीं प्रकृति सत्ता में होती है। अट्ठाईस तो जब समकित प्राप्त करे, पश्चात् अट्ठाईस होती है। एक बात खोटी। दूसरी बात, यह कहे अभव्य को तीन आवरण होते हैं, पाँच नहीं होते। मति, श्रुत और अवधि—तीन आवरण होते हैं। मन:पर्यय और केवलज्ञान ये दो आवरण उसे नहीं होते। क्योंकि उसको दोनों (ज्ञान) नहीं होते। यह १९८५ में बात हुई थी। फिर जरा गड़बड़ करने लगे। परन्तु मणिलालजी साथ में थे। सुनो... सुनो... ! कानजीस्वामी कहते हैं, वह सुनो। दुनिया में इनकी छाप है। ये कहेंगे वह मानेंगे। अपने पचास वर्ष की दीक्षा लेकर बैठे हैं परन्तु अपनी छाप बाहर नहीं है। यह कहेंगे वह बात बाहर प्रसिद्ध होगी कि यह लोग ऐसा कहते हैं और निषेध करते हैं।

मैंने कहा, बापू! अभव्य को ही पाँच आवरण हैं। पाँचों ही हैं। मतिज्ञान, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय... प्रगट न हो, इसलिए वह आवरण नहीं है, ऐसा नहीं है। क्यों ?—कि अभव्य के स्वभाव में भी सर्वज्ञस्वभाव है, उसकी शक्ति तो सर्वज्ञस्वभाव है। आहाहा! उसकी पर्याय में अल्पता का परिणमन और केवलज्ञानावरणीय प्रकृति का निमित्त है। यह पर्याय अभव्य पलटा नहीं सकता, उसकी योग्यता नहीं है। बाकी तो सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु आत्मा पूरा है। आहाहा! प्रत्येक समय में सर्वज्ञस्वभावी अनादि-अनन्त प्रभु स्थित है। उसे सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हो तो भी उसका सर्वज्ञस्वभाव ही है। आहाहा!

अरे! प्रभु! तू कौन है ? बापू! तुझे खबर नहीं है। यह यहाँ नीचे कहेंगे। वह तो चैतन्यरत्नाकर है। १४१ कलश में कहेंगे। चैतन्यरत्नाकर है, प्रभु! तुझे खबर नहीं है। उसमें चैतन्यरूपी अनन्त मणियाँ भरी हैं। आहाहा! तेरे बाहर के पैसे तो अरब, दो अरब, खरब, निखर्ब,... ऐसा सब आता था। हमारे समय में। सौ अरब का खरब, और सौ खरब का निखर्ब ऐसा आता था। अभी अब अरब तक चलता है परन्तु यह सब धूल है। आहाहा!

यह तो अनन्त... अनन्त... अनन्त चैतन्यरत्नाकर का सागर नाथ अन्दर विराजमान है। बापू! तुझे खबर नहीं। उस चैतन्यरत्नाकर का भान हुआ, तब जो ज्ञान की पर्याय के प्रकार प्रगट हुए, वह ज्ञान जिस ज्ञेय को जानने से ज्ञान का नाम पड़ा, वह बात नहीं है। पर के कारण नाम पड़ा, वह नहीं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा...

आहाहा! उनका पन्थ है। उनका तेरा स्वभाव है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि शुद्धस्वरूप का अनुभव करने पर नाम झूठे हैं, नाम झूठे, हों! ज्ञानपर्याय है, वह बराबर है। मन और इन्द्रिय से जाने, वह मति, अकेले मन से जाने, वह श्रुत। शास्त्र में से ऐसा आवे न? मर्यादित चीज़ को जाने, वह अवधि, यह मेरे मन के भाव को जाने, वह मनःपर्यय, तीन काल के भाव को जाने, इसलिए केवल। यह नाम नहीं। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : ...सच्चा नाम क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा नाम पर्याय, बस। ज्ञानपर्याय। ज्ञानगुण की है, इसलिए ज्ञानपर्याय, बस। आहाहा! इसमें बहुत भेद हैं। एकान्त से ऐसा मानते हों कि कोई ज्ञेय ही नहीं है और ज्ञेयाकार ज्ञान परिणमता है, वह है। परन्तु वह व्यवहार है। समझ में आया? परन्तु ज्ञान, ज्ञानरूप होता है, बस! उसे नाम देना कि उसे जाने, इसलिए मति और इसे जाने, इसलिए श्रुत, ऐसे नाम नहीं। आहाहा! अर्थी को ननामि कहते है न। उसी प्रकार यह तीन लोक का नाथ, उसकी पर्याय को कोई नाम नहीं देना। आहाहा! वह जागती ज्योत ननामि है।

श्रोता : नाम तो दिया, जागती ज्योत।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जागती ज्योत तो स्वभाव की व्याख्या की है। वह तो उसके स्वभाव को बताया। समझ में आया? बहिन ने नहीं लिखा? कहा था न? वचनामृत में? 'जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाए? अवश्य प्राप्त होगा।' आहाहा! एक शब्द तो... सिद्धान्त की बात है। परन्तु सादी सादी गुजराती, चार पुस्तकें पढ़ा हुआ बालक समझ सके, ऐसी भाषा है। हमारे धर्मचन्द मास्टर ऐसा कहते हैं, चार पुस्तक को पढ़ा हुआ समझ ले, ऐसी भाषा! जागता जीव ध्रुव है न? अर्थात् क्या? अकेला ज्ञायकभाव टिकता तत्त्व ध्रुवरूप है न? आहाहा! सिद्धान्त की भाषा सिद्धान्त प्रमाण होती है, परन्तु साधारण व्यक्ति को समझने की प्रचलित शैली, ऐसी सादी भाषा है। आहाहा! समझ में आया?

जागता-जागता ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव... जीव खड़ा अर्थात् ध्रुव है न? वह कहाँ जाए? वह पर्याय में जाए? राग में जाए? कहाँ जाए? आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। ऐसा उपदेश है। किस प्रकार का उपदेश! नाथ! तेरा मार्ग अलग है। आहाहा! तेरी पर्याय को ज्ञेय को जानने से नाम पाड़ना, वह कहते हैं कि शोभा नहीं देता। अरर्र! समझ में आया? ज्ञेय को जानने से तेरे ज्ञान की पर्याय के नाम पाड़ना, वह भी शोभा नहीं देता।

श्रोता : ....तो आत्मा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है। परन्तु उसमें नाम कहाँ पड़ा? ज्ञेय को जानने से ज्ञायक, यह कहाँ आया? यहाँ तो ज्ञेय को जानने से ज्ञायक, ऐसा शब्द आया है न? वह स्वज्ञेय की बात नहीं है।

यहाँ तो **ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है।** इसकी बात है। अन्दर शब्द देखो न! बहुत सरस टीका है। दूसरी लाईन। **कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है।** वहाँ आत्मा नहीं लिया। **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है, वैसा ही नाम पाता है,...** आहाहा! राजमल टीका, और उसमें से बनाया समयसार नाटक। अरे रे! उसे ऐसा कहते हैं कि बनारसीदास और टोडरमल अध्यात्म की भांग पीकर नाचे हैं। प्रभु! तुझे शोभा नहीं देता। प्रभु! ऐसा कहना, हों! आहाहा! तू ही भगवान है, बापू! तेरी भूल नहीं देखते। आहाहा! ऐसा आत्मा!

कहते हैं, अनेक प्रकार के परज्ञेय हैं, उन्हें ऐसे ज्ञेय को जानने से ज्ञायक नाम पड़ता है कि इसका ज्ञान और इसका ज्ञान, वह झूठा है। **ऐसा अनुभव शुद्ध स्वरूप का अनुभव है।** आहाहा! अब... राजमल गृहस्थ अब... यह टीका करते हैं। ऐई! प्रवीणभाई! उसे समझने के लिये (धीरज चाहिए)। आहाहा! भगवान! आत्मा गृहस्थ कहाँ है? और वह गृहस्थ है। गृह-स्थ है। गृह अर्थात् अपने घर में रहा हुआ आत्मा। वह उसमें लेख है। भाई ने पढ़ा है या नहीं? 'अध्यात्म पंच संग्रह।' अभी चन्दुभाई ले गये थे। अध्यात्म पंच संग्रह, तरंगिणी नहीं, अध्यात्म पंच संग्रह। भाई दीपचन्दजी का है। अध्यात्म तरंगिणी तो संस्कृत है। अध्यात्म तरंगिणी तो कलश की संस्कृत टीका है, वह नहीं है। यह तो दीपचन्दजी कृत अध्यात्म पंच संग्रह है। फिर यहाँ एक पुस्तक अधिक थी, उसे चन्दुभाई राजकोट पढ़ने को ले गये थे, वापस दे गये। उसमें एक लिखा है कि भाई! गृहस्थ अर्थात् क्या? कि आत्मा गृह अर्थात् निजघर में स्थित रहे, वह गृहस्थ। आहाहा! यह गृहस्थ व्यक्ति है और यह पैसेवाला है, उस धूल का यहाँ नहीं। निजघर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु! आहाहा! उसके ध्रुवस्वरूप में स्थ / रहे। अन्दर में टिके, उसका नाम गृहस्थ धर्मात्मा कहा जाता है। बात-बात में अन्तर है। आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं न! आहाहा!

'किल' निश्चय से ऐसा ही है। कैसा है अनुभवशीली आत्मा? अब कहते हैं **कैसा है अनुभवशीली आत्मा?** अनुभवशील आत्मा। द्रव्य आत्मा अकेला नहीं। **'एकज्ञायकभाव-निर्भरमहास्वादं समासादयन्' (एक)** अर्थात् निर्विकल्प एक **ऐसा जो चेतनद्रव्य, उसमें**

अत्यन्त मग्नपना,... यह पर्याय। अत्यन्त निर्भर, निभर। **उससे हुआ है अनाकुललक्षण सौख्य, 'महास्वाद'** आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण अभेद स्वरूप को **महास्वादता हुआ...** आहाहा! अनादि का जो उसे कर्मचेतना और कर्मफलचेतना का स्वाद था... आहाहा! अब उसे ज्ञान-चेतना का स्वाद आया। समझ में आया? उस महास्वाद को, है? महास्वाद की व्याख्या की—अनाकुल लक्षण सुख। मूल अनाकुल लक्षण सुख, वही महास्वाद है। आहाहा! आत्मा अभेद के अनुभव में पड़ने पर उस पर्याय में अनाकुल लक्षण सुख का जिसे स्वाद है। महास्वाद की व्याख्या ही यह की है। आहाहा! अनजाने नये व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि यह क्या कहते हैं? यह क्या होगा यह? बापू! प्रभु का मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! महास्वाद को **'समासादयन्' आस्वादता हुआ।** आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ को, प्रभु—भगवान अन्दर विराजमान है, उसको आस्वादता हुआ, अनाकुल लक्षण सुख का स्वाद लेता हुआ। आहाहा! अर्थात् ज्ञानचेतना प्रगट करता हुआ। उस ज्ञानचेतना में अनाकुल आनन्द का स्वाद है। पुण्य-पाप की कर्मचेतना में आकुलता-दुःख का स्वाद है। आहाहा! समझ में आया?

'द्वन्द्वमयं स्वादं विधातुं असहः' (द्वन्द्वमयं) कर्म के संयोग से हुआ है विकल्परूप, आकुलतारूप अज्ञानीजन सुख करके मानते हैं परन्तु दुःखरूप है ऐसा जो इन्द्रिय विषयजनित सुख उसको अंगीकार करने के लिये असमर्थ है। उस आकुलता का स्वाद लेने को धर्मी असमर्थ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निर्विकल्प चैतन्य के महास्वाद को स्वादता हुआ, उस विकल्प के आकुलता के स्वाद को लेने में अयोग्य होता हुआ। आहाहा! रतिभाई! यह पैसे का स्वाद कैसा होगा?

श्रोता : यह मलूकचन्दभाई के पुत्र को पूछो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मलूकचन्दभाई कहते थे, उनका पुत्र अहमदाबाद में कि बापू ने कहाँ पैसे का रस चखा है? बापू के पास छोटाभाई के पास ३०-३५-४० हजार थे। उनके पास पाँच करोड़ रुपये। उनके पास कहाँ थे! अहमदाबाद में कहता था। वह बैठे थे न, कहा ऐसा कि बापू ने पैसे का स्वाद कहाँ चखा है? पाँच करोड़। उनके पास लाख भी नहीं थे, नाराणसेठ के पास। ३५-४० हजार थे और उसके पास अस्सी हजार पैसे थे - कस्तूरभाई के पास। अस्सी हजार कहलाते थे। यह है ने धीरुभाई के पिता, पैसेवाले। नाराणसेठ एक बार पैसे लेने बाहर उगाही में गये। सादे कपड़े। उसमें डाकू आये। उसे खबर पड़ी - डाकू को खबर पड़ी। डाकू अर्थात् चोर। कि नाराणसेठ निकले। ३५-४० हजार तब, अर्थात्? बनिये को (वहाँ) नागनेश में उगाही करने गये होंगे। दो-चार हजार होंगे। उसमें खबर पड़ी तो सेठ

घोड़े पर चला आया था। कपड़े साधारण। उसमें वह चोर आये, तो यह तो बनिया होशियार व्यक्ति। ऐई! बापू! दूर रहना... दूर रहना... तब वे समझे कि यह तो कोई हरिजन लगता है। वे मलूकचन्दभाई के पिता के पिता। क्योंकि दो-तीन हजार उगाही के लाये हैं। वह ले जाएगा। भाषा तो कुछ दूसरी थी। ऐई! भाई! ऐसा कुछ। ऐ भाई! दूर रहना। वे नजदीक आने लगे। घोड़े पर बैठा और पैसे तो होंगे उसके पास। वह कहे, ओहोहो! जाओ चाहे जो हो। घर इकट्ठा हो गया। आहाहा!

ऐ... राग से दूर रहना, प्रभु! हमें स्पर्श नहीं करना। समझ में आया? आहाहा! इस पुण्य और पाप के भाव से (दूर रहना), हम चैतन्य के घोड़े पर चढ़े हैं... आहाहा! उसे राग से स्पर्श नहीं कराना। तू हमें स्पर्श नहीं करना, हों! यह नर का नारायण होने का यह उपाय है। कहो, गुलाबचन्दभाई! आहाहा!

आकुलतारूप है। है न? **अंगीकार करने के लिये असमर्थ है।** अब अन्त में सारांश दिया। **विषय कषाय को दुःखरूप जानते हैं।** लो! प्रेमचन्दभाई! ज्ञानी **विषय कषाय को दुःखरूप जानते हैं।** प्रेमचन्दभाई को कहा। यह तुम्हारे दिल्ली में विवाद उठे हैं वह। दीपचन्द सेठिया को यह दिक्कत है न! ज्ञानी को दुःख होता नहीं। सोगानी कहे, ज्ञानी को शुभभाव भट्टी लगता है। वहाँ से भड़क गये। शल्य घुस गयी और दूसरों को बहुत शल्य घुसा गये। आहाहा! अब अभी ज्ञानचन्दजी कहे, हमें यह बात बैठती नहीं, ज्ञानी को दुःख होता है, यह बैठता नहीं। वे लोग गये होंगे। अरे! बापू! विषय-कषाय का भाव ज्ञानी को होता है, परन्तु उसे दुःख लगता है। जब तक वीतराग न हो, (तब तक वह भाव होता है)। मिथ्यादृष्टि को जरा भी आनन्द नहीं है, पूर्ण दुःख है; केवली को जरा भी दुःख नहीं है, पूर्ण आनन्द है; साधक को थोड़ा आनन्द और थोड़ा दुःख है। आहाहा! ऐसा है, बापू! इसलिए तो ४७ नय में लिया है कि ज्ञान से देखें तो इतना राग है, उसका कर्ता है। करनेयोग्य है ऐसा नहीं। परन्तु परिणमित होता है, इसलिए कर्ता और भोगता है, इसलिए भोक्ता, भोगता है। मुनि भी राग को भोगते हैं परन्तु दुःख है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं **विषय कषाय को दुःखरूप जानते हैं।** तब है, उसे जानते हैं या नहीं है उसे (जानते) हैं? आहाहा! जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक ऐसा राग—अशुभ और शुभराग आता है परन्तु यह दुःखरूप है। मेरे आनन्द के साथ उसका मिलान करने पर उसे वेदन में दुःख दिखता है। आनन्द के वेदन की अपेक्षा से। जिसे आनन्द का वेदन नहीं, उसे दुःख का ख्याल भी कहाँ (होता है)? उसे तो वह दुःख, वह सब सुख ही है। आहाहा!

कैसा है ? अपना द्रव्य सम्बन्धी आत्मा का शुद्धस्वरूप,... 'वस्तुवृत्तिं' वस्तुवृत्ति कहा न ? **उससे तद्रूप परिणमता हुआ।** लो ! धर्मी तो आनन्द के नाथ के साथ परिणमता हुआ। आहाहा ! **चेतनद्रव्य उसका आस्वाद उसकी महिमा उसके द्वारा...** आत्मा के आनन्द के स्वाद की महिमा के द्वारा गम्य है। गोचर अर्थात् गम्य है। आनन्द की महिमा द्वारा चैतन्य गम्य है। आहाहा ! है ? **ज्ञानपर्याय उसके द्वारा नाना प्रकार उनको मेटता हुआ।** यह बात अधिक हुई थी, परन्तु अभी समय हो गया है। '**भ्रस्यत्**' और '**भृशम्**' दो शब्द आये अपने। २३१ में। '**भृशम्**' आया है, यहाँ '**भ्रस्यत्**' आया है। दोपहर को २३१ अधिकार आया था, उस '**भ्रस्यत्**' का अर्थ यहाँ मिटाता हुआ है और वहाँ '**भृशम्**' का अर्थ निरन्तर अनुभव करता हुआ (है)। शब्द '**भ्रस्यत्**' और '**भृशम्**' शब्द पड़े हैं। २३१ कलश में है '**भृशम्**' उस १४० कलश में है '**भ्रस्यत्**' समझ में आया ? यह बात बहुत हो गयी है। **निर्भेद सत्तामात्र वस्तु को अनुभव करता हुआ।** लो ! यह श्लोक पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

१०

श्री समयसार, गाथा - ७५, प्रवचन - १०२
दिनांक - १३-१०-१९६१

इस कलश में ऐसा कहा **स्वयं ज्ञानस्वरूप होता हुआ, जगत का साक्षी (ज्ञातादृष्टा), पुराण पुरुष (आत्मा) अब यहाँ से प्रकाशमान होता है।** आत्मा अपने स्वसंवेदन ज्ञान से प्रकाशमान होने पर आत्मप्रसिद्धि हुई। आत्मख्याति टीका है न? आत्मा प्रसिद्ध हुआ। मैं राग, द्वेष, विकल्प, निमित्त और गुण-गुणी के भेद सर्व से रहित, मैं अकेला ज्ञायकमूर्ति चेतन अभेदस्वरूप हूँ, ऐसी अन्तर में अनुभव में दृष्टि हुई तो यहाँ से ज्ञातादृष्टा कैसा है, उसकी बात चलती है। ७५वीं गाथा में।

अब पूछते हैं कि आत्मा ज्ञानस्वरूप अर्थात् ज्ञानी हो गया... ज्ञानस्वरूप अथवा ज्ञानी हुआ। वह रागरूप मानता था, निमित्तरूप निमित्त में अस्तित्व मानता था अथवा निमित्त का कार्य मानता था। राग का कार्य मानता था, भेद का कार्य मानता था तो वह ज्ञानस्वरूप नहीं हुआ था अर्थात् ज्ञानी नहीं हुआ था। ज्ञानस्वरूप चिदानन्द प्रकाशमूर्ति प्रभु हूँ, ऐसा ज्ञान होने पर **ज्ञानी हो गया यह कैसे पहिचाना जाता है?** शिष्य कहता है, प्रभु! उसका कोई लक्षण है? चिह्न ऐसा कोई पहिचानने में आवे, ऐसा कोई उसका भाव है? **उसका चिह्न (लक्षण) कहिये। उसके उत्तररूप गाथा कहते हैं —** ऐसी जिज्ञासा है। इसलिए भगवान अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य उसे उत्तर देते हैं।

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं।
ण करेइ एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी॥७५॥
जो कर्म का परिणाम, अरु नोकर्म का परिणाम है।
सो नहिं करे जो, मात्र जाणो, वो हि आत्मा ज्ञानि है॥७५॥

अब उसकी टीका, कितना भरा है। उसकी टीका-स्पष्टीकरण, विस्तार (करते हैं)। **निश्चय से...** अर्थात् वास्तव में, खरेखर। हिन्दी में खरेखर कहे न? वास्तविकरूप से। वास्तविकरूप से **मोह,...** जो परपदार्थ के ओर की सावधानी। परपदार्थ के ओर की सावधानी

का भाव, वह मोह है। अथवा पर रागादि के प्रति एकताबुद्धि, ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह **अन्तरंग में उत्पन्न होता हुआ जो कर्म का परिणाम,...** है, आत्मा का नहीं। यहाँ तो ज्ञानी लेना है न? इसलिए मिथ्यात्व के परिणाम तो हैं नहीं। मात्र परपदार्थ के ओर की जरा सावधानी होती है। सावधान तो आता है न? ऐसा भाव, वह अन्तरंग में उत्पन्न होता कर्म का परिणाम है। ऐसा **राग,...** प्रीतिरूप राग **वह अन्तरंग में उत्पन्न होता हुआ जो कर्म का परिणाम,...** है। ऐसा ज्ञानी जानता है, ऐसा कहेंगे। इसी तरह **द्वेष...** अरुचि। अणगमा जरा। अस्थिरता का भाग, वह अन्तरंग में उत्पन्न होता कर्म का परिणाम है और **सुख, दुःख...** की कल्पना, सुख-दुःख की कल्पना, हर्ष-शोक की कल्पना अथवा अरति आदि की कल्पना। **आदिरूप से...** इस आदि में जड़ के कर्मरूप परिणाम भी लेना। यह सब विकारी परिणाम है। **आदिरूप से अन्तरंग में उत्पन्न होता हुआ जो कर्म का परिणाम,..** है। वह आत्मा उन्हें जाननेवाला है। वह कार्य करनेवाला नहीं, ऐसा कहेंगे। अभी तो विस्तार करेंगे न! एक बात।

दूसरी बात। यह **और स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द,...** शब्द-वाणी, ध्वनि। **बन्ध...** पुद्गलकर्म का बन्ध। **संस्थान...** आकृति। **स्थूलता...** तैजस शरीर आदि की स्थूलता अथवा स्थूलता यह बाह्य पदार्थ की। और **सूक्ष्मता...** वाणी, नोकर्म आदि बाह्य पदार्थ की। **आदिरूप से बाहर उत्पन्न होता हुआ जो नोकर्म का परिणाम,...** पहले कर्म का परिणाम लिया। जड़कर्म और राग-द्वेष, मोह, सुख-दुःख की कल्पना सब कर्म के परिणाम हैं। और स्थूल वर्ण, गन्ध, रस, शब्द, बन्ध, यह वाणी निकलती है, वे सब नोकर्म के परिणाम हैं। **वह सब ही पुद्गलपरिणाम हैं।**

परमार्थ से... वास्तव में। **जैसे घड़े के और मिट्टी के व्याप्यव्यापकभाव का (व्याप्यव्यापकपने का) सद्भाव होने से...** खरेखर वास्तविक रीति से घड़ा व्याप्य अर्थात् कर्म अर्थात् कार्य है और मिट्टी उसकी व्यापक अर्थात् करनेवाली है। वास्तविक रीति से **घड़े के और मिट्टी के व्याप्य...** अर्थात् कर्म और व्यापक अर्थात् कर्ता। ऐसे भाव का **सद्भाव होने से...** घड़ारूपी कार्य को करनेवाली मिट्टी और मिट्टी का कर्म घड़ा, लो! दृष्टान्त में भी जरा... कुम्हार कर्ता और मिट्टी घड़ा कार्य। यह दृष्टान्त में भी इसका निषेध किया। यह तो दृष्टान्त है। सिद्धान्त तो आत्मा में सिद्ध करना है। समझ में आया?

कहते हैं कि **परमार्थ से, जैसे घड़े...** का कार्य व्याप्यरूप है और मिट्टी (घट) को करनेवाली मिट्टी वह व्यापक है। ऐसा दोनों के बीच सद्भाव **सद्भाव होने से...** मिट्टी कर्ता है और घड़ा उस मिट्टी का व्याप्य, कर्म अर्थात् कार्य अर्थात् पर्याय है। यहाँ विवाद (निकालते

हैं)। क्या घड़ा व्यवहार से कर्ता है या नहीं ? भगवान! व्यवहार से कर्ता है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया ? मिट्टी अपने काल में अपनी पर्याय से परिणमन में प्रवर्तनेवाली, वह मिट्टी ही घड़े को करनेवाली है और घटरूप व्याप्य उसी समय उस व्यापक का व्याप्य अर्थात् कर्ता का कार्य है, कुम्हार का नहीं।

उसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त है। अभी यह तो दृष्टान्त दिया। उसी तरह **उसी प्रकार पुद्गलपरिणाम के...** अर्थात् दया, दान, व्रत, तप, जप का विकल्प, अशुभभाव का विकल्प, जड़कर्म के परिणाम, शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श के परिणाम, वे सब पुद्गल परिणाम में आते हैं। ओहोहो! समझ में आया ? दया, दान, व्रत, तप का विकल्प उठता है वह, अशुभभाव होता है वह, जड़कर्म का परिणमन होता है यह, और शब्द स्थूल वाणी आदि भी उत्पन्न होते हैं, वे सब एक समूहरूप पुद्गल के परिणाम हैं। समझ में आया ? ऐसे पुद्गल परिणाम के अर्थात् राग, द्वेष, दया, दान, व्रत, भक्ति, जप, तप के विकल्प; विकल्प के अर्थात् पुद्गल परिणाम को और **पुद्गल के ही व्याप्यव्यापकभाव का सद्भाव होने से कर्ताकर्मपना है।** वह पुद्गल उसमें प्रवर्तनेवाला व्यापक होकर पुण्य-पाप के भाव उसका व्याप्य होनेवाला उसका कार्य है। पुद्गल का कार्य है। यहाँ स्वभावदृष्टि ज्ञानी की बात करनी है न ? समझ में आया ? आहाहा!

लगा दे, देखो! भाई! इसे कर्म से विकार हुआ है, कर्म से व्याप्य हुआ है। यह तो पहले तो स्वचतुष्टय की सिद्धि करने के बाद की बात है। स्वचतुष्टय अपना द्रव्य, अपना क्षेत्र, अपना स्वकाल, अपना भाव अपने से है और पर से नहीं। इतना सिद्ध करने के बाद की यहाँ बात है। उसमें जो विकार के परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह पुद्गल उसका करनेवाला और विकार, दया, दान, भक्ति, व्रत, सुख-दुःख की कल्पना, यह पुद्गल का व्याप्य है, पुद्गल का कार्य है, पुद्गल के परिणाम हैं, पुद्गल की अवस्था है, पुद्गल की दशा है। आहाहा! समझ में आया ?

क्योंकि ज्ञानी को स्वभाव की दृष्टि हुई है, तो विकार उसका व्याप्य और आत्मा उसका व्यापक, ऐसा हो ही नहीं सकता। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव व्यापक और उसकी निर्मल निर्विकारी निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र तथा आनन्द के परिणाम उसका व्याप्य है। समझ में आया ? भगवान आत्मा वस्तुस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप, आनन्दस्वरूप, ऐसे स्वभाव की दृष्टि हुई, तो यह स्वभाव व्यापक होकर विकारी पर्याय उसका व्याप्य, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ? उसके विकारी परिणाम निमित्त है, ऐसे अपने ज्ञातादृष्टा के परिणाम उसका व्याप्त हैं। समझ में आया ?

भगवान! यही चीज़ ऐसी है न प्रभु! चैतन्यमूर्ति है, वह ज्ञानस्वरूप है। वह कृत्रिम राग के साथ सम्बन्ध तो है नहीं। दया, दान, शुभाशुभभाव के साथ भगवान आत्मा जैसा त्रिकाल है, वैसा तादात्म्य सम्बन्ध तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य, स्वभाव निरुपाधि स्वभाव के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। वह विकार की कृत्रिम पर्याय उत्पन्न हुई या कर्म परिणाम या स्थूल परिणाम शब्द आदि, उससे तादात्म्य सम्बन्ध भगवान आत्मा को तो है नहीं। समझ में आया? कहते हैं कि यह पुद्गल परिणाम—दया, दान, व्रत, महाव्रत का विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, वह पुद्गल परिणाम है। उस **पुद्गल के ही व्याप्यव्यापकभाव का सद्भाव होने से...** वह तो कर्मपुद्गल है अथवा भाषा में जो भाषावर्गणा पुद्गल है, उसका वह व्याप्य है और उसमें व्यापक प्रवर्तनेवाला तो पुद्गल है। आत्मा भगवान उसमें प्रवर्ते, ऐसी चीज नहीं है।

प्रभु! तेरी सम्पत्ति ऐसी है। तेरी चीज़ ज्ञानस्वरूप प्रभु चैतन्यमूर्ति आत्मा, स्वभाव की विधि में अकेली शुद्धता, आनन्द और ज्ञान की महान सामर्थ्यता, सर्वज्ञता पड़ी है। स्वभाव में सर्वज्ञता पड़ी है। ऐसी जहाँ आश्रयदृष्टि हुई तो कहते हैं कि सर्वज्ञस्वभाव का आश्रय हुआ तो सर्वज्ञ में से तो श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति आनन्द की व्याप्य अवस्था ज्ञानी का कार्य है और उसमें प्रवर्तनेवाले ज्ञानी व्यापक अर्थात् कर्ता हैं। समझ में आया?

पुद्गलपरिणाम के और पुद्गल के ही व्याप्यव्यापकभाव का सद्भाव होने से कर्ताकर्मपना है। यह जड़कर्म अथवा पुद्गलभाव, उससे उत्पन्न होनेवाली पर्याय, राग-द्वेष की, दया-दान की, करुणा, कोमलता की पर्याय उत्पन्न हुई, वह तो पुद्गल परिणाम है। उसका कर्ता तो पुद्गल है। भगवान नहीं, भगवान आत्मा नहीं। भगवान आत्मा अर्थात् दूसरे भगवान नहीं। यह भगवान आत्मा—अपना महिमावन्त स्वभाव। भगवान शब्द से महिमावन्त। जिसकी चैतन्यशक्ति स्वभाव की महिमा अपार है। ऐसे स्वभाव की दृष्टि में ज्ञानी हुआ, तो कहते हैं कि विकार की व्याप्य अवस्था कर्म और भाषा की पर्याय अवस्था, भाषावर्गणा, पुद्गल के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। वह पुद्गल कर्ता और वाणी उसका व्याप्य। पुद्गल कर्ता और राग उसका व्याप्य। हम भाषा बोलते हैं, हम भाषा नहीं बोलेंगे, हम मौन रहेंगे। अरे! प्रभु! तुझमें भाषा ही नहीं है, वह तो शब्द वर्गणा है। आत्मा से तो भाषा होती नहीं, परन्तु आहारवर्गणा से बना हुआ औदारिकशरीर, उसमें से भी भाषा नहीं होती। यह तो आहारवर्गणा से बना है। आत्मा से नहीं होती, आत्मा की इच्छा—अस्थिरता हुई, उससे नहीं होती, आत्मा की विचिक्षणता से भाषा नहीं होती और आत्मा से... आहारवर्गणा से बना हुआ यह धूल-

मिट्टी का शरीर, उससे भाषा वर्गणा—भाषापर्याय नहीं होती। वह तो भाषावर्गणा में भाषापर्याय होती है।

वस्तु ही अलग है। आहाहा! समझ में आया? आहारकशरीर की पर्याय, आहारकवर्गणा की। और यह भाषावर्गणा तो अन्य वर्गणा पुद्गल है। यह पुद्गल व्यापक होकर भाषा पर्याय की व्याप्य-कर्ता होकर कर्म तो उसका है। भगवान आत्मा का तो वह कर्म है नहीं। समझ में आया?

आत्मा का ज्ञान भी राग का कारण नहीं है। उस राग को करनेवाला कारण तो पुद्गल है। इस भाषा की पर्याय का कर्ता आत्मा और वह इसका कार्य है नहीं, वस्तु में नहीं है। अज्ञानी अनादि से मानता है। समझ में आया? आत्मा तो (कर्ता) नहीं कहा। (परन्तु) यह शरीर नहीं, वाणी नहीं, यह जीभ नहीं। यह आहारकवर्गणा की पर्याय है। भाषावर्गणा में से भाषा की पर्याय उत्पन्न होती है। वह भाषावर्गणा जड़, बाह्य नोकर्म है। वह नोकर्म का पुद्गल परिणाम भाषा की पर्याय यह व्याप्य और उसकी व्यापक तो भाषावर्गणा है, आत्मा व्यापक नहीं है, आत्मा की इच्छा व्यापक नहीं है। इच्छा में आत्मा व्यापक नहीं है, इच्छा में व्यापक तो पुद्गल है। आहाहा! समझ में आया? यह लोग कहते हैं कि हमारा व्यवहार। वस्तु यह है, वस्तुस्थिति ऐसी है। उसका ख्याल करे, दृष्टि करे, रुचि करे तो वस्तु ऐसी है। उसमें तीन काल-तीन लोक में कोई दूसरी कोई चीज़ है और दूसरे प्रकार से है, ऐसा तीन काल में नहीं है। भगवान के पास हो या इन्द्र के पास हो या स्वर्ग में हो या नरक में हो। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु है, ऐसा भान, भास, अनुभव श्रद्धा-ज्ञान हुए तो कहते हैं कि भाषा की पर्याय और दया, दान, व्रत, भक्ति जिसे लोग व्यवहार कहते हैं, वह व्यवहार की व्याप्य अवस्था कार्य तो पुद्गल का व्यवहार का कार्य है। ओहो! यह कहते हैं कि व्यवहार हमारे होवे तो निश्चय हो। जड़ होवे तो चैतन्य हो, ऐसी बात हुई। समझ में आया? जड़ होवे तो चैतन्य की पर्याय हो। भगवान! यह कहाँ से आया? पुद्गल है तो राग है, पुद्गल है तो व्यवहार है, पुद्गल है तो जिसे व्यवहारनय का विषय व्यवहाररत्नत्रय कहा, वह पुद्गल है तो है, द्रव्यस्वभाव है तो है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान! तेरे स्वभाव की महिमा ऐसी है। उस स्वभाव की दृष्टि या रुचि, पूरा हो गया, मुक्त हो गया। पर्याय में मुक्ति, वह अल्प काल में हो जाएगी। समझ में आया? मुक्त हुआ, मुक्त। बन्ध नहीं कहा। अबन्धस्वरूपी भगवान के अबन्ध परिणाम का कर्ता-हर्ता है। अबन्धस्वभावी भगवान आत्मा। अबन्ध परिणाम। अबन्ध परिणाम का अर्थ मोक्षमार्ग के

परिणाम। निश्चयमोक्षमार्ग, हों! वह परिणाम व्याप्य और आत्मा व्यापक। व्यवहारमोक्षमार्ग व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि, जिसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं, वह पुद्गलपरिणाम है और उसके पुद्गलपरिणाम व्यापक हैं। प्रभु! शान्ति से समझने की चीज़ है। यह कोई झगड़े की या वाद-विवाद की चीज़ नहीं है। वस्तु में कोई वाद-विवाद नहीं है। 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वाद-विवाद करे सो अन्धा।' यह बनारसीदास का (वाक्य है)। समझ में आया? 'सहज का धन्धा, वाद-विवाद करे सो अन्धा।' भगवान! तुझमें व्यवहार कहते हैं, व्यवहारनय का विषय, यहाँ यह व्यवहारनय का विषय—भेद, राग, निमित्त सबको यहाँ पुद्गल के परिणाम में गिनने में आया है और उसका पुद्गल के साथ व्यापकपना है। अर्थात् यह पर्याय अथवा भाव व्याप्य अर्थात् कार्य है और पुद्गल उसका व्यापक अर्थात् करनेवाला है। भगवान! तेरी चीज़ तो देख। ज्ञान से भरी, आनन्द से भरी है, उसमें कहाँ विकार की पर्याय का व्याप्यपना आवे? समझ में आया? सूक्ष्म बात है। ७५ से ७९ गाथा कर्ताकर्म का कस है। कस अर्थात् समझते हो न? निचोड़। ओहो! सब सार।

भाई! प्रभु! यह वस्तु ही ऐसी है। आचार्य तो आत्मा को भगवानरूप से बुलाते हैं। भगवान आत्मा! ७२वीं गाथा में आ गया न? '**असुचित्तं च विवपीयभावं च। दुक्खस्स कारणं...**' भगवान आत्मा! आहाहा! अरे! तुझे... छोटा बालक सोता है न? सुलाते समय उसकी माता 'मेरा लड़का होशियार' ऐसे गीत गाती है न? हमारे यहाँ तो गाते हैं। वह छोटा बालक दोपहर में सोता है न? तो उसकी माता झूलाती है, तो झूला करते-करते 'मेरा बेटा सयाना है' डाह्या को तुम्हारी भाषा में क्या कहते हैं? सयाना है। ऐसा कहे तो सो जाता है। उसे मिठास लगती है। देखो! समझ में आया? मेरा बेटा सयाना, वह ननिहाल में जाता है, जेब में खारेक और खोपरा लाता है, ऐसा हमारे यहाँ बहुत कहते हैं। खारेक और खोपरा होता है न? यह महिलाएँ कुछ बोलती हों, वह सुना हो। अपने को कहाँ खबर है? समझ में आया?

यहाँ मुझे दूसरा सिद्धान्त कहना है कि अहो! उसे सयानापन इतना मीठा लगता है कि नींद में भी सयाना कहे तो सो जाता है। यहाँ सयाना कहे तो जाग जाए, ऐसी बात यहाँ करते हैं। तू भगवान है न? उसमें सयाना कहते हैं, यहाँ तू भगवान है, ऐसा कहते हैं। यह जागृत होने की बात है, वह सोने की बात है। यह संसार है, यह मोक्षमार्ग है। उल्टी-सुल्टी की बात है। समझ में आया?

भगवान आत्मा है न, प्रभु! यह मिट्टी (शरीर) तो माँस, हड्डियाँ, चमड़ी वह तो जड़

है। प्रत्यक्ष भासित होता है और उसमें रागादि उत्पन्न होते हैं, वह भी जड़ का कार्य है। तेरे द्रव्य का कारण, वह निन्दनीय भाव द्रव्य का कार्य होगा? जो वस्तु चली जाती है, वह निन्दनीय है, वह दुःखरूप परिणाम है, शुभ हो या अशुभ हो, दोनों दुःखरूप हैं। वह कार्य तेरा, भगवान आत्मा का वह कार्य होगा? तो कहते हैं, आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य यह टीका करते-करते ऐसे आनन्द से उछल जाते हैं। देखो! प्रभु! तेरी प्रभुता में यह पामरता का कार्य प्रभुता का नहीं हो सकता, यह पामरता का कार्य जो दया, दान, व्रत, वह पामरता है, वह पुद्गलपरिणाम है, उसका व्यापक पुद्गल है, उसका पुद्गलपरिणाम, वह उसका व्याप्य है। भगवान प्रभु का वह व्याप्य हो और भगवान आत्मा उसमें व्यापक होकर प्रवृत्त रहे, प्रभु! ऐसा नहीं होता है। समझ में आया?

कहते हैं कि **उसी प्रकार...** यह दृष्टान्त कहा था न? किसका? मिट्टी और घड़े का। मिट्टी व्यापक है और घड़ा उसका व्याप्य है। इसी प्रकार पुद्गलपरिणाम व्याप्य है, राग-द्वेष आदि व्यवहार और पुद्गल उसका व्यापक है। यह **सद्भाव होने से कर्ताकर्मपना है।** पुद्गल के साथ उसका कर्ताकर्मपना, अवस्था-अवस्थाईपना, पर्याय-पर्यायवानपना उसके साथ है। भगवान! तेरी पर्याय और पर्यायवानपना ऐसा नहीं हो सकता है, हों! तू तो परमात्मस्वरूप भगवान है न, तो जब भगवान आत्मा की तेरी दृष्टि हुई तो तेरे व्याप्य में तो निर्मल प्रवाह ही बहता है। निर्मल श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की पर्याय बहती है, वह तेरा व्याप्य और उसमें तू व्यापक रहनेवाला। भगवान! यह विकारी निन्दनीय परिणाम वे ही सुखदायक संसार का मूल है। वह संसार का मूल तेरी चीज़ में नहीं हो सकता। वे संसार के मूल परिणाम वे व्याप्य और उदय भाव व्याप्य। प्रत्येक उदयभाव जितने लिये न? इक्कीस बोल आदि। इक्कीस तो सामान्य लिये, उपलक्षण से दूसरे भी हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि वे सब उदयभाव—चार गति, असिद्धपना आदि सब जो भाव हैं, वे पुद्गल के परिणाम हैं। ओहो! व्याप्य पुद्गल की दशा का। पुद्गल की दशारूप व्याप्य हैं और पुद्गल उसका व्यापक अर्थात् प्रवर्तनेवाला विस्तार होकर पुद्गल का विस्तार हुआ है। भगवान का ऐसा विस्तार नहीं होता। समझ में आया? जैसे कुत्ती के बच्चे बहुत होते हैं न? वह कुत्ती का परिवार है; उसी प्रकार विकारी परिणाम और भाषा पर्याय सब पुद्गल का विस्तार है। ओहो! पुद्गल की प्रजा है। भगवान! तेरा व्याप्य नहीं है। समझ में आया? वह प्रजा है, हों! प्रजा—विकारी प्रजा पर्याय। विकारी प्रजा, वह जुलमदार है, वह तेरी जाति नहीं है, प्रभु! और उसका व्यापक तू नहीं है, वह तेरी चीज़ नहीं है।

सर्वज्ञ ने पुकार की है। सन्त चारित्र में रमणता करके कहते हैं। समझ में आया? भाई! जैसे मिट्टी व्यापक विस्तार पाती हुई, मिट्टी का विकास होते-होते उस काल में घड़ा बनता है। इसका कर्ता मिट्टी है और व्याप्य (घड़ा) है। उसी प्रकार पुद्गल विस्तार पाकर, पुद्गल का विकास होकर वह विकारी पर्याय-अवस्था, उसका परिणाम-कार्य है और पुद्गल उसका (कर्ता) है।

पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक... है? देखो! अब जरा वह कर्ता की व्याख्या करनी है न? 'कर्ता, स्वतन्त्ररूप से करे, सो कर्ता।' कर्ता स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। उसका सिद्धान्त है न? तो कहते हैं कि पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्ररूप से... क्या? इस विकारी परिणाम को करनेवाला पुद्गल स्वतन्त्ररूप से कर्ता है। आत्मा की किंचित् सहायता लेकर करता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक...** किस दृष्टि से कथन है, यह न समझे तो समयसार में यह कहते हैं कि हमने समयसार तीन बार पढ़ा। तो हम कहते हैं कि विकार कर्म से होता है। एकान्त जाओ। एक पण्डित ने ऐसा निश्चित किया। यहाँ आया था। फिर तीन बार समयसार देखा। देखकर कहा कि हमने तो निश्चित किया है कि विकार कर्म से होता है, समयसार में है। इसलिए कोई कहे कि हमारे उपादान से होता है। नहीं, वह तो कर्म से होता है। भाई! वह चीज़ दूसरी, यह कहते हैं, वह दूसरी बात है। विकार के परिणाम तो पर्यायदृष्टि में, प्रमाणज्ञान में द्रव्यपने का ज्ञान हुआ और पर्यायज्ञान में उसका ही परिणमन है। उसका ही धर्म है। सैंतालीस नय में आया न! कर्ता धर्म पर्याय में अपना धर्म है। ऐसा सम्यग्ज्ञान देखता है। बस, इतना। परन्तु उस धर्म का लक्ष्य करके, लक्ष्य तो द्रव्यवस्तु पर देना है। उस वस्तु की दृष्टि में द्रव्यस्वभाव विकार का व्याप्त नहीं है। यह दृष्टि की प्रधानता से कथन है। यह ज्ञान की प्रधानता है, उसका धर्म है, ऐसा जानता है। परिणमन करे, वह कर्ता। वह परिणमन उसमें है तो उसका धर्म एक अंश... उसी समय एक अकर्ता धर्म भी है। कर्ता धर्म के साथ एक अकर्ता धर्म भी साथ में रहता है। आगे पीछे नहीं, कालभेद नहीं। और दो धर्म हैं। ज्ञायक चिदानन्द अभेदस्वभाव है, उसके ऊपर दृष्टि करना, उसका यह परिणाम फल है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक...** है। व्यवहार का जो रत्नत्रयव्यवहार कहने में आता है, जो बन्ध का कारण है, उसे स्वतन्त्र पुद्गल होकर उसे करता है। तेरे व्यवहाररत्नत्रय का कार्य, राग का (कार्य) भी तेरा नहीं है। स्वतन्त्ररूप से करता है, ऐसा यहाँ स्वभाव की दृष्टि में विभाव का व्याप्य पुद्गल है, ऐसा कहने में आया है। स्वभाव की

दृष्टि कराने में और स्वभाव का कार्य कराने में विभाव का कार्य पुद्गल का है। यह (मिथ्या) दृष्टि हटाने के लिये कहते हैं। आहाहा! कर्ता स्वतन्त्ररूप से अपनी पर्याय रचता है। वह ज्ञानभाव राग को रचता है? स्वभाव में ताकत हो, स्वभाव में ताकत होवे तो आत्मा कभी संसार से छूटेगा ही नहीं। निर्दोष निर्विकारी आनन्द का कर्ता होकर कभी मुक्ति होगी नहीं। क्योंकि द्रव्य और द्रव्यस्वभाव तो नित्य है। द्रव्य और द्रव्यस्वभाव तो नित्य है। यदि विकार का करनेवाला उस विकार में पसरनेवाला हो तो विकार का कर्ता होने से विकार कभी छूटेगा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि वह **पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र...** स्वतन्त्र। पुद्गल में स्वाधीनता रखी है। आहाहा! इस अपेक्षा स्वभाव की स्वतन्त्रता की प्रसिद्धि हुई। स्वभाव की स्वतन्त्रता का कर्ता होकर प्रसिद्धि हुई, यहाँ विकार की परतन्त्रता वह पुद्गल ही करता है, तेरा कार्य नहीं है, ऐसा कह दिया है। ज्ञान का परज्ञेयरूप भाव है। ज्ञान में तुझे वह परज्ञेयरूप भाव है, वह स्वज्ञेयरूप भाव नहीं है। समझ में आया? ओहो! कहाँ मिट्टी यह जड़, कहाँ भाषा जड़, कहाँ परिणाम विकार अचेतन अजागृत भाव, अजागृत भाव व्यवहार। उस अजागृत भाव का जागृत भाव व्याप्य नहीं है, वह जागृत का व्याप्य नहीं है। जागृत में प्रवर्तनेवाला अजागृत व्याप्य में नहीं है। वह अजागृत अचेतन विकारी शुभभाव, व्यवहार अजागृत भाव, अज्ञान भाव, अज्ञान कहने पर उसमें ज्ञान का अंश नहीं है। इतना अज्ञान का अर्थ है। अचेतन है, तो उसका व्याप्य तो पुद्गल है, पुद्गल उसका व्यापक है।

स्वतन्त्र व्यापक होने से... ऐसा कहा, देखो! आहाहा! प्रभु! दृष्टि में से पर्याय हट गयी और स्वभावदृष्टि हुई, तो पर्याय के आश्रय से जो विकल्प का कार्य, वह पुद्गल का ही कार्य है, तेरा है ही नहीं। समझ में आया? **इसलिए...** इस कारण से। **पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक होने से...** इस कारण से **पुद्गलपरिणाम का कर्ता है...** पुद्गलपरिणाम का कर्ता है। कौन? पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक है। पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र विस्तार पाता है इसलिए। पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र विस्तार पाता है। भगवान आत्मा में विस्तार पाने का गुण तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, चारित्र, शान्ति का विस्तार पाने का है। उसमें विकार का विस्तार पाने का गुण भरा है? समझ में आया? अरे! तेरी श्रद्धा तो दृढ़ कर। एक बार ऐसी दृढ़ता... दृढ़ता अन्दर ला कि तीन काल में राग का कार्य मेरा नहीं है। मैं तो ज्ञातादृष्टा हूँ। फिर स्वभाव की अनुभवदृष्टि होगी, नहीं तो होगी नहीं। समझ में आया? यह मेरा कार्य और मेरा कर्तव्य, यह पहले मुझे करना पड़ेगा। करना पड़ेगा और पहले होवे तो फिर निश्चय प्राप्त होता है। भगवान! क्या

कहता है ? पहले जड़ और अंधेरा हो, फिर चैतन्य और प्रकाश प्रगट हो, ऐसी यह भूल है। समझ में आया ? अजितप्रसादजी ! दिल्ली से आये न। अजितप्रसाद। यह प्रसाद की बात चलती है।

पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक... है। कारण लिया। **इसलिए पुद्गलपरिणाम का...** व्यवहाररत्नत्रय के राग का, राग-द्वेष आदि परिणाम का वह स्वतन्त्र व्यापक होने से उस कारण पुद्गलद्रव्य उसका कर्ता है। इसलिए पुद्गल परिणाम का पुद्गलद्रव्य ही कर्ता है। भाई ! यह तो अध्यात्मदृष्टि का विषय है।

समयसार अर्थात् ? अभी चौदह पूर्व और बारह अंग के रहस्य में रहस्य समयसार है और उसके श्लोक तथा टीका भरतक्षेत्र में दूसरी नहीं है। आहाहा ! पूरे केवलज्ञान की चीज़ क्या है और केवलज्ञान कैसे प्राप्त हो, यह खड़ा कर दिया है। समझ में आया ?

कहते है, पहले तो मिट्टी और घड़े का दृष्टान्त दिया। मिट्टी व्यापक, घड़ा व्याप्य। इस प्रकार पुद्गल परिणाम व्याप्य, पुद्गलद्रव्य व्यापक। यह कर्ता-कर्म सम्बन्ध (हुआ)। क्यों ?—कि **पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक होने से पुद्गलपरिणाम का...** राग का पुद्गल कर्ता है, ऐसा हम सिद्ध करते हैं। ओहोहो ! समझ में आया ? **और पुद्गलपरिणाम उस व्यापक से स्वयं व्याप्त होने के (व्याप्यरूप होता होने से) कारण कर्म है।** देखो ! पहले ऐसा कहा कि **पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक होने से पुद्गलपरिणाम का कर्ता है...** स्वतन्त्र है। पुद्गल परिणाम परिणमते-परिणमते विकार का अंश उसमें आता है। भगवान परिणमते-परिणमते विकार का अंश उत्पन्न हो, ऐसा कभी नहीं होता। भगवान आत्मा परिणमे और उदय भाव हो, ऐसा नहीं होता। उस उदयभाव का भाव, वह पुद्गल स्वतन्त्र व्यापक होकर पुद्गल उसका कर्ता है। **पुद्गलपरिणाम उस व्यापक से स्वयं...** अब वह राग है न ? विकार है न ? पुण्य है न ? दया, दान, भाव। वह **पुद्गलपरिणाम उस व्यापक से...** उस व्यापक द्वारा अर्थात् कर्म स्वतन्त्र व्यापक द्वारा **स्वयं व्याप्त होने से...** यह पर्याय स्वयं व्यापक से व्याप्त होती है। दया, दान, व्रतादि के परिणाम वह व्यापक जो पुद्गल, उससे स्वयं व्याप्य हैं। पुद्गल के साथ ही व्याप्य दशा स्वयं व्याप्य होती है।

पहले तो दृष्टान्त देकर इतना कहा। उसमें सिद्धान्त सिद्ध किया कि कर्ताकर्म तो भाई ! यह पुद्गल परिणाम और पुद्गल के साथ में है। क्यों ?—कि पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक है। इसलिए उस पुद्गल परिणाम का वह कर्ता है। पुद्गल स्वतन्त्र कर्ता है इसलिए, स्वतन्त्र

व्यापक है इसलिए। इसलिए कहते हैं न? इसलिए। और पुद्गलपरिणाम जो विकारी परिणाम व्यवहाररत्नत्रय के रागादि आये। उदयभाव आया, भाषा पर्याय तो जड़... परन्तु पुद्गल जो रागादि, व्यवहार, पंच महाव्रत के परिणाम **उस व्यापक से...** उस व्यापक से अर्थात्? वह पुद्गलद्रव्य जो स्वतन्त्र व्यापक है, उस **व्यापक से स्वयं व्याप्त होने से...** वह विकारी परिणाम स्वयं उसका व्याप्त होने से। इस कारण **कर्म है।** वह विकारी परिणाम पुद्गल का स्वयं व्याप्य होने से उस पुद्गल का ही कर्म है। आहाहा! समझ में आया?

स्वतन्त्रता। यहाँ स्वभाव द्रव्य का स्वतन्त्रकर्ता-प्रवर्तनेवाला, पर्याय निर्मल व्यापक होकर यह निर्मल पर्याय स्वयं कर्ता व्यापक की व्याप्य है। विकारी परिणाम स्वयं व्यापक द्रव्य स्वतन्त्र इसकी व्याप्य अवस्था है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं, भाई! कहाँ गये? यह तो संसार में सब चलता है। यह समझने की चीज़ है। बाकी तो सब आते हैं और जाते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा.. ओहोहो! टीका... कितने प्रकार से युक्ति से, न्याय से इसे सिद्ध करने... मुनि छठवें गुणस्थान में विराजमान हैं। तीन कषाय का नाश (हुआ है), वीतराग परिणति (प्रगट हुई है), संज्वलन का जरा सा (राग बाकी है) टीका में विकल्प निमित्त कहा। समझ में आया? परमाणु की पर्याय तो उस समय में जैसी परिणमने की क्रिया में वह भाषा की पर्याय जो है, उस परिणाम का व्यापक तो पुद्गल है। अमृतचन्द्राचार्य का विकल्प है, वह व्यापक नहीं और अमृतचन्द्राचार्य के आत्मा का वह विकल्प व्याप्य नहीं। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु! तेरा हृदय विशाल है, हों! तू महाभगवान होने की तैयारी तुझमें है। इतनी तो ताकत है। भगवान परमेश्वर जिसे तू स्मरण करता है, अरिहन्त... अरिहन्त... अरिहन्त.. सिद्ध.. सिद्ध... वह अरिहन्त और सिद्धपना तेरे गर्भ में पड़ा है। शक्ति में पड़ा है, ध्रुव में पड़ा है, भाव में पड़ा है। ऐसे भाव का भाववान भगवान, अपनी भावना करता है तो उसमें निर्मल पर्याय में स्वतन्त्र आत्मा व्यापक होकर, स्वतन्त्र (व्यापक) होकर और निर्विकारी पर्याय, उसका स्वयं व्याप्य होकर परिणमन करता है। समझ में आया? यह राग है, व्यवहार है तो निर्विकारी पर्याय स्वयं व्याप्य-व्याप्ति हुई, (ऐसा नहीं है)। व्यापक ऐसा द्रव्यस्वभाव द्रव्य, वह स्वतन्त्र होकर व्यापक होता है और उसकी निर्विकारी पर्याय स्वयं व्याप्य होती है। स्वयं होती है, इसका अर्थ क्या? कि वह राग है तो निर्विकारी पर्याय स्वयं व्याप्य हुई, ऐसा नहीं

है। तो स्वयं व्याप्य हुई, ऐसा नहीं कहलाता। व्यवहार, व्यवहार में रहा। स्वयं व्याप्य निर्विकारी पर्याय, व्यापक आत्मा होकर... जैसे यहाँ पुद्गल कहा न? वैसे वह आत्मा है।

पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक होने से पुद्गलपरिणाम का कर्ता है... आत्मा स्वतन्त्र व्यापक होने से निर्मल परिणाम का कर्ता है। और वह निर्मल परिणाम उस **व्यापक से स्वयं व्याप्त होने से...** निर्मल परिणाम आत्मा का कार्य है। समझ में आया? **इसलिए पुद्गलद्रव्य के द्वारा...** देखो! भाषा अभी अधिक स्पष्ट करते हैं। **इसलिए पुद्गलद्रव्य के द्वारा...** यहाँ दो ही द्रव्य लिये, बस। एक भगवान द्रव्य और एक पुद्गलद्रव्य। वह **पुद्गलद्रव्य के द्वारा कर्ता होकर...** पुद्गलद्रव्य द्वारा कर्ता होकर प्रवर्तनेवाले व्यापक होकर **कर्मरूप से किया जानेवाला...** वह विकारी परिणाम कार्यरूप किया जाता हुआ व्यवहार विकार जो है, वह **पुद्गलद्रव्य के द्वारा कर्ता होकर कर्मरूप से किया जानेवाला जो समस्त कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलपरिणाम...** है। पुद्गलपरिणाम है।

उसे जो आत्मा, पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को घट और कुम्हार की भाँति व्याप्यव्यापकभाव के अभाव के कारण... अब अभाव लेते हैं। देखो! **कर्मरूप से किया जानेवाला जो समस्त कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलपरिणाम...** राग, विकार, पुण्य, पाप, शुभभाव, करुणा, कोमलता, सेवा का, अनुकम्पा का, सब राग। आहाहा! दुनिया तो कहे, आहाहा! भाई! कोमलता बहुत, हों! कोमलता बहुत, सेवाभाव बहुत। यहाँ कहते हैं कि सेवाभाव तो पुद्गल का व्याप्य है। पामर है न? अपनी सेवा चाहता है और दूसरे की सेवा करने में धर्म मानता है। स्वयं पामर है न, पामर? कोई हमें मदद करे, मदद करे। हम दूसरे की मदद करे तो उसे लाभ हो। उसे लाभ हो तो मुझे भी लाभ होगा। आहाहा! भीखाभाई! भिखारी है न, भिखारी!

कल भक्ति में नहीं आया था! सेठ! भिखारी आया है। आप... आया था। क्या शब्द थे? '...भिखारी आया है।' हे भगवान! आपके पास... भिखारी आया है। देखने लायक मैं भिखारी हूँ। मेरे निर्मल परिणाम करनेवाला मैं भगवान, ऐसा मैं भिखारी हूँ। समझ में आया? यह पूजा में (भक्ति में) आया था दोपहर को। समझ में आया? अरे! प्रभु! मैं तो इतनी याचना करता हूँ। मेरे प्रभु परमात्मा स्वभाव के पास, मैं ऐसा दृढ़ भिखारी हूँ कि अलौकिक भिखारी हूँ। शुद्ध श्रद्धा ज्ञान-चारित्र के परिणाम का भूखा मैं, मेरे परिणाम मेरे स्वभाव में से आवे, ऐसा मैं भिखारी हूँ। समझ में आया? यह भगवान की भक्ति करते समय शुभभाव परिणाम है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। उसे कहते हैं कि पुद्गल का व्याप्य है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु ऐसी है।

इसलिए पुद्गलद्रव्य के द्वारा कर्ता होकर कर्मरूप से किया जानेवाला... कर्मरूप से किया जानेवाले किसके ? पुद्गलद्रव्य द्वारा पुद्गल से कर्मरूप किया जानेवाला व्यवहार। **जो समस्त कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलपरिणाम...** है। बस, इतनी बात है। **उसे जो आत्मा, पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को घट और कुम्हार की भाँति व्याप्यव्यापकभाव के अभाव के कारण...** जैसे आत्मा और पुद्गलपरिणाम, जैसे घट और कुम्हार। घट जो व्याप्य है, कुम्हार व्यापक है, ऐसा है ही नहीं। **घट और कुम्हार की भाँति...** व्याप्य अर्थात् घट व्याप्य और कुम्हार व्यापक, इसका अभाव है। घट व्याप्य, कर्म—कार्य, दशा, पर्याय, परिणाम और परिणामी कुम्हार, व्यापक कुम्हार, इसका अभाव है। समझ में आया ?

उसे जो आत्मा, पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को... देखो ! यह विकारी परिणाम, व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम, वे पुद्गल के परिणाम और आत्मा, दोनों को कर्ता-कर्म का अभाव है। समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो ! **उसे जो आत्मा,...** इतनी बात। **पुद्गलपरिणाम को...** अर्थात् विकारी परिणाम व्यवहाररत्नत्रय को... उत्कृष्टरूप से यहाँ बात लेते हैं। यह पुद्गलपरिणाम जो विकारी परिणाम है, उसे और आत्मा को **घट और कुम्हार की भाँति...** घट और कुम्हार में व्याप्य-व्यापक का अभाव है, उसी प्रकार विकारी व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम और आत्मा में व्याप्य-व्यापक का अभाव है। समझ में आया ? देखो ! यह ज्ञानी का लक्षण बताते हैं। आहाहा !

शिष्य ने पूछा है न ? ज्ञानी कैसे ज्ञात होता है ? भगवान ! देख, यह बात कहते हैं। ऐसे पहिचान ले, तेरे और दूसरे के आत्मा को। समझ में आया ? .... ऐई ! देवानुप्रिया ! यह समझ में आता है या नहीं ? क्या है अब ? पहले व्यवहार करना या निश्चय करना ? पहले व्यवहार थोड़ा-थोड़ा होवे तो निश्चय को मदद मिले न ? ऐसा कि नय है, वह इन्द्रजाल है। व्यवहारनय का कथन आया, वह इन्द्रजाल में फँसाया है। इन्द्रजाल ने नहीं फँसाया, उसकी भ्रमणा से फँसाया है। यदि नय से फँसा हो तो उसमें से कोई निकले नहीं। इसकी भ्रमणा से फँसा है। निश्चयनय का, व्यवहारनय का कथन है, इसलिए फँसा है, ऐसा नहीं है।

यह कहते हैं कि दो कथन आये न ? व्यवहारनय से आत्मा कर्ता है और व्यवहाररत्नत्रय उसमें है। ऐसा आया तो भ्रमणा होती है, ऐसा कहते हैं। यह खोटा है। दो नय के कथन आये तो भ्रमणा उत्पन्न हुई, यह बात है ही नहीं। उसकी दृष्टि में भ्रमणा है तो उसे भ्रमणा दिखायी देती है। समझ में आया ? व्यवहारनय के कथन आते हैं न ? इसलिए कहते हैं। व्यवहार साधक है, व्यवहार कारण है, हस्तावलम्ब है, ऐसा शास्त्र में आता है न ? तो वह नय का

जाल हुआ, ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं, जाल नहीं। वह समझनेवाले की समझने की भूल है। वह बात जो कहने में आयी है, वह यथार्थ वाच्य समझने के लिये बात कहते हैं। समझे नहीं तो चाहे जहाँ से भूल निकाले। उसमें क्या है ? भगवान के पास भी भूल निकाले। वह सब शास्त्र में आता है न ? कौन वह ? सर्वज्ञ को यह भगवान सर्वज्ञ को... मशकरी। मशकरी साधु आता है न ? इतिहास में आता है। समवसरण में जाकर गणधरपद नहीं मिला। बाहर निकलकर कहता है, ये सर्वज्ञ नहीं हैं। (सब) स्वतन्त्र हैं। वहाँ समवसरण में तो नहीं हो सकता। बाहर निकलकर कहा। सर्वज्ञ होवे तो मैं तो इतना-इतना पढ़ा हुआ, पहले से महान हूँ। मुझे क्यों गणधरपद नहीं मिला ? गणधरपद क्या स्वयं से मिलता है ? वह तो स्वभाविक वस्तु है, उसमें से आता है। समझ में आया ? सर्वज्ञ को उड़ा दिया। लो! भगवान का समवसरण... ये सर्वज्ञ नहीं। वे कोई भगवान भ्रमणा का कारण थे ? भ्रमणा तो उसने उत्पन्न की है। इसी प्रकार नय के कथन शास्त्र में निश्चयव्यवहार, उपचार-अनुपचार कथन आते हैं, वे कथन भ्रमणा का कारण नहीं है। दोनों में मिलान करने की दृष्टि नहीं है, इसलिए उसे भ्रमणा का कारण होता है। तो इसकी दृष्टि में भूल है। समझ में आया ? क्या कहते हैं।

जैसे घट और कुम्हार में व्याप्य-व्यापकभाव का अभाव है, उसी प्रकार आत्मा और पुद्गल परिणाम में व्याप्य-व्यापक का अभाव है। **असिद्धि होने से,...** देखो! आत्मा पुद्गल परिणाम को, विकारी परिणाम, पर्याय और आत्मा **घट और कुम्हार की भाँति...** घट और कुम्हार दोनों में कर्ता-कर्म का अभाव है, व्याप्य-व्यापक का अभाव है, इस कारण से कर्ता-कर्मपने की असिद्धि होने से। जैसे घट का कर्ता कुम्हार नहीं और कुम्हार घट का व्याप्य अर्थात् कर्म, कुम्हार का वह कर्म नहीं; इसी प्रकार भगवान आत्मा और पुद्गल राग, व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम, आत्मा उनका करनेवाला व्यापक और वे पुद्गलपरिणाम रागादि व्याप्य, उनके कर्ता-कर्मपने का अभाव है, इसी तरह व्याप्य-व्यापकपने का अभाव है। ऐसा कभी होता नहीं। समझ में आया ? एक भी बात बराबर लक्ष्य में, रुचि में ले तो उसे विवेक हो जाए। समझ में आया ? लक्ष्य में तो उसे लेना है न ? या कोई दे सकता है ?

कहते हैं कि **आत्मा, पुद्गलपरिणाम को...** पुद्गल परिणाम किसे कहा ? यह पहले शब्द लिये वे राग, द्वेष, सुख, दुःख, कल्पना वह सब। नोकर्म, वाणी दशा ऐसी चलती है, देखो! कि आत्मा है तो शरीर चलता है न ? आत्मा है तो शरीर चलता है न ? मैं आत्मा हूँ। प्रेरणा करते हैं तो शरीर ऐसे चलता है। देखो! कहते हैं कि मूढ़ है। वह पुद्गल स्वतन्त्र व्यापक होकर और वह पर्याय स्वयं व्याप्य होकर व्यापक के साथ मिलती है। आत्मा उसकी

पर्याय चलाता है और आत्मा व्यापक और वह व्याप्य है, ऐसा तीन काल में नहीं है।

घट और कुम्हार के बीच व्याप्य-व्यापक का अभाव है अर्थात् कर्ता-कर्म का अभाव है। इसी प्रकार पुद्गलपरिणाम ऐसा राग तथा शरीर से पर्याय और भाषा की पर्याय और आत्मा, दो के बीच व्याप्य-व्यापक का अभाव होने से कर्ता-कर्म की सिद्धि नहीं होती। समझ में आया? किशोरचन्दजी! क्या कहते हैं, समझ में आता है? पुद्गलपरिणाम अर्थात् अकेली जड़-पर्याय नहीं लेना। सब उदयभाव से लेकर... एक ओर गाँव और एक ओर राम। एक ओर भगवान आत्मा ज्ञायकपने से स्वतन्त्र व्यापक होकर अपनी ज्ञातादृष्टा की निर्मल श्रद्धा-ज्ञान की पर्याय होती है, वह पर्याय स्वयं व्याप्य होती है, आत्मा स्वयं व्यापक होकर-कर्ता होकर करता है। इसी तरह आत्मा और विकारी परिणाम, पुद्गल के जो परिणाम वे आत्मा का व्याप्य और आत्मा व्यापक, घट व्याप्य और कुम्हार व्यापक - यह जैसे नहीं है, उसी प्रकार विकारी परिणाम व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसा नहीं है। ऐसी कभी सिद्धि नहीं होती। समझ में आया?

आत्मा, पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को... किसकी भाँति? **घट और कुम्हार की भाँति व्याप्यव्यापकभाव के अभाव के कारण कर्ताकर्मपने की असिद्धि होने से,...** क्या (कहा)? व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प व्याप्य और आत्मा व्यापक, आत्मा कर्ता और वह व्याप्य अर्थात् कर्म, इसकी असिद्धि है। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, नव तत्त्व के भेद की श्रद्धा का विकल्प, शास्त्र पढ़ने का विकल्प और पंच महाव्रत का विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प। कहते हैं कि जैसे घट और कुम्हार के बीच व्याप्य-व्यापक अर्थात् कर्ता-कर्म नहीं है; उसी प्रकार विकारी पर्याय व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसी कर्ता-कर्म की सिद्धि कभी नहीं होती। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं? एक-एक बात दो-तीन बार तो चलती है। ऐसी की ऐसी नहीं छोड़ देते। क्या कहते हैं? देखो!

परमार्थ से करता नहीं है,... परमार्थ से विकार परिणाम व्यवहाररत्नत्रय व्याप्य और आत्मा व्यापक, आत्मा कर्ता और विकारी व्यवहाररत्नत्रय पर्याय का कार्य है ही नहीं। वस्तु की परमार्थ दृष्टि में वह बात सिद्ध नहीं होती। इससे उल्टा सिद्ध होता है कि विकारी परिणाम जो है, वह व्याप्य जो पुद्गल का है, वह अपना ज्ञान करता है, वह अपने ज्ञान में निमित्त पड़ता है, ऐसा अपना ज्ञान व्याप्य और आत्मा व्यापक है। परन्तु वह निमित्त पड़ता है, इसलिए व्याप्य हो जाए, ज्ञान में वह विकार व्यवहाररत्नत्रय निमित्त पड़ता है तो व्यवहाररत्नत्रय आत्मा का व्याप्य हो जाए, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

यह तो अमृतचन्द्राचार्य का अमृत का खजाना है। टीका आत्मख्याति। आत्मप्रसिद्धि में विकार परिणाम की प्रसिद्धि आत्मा करे, वह आत्मा की प्रसिद्धि है? विकार परिणाम— व्यवहाररत्नत्रय आत्मा करे, वह आत्मा की प्रसिद्धि है? नहीं। वह व्यवहाररत्नत्रय की प्रसिद्धि पुद्गल का व्याप्य है, वह पुद्गल की प्रसिद्धि करता है। वह पुद्गल की प्रसिद्धि-ख्याति करता है। आहाहा! समझ में आया?

परमार्थ से करता नहीं है,... तब है क्या? **परन्तु (मात्र) पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को...** देखो! इतना जरा ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध लिया। कर्ता-कर्म नहीं, व्याप्य-व्यापक नहीं, इसलिए ज्ञेय-ज्ञायक है। **पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को...** अर्थात् जो विकारी परिणाम हुए। है, उसका ज्ञान नहीं, ज्ञान तो अपना है। यहाँ तो जरा उसका ज्ञान स्व-परप्रकाशक अपने में होता है, स्व-परप्रकाशक अपने में अपने कारण से होता है, उसमें वह पुद्गलपरिणाम व्यवहाररत्नत्रय का राग, शुभभाव, वह पुद्गलपरिणाम, उसका ज्ञान। ज्ञान तो अपना है, परन्तु अपने स्व-परप्रकाशक सम्बन्धी ज्ञान में वह जरा निमित्त पड़ता है। कार्य तो अपने में अपने से होता है। तो व्यवहाररत्नत्रय ज्ञान में निमित्त हुआ। व्यवहाररत्नत्रय निश्चय में कारण हुआ - ऐसा नहीं। अपने निश्चय में कारण हुआ, ऐसा नहीं। परन्तु अपना ज्ञान हुआ, उसमें वह चीज़ है, ऐसे उपादान से स्व-परप्रकाशक का व्याप्य होकर व्यापक आत्मा अपने ज्ञान का कार्य करता है तो व्यवहाररत्नत्रय निमित्त है। किसमें?-यह ज्ञान हुआ उसमें। ज्ञेयरूप से निमित्त हुआ। ज्ञेय-ज्ञायक का निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है न! यह बात सिद्ध करते हैं। दूसरी बात आत्मा में सिद्ध नहीं होती।

पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को (आत्मा के) कर्मरूप से करता हुआ अपने आत्मा को जानता है,... वापस देखो! यह क्या लिया? कि व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, उस सम्बन्धी अपना ज्ञान। अपने ज्ञाता की ओर का परिणाम व्याप्य हुआ, वह अपना ज्ञान। वह अपने ज्ञान में निमित्त हुआ, तो कहते हैं कि अपने आत्मा को जानता है। उस पर को जानना, वह तो व्यवहार हुआ। वह आत्मा अपने ज्ञान को जानता है, अपने ज्ञान को जानता है। भले ज्ञान में वह निमित्त हो। परन्तु पर को जानता है, वह तो उपचार है। वह नहीं। **पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को (आत्मा के) कर्मरूप से करता हुआ....** आत्मा का कार्य है कि उसे जानना, स्वयं को जानना, ऐसे अपने आत्मा को जानता है। अब विशेष बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

११ **श्री समयसार कलश टीका, श्लोक - २७१, प्रवचन - ४६३**
दिनांक - २९-०९-१९७७

कलश टीका २७१ कलश पहले छोड़ दिया था, परन्तु इसमें सब आ गया, बात आ गयी है।

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१॥

भावार्थ इस प्रकार है... पहले से ही भावार्थ लिया। कहने से पहले उन्हें क्या कहना है, उसे जरा स्पष्ट करने के लिये (भावार्थ लिया है)। **ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है...** यह बात उठायी ऐसे कि परद्रव्य ज्ञेय है और आत्मा ज्ञान है - ऐसी भ्रान्ति चलती है। परज्ञेय है, वह तो व्यवहारज्ञेय है। निश्चय में तो अपनी ज्ञान की पर्याय में जो छह द्रव्य का ज्ञान होता है, वह अपना ज्ञेय और अपना ज्ञान और अपना ज्ञाता है। आहाहा! जैसे पहले कहा कि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव वही है। द्रव्य है, वही है, क्षेत्र भी वही है, काल भी वही है। द्रव्य भिन्न, क्षेत्र भिन्न, काल भिन्न, भाव भिन्न - ऐसा नहीं है। आहाहा!

वस्तु जो अनन्त गुण का भण्डार द्रव्य है। वह द्रव्य, वही असंख्यप्रदेशी क्षेत्र, वही त्रिकाल और वही भाव। भाव - जैसे आम में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श—वर्ण कहो तो वह, गन्ध कहो तो भी वह, और रस कहो तो भी वह और स्पर्श कहो तो भी वह। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आम में अलग है- आम में ऐसा नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा द्रव्य अर्थात् अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु द्रव्य; वही असंख्यप्रदेशी द्रव्य है; वही क्षेत्र है और जो असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है, वही द्रव्य है और जो असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है, वही त्रिकाल काल है और वही त्रिकाल भाव है। आहाहा! समझ में आया? चार प्रकार का भेद भी निकाल दिया। आहाहा!

दृष्टि का विषय तो द्रव्यस्वभाव, क्षेत्रस्वभाव, काल-भाव वह एकरूप स्वभाव है। दृष्टि के विषय में चार भेद नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य है, वही पंचम पारिणामिकभाव है; क्षेत्र है, वही पंचम पारिणामिकभाव है; त्रिकाल वस्तु, वह

परमपारिणामिकभाव है और अनन्त भाव, वह भी पारिणामिकभाव है। आहाहा! ये चार भेद एक ही चीज़ हैं; चार भिन्न-भिन्न हैं - ऐसा सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। ये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव एक स्वरूप से अभेद-अखण्ड, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! कठिन बातें भाई! गजब! समझ में आया? इस सम्यग्दर्शन के विषय में निमित्त तो न हो, वह राग तो नहीं परन्तु एक समय की पर्याय सिद्ध आदि, केवलज्ञान की, वह भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा!

अब यहाँ तो ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता.. ज्ञान जाननेवाला, ज्ञेय जानने में आता है, ज्ञाता वह सब गुण का पिण्ड। आहाहा! यह कहते हैं, देखो! **ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है। सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक है..** आहाहा! **छह द्रव्य..** उसमें अनन्त केवली आये, अनन्त सिद्ध आये, अनन्त निगोद के जीव आये। आहा! तो आत्मा ज्ञायक है और पंच परमेष्ठी, वे छह द्रव्य में आये तो वे ज्ञेय हैं - ऐसा है नहीं। आहाहा!

ज्ञेय-ज्ञायक का व्यवहार सम्बन्ध भी छुड़ा देते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात भाई! जाननस्वभाव ऐसा भगवान आत्मा, वह ज्ञायक; ज्ञायक, जाननेवाला और छह द्रव्य में अनन्त केवली आये और सिद्ध आये, वे ज्ञान में ज्ञेय हैं - ऐसा है नहीं। आहाहा! वह कहते हैं, देखो! **वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर..** एक परमाणु से लेकर अचेतन महास्कन्ध-कर्म आदि। आहाहा! यहाँ तो आत्मा ज्ञायक है और राग-व्यवहाररत्नत्रय का राग उत्पन्न होता है, वह ज्ञेय है - ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, यह आत्मा ज्ञायक और वह ज्ञेय है - ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! बारहवीं गाथा में कहा था - जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाना हुआ - वह तो जानता है अपनी पर्याय। राग को, व्यवहार को अपनी पर्याय जानती है तो पर्याय अपना ज्ञेय है। राग ज्ञेय तो व्यवहार से कहने में आया है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म!

छह द्रव्य में जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, नवतत्त्व का भेदवाला भाव, पंच महाव्रत के परिणाम, वह राग, वह अपना स्वभाव तो नहीं परन्तु वह अपना ज्ञेय भी नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है न? सूक्ष्म बात है भगवान! आहाहा! **पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं। सो ऐसा तो नहीं है।..** ऐसा नहीं है। आहाहा! चन्दुभाई! आहाहा! शरीर में रोग आया तो आत्मा ज्ञायक है और रोग ज्ञेय है - ऐसा भी नहीं है।

श्रोता : अजीब बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात है। कभी-कहीं सुना है वहाँ, तम्बाकू और बीड़ी में यह कुछ है नहीं! सेठ! यहाँ तो कहते हैं तम्बाकू और बीड़ी और स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, वह ज्ञायक का ज्ञेय है - ऐसा है ही नहीं। आहाहा! गजब बात की है न! अपना तो नहीं, ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी और व्यवहाररत्नत्रय का राग- वह छह द्रव्य में आता है, वे छह द्रव्य ज्ञेय हैं, जाननेयोग्य हैं, प्रमेय हैं और आत्मा प्रमाण करनेवाला है - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

श्रोता : मीठी-मधुर बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है, बापू! यहाँ तो पर से समेटने की बात है। आहाहा! कठिन काम है भाई! अनन्त काल में यह अभेद और अविरुद्ध इसने जाना नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि पुद्गल से लेकर भिन्नरूप (छह द्रव्य, उनमें) अनन्त केवली, पंच परमेष्ठी ज्ञान में ज्ञेय है - ऐसा भी नहीं। मीठालालजी! क्योंकि आत्मा जो छह द्रव्य का और पंच परमेष्ठी का ज्ञान करता है, वह तो ज्ञान की पर्याय उनके कारण से हुई नहीं, उन ज्ञेय के कारण से हुई नहीं; वह अपने से हुई है तो अपने ज्ञान की पर्याय अपना ज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा तो नहीं है। जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है.. 'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' आहाहा! मैं **'अयं' जो कोई 'ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' चेतना सर्वस्व..** जानना-देखना। **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ।** आहाहा! **'सः ज्ञेयः' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..** चेतना सर्वस्व मैं हूँ। इन छह द्रव्य का ज्ञेयपना मुझे यह भी नहीं। मैं तो चेतना सर्वस्व जो पर्याय, अपनी वह अपने में ज्ञेय है। आहाहा! कठिन बातें गजब हैं। अन्तिम श्लोकों में तो एकदम.. ज्ञान की पर्याय ज्ञायक है, आत्मा और वह ज्ञेय तो है या नहीं छह द्रव्य, केवलज्ञान में ज्ञेय है या नहीं?

श्रोता : व्यवहार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार है, इसका अर्थ क्या? है नहीं। भगवान लोकालोक को जानते हैं - ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। तब क्या लोकालोक को नहीं जानते हैं? आहाहा! कि अपनी ज्ञानपर्याय में, अपने में लोकालोक का ज्ञान अपने कारण से हुआ, वह पर्याय अपना ज्ञेय है, लोकालोक ज्ञेय नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई! यह कहीं एकदम.. आहाहा!

'सः ज्ञेयः न एव' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः'.. वस्तु-अपने जीव से भिन्न, आहाहा! भगवान चेतनास्वरूप से भिन्न **अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र।** मैं नहीं। आहाहा! छह द्रव्य का जानपना मात्र मैं नहीं; मैं तो मेरी ज्ञान की पर्याय को ज्ञेय बना करके जाननेवाला हूँ। ऐसी सूक्ष्म बातें! अब लोगों को व्यवहार से होता है, दया, दान, व्रत, भक्ति से निश्चय होता है, यह तो बात कहीं रह गयी परन्तु व्यवहार ज्ञेय है और आत्मा ज्ञायक है, यह भी दूर हो गया। आहाहा! है?

श्रोता : बहुत सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म है। छाल की भाल कहते हैं न भैया! छाल का भाल। छोड़ते ऐसी छाल है। मार्ग ऐसा है।

श्रोता : आप ही समझा सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! उस बीड़ी के प्रेम में, उसके नामा में (खाता-बही में) कैसे निकाल सकते हो। सेठ! यह नामा निकाल सकता है न? एकदम-एकदम करे, इसके पास इतना है और इसके पास इतना...

श्रोता : आदत हो गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदत हो गयी है। आहा! यहाँ तो यह ले-दे सकते तो नहीं परन्तु उसको जानते हैं - ऐसा भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सेठ! कानपुर जाकर तम्बाकू के पैसे देते हैं, वह तो नहीं। दृष्टान्त घर के सेठ का देते हैं न? परन्तु वह पैसा आया पचास हजार या लाख, वह ज्ञेय और मैं ज्ञायक - ऐसा भी नहीं है। क्योंकि ज्ञेय को जानने की पर्याय मेरी है। अतः मैं ज्ञेय और मैं ज्ञान हूँ, मैं चैतन्य सर्वस्व हूँ, उसमें पर का ज्ञेयपना आता ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

तत्त्वदृष्टि सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! इसने अनन्त काल में अभ्यास पर का, पर्याय का, राग का अभ्यास किया। आहाहा! जन्म-मरण से रहित होने की चीज़ कोई अलौकिक है और वह पुरुषार्थ से प्राप्त होती है। परन्तु पुरुषार्थ क्या? आहाहा! यह शास्त्र है, वह मेरा ज्ञान है और यह ज्ञेय है - ऐसा भी नहीं और मेरे ज्ञान की पर्याय में शास्त्र का जो ज्ञान है - ऐसा ज्ञान आया, वह उस कारण से नहीं आया, वह ज्ञेय के कारण से नहीं आया। अपनी पर्याय में अपने ज्ञेय के कारण से ज्ञान आया है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। पर के साथ क्या सम्बन्ध है? ऐसा

कहते हैं। ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध भी नहीं। आहाहा! ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध कहने में आता है न? तो सम्बन्ध तो व्यवहार है। आहाहा!

निश्चय से तो यह छह द्रव्यों का ज्ञान अपनी पर्याय में अपने से हुआ है, वह छह द्रव्य की अस्ति के कारण इस पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं है। मेरी पर्याय में इतनी अस्ति की ताकत है कि पर की अस्ति है तो मैं छह द्रव्य की पर्याय का ज्ञान करता हूँ - ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बातें! तो कहते हैं **'सः ज्ञेयः न एव'** पर के ज्ञानमात्र ज्ञेय, वह मैं नहीं; पर का ज्ञानमात्र ज्ञेय, वह मैं नहीं। आहाहा! यह कलश-टीका तो घर में रखी होगी - रखी है न? पुस्तक तो वहाँ घर में है न? रखी होगी। छोटे सेठ पढ़े - ऐसी बात है भाई! यह तो भगवान की बात है न, भगवानदास! आहाहा! गजब बात है और इन दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह पद्धति कहीं नहीं है। समझ में आया? यह वस्तु की स्थिति, भगवान!

यह छह द्रव्य हैं, उनका ज्ञान हुआ, वह ज्ञेयकृत हुआ तो वह ज्ञान की पर्याय ज्ञेय के कारण से हुई है? वह तो अपनी पर्याय हुई है। वह तो अपनी पर्याय, वह अपना ज्ञेय है। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा था। बारहवीं गाथा में (कहा था)। उसका अर्थ यह कि उस प्रकार के ज्ञान की पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। वह राग है, व्यवहाररत्नत्रय का (राग है), उसका ज्ञान यहाँ अपनी पर्याय में ऐसा ही अपने से स्व-परप्रकाशक की पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। वह अपनी पर्याय, अपना ज्ञेय है। व्यवहार भी ज्ञेय नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह तो धीर के काम हैं, बापू! यह कोई उतावलिया होकर... उतावल से आम नहीं पकते। आम बोने के बाद थोड़ी धीरज चाहिए। आम समझे न? केरी, केरी, केरी का बीज बोवे तो तुरन्त फल आता है? तो थोड़ी धीरज चाहिए.. इसी प्रकार भगवान आत्मा.. आहाहा! तेरी ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य जानने में आते हैं तो वे ज्ञेय हैं तो यहाँ ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं है। अपनी पर्याय इतनी प्रगट हुई है, वह अपना ज्ञान और अपना ज्ञेय, पर्याय है। आहाहा! समझ में आया?

अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र नहीं - ऐसा कहते हैं। क्या कहा यह? अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपनामात्र नहीं। उसका जानपना मात्र नहीं; मैं अपनी पर्याय का जानपना मात्र मैं हूँ। सर्वस्व तो मुझमें है। अरे!

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय.. मैं जाननेवाला और सर्वज्ञ परमेश्वर मेरे ज्ञान में ज्ञेय.. परमेश्वर मेरा है, यह बात तो नहीं। आहाहा! पंच परमेष्ठी

मेरे हैं - ऐसा तो नहीं परन्तु पंच परमेष्ठी मेरे में ज्ञेय है - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! उन पंच परमेष्ठी का यहाँ जो ज्ञान हुआ, वह उनका नहीं हुआ है, वह अपनी पर्याय की सामर्थ्य से हुआ है, वह अपनी पर्याय अपने में ज्ञेय है। आहाहा! ऐसा काम है। दृष्टि को समेट लिया। अपने में ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता, ये तीन भेद भी निकाल देंगे बाद में। यहाँ तो अभी... समझ में आया? पर ज्ञेय और मैं ज्ञायक - ऐसा तो निकालते हैं; पश्चात् पर्याय ज्ञेय है और मैं ज्ञान हूँ तथा मैं ज्ञाता हूँ, यह तीन भेद भी उसमें नहीं है।

ज्ञाता, वह ज्ञाता है और ज्ञाता, वह ज्ञान है तथा ज्ञान, वह ज्ञेय है। आहाहा! ऐसी चीज़! आहाहा! सन्तों ने मार्ग सरल कर दिया है। सरल कर दिया है। सरल किया। अत्यन्त अल्प भाषा में मार्ग बहुत सरल कर दिया है। यह अनुभवप्रकाश में आता है। आहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक, समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय.. मेरे अतिरिक्त सब पर छह द्रव्य मेरे ज्ञेय हैं। आहाहा! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, परमाणु से लेकर स्कन्ध, कर्म। तो कर्म मेरा ज्ञेय है और मैं ज्ञायक हूँ। आहाहा! कर्म मुझमें तो नहीं, मेरा तो नहीं परन्तु कर्म ज्ञेय है और मैं ज्ञायक हूँ - ऐसा भी नहीं। आहाहा! यहाँ पुकार करते हैं, कर्म से ऐसा और कर्म से ऐसा हो। अरे, सुन तो सही! नाथ! तेरी ज्ञान की सामर्थ्यता इतनी है कि उसमें पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा!

ऐसा तो नहीं है। तो कैसा है? ऐसा है—'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः' जानपनारूप शक्ति... मेरी जानपनारूप शक्ति और **जाननेयोग्य शक्ति...** वह मेरी, जानपनेरूप शक्ति मेरी और जाननेयोग्य शक्ति भी मेरी। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अपने आप तो यह समझ में आये ऐसा नहीं है। पोपटभाई! पोपटभाई आ गये। उस पैसे में रुक गये थे न। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि लक्ष्मी तो तेरी नहीं परन्तु तेरा ज्ञेय नहीं, वह तो जगत की जड़ चीज़ है परन्तु वह ज्ञेय है और तू ज्ञायक है - ऐसा भी नहीं। कब? तेरी ज्ञान की पर्याय तेरा ज्ञेय और तू ज्ञान तथा तू तेरा ज्ञाता। समझ में आया?

जानपनेरूप शक्ति मेरी, जाननेयोग्य शक्ति भी मेरी। मैं पर्याय का ज्ञान और ज्ञेय मैं बनाता हूँ, मेरी पर्याय ज्ञेय, मैं ज्ञान और एक-एक शक्ति हुई दो। अब ज्ञाता, ज्ञाता **अनेक शक्ति से बिराजमान..** जाननशक्ति एक, ज्ञेयशक्ति-प्रमेयशक्ति एक अन्दर। आहाहा! क्योंकि द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रमेयशक्ति का व्यापकपना है तो वह प्रमेय-ज्ञेय पर्याय है, वह भी मैं और ज्ञान भी मैं और अनन्त शक्तिसम्पन्न ज्ञाता भी मैं; यह और एक-एक शक्ति। आहाहा! क्या कहा,

बहुत सरस बात है, भाई! तुझे पर के सामने देखना नहीं है और पर को.. आहाहा! यह वीतराग की वाणी, भगवान त्रिलोकनाथ समवसरण में बिराजते हैं और वे तेरा ज्ञेय और तू ज्ञायक, आहाहा! उनसे तो तेरी ज्ञानपर्याय होती नहीं परन्तु उनको जानता है - ऐसा भी यहाँ नहीं। समझ में आया? उस सम्बन्धी जो अपनी ज्ञानपर्याय में ज्ञान हुआ, उस ज्ञेय को आत्मा जानता है। वह ज्ञेय भी अपना और ज्ञान भी अपना और अनन्त शक्ति का सम्पन्न ज्ञाता भी अपना। आहाहा! अरे! इसे कहाँ जाना? बाहर में भटक-भटक भटकत द्वार-द्वार लोकन के - आता है न? झांझरी बोले थे न उस दिन 'भटकत द्वार-द्वार लोकन के कूकर आशाधारि' वह कुत्ता जब दस बजे का समय हो, फिर जाली होती है न जाली - कुत्ता जाली, बन्द हो वहाँ। रोटी और खाता हो वहाँ गन्ध आती है कुत्ते को, कुत्ते को। जाली होती है न, कुत्ता जाली बन्द हो वहाँ खड़ा होता है, उस रोटी की गन्ध आती है न, अभी मुझे मिलेगी। दाल, भात, साक की उसे गन्ध आती है। आहाहा!

इसी प्रकार जहाँ हो वहाँ भिखारी माँगा करता है, कहते हैं मेरी ज्ञान की पर्याय यहाँ से होगी, यहाँ से होगी। आहाहा! 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे' आत्मा के आनन्द का सुधारस पी न, प्रभु! आहाहा! वह ज्ञेय भी तू, ज्ञान भी तू और ज्ञाता भी तू। तू ज्ञान-जानने की एक शक्ति; ज्ञेय-जनवाने की एक शक्ति और ज्ञाता-अनन्त शक्तिरूप बिराजमान है। आहाहा! अरे! यहाँ तो कहते हैं मेरा गुरु और मेरा भगवान, मेरा देव-मेरा मन्दिर..

श्रोता : चेतना सर्वस्व मैं हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतना सर्वस्व हूँ मैं तो.. चेतना सर्वस्व मैं हूँ। सर्वस्व मैं हूँ। वह ज्ञेय भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञाता भी मैं। आहाहा! ऐसा मार्ग समझ में नहीं आये, इसलिए फिर लोगों को व्यवहार क्रियाकाण्ड में लगा दिया। उससे कल्याण होगा - ऐसी प्ररूपणा शुरु हो गयी। अर र! वह तो मिथ्यात्व की प्ररूपणा है। मिथ्यात्व के पोषण की प्ररूपणा है। बाकी पता कैसे पड़े कि यह भावलिंगी है या द्रव्यलिंगी? परन्तु प्ररूपणा ऐसी स्पष्ट है, इससे पता नहीं पड़ता कि यह मिथ्यादृष्टि है? वह तो स्थूल बात है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम परज्ञेयरूप से ज्ञान में है, वे उसको वहाँ धर्म का कारण बताते हैं, उससे तो धर्म होगा - ऐसी तो प्ररूपणा / कथन है - वह मिथ्यात्व है। उसमें सूक्ष्म कहाँ है, उसमें? समझ में आया? कठिन लगेगा, भाई!

कहा नहीं था? कल कहा था, नहीं? आज सबेरे कहा था। भाई! इस व्यवहार का

निषेध करते हैं, वह तेरा निषेध नहीं है। तू ऐसा है ही नहीं तो फिर निषेध क्या? तू आत्मा है न भगवान! ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञातारूप से तू आत्मा है तो तुम्हारा अनादर कहाँ आया? आहाहा! यह तो स्व का आदर आया। समझ में आया? व्यवहार का निषेध, वह अपनी पर्याय में-व्यवहारज्ञेय और यह ज्ञान-ऐसा है नहीं। तेरा स्वरूप ऐसा है नहीं। तू ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग आवे; होवे, वह दूसरी बात है। होवे तो छह द्रव्य हैं अनन्त, अनादि से वे कहाँ-और वे सत्रूप हैं, असत्रूप नहीं। ब्रह्मसत्य और जगत मिथ्या - ऐसा नहीं है। वह तो अपनी अपेक्षा से मिथ्या; बाकी छह द्रव्य तो अनादि से पड़े हैं। आहाहा! एक-एक द्रव्य में अनन्त गुण, एक-एक परमाणु में अनन्त गुण। आहाहा! वे ज्ञान में ज्ञेय कहना, यह कहते हैं हमें खटकता है, वह नहीं। आहाहा! तो उस ज्ञान में व्यवहार मेरा मानना, यह तो कहीं रह गया।

भगवान! यह मार्ग तो तेरे हित कार्य की बात है, प्रभु! अपने में सूझ पड़ जाये ऐसी चीज़ है। समझ में आया? आहाहा! किसी को पूछना नहीं पड़ेगा। आहाहा! जानपना शक्ति एक, जाननेयोग्य शक्ति एक, दो अनेक शक्ति से बिराजमान वस्तु ऐसे तीन भेद '**मद्वस्तुमात्रः**' **मेरा स्वरूपमात्र है,..** ये तीनों मेरा स्वरूप है। ज्ञेय भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञाता भी मैं, ये तीन स्वरूप मैं हूँ। परज्ञेय मैं हूँ - ऐसा तो नहीं है। आहाहा! और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव भी शुभभाव है और शुभभाव ज्ञेय तथा आत्मा ज्ञायक - ऐसा है ही नहीं। आहाहा! प्रभु! तेरी बात तो देख। बलिहारी वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. वीतराग..

यहाँ तो कहा है कि बाह्य निमित्त ज्ञेय भी वे नहीं,... तुझे लाभ करे, यह तो नहीं, वह तो तेरी चीज़ तो नहीं - सर्वज्ञ, अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अनन्त सिद्ध, अनन्त आचार्य, उपाध्याय, साधु, उसमें आता है न?

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, आहाहा!

णमो लोए सव्व त्रिकालीवर्ती सिद्धाणं

णमो लोए सव्व त्रिकालीवर्ती आयरियाणं

णमो लोए सव्व त्रिकालीवर्ती उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व त्रिकालीवर्ती साहुणं।

भविष्य में अरिहन्त और सिद्ध होगे, वे अभी वन्दन में आ गये। समझ में आया? व्यक्तिगत नहीं परन्तु ऐसे समूह में आ गये। त्रिकालीवर्ती भी पंच परमेष्ठी ज्ञेय हैं और तू

ज्ञायक है। तेरे तो ये पंच परमेष्ठी नहीं परन्तु वे ज्ञेय और तू ज्ञायक है - ऐसा भी नहीं। आहाहा! कठिन काम है। उस सम्बन्धी का तुझे ज्ञान हुआ, वह तेरी पर्याय तुझे ज्ञेय हुई। आहाहा! क्योंकि प्रमेय नाम का गुण तुझमें है और तेरा ज्ञान उसका प्रमाण करके प्रमेय को जानता है। पर प्रमेय को जानता है - ऐसा यहाँ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह परिणमन-परिणामकत्व शक्ति आ गयी। परिणमन-परिणामकत्व, पर को ज्ञेय होना और अपने में प्रमाण होना। उसमें एक शक्ति है परन्तु ज्ञेय होना, वह व्यवहार से कहा है। आहाहा! भाई! शक्ति में ऐसा आया था। आहाहा! परिणमन-परिणामकत्वशक्ति प्रमाण अपना ज्ञानस्वरूप अपने का प्रमाण होना और पर के ज्ञान में प्रमेय होना, वह व्यवहार कहने में आया है। शक्ति है परन्तु वह व्यवहार है। आहाहा! तेरा प्रमेय पर के ज्ञान में आया - ऐसा है ही नहीं। पर का प्रमेय तेरे ज्ञान में आता है - ऐसा है ही नहीं। आहाहा! कितनी धीरज से अन्दर जाना?

ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। कैसा ज्ञेयरूप हूँ? ज्ञानशक्ति मैं, ज्ञेयशक्ति मैं, और ज्ञाताशक्ति -अनन्त गुण की शक्ति मैं। ऐसा मैं ज्ञेयरूप हूँ। परज्ञेयरूप हूँ - ऐसा नहीं। आहाहा! गजब बात करते हैं न? वीतराग के अतिरिक्त, केवली परमात्मा के अतिरिक्त, सन्तों के अतिरिक्त यह बात कौन करे? आहाहा! जगत को ठीक पड़े या न पड़े, समाज समतौल रहे न रहे, वस्तुस्थिति यह है। भाई! तेरी ज्ञानपर्याय तेरा ज्ञेय है, परज्ञेय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

तीन भेद, मेरा स्वरूप मात्र है तीन भेद तो। मैं वस्तुस्वरूप ऐसा ही है - ऐसा कहते हैं। तीन रूप एक ही वस्तु मैं हूँ। तीन में वस्तु तो मैं एक ही हूँ। आहाहा! ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता तीन भी वस्तुमात्र तो मैं एक हूँ। आहाहा! बहुत सूक्ष्म! अरे! कहाँ निवृत्ति-फुरसत नहीं, एक तो धन्धे के कारण फुरसत नहीं, फिर व्यवहार के क्रियाकाण्ड के कारण फुरसत नहीं। आहाहा!

पर में अपनी मान-प्रतिष्ठा बढ़े, उसमें दरकार की है। आहाहा! उसे यह ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता वस्तुमात्र, वह मैं सर्वस्व हूँ। ज्ञेय भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञायक भी मैं। मुझे पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह इसे निर्णय करना पड़ेगा। भगवान! भले पहले विकल्प से निर्णय करे, परन्तु निर्णय ऐसा करे कि मैं ज्ञेय-जाननेयोग्य भी मैं, जाननेयोग्य भी मैं और जाननेवाला भी मैं और अनन्त शक्ति का पिण्ड ज्ञाता भी मैं। तीन वस्तुमात्र मैं हूँ - वस्तुमात्र एक है, तीन मिलकर वस्तु एक है। आहाहा! अन्तिम के श्लोक हैं न? एकदम अभेद वर्णन (किया है)। वस्तु-शास्त्र का पूरा सार, समयसार का निचोड़ है निचोड़। जानने की शक्ति तेरी है या ज्ञेय की है? जो अनन्त ज्ञेय हैं, उन ज्ञेय को जानने की शक्ति तेरी है या उनकी है? जानने की शक्ति मेरी है तो उसमें परज्ञेय कहाँ आया? वह तो अपनी ज्ञान की

शक्ति में परज्ञेय का ज्ञान अपने कारण से अपना ज्ञेय होकर आया और अपना ज्ञान, वह ज्ञेय है, वह अपने को जानता है। आहाहा! और ज्ञाता भी मैं, अनन्त शक्ति का पिण्ड भी मैं। तीनों होकर वस्तु तो एक है। देखो, भाषा तो ऐसी है न?

तीन भेद '**मद्वस्तुमात्रः**' **मेरा स्वरूपमात्र है...** वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। यह कोई भगवान ने बनाया नहीं है। भगवान ने तो जाना था, वैसा कहा, वैसा वाणी द्वारा आया। भगवान भी कहते हैं कि तुम मेरे सामने मत देखना और हम तेरे ज्ञेय हैं, वह भी पर हुआ। आहाहा! मैं तेरे ज्ञान में जाननेयोग्य हूँ - ऐसा भी नहीं। आहाहा! तेरे ज्ञान में मैं, मेरा है - ऐसा तो नहीं है परन्तु तेरे ज्ञान में मैं ज्ञेय हूँ - ऐसा भी नहीं है, तेरे ज्ञान में ऐसा है नहीं। तेरे ज्ञान में तो ज्ञान की पर्याय ज्ञेयरूप से परिणमति है, वह ज्ञेय है और उसी समय का ज्ञान उस ज्ञेय को जानता है - ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड ज्ञाता, वही ज्ञेय, वही ज्ञान, वही ज्ञाता (है)। आहाहा! हद कर दिया।

यहाँ तो अभी बाहर से यह मेरे, यह मेरे। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का न करे तो दिगम्बर धर्म नहीं - ऐसी पुकार पण्डित करते हैं। भाई! इन्दौर में पुकारते हैं। यहाँ का विरोध करने के लिये (ऐसा कहते हैं)। भगवान! यहाँ का विरोध नहीं होता। यह तो आत्मा है, प्रभु, उसका विरोध है भाई! तुझे पता नहीं, बापू! तुझे नुकसान होता है, भाई! ऐसे परिणाम का फल कठोर है, नाथ! तुझे सहन करना पड़ेगा, भाई! वह कोई भी दुःखी हो, यह कुछ ठीक है? आहाहा! परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर जैन नहीं (ऐसा उन लोगों का कहना है) यहाँ तो कहते हैं कि पर का जाननेवाला माने, वह दिगम्बर नहीं। ऐई!

प्रभु! तेरा मार्ग तो ऐसा है। प्रभु! तू भगवन्तस्वरूप है। तेरी शक्ति में दूसरे की आवश्यकता नहीं है। तुझे पर को जानने में पर की आवश्यकता नहीं है, तुझे तेरे जानने में तेरी शक्ति की आवश्यकता है। अब इसमें विषय और कषाय का रस कहाँ रहा? विषय और कषाय का भाव, वह परज्ञेयरूप से है, वह ज्ञेय और आत्मा ज्ञान - ऐसा नहीं है। आहाहा! यह भगवान ज्ञानस्वरूपी आत्मा है न? तो यह विषयकषाय का परिणाम हुआ, उसका ज्ञेय हुआ और ज्ञान आत्मा, ज्ञान में तो है नहीं, ज्ञान का तो है नहीं। आहाहा! परन्तु वे परिणाम ज्ञेय और आत्मा ज्ञान - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! क्या गम्भीरता! एक-एक श्लोक के एक-एक पद की (गम्भीरता)!! आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,... देखो!

मैं मेरे स्वरूप को वेद्य-वेदक-जाननेयोग्य और जाननेवाला - ऐसा मैं जानता हूँ। आहाहा! जाननेयोग्य और जाननेवाला मैं ही हूँ। आहाहा! वेद्य-वेदकभाव से जानता हूँ **इसलिए मेरा नाम ज्ञान,...** इस कारण से मेरा नाम ज्ञान, मैं ज्ञेय को जानता हूँ, इसलिए मैं ज्ञान हूँ (-ऐसा नहीं है)।

ज्ञान द्वारा मैं जाननेयोग्य हूँ, देखो! ज्ञेय बनाया **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ,...** मेरे द्वारा मैं जाननेयोग्य हूँ, पर द्वारा जाननेयोग्य हूँ - ऐसा नहीं है। आहाहा! शास्त्र से ज्ञान तो होता नहीं परन्तु शास्त्र ज्ञेय और आत्मा ज्ञायक - ऐसा भी नहीं। आहाहा! यह जोरदार बात है। तथापि शास्त्र का पढ़ना-अभ्यास करना, वह बात आती है। स्वलक्ष्य से आती है, तथापि शास्त्र का ज्ञान, शास्त्र ज्ञेय और आत्मा का ज्ञान - ऐसा है नहीं। आहाहा! जिस ज्ञान की पर्याय में, जो ज्ञान नहीं था, ऐसी वाणी सुनकर वह ज्ञान आया तो कहते हैं ऐसा है नहीं। वह ज्ञान की पर्याय तेरा ज्ञेय है, उसमें से ज्ञान आया है, ज्ञेय में से ज्ञान आया नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म, इसलिए लोगों को कठिन पड़ता है परन्तु प्रभु! मार्ग तो यह है। अरे! जन्म-मरण के उद्धार का पन्थ तो यह है। इसमें किसके सामने देखना है? आहाहा! समझ में आया?

मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, मेरा पैसा, मेरा मकान.. आहाहा! प्रभु! यह तो वस्तु में है नहीं परन्तु वे ज्ञेय हैं - ऐसा भी वस्तु में नहीं। समझ में आया? आहा! ऐसी चीज़ है। फिर निकाल दे लोग ऐसा कहकर कि यह तो निश्चय से की बात, यह तो निश्चय की बात है। निश्चय अर्थात् सत्य - परम सत्य का स्वरूप वह यह है। समझ में आया? मेरा नाम ज्ञान; मैं आप द्वारा जाननेयोग्य हूँ; पर द्वारा जाननेयोग्य हूँ - ऐसा नहीं। आहाहा! मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय मेरे द्वारा जाननेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए मेरा नाम ज्ञेय। लो! मेरा नाम ज्ञेय, परज्ञेय नहीं। नये लोगों को ऐसा कठिन लगता है कि यह क्या कहते हैं? यह क्या है? बापू! वीतराग का मार्ग-मार्ग तो यह है। भाई! उसमें पर का कोई अवकाश नहीं है।

श्रोता : तथापि एक का एक कहा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक का एक कहा करते हैं और वह स्थापना किया करते हैं वापस, आहाहा! भाई! सत्य तो यह है, यह सत्य का स्थापन है। समझ में आया?

मैं जाननेयोग्य हूँ तो मैं ज्ञेय, मैं जाननेवाला तो मैं ज्ञान। आहाहा! **यतः ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ,...** ऐसी दो शक्ति तो है - ज्ञेय भी मैं और ज्ञान भी मैं। ये दो तो शक्ति है। दो शक्ति से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ, **इसलिए मेरा नाम ज्ञाता।** है। आहाहा! **दो**

शक्ति से लेकर... ज्ञानशक्ति और ज्ञेयशक्ति भी मैं, और दो शक्ति से लेकर अनन्त शक्तिरूप ज्ञाता भी मैं। आहाहा! ज्ञेय भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञाता भी मैं। तीनों अपनी वस्तु - चीज़ एक है। आहाहा! **ऐसा नामभेद है,...** अब क्या कहते हैं कि अपने जाननेयोग्य ज्ञेय मैं, जाननेवाला ज्ञान मैं और अनन्त शक्ति ज्ञाता-ऐसे तीन का नाम भेद है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं... ज्ञेय कोई अलग चीज़ है - ऐसा नहीं। अपनी चीज़ अपना ज्ञेय, ज्ञान अलग चीज़ है और ज्ञाता अलग है - ऐसा नहीं। वह का वह ज्ञेय, वह का वह ज्ञान और वह का वह ज्ञाता.. आहाहा! समझ में आया? वस्तु की स्वतन्त्रता की परिपूर्णता की यह पराकाष्ठा है। आहाहा!

कोई निन्दा करे तो निन्दा, वह तो शब्द है और कोई तेरी प्रशंसा करे कि तू बड़ा और ऐसा और वैसा, तो वह तो जड़ की पर्याय है, वह तेरी प्रशंसा नहीं परन्तु वह तेरा ज्ञेय भी नहीं। आहाहा! वह प्रशंसा ज्ञेय और मैं ज्ञायक - ऐसा है ही नहीं तो मेरी प्रशंसा करते हैं और यह मेरी निन्दा करते हैं - ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं। **कैसा हूँ? 'ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्' जीव ज्ञायक हैं, जीव ज्ञेयरूप है...** स्वयं ज्ञेयरूप स्वयं ज्ञान और स्वयं ज्ञाता। आहाहा! **ऐसा जो वचनभेद...** वचनभेद से भेद दिखता है। आहाहा! अपना ज्ञेय, अपना ज्ञान और अपना ज्ञाता, यह वचनभेद से तीन भेद है। आहाहा! वस्तु तो है वह है। ज्ञेय भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञाता भी मैं; तीनों एक ही वस्तु (है), उसमें तीन वस्तु नहीं। आहाहा! परवस्तु तो नहीं परन्तु इस वस्तु में तीन भेद भी नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग! शान्तिभाई! कभी सुना नहीं होगा इतने वर्षों में! यह मार्ग है। गजब बात है! समयसार में यह बात अलौकिक-लोकोत्तर बात है। वहाँ कहा कि पर ज्ञेय और मैं ज्ञायक - ऐसा तो नहीं। पर मेरा और मैं उसका, यह तो है ही नहीं परन्तु पर ज्ञेय और मैं ज्ञायक - ऐसा है नहीं और मैं ज्ञेय, और ज्ञायक तथा ज्ञाता, यह भी भेद नहीं। आहाहा!

मैं ज्ञेय हूँ और यह ज्ञान है और यह ज्ञाता है - ऐसा भेद पड़ता है, वह भी विकल्प है। गजब बात है। बाहर के विवाद-जयनारायण! जयनारायण! - व्यवहार करते-करते निश्चय होगा तो कहता है - प्रमाण है। आहाहा! ए.. पोपटभाई! ये सेठिया भी ऐसा करते थे। अन्दर कुछ भान नहीं हो तो क्या करे? यह पता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मैं ज्ञेय और मैं ज्ञान और मैं ज्ञाता, यह वचनभेद है। आहाहा! पर ज्ञेय और मैं ज्ञायक, यह तो वस्तु में है नहीं। यह वस्तु में है नहीं परन्तु वस्तु में ये तीन भेद

हैं, वे नामभेद हैं। आहाहा! दृष्टि के विषय में तीन भेद भी नहीं। मैं ज्ञेय, मैं ज्ञान, मैं ज्ञाता – ये तीन नहीं। आहाहा! जोरदार वस्तु है। लोगों को लगता है बेचारों को, ख्याल नहीं होता न, इसलिए उन्हें ऐसा लगता है। अपने को ख्याल नहीं आता, इसलिए विरोध करते हैं। यह वस्तु की स्थिति है, ऐसी ख्याल में नहीं आती है तो दूसरे प्रकार से दूसरा कहते हैं, उसकी धारणा से तो विरोध करते हैं। प्रभु! यह विरोध तेरा है, नाथ! आहाहा! दूसरे का कौन विरोध करे? दूसरी चीज़ में कहाँ तेरा विरोध जाता है कि विरोध करे। आहाहा!

प्रभु! यह तेरी चीज़ है न? तुम ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। आहाहा! जीव ज्ञेयरूप है, जीव ज्ञायक है और जीव ज्ञान है, यह कल्लोल वचनभेद है, यह तो कल्लोल है। आहाहा! यह तो वचन के कल्लोल-भेद है; वस्तु में है नहीं। **उससे भेद को प्राप्त होता हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं है।** आहाहा! गजब बात है। यह ज्ञेय मैं, ज्ञान मैं और ज्ञाता मैं – यह वचनभेद है। व्यवहार के कथनमात्र हैं। आहाहा! वस्तु तो वस्तु है। लो, यह श्लोक पूरा हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१२

श्री समयसार, श्लोक - २७१, प्रवचन - ५७५
दिनांक - १३-०१-१९७१

२७१ कलश, इसका भावार्थ है। है ? यह क्या कहते हैं ? यहाँ तो परज्ञेय को उड़ाते हैं। आत्मा **ज्ञानमात्र भाव ज्ञातृक्रियारूप होने से...** वह जानने की क्रिया अपने में होती है। जगत के जो ज्ञेय हैं, उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने में परिणमता है। अर्थात् ज्ञानस्वरूप ही है, वह ज्ञेयस्वरूप नहीं। ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात होते हैं, वे छह द्रव्य ज्ञात नहीं होते। वास्तव में छह द्रव्य सम्बन्धी का अपना जो ज्ञान, उस ज्ञान में छह द्रव्य अपने में अपने कारण से ज्ञात हों, यह तो आ गया, यह वास्तव में उसका ज्ञेय है। अपने ज्ञान का यह ज्ञेय है। ज्ञान का वह ज्ञेय है, यह व्यवहार है। समझ में आया ? नहीं समझ में आया ? पण्डितजी ! समझ में आया या नहीं ? नहीं आया ?

श्रोता : परद्रव्य ज्ञात होते हैं इसलिए...

पूज्य गुरुदेवश्री : वे ज्ञेय नहीं हैं, वे ज्ञेय नहीं हैं। वे नहीं, वे ज्ञेय ही नहीं। उस ज्ञेयसम्बन्धी अपनी ज्ञान की पर्याय जाननेरूप परिणमती है, वह स्वयं अपनी पर्याय में अस्तित्व वह ज्ञान की पर्याय का है, वह उसका ज्ञेय है। अन्य ज्ञेय नहीं। समझ में आया ?

ज्ञानमात्र भाव... यह आत्मा तो जाननस्वभाव है। कहते हैं कि वह छह द्रव्य को भी जाननेरूप जाननक्रिया अपनी अपने में अपनी पर्याय में होती है। वह वास्तव में तो अपना ज्ञेय हैं। समझ में आया ? अन्तिम कलश है न, इसलिए एकदम (अन्तर की बात ली है)। अन्दर स्वयं ही छह द्रव्य को जानने की ज्ञान की जो पर्याय, वह तो अपनी है। उसमें छह द्रव्य का ज्ञान, उसे छह द्रव्य का कहना, वह तो व्यवहार है। वह तो ज्ञान ही अपना है।

श्रोता : ज्ञान की तरंग है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी तरंग-कल्लोलें हैं। पढ़कर आये होंगे। शब्द आता है। कल्लोल है न ! आहाहा !

श्रोता : चौथी लाईन।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चौथी। कहते हैं... कहो, समझ में आया या नहीं ?

श्रोता : हाँ, जी ! स्वयं ही ज्ञेय और परसम्बन्धी का जो ज्ञान है, वह तो व्यवहार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है। सुमनभाई कहे ऐसा लड़का, ऐसा लक्ष्य ! बड़ा प्रोफेसर है और प्रोफेसर का ऑफिस। ऑफिस ही कहलाये न ? ऑफिस कहलाये ? कौन जाने क्या तुम्हारी भाषा होगी ?

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह बड़ा... वह ऑफिसु है, ...किसे कहते हैं ऑफिसर ?

यह आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, तो ज्ञान में परिणमन होता है, वह तो अपने अस्तित्व में अपने से अपना वह ज्ञेय है, उसका ज्ञान नहीं। वह ज्ञेय और यह ज्ञान, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? जाननक्रियारूप भाव, वह तो ज्ञानस्वरूप है, वह कहीं परज्ञेयस्वरूप नहीं है। **और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है।** अब देखो, स्पष्टीकरण करते हैं। क्योंकि **बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है,...** रागादि या छह द्रव्य, वह अपना ज्ञान, द्रव्य ज्ञानगुण और ज्ञान की पर्याय, इनसे छह द्रव्य वे तो ज्ञेय हैं, वे तो भिन्न हैं। उस भिन्न का यहाँ ज्ञान, ऐसा नहीं होता। वह अपना ज्ञान है। पण्डितजी !

श्रोता : सूक्ष्म बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म बात है, लो ! पण्डितजी ऐसे संस्कृत के प्रोफेसर।

आहाहा ! विषय ऐसा है। अपने अस्तित्व में स्वयं ज्ञानमात्र स्वभाव है। अब ज्ञानमात्र जो ज्ञान की परिणतिरूप परिणमे, वह तो अपनी क्रिया है। वह ज्ञेयरूप परिणमती है ? ज्ञेय तो भिन्न है। समझ में आया ?

बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है, वे ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते;... राग का ज्ञान हुआ, उसमें कहीं राग ज्ञान की पर्याय में प्रविष्ट-आता नहीं। लोकालोक का ज्ञान हुआ, उसमें लोकालोक कहीं ज्ञान की पर्याय में आता नहीं। वह तो अपने ज्ञान का परिणमन का अस्तित्व है, इतना उसका स्वभाव है, वह तो स्वज्ञेय है। आहाहा ! ऐसा वीतराग का मार्ग ! वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। वीतराग ने कहा है, वह तो जैसा है, वैसा कहा है न ? आहाहा !

किसे कहते हैं कि तेरे ज्ञान में... आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। तेरा भाव, ज्ञानभावी आत्मा, ज्ञानभावी आत्मा, ज्ञ-स्वभावी आत्मा है, तो उस ज्ञान में परिणमन जाननक्रिया होती है, वह तो अपनी क्रिया है, वह कहीं ज्ञेय ज्ञात होते हैं, उनकी वह क्रिया नहीं है तथा ज्ञेय ज्ञात होते हैं,

उसमें ऐसा भी नहीं; वह तो ज्ञेयसम्बन्धी की अपनी जाननक्रियारूप परिणमन हुआ, वही वास्तव में तो अपना ज्ञेय और स्वयं ज्ञान और स्वयं ज्ञाता है। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते; ज्ञेयों के आकार की झलक... समझाना है न! आकार, वह कहाँ आकार में आता है परन्तु जैसे ज्ञेय हैं, उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान, अपने कारण से परिणमता है, उस ज्ञेय के कारण से नहीं। उसे उन ज्ञेयसम्बन्धी का अपना ज्ञान है न, इसलिए उसे ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में आती है, ऐसा कहने में आया है। भारी सूक्ष्म, भाई! यह तो दया, व्रत और भक्ति के परिणाम से धर्म हो, वहाँ अटके हैं। यह तो बहुत सूक्ष्म है। अन्तिम कलश है न!

भगवान! तू चैतन्यभाववाला है न? या ज्ञेयभाववाला है? आत्मा चैतन्यभाववाला है न? या ज्ञेयस्वभाववाला है? आहाहा! तो ज्ञानस्वभाववाला, वह ज्ञानरूप परिणमे! वह ज्ञेयरूप कैसे परिणमे? वह ज्ञेयरूप कैसे हो? आहाहा! समझ में आया? हाँ, उसके ज्ञान के भाव में, परिणमन में वे ज्ञेय जैसे हैं, उसी प्रकार का ज्ञान अपने कारण से, ज्ञानभावी आत्मा होने से, ज्ञान का परिणमन ज्ञानरूप होता है। समझ में आया?

शरीर में रोग आया और ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। यहाँ तो (ऐसा) कहते हैं। वह रोग और शरीर की अवस्था परज्ञेयरूप से है। वह ज्ञान जो वस्तु आत्मा है, उसके अस्तित्व की पर्याय में वे ज्ञेय आते नहीं। वह रोग और जीर्ण शरीर दिखता है, वह ज्ञान की पर्याय में नहीं आते। ज्ञान की पर्याय उस सम्बन्धी को जानने का अपना ज्ञान, अपने सम्बन्धी जानने का ज्ञान उस सम्बन्धी ज्ञात होता है। ऐसा स्व-परप्रकाशक ज्ञानभाव से जाननक्रियारूप ज्ञान परिणमता है, वह कहीं ज्ञेयरूप परिणमता है और ज्ञेय यहाँ आ जाते हैं, ज्ञेय में ज्ञान जाता है या ज्ञान में ज्ञेय आते हैं, ऐसा नहीं है। कहो, वजुभाई! यह कितना भेदज्ञान कराया! आहाहा!

तेरा भाव, स्वभाव ज्ञान-आत्मा है, वह तो ज्ञानस्वरूप है। अब ज्ञानस्वरूप और जगत लोकालोक ज्ञेय, रागादि सब; उस सम्बन्धी की झलक अर्थात् जैसा वह है, वैसा यहाँ ज्ञान अपने कारण से, अपने स्वभाव के कारण से जानन क्रियारूप होता है, वह वास्तव में तो अपना ज्ञेय है। अन्य ज्ञेय उसके हैं नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है। लोगों को सुनने मिला नहीं। बाहर में भटक मरकर जिन्दगी जाती है। आहाहा! कितना धीर हो।

तेरे ज्ञान में पर ज्ञात होते हैं, ऐसा नहीं। पर को जानता है, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। पर को करे तो नहीं, पर से इसमें होवे तो नहीं, परन्तु पर ज्ञात होता है, ऐसा भी नहीं है और

पर ज्ञान की पर्याय में आता है, ऐसा नहीं है। वस्तु द्रव्य ज्ञायकभाव, वह स्वयं ज्ञान की पर्यायरूप जाननक्रियारूप, स्वभाव की क्रियारूप वह हो, तो वह तो अपनी क्रिया है, स्व-परप्रकाशक की क्रिया है। उसमें वह ज्ञात होता है, ऐसा कहना वह तो व्यवहार है। वह ज्ञात नहीं होता, अपनी जाननक्रिया ही ज्ञात होती है। सुमनभाई! यह तो लॉजिक से आता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा गजब मार्ग, भाई!

अरे! भगवान! तू इतना है। तू इतना है और ऐसा ही है। दूसरे प्रकार से माने तो तेरे स्वरूप का घात होता है। आहाहा! तेरा स्वरूप इतना है। ऐसा सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं कि मेरे ज्ञान की पर्याय में लोकालोक ज्ञात होता है, ऐसा नहीं। मेरी ज्ञान की पर्याय को मैं जानता हूँ। आहाहा! लोकालोक को जानना कहना, वह असद्भूतव्यवहार उपचार है, झूठा व्यवहार है। यह सच्चा व्यवहार है अर्थात् कि जितने ज्ञेय लोकालोक में हैं, उन्हें अपने जानने के भाववाला तत्त्व होने से उन्हें और अपने को जानने की क्रियारूप, अपने में अपने कारण से ऐसा अस्तित्व परिणमित होता है। वह वास्तव में ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञान का परज्ञेय है, वह तो व्यवहार है। ऐसा है नहीं। आहाहा! मगनभाई! ऐसी बात है। क्या हो?

कहते हैं, **बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है,...** अब ज्ञान परिणमित तो हुआ है। तो उस ज्ञान में वे ज्ञेय तो आते नहीं। तब क्या हुआ? कहते हैं, ज्ञान परिणमा तो है। छह द्रव्य और लोकालोक हैं, तद्नुसार अपनी ज्ञानपर्याय हुई तो है, परन्तु हुई है तो किसमें हुई है? अपने में और अपने से हुई है। वे ज्ञेय हैं, इसलिए हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

ज्ञेयों के आकार... अर्थात् विशेषताएँ। जितने परज्ञेय हैं, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय, वे सब विशेष, उनकी ज्ञान में **झलक...** अर्थात् उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने में परिणमित होता है। वह **ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखायी देता है...** वह ज्ञेयाकार दिखता है। **परन्तु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं।** ज्ञान की पर्याय का ऐसा स्वभाव है। समझ में आया? नदी के प्रवाह में रात्रि के भाग में... परमात्मप्रकाश में दृष्टान्त दिया है। नदी का पानी स्वच्छ-स्वच्छ ऐसे निर्मल प्रवाह है। ऐसा... ऐसा... कभी व्याख्यान सुना है? कभी यहाँ का व्याख्यान सुना है? पहली ही बार? सुनो।

यह आत्मा जो है, वस्तु है अस्ति-सत्ता है, तो वह ज्ञानस्वभाववाला आत्मा है। ज्ञानस्वभाववाला, जाननस्वभाव। जैसे शक्कर है तो मिठास और सफेद स्वभाववाली शक्कर है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा वस्तु है। तो उसका ज्ञानभाव, ज्ञानस्वभाव, वह ज्ञानस्वरूप है। उस ज्ञानस्वरूप में... आज की बात बहुत सूक्ष्म है। भावार्थ है, भाई! २७१ कलश का भावार्थ है न?... पहले से लेते हैं।

ज्ञानमात्र भाव... यह तो कहीं अनजाने को अपने आप सूझे, ऐसा नहीं है। ज्ञानमात्र भाव। यह वस्तु अन्दर है न? जगत के ज्ञेय जो, जगत के जाननेयोग्य पदार्थ हैं, उनका यह जाननेवाला है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है, कहते हैं। व्यवहार अर्थात् कि वास्तविकता नहीं। यह आत्मा ज्ञानभाव जाननक्रियारूप ज्ञानस्वरूप। वह तो उसमें जानने की क्रिया (होती है) क्योंकि उसका स्वभाव ज्ञानगुण शक्ति सत्त्व है। आत्मा तत्त्व है, उसका ज्ञान सत्त्व है। सत्त्व अर्थात् भाव है। उस भाव का वर्तमान परिणमन जाननेरूप होता है। आत्मा वस्तु है, उसका ज्ञान गुण स्वभाव है। ज्ञ-स्वभावी भगवान आत्मा, हों! आत्मा को भगवान कहते हैं। उस जाननस्वभाव का वर्तमान होना, जाननेरूप होना होता है। जाननक्रियारूप ज्ञानस्वरूप है। बहुत सूक्ष्म है।

और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है। क्या कहते हैं? स्वयं ही अपने ज्ञान से स्वयं अपने को जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। चैतन्य दर्पण है, वह चैतन्य दर्पण वस्तु है। वह स्वयं अपने ज्ञेय को करके स्वयं अपने को जानता है। देखो! **स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है।** अर्थात्? ज्ञान भी अपना भाव और ज्ञात होनेयोग्य पर्याय और द्रव्य-गुण वह भी ज्ञेय अपने में अपनी। आहाहा! तत्त्व-वस्तु ऐसी है। **बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है,...** भगवान आत्मा ज्ञानभावी वस्तु, ज्ञानस्वभावी वस्तु, उसमें शरीर, वाणी, मन... अरे! राग-द्वेष विकल्प और यह जगत - यह सब ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा से, उसके अस्तित्व से यह अस्तित्व अत्यन्त भिन्न है। उन **बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है,...** ज्ञानभाव स्वभाव है, उससे ये ज्ञेय—शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के विकल्प रागभाव, वे सब ज्ञानस्वभाव में नहीं आते। वे सब ज्ञेय ज्ञानस्वभाव से अलग रहते हैं।

घट को जाननेवाला घटरूप नहीं होता, वैसे ही घट का जाननेवाला घट को जानता है, ऐसा नहीं है। वह घट सम्बन्धी का ज्ञान और अपने सम्बन्धी का ज्ञान, ऐसे ज्ञानरूप होने से, वह स्वयं ज्ञेय है। ज्ञान का स्वयं ज्ञेय है और ज्ञान अपना गुण है। गजब, भाई! ऐसा तत्त्व। आहाहा! कभी इसे अभ्यास ही नहीं होता। जगत के अभ्यास कर-करके (भटक रहा है)। सुमनभाई को पहिचानते हो? रामजीभाई के (पुत्र)। उसने वहाँ बड़ा अभ्यास किया है। अमेरिका में। रामजीभाई कहे - हैरान होने गया है। इनका लड़का है। मासिक वेतन अच्छा आठ-आठ हजार। लोगों को अभिमान आ जाए न? धूल में भी नहीं, कहते हैं। अब सुन न! इतनी उम्र में, ४५-४६ वर्ष की उम्र और ऐसा वेतन, आठ हजार, बारह महीने में लाख रुपये। ओहोहो! परन्तु क्या है? वह तो जड़ है, पर है। वह वस्तु है जो पैसा, लक्ष्मी, इज्जत वह तो परवस्तु ज्ञेय है, परवस्तु है।

उस सम्बन्धी का ज्ञान अपना और अपने सम्बन्धी का ज्ञान अपना उसरूप आत्मा ज्ञान की पर्याय की क्रियारूप होता है। वह ज्ञात होता है, उसकी क्रियारूप ज्ञान नहीं होता। क्योंकि ज्ञान की दशा से वे चीज़ें भिन्न हैं। उन भिन्न चीज़रूप ज्ञान नहीं होता और भिन्न चीज़ ज्ञान की दशा में नहीं आती। लॉजिक से तो बात चलती है परन्तु वह सब विषय ही नहीं मिलता। ....जगत से पूरी बात ही अलग है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ एक समय में तीन काल का ज्ञान, वह तो लॉजिक से और न्याय से तो बात करते हैं कि तेरा अस्तित्व है या नहीं? है या नहीं? है तो क्या है? तू है कौन? ज्ञानभाव है। वह ज्ञानस्वभावी जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन उसका स्वभाव है। जानना ऐसा स्वभाव, उसमें यह पर जो वस्तु है, वह जानने के स्वभाव के अस्तित्व में नहीं आती। और उसका जानना यहाँ होता है, वह उसका जानना नहीं, परन्तु जानने की अपनी दशा है, उसे वह जानता है। न्याय से-लॉजिक से तो आता है, परन्तु पकड़ना तो इसे पड़ेगा या नहीं? यह कोई पकड़ा दे, ऐसा है? पण्डितजी! लो, यह तो संस्कृत के बड़े प्रोफेसर हैं। जयपुर (के हैं)। कहो, समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते; ज्ञेयों के आकार की झलक... जैसे दर्पण है दर्पण, उसमें सामने आम, कोयला, लकड़ी, सोना, बिच्छू (दिखता है), वह तो दर्पण से भिन्न चीज़ है न? दर्पण से भिन्न चीज़ है न? उस दर्पण में झलक दिखती है, वहाँ आम और कोयला है? अग्नि और पानी वहाँ है? अग्नि और पानी होवे, वह दर्पण में दिखता है। वह अग्नि और पानी का अस्तित्व वहाँ है? दर्पण की स्वच्छता की अवस्था का वह अस्तित्व है क्योंकि यदि अग्नि और पानी दर्पण में होवे तो हाथ लगाने से गर्म होना चाहिए। अग्नि गर्म है, इसलिए वह गर्म होना चाहिए परन्तु ऐसा तो है नहीं। उस दर्पण की स्वच्छता के स्वरूप में अपनेरूप स्वयं दर्पण स्वच्छरूप परिणमित हुआ है, उसमें अग्नि और पानी सम्बन्धी स्वच्छता का परिणमन स्वयं के कारण से हुआ है, उस चीज़ के कारण से नहीं है। यह जरा दृष्टान्त होवे तो मुश्किल से पकड़ में आये, ऐसा है। यह तो अता-पता बिना की बातें हैं। समझ में आया?

उस दर्पण में अग्नि को... दर्पण स्वच्छ है। यह अग्नि और पानी है। बर्फ और अग्नि है। अग्नि ऐसे-ऐसे होती है, बर्फ पिघलता जाता है। उसमें वह दिखायी देता है। वहाँ बर्फ और अग्नि है? बर्फ और अग्नि का अस्तित्व / मौजूदगी तो उसमें है, दर्पण में नहीं। दर्पण में तो उसकी स्वयं की अस्तित्व की जो स्वच्छ दशा हुई, वह उसमें है। वह अग्नि और पानी सम्बन्धी की स्वच्छता, वह दर्पण की स्वयं की दर्पणरूप क्रिया, परिणमन (हुआ वह) जड़ की पर्याय है, इसकी नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार यह चैतन्य दर्पण। भगवान आत्मा देह-देवल से भिन्न ज्ञान की मूर्ति है। यह कहते हैं कि **ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखायी देता है...** ज्ञान में जो सामने ज्ञेय हैं, उसी प्रकार की विशेषतारूप से अपनी ज्ञान की दशा होने पर मानो कि परज्ञेयरूप हुआ, ऐसा इसे दिखता है। अग्नि की ज्वाला ऐसे होवे, इसलिए बर्फ पिघले, इसलिए वहाँ मानो होता है? वह तो दर्पण की स्वच्छता का रूप है। इसी प्रकार चैतन्य दर्पण भगवान आत्मा में राग-द्वेष, पुण्य-पाप, शरीर, वाणी, मन, यह जड़ परवस्तु, इस ज्ञेयसम्बन्धी का अपना ज्ञान, उसमें होने से मानो ज्ञेय के आकार हुआ, ऐसा लगता है, परन्तु वह ज्ञेय आकार का नहीं है, ज्ञान आकार का स्वरूप है। ऐसा तत्त्व जाने बिना इसे सम्यग्ज्ञान नहीं होता और कभी धर्म नहीं होता। पूजा, भक्ति और व्रत कर-करके मर जाए, सूख जाए। समझ में आया? सेठ! यह सब अपवास करे, पूजा, भक्ति, यात्रा, दौड़ा-दौड़ी। मर जाते हैं परन्तु तू कौन है, उसे जाने बिना वहाँ कहाँ तू था? समझ में आया?

कहते हैं कि **परन्तु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं।** जैसे दर्पण की स्वच्छता ही उस अग्नि और पानी के रूप को जाने, स्वच्छरूप होता दर्पण, वह दर्पण की दशा है। इसी प्रकार यह ज्ञान की वर्तमान दशा पर को जानने की (हो, वह) ज्ञान की कल्लोल है। वह ज्ञेय की कल्लोल नहीं, ज्ञेय की तरंग नहीं, ज्ञेय की दशा नहीं। आहाहा! समझ में आया? गजब भाई! धर्म का ऐसा मार्ग! इसने कभी सामने ही कहाँ देखा है कि मैं कौन हूँ? मुझमें क्या है और मेरा सत्त्व, सत्, मैं एक सत् हूँ। है, है तो आदि-अन्तरहित चीज़ है। है, उसकी शुरुआत नहीं होती; है, उसकी उत्पत्ति नहीं होती; है, उसका नाश नहीं होता। तो है, तो वह वस्तु क्या है? जिसका स्वभाव, स्व-भाव। ....अपना निजभाव। वह तो ज्ञान जानना। ...वह जानने की क्रिया होने पर, वर्तमान जाननक्रिया होने पर वह परवस्तु जो ज्ञेय है, उसकी जाननक्रिया नहीं है। ज्ञेय हैं, वे यहाँ नहीं आते, यह स्वयं ज्ञेयरूप परिणमित नहीं होता। अपनी ज्ञान की अवस्थारूप होता है, वह अपना ज्ञेय और अपना ज्ञान है।

तुम्हारे यहाँ पढ़ने में नहीं आया होगा। ऐसा, उसमें यह कहीं आया होगा? वजुभाई! अभी धर्म के नाम में आता नहीं। धर्म के नाम में या तो साधु होकर मुँड़ाये—साधु हो जाए, भक्ति करो, पूजा करो, तपस्या करो, अपवास करो। अकेली धमाल। तू कौन है, यह जाने बिना तेरे सब व्यर्थ हैं। समझ में आया? धर्म करनेवाला कौन और कैसे है? उसके अस्तित्व के माहात्म्य बिना इसकी धर्म की क्रिया कभी नहीं हो सकती। समझ में आया? यह क्या कहा?

जैसे दर्पण में अग्नि और पानी जैसा दिखायी देता है, वह तो दर्पण की दशा है, दर्पण के अस्तित्व की दशा है। वह कहीं दूसरी चीज़ सामने है, उसकी दशा नहीं है। इसी प्रकार यह ज्ञानस्वरूपी भगवान, इसमें जो ज्ञेय ज्ञात होते हैं, ऐसा कहना, वह तो कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय की तरंगें हैं। वे ज्ञेयों की तरंगें नहीं हैं। समझ में आया? यह ऐसा सूक्ष्म है। बाहर में गाड़ी हाँककर बेचारे को रोककर रखा। तत्त्व की खबर नहीं होती, यह वस्तु क्या है? मैं कौन हूँ? कैसा हूँ? मेरी क्रिया क्या होती है? यह जड़ की क्रिया तो इसकी है नहीं, क्योंकि अस्तित्वरूप से इसका अस्तित्व भिन्न है। परन्तु पुण्य-पाप के विकल्प का अस्तित्व भी भिन्न है, वह भी आत्मा की क्रिया नहीं है। आत्मा से तो वह शुभ-अशुभराग, देहादि की क्रिया उसके अस्तित्व में है, उस अस्तित्व सम्बन्धी का अपने ज्ञान के अस्तित्व का परिणमन होने पर स्वयं वह तरंगरूप परिणमता है, वह अपनी अवस्था है, पर को जानता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वस्तु का स्वभाव है। स्व अर्थात् ऐसा अपना भाव है। ऐसे स्वभाव की खबर नहीं होती और इसे धर्म हो जाए। यह मर जाए तो भी नहीं होता। सूख जाए न! समझ में आया?

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, सत्-शाश्वत् है। है, सत् चिदानन्द—चिद् और आनन्द। ज्ञान और आनन्द उसका रूप है। आहाहा! आनन्दरूप क्या कहीं से लाना है? भाई! पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव होते हैं या नहीं? वह तो मलिन अस्तित्व है, वह विकारी अस्तित्व है। तेरा स्वरूप तो उसे जानने में, उसे जानने में रुके, ऐसा भी तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! करने में रुके, वह तो इसका स्वरूप है ही नहीं। आहाहा! गजब काम! कैसा लगता है? कान्तिभाई! ऐसा वहाँ तुम्हारे प्लेन में आता होगा? यहाँ... कान्तिभाई को पन्द्रह सौ का वेतन था। छोड़ दिया। नौकरी छोड़ दी। अब नौकरी करना ही नहीं। व्यर्थ का हैरान होकर मर गया। मुम्बई प्लेन में था, नहीं? पन्द्रह सौ का वेतन। छोटी उम्र है, बालब्रह्मचारी है। छोड़ दी। पन्द्रह सौ का वेतन, सरकारी नौकरी। वापस छोड़ने के बाद चार महीने के छह हजार रुपये आये। सरकारी की... वह तो सब धूल-धाणी हैं।

श्रोता : उसमें कुछ लाभ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? यह तुम्हारे सुमनभाई को ऐसा होगा?

श्रोता : वह और कब मेरा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तुम इतना अधिक पहले कहाँ करते थे? यह दस-दस हजार रुपये की आमदनी करे।

श्रोता : उससे अधिक कमाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि तुम्हारा था और दस हजार था, और पाँच सौ देता था। अब इस समय हर महीने हजार करते हुए...

श्रोता : परन्तु वह इतना काम करता है, ये तो एक घण्टे के इतने कमाते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है। आहाहा! अभी पैसे की कीमत घट गयी है। अभी के पच्चीस लाख और पहले के एक लाख। सब माल के भाव बढ़े और पैसे के घटे। अरे! जगत का भाव भी वह उसका, वह आत्मा का नहीं। चन्दुभाई! रात्रि (चर्चा में) एक बार पूछा था कि सोने का भाव क्या है? तो सब गड़बड़ करने लगे। कोई कहे, ...आना, कोई कहे सोने का... वह सोने का दो सौ भाव, वह हमें पूछना था? यहाँ हमें व्यापार करना है? सोना एक चीज़ है, जड़ पदार्थ है। उसका भाव अर्थात् उसमें रही हुई शक्ति। रंग, गन्ध, रस, स्पर्श शक्ति, वह उसका भाव है। यह तो तुमने कल्पित किया उसका तोला और दो सौ का तोला, यह तो तुम्हारा कल्पित किया हुआ भाव है। यह उसका भाव कहाँ है? समझ में आया? सोना पदार्थ है, वस्तु है, वह भाववान है। तो उसका भाव क्या? रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, चिकनाहट आदि उसका भाव है कि जो भाव भाववान से भिन्न नहीं होता।

इसी प्रकार आत्मा का भाव क्या? आया न ऊपर? देखो! **ज्ञानमात्र भाव...** पहली लाईन में आया। आत्मा का भाव क्या? कि ज्ञान उसका भाव है। आहाहा! यह ज्ञानस्वभाव स्वयं जो पर को जाननेरूप परिणमता है, वह परिणमन अर्थात् वह आत्मा की दशा है, पर की नहीं, ज्ञेय की नहीं, परिणमन में ज्ञान होने की कल्लोल ज्ञेय के कारण उठी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वस्तु का स्वरूप है, उसे दृष्टि में नहीं ले, तब तक उसे पाप का-मिथ्यात्व का भाव मिटेगा नहीं और धर्म होगा नहीं।

श्रोता : धर्म न हो तो कुछ नहीं, सुख तो होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में सुख है? कहाँ सुख था? बाहर लटकता है? सच्चिदानन्द स्वरूप तो स्वयं है। सुख और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर भाववाला तो स्वयं है। आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द है। सत्-चिद्-आनन्द। अपना भाव चिद् और ज्ञान और आनन्द अपना भाव है। वह भाव अपने में है, पर के कारण है नहीं। पैसे के कारण, स्त्री के कारण, इज्जत के कारण, इस धूल और शरीर के अच्छे रूपवान के कारण जीव को सुख है-(ऐसा) मूढ़ जीव ने अज्ञानरूप से पाखण्ड बुद्धि में माना हुआ है, पापदृष्टि में यह माना हुआ है।

श्रोता : मिथ्यात्व के बड़े पाप की दृष्टि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ? पहिचानते हो न ? बारह वर्ष का है। शीघ्रता में आया है। समझ में आया ?

कहते हैं... आहाहा ! यहाँ तो देखो ! यहाँ तो ज्ञान की बात चलती है न ? ऐसे आत्मा (का) अपना भाव तो आनन्द है। वह जब आनन्दरूप होता है, वह दशा तो अपनी है। वह कहीं स्त्री, कुटुम्ब के कारण यहाँ आनन्द आया है, ऐसा नहीं है। तथा उन चीज़ों का यहाँ स्पर्श नहीं है और यह चीज़ वहाँ स्पर्श नहीं करती। एक-दूसरे में अभाव है। इस अँगुली में इस अँगुली का अभाव है। यह अँगुली इस अँगुलीरूप है, यह अँगुली उस अँगुलीरूप नहीं। ऐसी दो अस्ति और नास्ति न हो तो उसका अस्तित्व टिक नहीं सकता। समझ में आया ?

इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द के स्वभाववाला अस्ति तत्त्व, मौजूदगीवाला तत्त्व है। वह राग और पुण्य तथा पर के पदार्थ से अभावस्वभावस्वरूप है। आहाहा ! भारी कठिन काम, भाई ! ऐसी धर्म की क्रिया होगी ! कभी सुनी न हो। दया पालना, व्रत पालना, रात्रिभोजन नहीं करना, कन्दमूल नहीं खाना। ऐई ! उसे तो यह भी नहीं होता, वह तो जवान है न ?... किया है न ? डॉक्टर को खबर है। आहाहा !

वहाँ हमारे पालेज में साधु आते न, छोटी उम्र, इसलिए सुनने जाएँ। धर्म में स्थानकवासी थे न ? हमारे पिताजी का वह धर्म। उसमें वे रात्रि में गाये—'भूधरजी तमने भूल्यौ रे भटकूँ छूं भवमां।' परन्तु उसमें तत्त्व क्या ? ऐसा गाये। प्रसन्न-प्रसन्न होवे। छोटी उम्र थी १७-१८ वर्ष की उम्र थी। 'भूधरजी तमने भूल्यौ रे भटकूं छूं भव मां, कुतरा नाव भव मैं वीणी खादा कटका, भूख ना वैठ्या भडकारे...' ऐसा सुना था। ऐई ! डॉक्टर ! वहाँ भूख की ज्वाला सहन की। महाराज है वह तो अच्छी बात कहते थे परन्तु उसमें धर्म क्या आया ? समझ में आया ? आहाहा !

भगवान ! यहाँ तो आत्मा को भगवान कहते हैं, हों ! भग+वान है वह। भग अर्थात् ज्ञान और आनन्दरूपी लक्ष्मी का वान अर्थात् उसका स्वरूप है। भग+वान। भग अर्थात् ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी। ऐसी लक्ष्मीवाला भगवान आत्मा है। कहते हैं, उसे ज्ञान में यह शरीर ज्ञात हुआ ? नहीं। शरीर की अस्ति शरीर में है। उस ज्ञानतत्त्व की अस्ति में शरीर की अस्ति नहीं है, तब ज्ञानतत्त्व ऐसा जो भाव, वह जब शरीर को जाननेरूप परिणमित हुआ, ऐसा कहना, वह ऐसा नहीं है। वह तो अपने ज्ञानभाववाला तत्त्व है। जाननेरूप और आनन्दरूप होता है, वह उसकी दशा और वह उसका ज्ञेय और वह उसे जाननेवाला। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : यह तो घर में और घर में है परन्तु...

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में ही होवे न! पर में कहाँ था! लोग नहीं कहते 'घर का लड़का चक्की चाटे और पड़ोसी को आटा।' जगत में यह सब ऐसा हो गया है। स्वयं कौन है, इसकी खबर नहीं होती और दूसरे की सबकी लगायी है।....जमीन और मिट्टी। परन्तु तू भरपूर कौन है? तू कौन है? तुझे क्या करना और क्या कर रहा है? इसकी खबर नहीं होती। बेभान—पागल।

एक बार कहा था, भाई! यह सब आत्मा अपना स्वभाव है, उसे भूलकर इस पर का कर्ता मानते हैं। वे पागल जैसे हैं। तब यह कहे जैसे नहीं, उपमा नहीं, पागल ही है। पागल जैसा कहा न? जैसा, वह तो उपमा हुई कि इसके जैसा। परन्तु इसके जैसा अर्थात् दूसरा। पागल ही है। आहाहा! ऐसे पागल ही होंगे सब? सुमनभाई! ओहो! बापू तो बड़े बैरिस्टर थे। बैरिस्टर सामने आया हो तो जरा विचार करना पड़े। देखो, अभी कहते थे। वे मंगलभाई कहते थे। मंगल वकील है न? मंगल वकील नहीं आये थे? वे कहते थे, रामजीभाई जहाँ सामने कोर्ट में आवे, जज को भी विचार करना पड़े। रामजीभाई हैं। वे क्या दलील करेंगे? मंगलभाई मेहता कहते थे। वहाँ अहमदाबाद गये थे न हम। वे कहते थे। वे यहाँ दो दिन रह गये। उस बेचारे को कुछ भान नहीं होता। वकील होकर बैठे हुए को उस पूर्व के पुण्य के कारण गाड़ी जरा चलती हो। दो-पाँच सौ, हजार पैदा करता हो और रोटियाँ खाता हो। अरे! ऐई! भगवान! तेरी लक्ष्मी का, आनन्द का, ज्ञान का भण्डार तो तेरे पास है, प्रभु! तुझे तेरे निधान की खबर नहीं है। पर के निधान देखने गया परन्तु तेरा निधान क्या है, उसकी तुझे खबर नहीं है।

कहते हैं, **वे ज्ञान तरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं।** आहाहा! ...क्योंकि जो चीज़ पर शरीर, वाणी, मन ये सब पर हैं। ये इसमें-अपने अस्तित्व में तो आते नहीं। ऐसे अपने अस्तित्व में तो जानने की क्रिया-जाननक्रिया (होती है)। दया के भाव हुए, उसकी जानने की क्रिया वह आत्मा में है। दया के परिणाम आत्मा में नहीं आते। समझ में आया? अरे! ऐसा कैसा यह धर्म होगा! विधवा को दो लुआ, भूखे को आहार देना, प्यासे को पानी देना, नंगे को वस्त्र देना, बीमार की सेवा करना। धूल भी नहीं करता, सुन न अब। वह मुझे कहे डॉक्टर और वह डॉक्टर दाँत निकाले। डॉक्टर भी स्वयं मर जाते हैं न! भावनगर में तुम्हारे नहीं था? हेमन्तकुमार। यहाँ दो-तीन बार आया था। वह भी बेचारा हॉस्पीटल में ऑपरेशन करते-करते उड़ गया। एक बार दाँत के लिये बुलाया था। आया था। और दूसरा एक सर्जन था। ...गये थे न! उसका लड़का मर गया था तब गये थे। तुरन्त ही खबर पड़ गयी कि, महाराज आते

हैं। इसलिए फिर आये थे। कि क्या है इसमें ? कुछ लगता नहीं, कहा। तुम्हारी भाषा में क्या कहलाता है ? सीरियस नहीं। यह उपचार करते हैं, उसकी क्या भाषा ? ट्रीटमेंट।

वह हीराभाई का पुत्र था, वह बहुत जवान, बीमार। चुन्नीभाई का लड़का। बेचारा बीस वर्ष का जवान था। उसे वह मोटरसाईकिल है न, उसमें से उड़कर वह हो गया। फिर डॉक्टर आया। डॉक्टर ने कहा, मेरे घर में चरण करो। वहाँ कलोल में बँगला है न। नरम व्यक्ति है, यहाँ आ गया है। परन्तु डॉक्टर किसका ? उसके शरीर में होवे तो कुछ कर सकता है ? ऐं...ऐं... हो जाता है। लो, वह डॉक्टर, नहीं ? जामनगर का डॉक्टर क्या कहलाता है ? प्राणजीवन डॉक्टर। ढाई हजार वेतन। डॉक्टर है न ? जब उसे किसी ने काट खाया तो मुँह ऐसा फट गया था। मैं नहीं कर सकता... मैं नहीं कर सकता... दूसरा तुम करो। क्योंकि उसे दिखाव ही उड़ गया कि इसमें कुछ होता नहीं लगता। प्राणजीवन डॉक्टर। सोलेरियम है न ?

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सब बहुत है। (संवत्) १९७७ में भावनगर में एक डॉक्टर था न ? कैसा ? .....कहा भाई ! मुझे कुछ विचार नहीं लगता। .... १९७७ के वर्ष की बात है। वह तो परमाणु-घर की अवस्था है, भाई ! वह करने का तुझसे नहीं होगा, भाई ! अरे ! उसका ज्ञान भी तेरा नहीं, उस सम्बन्धी का ज्ञान हो, तेरा तेरे अस्तित्व में जानने का हो, वह क्रिया तेरी। आहाहा ! वह जड़ की क्रिया तो तेरी नहीं, तुझसे हुई नहीं परन्तु उस समय में राग हुआ, वह क्रिया तेरी नहीं, तुझसे हुई नहीं परन्तु राग का ज्ञान हुआ, वह राग से हुआ नहीं, तुझसे हुआ है। आहाहा ! बहुत कठिन काम। शशीभाई ! इतना सब... और जाना है कहाँ ? विशाल मेरु उठाने जाए। भाई ! तेरे घर की चीज़ ही ऐसी है। तुझे तेरे सत्य की खबर नहीं है।

कहते हैं **वे ज्ञान तरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। इस प्रकार स्वयं ही स्वतः जाननेयोग्य होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है।** योगफल ले लिया। **इस प्रकार...** यह पद्धति कही, उस प्रकार से जो ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ वे पर में रहे, जाननेवाला जानने में रहा, वह जाननेवाला स्वयं ज्ञानरूप हो, उसे स्वयं जानता है, वह जाननेयोग्य चीज़ आत्मा को है। पर ज्ञात होने योग्य है, वह कहना सब व्यवहार है। आहाहा ! **जाननेयोग्य होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है।** लो, ठीक। ज्ञानमात्रभाव ही ज्ञेयरूप है। पूरा ज्ञेय है। परिणमन से बात करनी है। बाकी तो आत्मा वस्तु, उसका ज्ञानभाव और उसका परिणमन अर्थात् वर्तमान दशा-अवस्था, वही ज्ञेय है। आहाहा ! वह ज्ञेय और ज्ञान यह क्या लगायी है ? यह लगायी है तेरे घर में क्या होता है उसकी। समझ में आया ? आहाहा !

ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है। इस कष्ट-बष्ट में अपने आप सब समझ में आये, ऐसा नहीं है, हों! डॉक्टर! एक बार गोंडल में नहीं हुआ था अपने व्याख्यान में। जे.सी. दीवान थे। व्याख्यान में आवे। ओहो! इसमें सब लिखा होगा? है, उसमें भी तुम्हें कातना नहीं आता। पुस्तक ले जाना। पुस्तक ले गये थे। केशवलाल प्रोफेसर है न? गोंडल के प्रोफेसर हैं। केशवलालभाई! यह महाराज पड़ते हैं, वह पुस्तक देना और ले आना अपने घर में। भगवतीसूत्र था। सम्यक्त्व अधिकार चलता था। (संवत्) १९८८ के वर्ष की बात है। १९८८। (पुस्तक) ले गये। महाराज! इसमें कुछ समझ में नहीं आता। तुम बोलते हो न...

श्रोता : था वह साधारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : दरबार की कृपा। बाकी बुद्धि ऐसी नहीं थी।...व्याख्यान में आवे। समझ बिना के होते हैं न बहुत तो। आहाहा!

कहते हैं, स्वयं ज्ञानभाववाला आत्मा, वह ज्ञानरूप हो, वह उसे ज्ञेय अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य चीज़ है। परचीज़ ज्ञात होनेयोग्य है। करनेयोग्य तो नहीं, उसकी क्रिया नहीं, राग की क्रिया उसकी नहीं, शरीर की क्रिया उसकी नहीं। उसका अस्तित्व भिन्न परन्तु उस अस्तित्व का यहाँ ज्ञान होता है, उस अस्तित्व के कारण ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। अपने ज्ञान के अस्तित्व के कारण उसका ज्ञान होता है। अरे! भाई! ऐसा वह होगा? वीतराग का मार्ग ऐसा होगा? कभी सुना था? कलकत्ता-बलकत्ता में सुना नहीं था?

और स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। लो, जाननेवाला स्वयं अपने को जाने, ज्ञात हो परन्तु वह जानने की क्रिया अपना ज्ञेय और ज्ञाता जाननेवाला और ज्ञान जाने और ज्ञेय स्वयं। तीनों एक ही चीज़ है। जाननेवाला ज्ञाता आत्मा, उसका ज्ञानभाव वह ज्ञान और उसका परिणमन होना, अवस्था होना, पर के विषय को जानने सम्बन्धी अपनी दशा होना, वह स्वयं ज्ञेय, स्वयं ज्ञान और स्वयं ज्ञाता। पर के साथ कोई सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! ऐसा होगा यह?

श्रोता : है ही न। फिर उसमें शंका कैसी? यह शंकारहित बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा? आहाहा! कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें? यह समझते हो उसमें नहीं, इसमें समझ में आता है या नहीं? ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! कभी आत्मा क्या है? क्या गुण है? क्या दशा है? क्या होता है? उसका कभी पता लिया नहीं। ऐसा का ऐसा अनादि से विपरीत घट्ठा होकर भटकता है। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, राग-द्वेष के आचरण। चौरासी के अवतार के गोता खाकर अनन्त बार मर गया है। समझ में आया?

यह भगवान आत्मा परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने कहा, वह लॉजिक-युक्ति से सिद्ध हो सकता है। कहते हैं, **स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है।** लो। वह ज्ञानमात्र भाव ही जाननेवाला है, ऐसा कहते हैं। ज्ञात होती है, वह भी अपनी दशा, जाननेवाला भी स्वयं और ज्ञान भी अपना। ये तीनों एकरूप हैं। अपने अस्तित्व में जाननेवाला स्वयं, ज्ञान द्वारा जानता है—ऐसा कहना, वह भी नहीं, वह तो ज्ञान स्वयं स्वरूप ही है और ज्ञान की परिणति को जाने, वह भी अपना ज्ञेय है, ऐसा भेद डालना, ऐसा नहीं। वह स्वयं ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय एकरूप वस्तु है। ऐसी अन्तर में दृष्टि होना, उसे सम्यग्दर्शन और धर्म की शुरुआत कहने में आती है। बाकी सब व्यर्थ-व्यर्थ है। समझ में आया? सब साधु होकर मूंडकर मर जाए, मुँडाकर सिर फोड़े, गर्म पानी पीवे... वह सब रण में शोर मचाने जैसी बात है। उसमें कुछ आत्मा का धर्म है नहीं। समझ में आया? कुछ समझ में आया, ऐसा कहा जाता है न? सब कहाँ समझ में आता है? सब समझ में आये, तब तो इसे निहाल हो जाए। परन्तु क्या कहना चाहते हैं? किस अपेक्षा से, किस प्रकार का ऐसा कुछ लक्ष्य होता है? उसका नाम कुछ समझ में आता है। यह... मध्य में। वाक्य का विश्राम होता है न, अमुक बोलने के पश्चात् किसी को ऐसा कहे कि तुम्हें समझ में आता है—यह वाक्य का विश्राम है। समझ में आया? देखो! कुछ समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार ज्ञानमात्र भाव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता—इन तीनों भावों से युक्त सामान्य विशेषस्वरूप वस्तु है। यहाँ सामान्य और विशेष दोनों इकट्ठे ले लिये। भाई! ज्ञानप्रधान है न? प्रमाण ज्ञान। वस्तु त्रिकाली सत्, उसकी शक्ति त्रिकाली सत् और उसकी दशा होने पर वर्तमान हालत-दशा, वह तीनों होकर आत्मा कहने में आता है। उस आत्मा में पुण्य और पाप नहीं आता, उसमें शरीर, वाणी की क्रिया नहीं आती और पुण्य-पाप तथा शरीर की क्रिया का ज्ञान भी उनके कारण नहीं आता। आहाहा! कहो, समझ में आया?

ऐसी **इन तीनों भावों से युक्त...** देखो! वापस तीनों को भाव कह दिया। ज्ञाता जाननेवाला, ज्ञान जाने और ज्ञात हो अपना ज्ञेय। आहाहा! ऐसा तत्त्व। ऐसा भगवान आत्मा तीन भावसहित, तीन भावयुक्त। कौन से तीन? जाननेवाला आत्मा, ज्ञात हो वह ज्ञान और ज्ञात हो वह ज्ञेय। जाननेवाला आत्मा, जाने वह ज्ञान, ज्ञात हो वह ज्ञेय। स्वयं का स्वयं। आहाहा! इस प्रकार जब अन्तर में दृष्टि दे, तब उसे ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के तीन भेद अपने हैं, वे भी नहीं रहते। समझ में आया? पर के तो रहते नहीं परन्तु अपने तीन प्रकार भी नहीं रहते।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, उसकी दृष्टि होने पर अपने अस्तित्व की प्रतीति में

उसे ज्ञान और आनन्द की दशा प्रगट होती है। उसे धर्म और धर्म की शुरुआत कहा जाता है। '**ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ**'... देखो! ऐसा कहा वैसा? ज्ञाता भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञात भी मैं। '**ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ' इस प्रकार अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभव करता है।** आत्मा को आनन्द के ज्ञान के स्वभाव को अनुभवता है, वह इस प्रकार अनुभवता है और वह अनुभव होना, यह धर्म है। समझ में आया? बहुत सरस बात थी। कलश का भावार्थ भरा है। देखो न! पण्डित ने भरा है। आहाहा!

इस प्रकार अनुभव करनेवाला पुरुष... पुरुष अर्थात् आत्मा। फिर स्त्री का आत्मा अलग, ऐसा नहीं। आत्मा अर्थात्? आत्मा तो आत्मा ही है। शरीर अलग। हड्डियों के फेर से कहीं आत्मा स्त्री नहीं हो जाता। पुरुष के आकार कहीं आत्मा नहीं हुआ। वह तो जड़ है। चैतन्य ज्ञानभाववाला आत्मा, शरीर के आकार-इन्द्रिय पुरुष के या नपुंसक के उस आकार हुआ नहीं। अज्ञानी ने जड़ के आकार में आकर माना है कि मैं पुरुष हूँ और स्त्री हूँ। समझ में आया? सोने की... उसे चाहे जैसे चमड़ी के, कपड़े के नये ताजा टुकड़े पर लिपटावे, तो वह सोने की,... लिपटे हुए वस्त्र जैसी हो जाती है? उसी प्रकार भगवान चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। वह इस चमड़े का... है। पुरुष के, स्त्री के, नपुंसक के, ढोर के, देव के। उस लिपटनरूप नहीं होता, नहीं हुआ, होगा नहीं। अरे रे! गजब बात! पण्डितजी!

ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाला अनु अर्थात् अनुसरकर। ऐसा आत्मा, उसे अनुसरकर होना। अनादि से तो पुण्य-पाप और राग-द्वेष को अनुसरकर विकाररूप होता है। वह दुःखरूप और भटकने का संसार है। ऐसा **अनुभव करनेवाला पुरुष...** ऐसा अनुभव करता है कि जाननेवाला मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञेय अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य चीज़ भी मैं ही हूँ। ऐसे तीन के अभेद की दृष्टि होने पर, उसे अनुभव अर्थात् आनन्द का स्वाद आता है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसे समकित और उसे धर्म कहने में आता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१३

श्री समयसार, गाथा-६, प्रवचन - ५१२
दिनांक - २७-०९-१९७३

यह समयसार जीव-अजीव अधिकार। कैसा जीव मानने से सम्यग्दर्शन होता है? जीव-अजीव अधिकार है न? जीव किसे कहते हैं कि जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है? यह अधिकार है। सूक्ष्म अधिकार है। कहा कि चैतन्यस्वरूप, ज्ञायकभाव भावस्वभावरूप, त्रिकाल जो ज्ञायकभाव स्वभावरूप, उसमें जो वर्तमान पुण्य और पाप के भाव पर्याय में-अवस्था में प्रवर्तमान हैं, तथापि ज्ञायकभाव उसरूप नहीं हुआ। समझ में आया? इसलिए सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में अवकाश है, ऐसा कहते हैं। जो ज्ञायकभाव है, स्वभावभाव है, वह वर्तमान वर्तते प्रवर्तमान पुण्य और पाप, उसरूप हुआ ही नहीं। वह तो अचेतन है। चैतन्यरस स्वभाव, वह अचेतनरूप कैसे होगा? आहाहा! इस कारण से धर्म प्राप्त करने के लिये पर की अपेक्षा नहीं है। क्योंकि पुण्य-पापरूप कहीं द्रव्य हुआ ही नहीं। समझ में आया?

वह द्रव्यस्वभाव त्रिकाल शुद्ध है, तथापि उस शुद्ध का भान हो, उसके लिये वह शुद्ध है। कर्म का लक्ष्य छोड़कर अपना चैतन्य ज्ञायकभाव स्वभावभाव पर लक्ष्य देने से अपनी पर्याय में द्रव्य का सेवन होता है। सेवन अर्थात् आराधन होता है। ज्ञायकभाव का आराधन होता है। अनादि से पर्याय का आराधन है। समझ में आया? एक समय की पर्याय में खड़ा रहकर उसने शास्त्र का ज्ञान किया, दया, व्रत आदि किये परन्तु उस पर्याय में खड़े रहकर किया। जिस पर्याय में वह खड़ा है, परन्तु वह पर्याय द्रव्य में है ही नहीं। जिसमें तू खड़ा है, वह चीज़ ही अन्दर में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह अन्दर में नहीं तो अन्दर दृष्टि करने से पर्याय में शुद्धस्वरूप की आराधन दशा होती है। आहाहा! त्रिकाली शुद्ध वस्तु का, पर का लक्ष्य छोड़कर, स्व के आश्रय में जाता है तो पर्याय में त्रिकाली शुद्ध की उपासना, सेवन, आराधना होती है। उस आराधना करनेवाले को वह चीज़ शुद्ध है। रतिभाई! आहाहा! ऐसी बातें हैं।

जो शुद्ध अस्तिरूप है। है, उसका अस्तिपना जब पर्याय में भासित होता है, तब वह

चीज़ शुद्ध है, ऐसा दृष्टि में आता है। गजब बातें! आहाहा! वस्तु ऐसी है। एक समय की जो अवस्था है, प्रमत्तदशा छठवें गुणस्थान की—पहले से छठवें और सातवें से चौदहवें (गुणस्थान) सब पर्यायभेद है, अंश है और त्रिकाली अंश में उसका प्रदेश नहीं है। समझ में आया? वह त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, नित्य स्वभावभाव, वह पुण्य के परिणामरूप कैसे हो? आहाहा! चाहे तो अरिहन्त की भक्ति हो, चाहे तो पंच महाव्रत का विकल्प / राग हो, उसरूप वस्तु तो हुई नहीं, वह तो पर्याय में है। समझ में आया? तो उस पर्याय की रुचि छोड़कर... यहाँ पर का लक्ष्य छोड़कर, ऐसा यहाँ कहा। परन्तु उसका अर्थ यह कि पर का लक्ष्य छोड़े तो द्रव्य का लक्ष्य होता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। मूल चीज़ है न।

वह द्रव्यभाव, ध्रुवभाव, शुद्ध अखण्ड प्रभुत्वभाव, उसकी सेवना से, प्रभु की सेवना करने से... उपासना आया न? आहाहा! **अनेकरूप शुभाशुभभाव, उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता। वही समस्त अन्य द्रव्य के भावों से...** क्योंकि अन्य भावरूप परिणमित नहीं होता तो प्रमत्त-अप्रमत्त दशा कहने में आती है, वह उसमें नहीं है। भगवानजीभाई! बहुत सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! महाप्रभु, जिसके माहात्म्य का पार नहीं। वस्तु सत् और सत्त्व ऐसी चीज़ नित्यानन्द प्रभु, वह शुभाशुभभावरूप हुई नहीं, तो शुभाशुभभावरूप हुई नहीं तो पर्याय में प्रमत्त-अप्रमत्तपना उसे नहीं है। पर्याय में है, द्रव्य में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! तब उसे सम्यग्दर्शन होता है।

सम्यग्दर्शन में त्रिकाल का आश्रय है और सम्यग्दर्शन में जो शुद्धपर्याय का वेदन हुआ, उससे पूरा आत्मा शुद्ध है, ऐसा उसके लक्ष्य में, द्रव्यदृष्टि में आया। आहाहा! पहले तो अभी इसे समझना कठिन पड़ता है। आहाहा! यह समझने के पश्चात् अन्दर में दृष्टि करना। ऐसी समझ पहले होना चाहिए। विकल्प में भी ऐसा निर्णय होना चाहिए। रागमिश्रित विचार में भी ऐसा निर्णय आना चाहिए। यद्यपि वह यथार्थ निर्णय नहीं है परन्तु पहले वह निर्णय आये बिना नहीं रहता। आहाहा! दूसरा जानपना कम-ज्यादा हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? यह तो सीधा त्रिकाली ज्ञायकभाव को दृष्टि में लेते ही अनुभव में आत्मा की पर्याय में शान्ति और आनन्द की शुद्धता का वेदन साथ में 'यह शुद्ध है' ऐसा भास होता है। समझ में आया? लो! नेमीचन्दभाई! यह तुम्हारी छठी गाथा चलती है। आहाहा!

इसलिए वह प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है; वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से... रागादि भाव अथवा अन्य द्रव्य और अन्य द्रव्य का भाव, उसका लक्ष्य छोड़ता है तो सीधी द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है। समझ में आया? अनादि से पर्याय में अन्य द्रव्य का जो

लक्ष्य है, वह लक्ष्य छोड़ते ही... राग से लक्ष्य छोड़ना नहीं पड़ता। वह अन्दर लक्ष्य छोड़े और अन्दर में गया तो राग का लक्ष्य भी छूट गया। समझ में आया? **उपासित होता हुआ 'शुद्ध' कहलाता है।** यहाँ तक तो आया था। समझ में आया? वीतरागमार्ग। भगवान स्वयं स्वरूप से वीतरागी है, उसका मार्ग तो वीतराग... तो वीतराग पर्याय उत्पन्न होती है। कहते हैं कि व्यवहार से निश्चय होता है। तो यहाँ कहते हैं कि व्यवहार से निश्चय होता ही नहीं। निश्चय की पर्याय तो त्रिकाली के आश्रय से होती है, उसमें कोई पर का, निमित्त का, राग का सहारा नहीं है। आहाहा! गेंदालाल ने लिखा है कि प्रशस्त राग, वह धर्म नहीं है।...में आया, अरिहन्त भक्ति भी अग्नि है। यहाँ रह गये न? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि राग परलक्ष्यीभाव, चाहे जो हो परन्तु उस भावरूप भगवान आत्मा हुआ ही नहीं। तो उस पर का लक्ष्य, निमित्त का अथवा उदय का अथवा परद्रव्य के भाव का लक्ष्य छोड़ने से स्व के ऊपर लक्ष्य जाते ही पर्याय में वस्तुस्वभाव ज्ञायकभाव है, उसकी सेवना और आराधना हुई, उसमें आनन्द का स्वाद आता है। इससे सिद्ध हुआ कि पूरा आत्मा आनन्द है। शुद्धपर्याय के साथ आनन्द आया तो पूरा आत्मा शुद्ध है और पूरा आत्मा आनन्द है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! दुःखी हो बहुत प्राणी। आहाहा! भाई कहते हैं न... उसे खबर भी नहीं। ...पोपटभाई का पुत्र आया है। भाई गुजर गये न वे?... खबर नहीं। उससे पूछा तेरे बापू कहाँ गये? ...वे गये। मेरे बापू गोवा गये हैं।

श्रोता : लड़कों को खबर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के को खबर थी... उसे जवाब क्या देना? उसकी माँ बीमार थी न? उसे लाये थे न? ... जरा ... उठे। लड़के को कहे, तेरे बापू कहाँ? मेरे बापू गोवा गये। उसे ऐसा कैसे कहें कि मर गये। आहाहा! भाई ऐसा कहते थे।....आये थे न। पोपटभाई के लड़के। उसकी बहिन के लड़के। आहाहा! देखो यह संसार। रोग में ग्रस्त, उसमें .... आहाहा! उसके धनी ऐसे अरबोंपति। फिर वहाँ ले गये। गोवा ले गये। प्लेन में ले गये। बड़ा धामधूम से करते हैं। बड़ा गृहस्थ है न! वहाँ .... जलायेंगे। मुर्दे को जलायेंगे। मुम्बई से वहाँ ले गये। अरे रे! वह तो कहीं गया आत्मा। आहाहा! कोई शरण नहीं होता। लक्ष्मी शरण नहीं, कीर्ति वह शरण नहीं, आबरु शरण नहीं, राग अन्दर होता है, वह भी शरण नहीं। आहाहा! अरे! भगवान का स्मरण हो, वह भी शुभराग है, वह भी शरण नहीं है। आहाहा! शरण तो भगवान चिदानन्दस्वरूप ध्रुव नित्य स्वभाव है, वहाँ पर्याय की डोर बाँधकर... आहाहा! जो भान हुआ, उसमें ऐसा शुद्ध आत्मा है, ऐसा ज्ञानी को भास होता है। अज्ञानी को तो शुद्ध क्या

चीज़ है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह वस्तु है। लाख दूसरे दान करे, भक्ति करे, पूजा करे, परन्तु वहाँ गये बिना उसे धर्म नहीं है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। दुनिया को बैठे, न बैठे, विरोध करे, निन्दा करे। समझ में आया? ....वहाँ पत्र आया था। ... क्या हो? आहाहा! लोगों ने जहाँ अपना पक्ष बाँधा है, उसमें से छूटना (कठिन पड़ता है)। आहाहा! उसमें सम्प्रदाय की दृष्टि हुई और उसमें से छूटना (वह तो अति कठिन है)। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि पर्यायबुद्धि हुई, उससे छूटना कठिन है। आहाहा!

अन्तर स्वभाव भगवान आत्मा पहले समझ और श्रद्धा में तो यह... ले। आहाहा! पश्चात् अन्तर में प्रयोग करने से, द्रव्यस्वभाव पकड़ने से यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा भान होने से पर्याय में सम्यग्दर्शन ज्ञान और स्वरूपाचरण स्थिरता होती है। उसका नाम धर्म की शुरुआत कहते हैं। समझ में आया? अब विशेष बात। यह ज्ञायक आया न? ज्ञायक है न वह? तो उसकी ध्वनि ऐसी हुई कि वह जाननेवाला है। राग को जाननेवाला, पर को जाननेवाला— ऐसी ध्वनि उसमें हुई। आत्मा जाननेवाला है न? ज्ञायक है।

जैसे दाह्य (जलनेयोग्य पदार्थ) के आकार होने से... दाह्य—जलनेयोग्य लकड़ी, कण्डे, छाणा कहते हैं? गोबर। सुलगता है न? अग्नि उस आकार होती है परन्तु वह अग्नि का आकार है, वह कण्डे का आकार नहीं। क्या कहा, समझ में आया? **दाह्य (जलनेयोग्य पदार्थ) के...** लकड़ी, कण्डे, सूखे कण्डे, अडाया को क्या कहते हैं? अडाया को क्या कहते हैं, समझते हो? वह सूखा हुआ गोबर। जंगल में पड़ा हो और सूख गया, उसे अडाया (गुजराती में कहते हैं)। जहाँ बनावे उसे कण्डा कहते हैं। घास डालकर। अग्नि उस आकार होती है।

जैसे दाह्य (जलनेयोग्य पदार्थ) के आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं... जलानेवाला, सुलगानेवाले पदार्थ को अग्नि कहते हैं। **तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती,...** उस लकड़ी के आकार अग्नि हुई, वह अवस्था तो अग्नि की है, वह अशुद्धता नहीं है। उसके आकार जो हुई , आकार तो अग्नि की दशा है, वह कोई जलनेयोग्य पदार्थ की अवस्था नहीं है। समझ में आया? जलनेयोग्य पदार्थ जो है, उसरूप अग्नि हुई, वह अग्नि हुई, उसका अर्थ क्या? अग्नि तो अपनी पर्यायरूप हुई है। ज्ञेयाकार से ज्ञेय के आकार के कारण अग्नि उसरूप हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? (जलनेयोग्य पदार्थ के) **आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती, उसी प्रकार...** जलनेयोग्य पदार्थ के आकार हुई है, इसलिए अशुद्ध है, ऐसा है ही नहीं है। वह तो अग्नि स्वयं की पर्याय के आकार हुई है। आहाहा! समझ में आया?

जिस प्रकार का राग हो, शरीरादि ज्ञेय हों, इस ज्ञान में उस आकार प्रमाण ज्ञान की पर्याय में ख्याल आता है, परन्तु वह ज्ञेय का आकार नहीं है, वह तो अग्नि का आकार है, अग्नि की अपनी-स्वयं की अवस्था ही वह है। पर के कारण अशुद्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भारी सूक्ष्म है। यह चौथे बोल का उत्तर है। **'णादो जो सो दु सो चेव।'** यह। तीन बोल के उत्तर आ गये **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं'** यह आ गया। अब **'णादो जो सो दु सो चेव।'** उसका दृष्टान्त अमृतचन्द्राचार्य देते हैं। भगवान! जैसे अग्नि है अग्नि। अग्नि कहते हैं न? वह जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होती है। वह आकार पर के कारण हुआ, इसलिए अशुद्ध है—ऐसा नहीं है। वह तो अग्नि की निज अवस्था ही ऐसी हुई है। समझ में आया? आहाहा!

उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के ज्ञायकता प्रसिद्ध है,... क्या कहते हैं? रागादि, शरीरादि ज्ञात होते हैं, तो उस ज्ञेयाकार से ज्ञानपर्याय हुई, वे ज्ञेयाकार उसमें आये नहीं। आहाहा! वह तो ज्ञायक की अवस्था उसरूप हुई है। अपनी अवस्था उस आकार हुई है। गजब भाई! जितने प्रकार के राग हैं, व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है न? तो जितने प्रकार के दया, दान, व्रत आदि के विकल्प उठे तो ज्ञान उस ज्ञेयाकार परिणमता है, परन्तु ज्ञेयाकार ज्ञेय के आकार के कारण से नहीं। वह अपने ज्ञान के आकार... ज्ञान की हुई है। समझ में आया?

दर्पण में दूसरी चीज़ दिखती है तो उस आकार दर्पण की पर्याय हुई परन्तु वह तो दर्पण की पर्याय हुई है, पर के आकार के कारण हुई है, ऐसा तो है नहीं। आहाहा! समझ में आया? दर्पण है न? शीशा कहते हैं न? तो दर्पण में सामने अग्नि और कोयला दिखायी दे तो उस आकार दर्पण हुआ। आकार हुआ, वह उसकी अशुद्धता नहीं है। वह तो अपने दर्पण की अवस्थारूप दर्पण हुआ है। समझ में आया? अब ऐसा समझना... ऐई! रायचन्द्र! यह सब समझे बिना दुःख का छुटकारा नहीं है, हों! अनादि से दुःख में पड़ गया है। आहाहा! वापस ऐसा सूक्ष्म। नेमिचन्दभाई ने माँग की है कि यह हमें सुनाना। जरा सूक्ष्म पड़े ऐसा है।... आहाहा!

भगवान! तू तो ज्ञायक है न? ज्ञायक का भान हुआ, तो उस भान में जैसा ज्ञेय है, वह तो स्व का भान हुआ और जैसा अन्दर रागादि विकल्प उठता है, उस प्रकार से उस आकार ज्ञान परिणमता है, परन्तु वह आकार ज्ञेय का—पर का नहीं है। अपनी परप्रकाशक शक्ति अपने में है, इस कारण से उसरूप ज्ञायकभाव परिणमित हुआ है। पण्डितजी! आहाहा! ऐई! ...भाई! ....ज्ञान की अपनी अवस्था है, वह कहीं ज्ञेय की अवस्था नहीं है, वह राग की

अवस्था नहीं है। ज्ञान में राग ज्ञात हुआ और राग के आकाररूप हुआ, वह राग की अवस्था नहीं है, वह तो ज्ञायक की पर्याय की अवस्था है। कहो, ...भाई! ऐसा कहाँ था कहीं? ...था। वे ... कहे। बाहर के थोथा सुनकर चले गये।

जैनदर्शन अर्थात् कि वस्तु का दर्शन अर्थात् वस्तु का स्वरूप। आहाहा! कहते हैं कि... तीन पद का अर्थ तो कहा। प्रमत्त-अप्रमत्त क्यों नहीं? वह ज्ञायकभाव है, उसकी पर्याय में शुभाशुभभाव होते हैं, वह प्रवर्तमान हो, वर्तता हो, ऐसा होने पर भी त्रिकाली वस्तु उसरूप नहीं हुई। इस कारण वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है, ऐसा कहने में आता है। लॉजिक से-न्याय से तो समझ में आये ऐसा है। न समझ में आये, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। आहाहा!

अब कहते हैं कि परन्तु वह जाननेवाला है, ऐसा तुमने कहा न? ज्ञायक कहा न? जाननेवाला कहा न? तो जानने में पर का ज्ञान हुआ। स्व का भी ज्ञान हुआ और पर का ज्ञान भी हुआ। तो पर का ज्ञान हुआ, उतनी उसमें अशुद्धता आयी या नहीं? तुमने द्रव्य को तो भले शुद्ध कहा। पर्याय में पर के आकार हुई, उतनी अशुद्धता है या नहीं?—कि नहीं। समझ में आया? वह पर के आकार हुई, ऐसा कहने में आता है। वह तो अपनी ज्ञान की पर्याय का आकार है। पर का आकार है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! कहो, अतुलभाई! यह समझ में आता है? तुम्हारे इसे रस है न, रस? तुम्हारे लड़कों में इसे एक रस है। सब समझने जैसे... आहाहा! एक तो हुआ।

भगवान! तेरी चीज़ की बात चलती है न, नाथ! आहाहा! तेरी चीज़ तो ज्ञायकभावस्वरूप है न! यह मिट्टी, पुण्य-पाप भाव तो सब भिन्न है। अब कहते हैं... वह तो जैनदर्शन का मर्म है। वस्तु का मर्म है। तेरी चीज़ तो, प्रभु! ज्ञायकभाव है, पारिणामिकभाव नहीं कहा। क्योंकि पारिणामिकभाव तो परमाणु में भी है। परन्तु उससे आत्मा पर से भिन्न है, ऐसा ज्ञात नहीं होता, ज्ञायकभाव से ज्ञात होता है। जाननेवाला आत्मा जानना... जानना... जानना... जानन, वह आत्मा और आत्मा, वह जानन। जानन, वह आत्मा और आत्मा, वह जानन - ऐसी दृष्टि ज्ञायक पर होने से पर्याय में द्रव्य की सेवना-आराधना हुई, तो उसे वस्तु शुद्ध है, ऐसा कहने में आया? वह शुद्ध है, ऐसा तो कहा परन्तु पर्याय में परज्ञेय को जाननेवाला है, ऐसा कहा, तो पर को जाननेवाला हुआ, इतनी अशुद्धता हुई या नहीं? समझ में आया? नहीं। वह पर के आकार हुई, ऐसा तो व्यवहार से कहते हैं। बाकी वह तो अपने ज्ञान की पर्याय के आकार हुई है। आहाहा! समझ में आया? है न? पण्डितजी! संस्कृत में ऐसा है। आहाहा!

पर्याय को सिद्ध करते हैं। द्रव्य को पर्याय में सिद्ध किया। परन्तु उसमें पर्याय भी

स्वतन्त्र सिद्ध... वह... है। ओहोहो! समझ में आया? वस्तु तो एक समय में त्रिकाल शुद्ध है—ऐसा पर्याय में ख्याल आया। समझ में आया? कहीं ध्रुव में ख्याल आया नहीं। पर्याय में ख्याल आया। परन्तु अब उस पर्याय में पर का ज्ञान होता है क्योंकि वह तो स्व-परप्रकाशक ज्ञायक... जाननेवाला। स्व को जाने, पर को जाने ऐसा जाननेवाला हुआ। पर्याय में, हों! आहाहा! तो पर को जाननेरूप ज्ञान की पर्याय उसरूप ही होती है। उसरूप हुई तो उतनी अशुद्धता है या नहीं? (कहते हैं) उसरूप हुई ही नहीं, वह तो अपनी ज्ञानपर्यायरूप हुई है। आहाहा! कहो, समझ में आया? ईश्वरचन्दजी! यह कोई सनावद में है? ....क्या करे? ....आहाहा!

ऐसी चीज़! आहाहा! त्रिलोकनाथ ने जगत को प्रसिद्ध किया। अपनी पूर्ण पर्याय, वह जगत के पास प्रसिद्ध की। प्रसिद्ध करते हैं कि तेरी चीज़ ज्ञायकभाव से भरी पड़ी है तो जाननेवाला वह आत्मा है, उसमें पर्याय का भेद अन्दर नहीं है। तो अब यह कहते हैं कि जब अपनी चीज़ को जाना, वह तो पर्याय में ज्ञात हुई। उस पर्याय में अपना ज्ञान भी है और उस पर्याय में ज्ञायक है तो उस समय में परप्रकाशक ज्ञान हुआ तो परप्रकाशकरूप ज्ञान की अवस्था हुई, उतनी अशुद्धता तो है या नहीं? ऐसा है नहीं। पर के आकार हुई नहीं। अग्नि लकड़ी, कण्डे, पत्ते। पाँदड़ा कहते हैं? पत्ता-पत्ता। उस पत्ते के आकार हुई नहीं। अग्नि की पर्याय उस आकार हुई है। समझ में आया? ऐसा दिखता है। जैसे पत्ते हों, वैसी अग्नि दिखती है, परन्तु वह पर्याय अग्नि की है, वह कहीं लकड़ी की और कण्डे की हुई नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार चैतन्य भगवान, स्व-परप्रकाशक स्वभाववाला ज्ञायक। पर्याय में, हों! वस्तु तो त्रिकाल है। ऐसी त्रिकाल की जहाँ दृष्टि हुई तो साथ में ज्ञान की पर्याय में स्व तो ज्ञात हुआ परन्तु उस पर्याय में रागादि होते हैं, उसे भी उस समय में जानता है। तो रागादि का आकार, शरीर, नीम,... उस ज्ञान की पर्याय में... भास हुआ अन्दर। परन्तु वह तो ज्ञान की पर्याय के आकार हुई। नीम के कारण हुई नहीं। नीम से हुई नहीं। नीम में हुई नहीं। अमरचन्दभाई! आहाहा! देखो न! पर्याय की स्वतन्त्रता और फिर भी पर की अपेक्षा नहीं। पर की अपेक्षा से कहने में आया कि ज्ञायक। पर को जानता है, ऐसी ध्वनि व्यवहार से कहने में आयी। आहाहा! एक गाथा में कितना समाहित किया! फिर उसका विस्तार करते हैं। समझ में आया?

अरे! इतना भान करके बालक-कन्या भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है। ऐसा नहीं समझना कि मैं बालक हूँ, मैं स्त्री हूँ। अरे! भगवान! तू स्त्री—बालक है ही नहीं। तू एक

पर्यायरूप में आया नहीं तो तू पररूप किस प्रकार हुआ ? समझ में आया ? तेरा अस्तित्व तो महाज्ञायकभाव से भरपूर है। उसमें तू है। परन्तु उसे जानने की पर्याय में पर का ज्ञान होता है और जैसी परचीज़ जैसा अन्दर आकार होता है तो उतनी अशुद्धता है या नहीं ?—कि नहीं। वह तो अपनी पर्याय का काल ही है कि स्व के आकार होना। स्व और पर के आकार होना, वह तो अपनी पर्याय का धर्म है। उसमें अशुद्धता है नहीं। आहाहा! अब ऐसा कहाँ विचारना ? यह... प्रौषध, प्रतिक्रमण करे, यात्रा-भक्ति करे। क्यों माणिकलालजी! यात्रा-भक्ति करे। चलो, भाई! सम्मेदशिखर की (यात्रा)। एक वर्ष में दो बार जा आवें। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा। ये लोग... चैत्र पूर्णिमा को जाते हैं शत्रुंजय। प्रसन्न-प्रसन्न हो जाते हैं। अरे! भगवान! शत्रुंजय तो तेरा स्वरूप है। राग और अज्ञान को जीतनेवाला शत्रुंजय तो तू है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि उस समय में जरा भक्ति आदि का भाव हुआ, वह भाव भी पर से नहीं हुआ। एक बात। और उस राग का ज्ञान हुआ तो राग है तो राग का ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। और राग का ज्ञान हुआ तो वह पररूप से हुआ है, ऐसा (भी) नहीं है। आहाहा! ताराचन्दभाई! वीतराग का मार्ग ऐसा है। सम्प्रदाय में कुछ मिले ऐसा नहीं है। आहाहा! धीरज से, शान्ति से समझे तो समझ में आये ऐसी चीज़ है। यह कहीं बड़ी पण्डिताई और वाद-विवाद की चीज़ नहीं है। आहाहा!

भगवान! तू तो ज्ञायक है न ? परमपारिणामिकस्वभावभाव में तो तू ज्ञायकभाव है। ओहो! जिसमें चौदह गुणस्थान की पर्याय का भी अभाव है, ऐसी अन्तर में दृष्टि करने से शुद्धता का भान होता है। फिर कहते हैं कि गुणस्थान में यथायोग्य रागादि हों, अरे! गुणस्थान की पर्याय का ज्ञान हो... आहाहा! समझ में आया ? तो उस गुणस्थान आकार ज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं है। वह तो ज्ञान का स्वभाव ही उस समय में स्व को-पर को जाननेरूप आकार हुआ, वह तो अपना स्वभाव है। समझ में आया ?

ज्ञायकता प्रसिद्ध है, तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;... पर को जाना और इसीलिए ज्ञायक ज्ञेयाकार हुआ है, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म है। शशीभाई! ऐसी बात है। आहाहा! **क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** क्या कहते हैं, देखो! उस ज्ञेयाकार अवस्था में भी अवस्था तो अपनी है, वह ज्ञायकरूप की अवस्था है। आहाहा! **ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** वह तो अपनी पर्याय से ज्ञात हुआ है। आहाहा! **ज्ञेयाकार अवस्था में...** यह बात की है, ज्ञात हुआ है। परन्तु वह तो ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ है।

अपनी पर्याय में स्व-परप्रकाशक की पर्याय ज्ञायकरूप से ज्ञात हुई है। पर के आकार हुई है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

पर्यायों में भिन्न-भिन्न ज्ञेयों का भिन्न-भिन्न समय में ज्ञान होता है, भिन्न-भिन्न समय में पर का जैसा भाव है, वैसा यहाँ ज्ञान हुआ तो वह पर के आकार से नहीं हुआ और पर के कारण से भी नहीं हुआ, वह तो अपनी ज्ञान की अवस्थारूप वैसा परिणमन स्वयं से हुआ है। आहाहा! समझ में आया? यह वीतरागमार्ग की स्वतन्त्रता की पराकाष्ठा की घोषणा है।

उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के ज्ञायकता प्रसिद्ध है,... ऐसा कि ज्ञेय को जानता है ऐसा ज्ञायकभाव तो प्रसिद्ध है। **तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है; क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** आहाहा! उस ज्ञेयाकार की अवस्था में ज्ञान, ज्ञान की पर्यायरूप ज्ञात हुई है। ज्ञायकरूप ज्ञात हुई। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म। सूक्ष्म है न, भगवान! उसे पर्याय में उस समय का जैसा ज्ञेय, वैसा ही ज्ञान का परिणमन (हुआ), वह तो अपनी अवस्था है। वह आकार पर के कारण से हुआ और पर है, इसलिए हुआ, ऐसा है नहीं। वह तो ज्ञान की पर्याय है। स्व-परप्रकाशक अपनी पर्याय में अपनी पर्यायरूप हुआ है। समझ में आया? अब ऐसी बात, कहाँ समझे इसमें? जाओ, धर्म करो। परन्तु धर्म कहाँ से (हो)? धर्मी कौन है? और धर्म की पर्याय में क्या होता है, इसकी खबर बिना धर्म कैसे करे? जगत को भारी कठिन लगता है। समझ में आया? भाव का ख्याल नहीं कि त्रिकाली कौन है, वर्तमान कौन है? आहाहा!

चिदानन्द भगवान आत्मा, सच्चिदानन्द प्रभु। कहते हैं कि चिद् अर्थात् ज्ञायकभाव से तो प्रसिद्ध है। तो ज्ञायक में पर का ज्ञान भी होता है। तो पर का ज्ञान हुआ, वह पर से और पर के कारण से हुआ है? अपनी पर्याय के कारण से ज्ञान हुआ है। आहाहा! समझ में आया? **ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** रागादि की अवस्था में ज्ञायकपने ज्ञात हुआ। अपनी पर्याय ऐसे हुई, वह अपने से ज्ञात हुई है। समझ में आया? आहाहा! कितनी टीका! यह गजब टीका है। अनुभव तो है परन्तु क्षयोपशम कितना जगत के लिये प्रसिद्ध करने का!

भगवान आत्मा अन्दर आनन्द का धाम है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! और वह तो जाननेवाला है, राग और पर को करनेवाला नहीं। शरीर और पर को करे, वह हराम है। परन्तु वह पर को जानता है, वह पर्याय भी पर है, इसलिए जानने का कार्य हुआ, ऐसा भी नहीं है। स्व है तो स्व-प्रकाशक में अपनी पर्याय से ज्ञात हुआ, इसका नाम ज्ञाता। '**णादो जो**

सो दु सो चेव।' जानने में आया वह स्वयं ही आत्मा है, रागादि है नहीं। आहाहा! नेमिचन्दभाई को... था न? दिल्ली से आये थे। बहुत दूर से आये। ...में तो निषेध था। यह तो कुछ निषेध... आहाहा! .... सेठ आये हैं न? कह गये, मुम्बई का रखना, जयन्ती का। ऐसा कह गये भगवानदास। यहाँ दस दिन रहे थे। ....ऐसा कहा। ऐई! कोई मुम्बईवाले हैं या नहीं? लो! ये रहे मुम्बईवाले... नवनीतभाई थे और दूसरे कौन थे? पोपटभाई! निवेदन आ जाए दूसरे का तो सर्वत्र हाँ करे। यह ठीक है। मुम्बई की हाँ करते हैं। ...लोगों की माँग है। भाई कह गये हैं, हों! भगवानभाई अभी अन्तिम में आये थे। मुम्बई में। मुम्बई का रखना। इस समय आये थे और देखा है। बहुत लोग। रामजीभाई सब निश्चित करे तब न! चिट्ठी में लिखा है। वह सुनाना। फिर सुधारना उसमें क्या करना। चन्दुभाई ने लिखा है। हमें तो ऐसा लिखना-बिखना नहीं आता।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! प्रभु! तेरी शक्ति। ज्ञायकरूप से पर्याय में-अवस्था में भान हुआ परन्तु उस अवस्था में ज्ञायक है तो जाननेवाला रहा, तो वह पर को भी जाने, ऐसा उसमें आया। आहाहा! तो पर को जाने और पर आकाररूप वह पर्याय होती है, ऐसा कहने में आता है, तो ऐसा है नहीं। वह ज्ञेयाकार हुआ ही नहीं। वह तो ज्ञानाकाररूप रहा है। समझ में आया? राजेन्द्रजी! ऐसी बात है। तुम्हारा दवाखाना, डॉक्टर-बॉक्टर सब बड़ा शून्य है। पाँच हजार कमावे और दस हजार कमावे। धूल में कहीं नहीं है।

चैतन्य दीपक सूर्य प्रभु! आहाहा! वह ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा, उस ओर के झुकाव से उसका भान होने पर उस भानवाले को वह चीज़ शुद्ध है, ऐसा भान होता है। तदुपरान्त पर्याय में अशुद्धता है, ऐसा जानता है। जाननेवाला है। तो ज्ञेयाकार को-ज्ञेय को जानता है। वस्तु तो शुद्ध है, परन्तु ज्ञेयाकार हुआ, इतनी अशुद्धता तो पर्याय में आयी या नहीं? समझ में आया? —कि नहीं आयी। वह तो अपनी ज्ञानपर्यायरूप से... आहाहा! अपने ज्ञान सत्त्व में स्व-परप्रकाशक की शक्ति अपनी है। वह तो अपनी शक्ति अपने स्व-परप्रकाशकरूप अपने आकार से परिणमती है, पर के कारण से है नहीं। आहाहा!

यह लोग कहते हैं न? लोकालोक की चर्चा बहुत हुई थी। (संवत्) १९८३ में। वीरजीभाई आये थे। दामोदर सेठ के साथ बहुत चर्चा चलती थी। यह लोकालोक है तो ज्ञान होता है। यह बिल्कुल खोटी बात है। उन लोगों की बात चली थी तो मेरे पास आये कि यह ऐसा कहते हैं। वीरजीभाई दाँत निकालकर (मुस्कुराकर) बात करे। कहा, ऐसा नहीं है। लोकालोक है, वह तो उसमें रहा। अपनी स्व-परप्रकाशक सत्ता है, तो इस कारण से पर को

जानता है, ऐसा व्यवहार कहने में आता है। बाकी वास्तव में तो अपनी पर्याय को ही जानता है। कहो, समझ में आया? यह १९८३ के वर्ष की बात है। १९८३ अर्थात् ४६ वर्ष पहले की बात है। बहुत चर्चा हुई थी। लोकालोक है, इसलिए केवलज्ञान होता है? है तो सबको होना चाहिए। समझ में आया? वह चीज़ है तो सबको ज्ञान होना चाहिए।

अपने ज्ञान की पर्याय में स्व-परप्रकाशक के सामर्थ्य से स्वयं से लोकालोक का ज्ञान अपनी पर्याय में अपनी पर्याय होती है। वह पर की पर्याय नहीं और पर से पर्याय नहीं। समझ में आया? कान्तिभाई! आहाहा! तुम कान्तिभाई को पहिचानते हो? बालब्रह्मचारी है। पन्द्रह सौ रुपये का मासिक वेतन था प्लेन में। छोड़ दिया, नौकरी छोड़ दी। पन्द्रह सौ मासिक वेतन। अब पाँच-दस हजार, बीस हजार... चक्रवर्ती का पद छोड़ देते हैं, उसमें क्या है? छोड़ते हैं क्या, वह तो छूटी ही पड़ी है। माना था कि मेरा है। इस मान्यता को बदल डालते कि मैं तो मेरी चीज़ हूँ। आहाहा!

पर को जानने की पर्याय पर के कारण से हुई है और पर के आकार हुई है, इसलिए अशुद्धता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। द्रव्य तो शुद्ध ही है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु पर्याय में जाननेवाला, ऐसा प्रसिद्ध है न? तो जाननेवाला तो सबको जाने। ज्ञेय को जाने और जैसा ज्ञेय है, वैसा परिणमन वहाँ होता है। वह ज्ञेय है तो परिणमन होता है, ऐसा है नहीं। अपने ज्ञायक की अवस्था में अपने से परिणमन होता है। आहाहा! समझ में आया? यह बात अन्दर बैठाना कठिन है, बापू! समझ में आया? कान्तिभाई! आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञायकपने तो शुद्ध है, ऐसा भान हुआ उस ज्ञान की वर्तमान पर्याय में पर का ज्ञान तो होता है और पर जैसा है, वैसा ही ज्ञान होता है। जैसी सामने चीज़ है, वैसा ही यहाँ ज्ञान होता है। उसका ज्ञान हुआ तो वह पर के कारण से हुआ है, इतनी तो अशुद्धता है या नहीं? बिल्कुल नहीं है। स्वयं के कारण से स्व-परप्रकाशक की पर्याय स्वयं से ज्ञायक पर्याय में पर्याय ही ऐसी उत्पन्न होती है। वह तो ज्ञायक की अवस्था है, वह ज्ञेयाकार की अवस्था नहीं है। व्यवहार ज्ञेय की वह अवस्था है ही नहीं। ज्ञेय में नहीं और उस ज्ञेय की अवस्था यहाँ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञायकता प्रसिद्ध है, तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;... जाननेवाला है, यह तो प्रसिद्ध है। इसलिए पर को जाने तो इतनी अशुद्धता है, ऐसा नहीं है। **क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में...** ज्ञेयाकार की दशा के काल में **जो ज्ञायकरूप से...** वह तो ज्ञायकरूप से ज्ञात

हुआ। अपनी पर्याय अपने से जानती है और अपने को जानती है, उसमें प्रसिद्ध है। पर को जाने, ऐसा उसमें है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? **वह स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी,...** ज्ञेयाकार की अवस्था में भी ज्ञायक अवस्था है और स्व को जानने की अवस्था में भी ज्ञायक अवस्था है। समझ में आया? **स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी, दीपक की भाँति,...** दीपक का दृष्टान्त दिया है न?

कर्ताकर्म का अनन्यत्व होने से... दीपक की भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व (एकता) होने से ज्ञायक ही है - क्या कहा? देखो! **स्वयं जाननेवाला है, इसलिए स्वयं कर्ता...** ज्ञान की पर्याय में स्वयं पर्याय को जाननेवाला है, इसलिए कर्ता। **और अपने को जाना इसलिए स्वयं ही कर्म है।** अपने को जाना है, पर को नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो जैनदर्शन वस्तु के दर्शन की शुरुआत यहाँ से होती है। आहाहा! ऐसा तो कहीं बाहर चलता नहीं। ....दया करो, अमुक करो, व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, आहाहा! यह... गेंदालाल ने लिखा है कि पुण्य-पाप में अन्तर माने... अरिहन्त की भक्ति के लिये लिखा है। अरिहन्त की भक्ति में राग की मन्दता और अनन्तानुबन्धी कषाय के कारण परिणाम में तीव्र पाप—दोनों में जो अन्तर माने, वह घोर संसारी मिथ्यादृष्टि है। प्रवचनसार। पुण्य-पाप में विशेषता माने, एकरूप चीज़ है, ऐसा न माने, वह घोर संसार में भ्रमण करनेवाला है। बापू! यह तो विकार है, भाई! आहाहा! व्यवहार से भले अन्तर हो, निश्चय से तो अन्तर है नहीं, ऐसा कहते हैं। दो की अपेक्षा लेने से राग मन्द का अन्तर भले हो, परन्तु स्वरूप की अपेक्षा लेने से वह सब विकारी चीज़ है। समझ में आया? और उसमें पुण्य-पाप की एकता न मानना और उनमें कोई विशेषता माने, वह दो सामान्य है, ऐसा न माने और अन्तर माने, वह घोर संसार में अनादि से भटकता है। बापू! आहाहा! क्योंकि वहाँ शुभभाव में उसकी प्रीति पड़ी है। आहाहा! वह रुचि छोड़े बिना... दोनों की प्रीति छोड़ना है। दोनों का लक्ष्य छोड़ना है न? पुण्य-पाप दोनों का लक्ष्य छोड़ना है और अन्त में जब लक्ष्य छूटता है, तब तो शुभभाव ही होता है। वह शुभभाव है, उसका लक्ष्य छोड़ता है, तब तो द्रव्य में अन्दर जाता है, तो जिसका लक्ष्य छोड़ना है, वह चीज़ मददगार कैसे हो? समझ में आया?

जिस शुभभाव को साधन कहा, परन्तु वह तो व्यवहारनय से कथन किया है, उपचार से कथन है। आहाहा! नय का व्याख्यान बहुत अच्छा चला है। ....लगायी फिर .... कार्यकारण मानते नहीं। सब कार्य एक है। .... ऐसा मानते हैं। व्यवहारनय, उसका भेद मानता है। उसमें भी कार्यकारण एक नहीं है। नैगमनय मानता है तो वह तो उपचार से है।

आहाहा! समझ में आया? उपचार से है, इसका अर्थ (यह है कि) व्यवहार से है।

दीपक की भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व... है। भिन्न कर्ता और भिन्न कार्य, ऐसा नहीं होता। आहाहा! भगवान आत्मा ही ज्ञायकभाव वह पर्याय में कर्ता और वही पर्याय अपना कर्म अर्थात् कार्य। समझ में आया? ज्ञायकभाव में पर्याय में जो पर का ज्ञान हुआ, वह अपना ज्ञान है। वह अपना ज्ञान कर्म और वह पर्याय उसकी कर्ता; द्रव्य कर्ता तो आरोप से कथन है। समझ में आया? वास्तव में तो वह पर्याय कर्ता और पर्याय कर्म, ऐसा है। समझ में आया? धीमे-धीमे तो बात चलती है, परन्तु थोड़ा मनन करे तो ख्याल आवे। भाव ख्याल में आना चाहिए न? ऐसी की ऐसी बात करे, उसमें क्या?

स्वयं जाननेवाला है, इसलिए स्वयं कर्ता और अपने को जाना, इसलिए स्वयं ही कर्म है। है? देखो! वह ज्ञेय को जानता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? ज्ञेयसम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने से हुआ है। कर्ता आत्मा और कर्म भी आत्मा, ऐसा है। ऐसी सिरपच्ची करे। ऐई! ....राजमलजी! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

जिसमें भव का अन्त आवे और अन्दर से ध्वनि उठे, मैं तो अल्प काल में मुक्ति होने के योग्य हूँ। मैं राग होने के योग्य नहीं, संसार होने के योग्य नहीं। आहाहा! मैं तो अल्प काल में केवलज्ञान होने की योग्यतावाला हूँ। वह भी केवलज्ञान तो उसकी धारावाही में आयेगा ही। समझ में आया? परिणाम का पलटना वह भी सम्यक् के बाद नहीं। जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह भी सत् है। स्व-परप्रकाशक की पर्याय सत् है, स्वयं से है। जिस समय में जो होनेवाला हो, वह होता है। समझ में आया? आहाहा! पर्याय में ज्ञातादृष्टा हुआ। द्रव्य तो ज्ञातादृष्टा है, ऐसी प्रतीति हुई तो पर्याय में ज्ञातादृष्टा हो गया। राग का, व्यवहार का, निमित्त का ज्ञाता हुआ। उन्हें जानता है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। उस सम्बन्धी अपनी पर्याय अपने से हुई है, उसे जानता है, वह परमार्थ है। आहाहा! अरे रे! इसके घर की... जहाँ-तहाँ पर से होता है, ऐसा होता है (इस प्रकार) तत्त्व को पराधीन-पराधीन मानता है, वह दुःख का पन्थ है। आहाहा!

कहते हैं कि ज्ञेयाकार काल में ज्ञायक की अवस्था है और अपने को जाना, इसलिए स्वयं कर्म है, वही ज्ञायक की अवस्था है। कर्ता-कर्म कोई दूसरा है नहीं। दीपक के दृष्टान्त से यह बात सिद्ध करेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१४ **श्री नियमसार, गाथा-१५, श्लोक - २६, प्रवचन - २७**
दिनांक - १०-०३-१९७३

नियमसार, जीव अधिकार चलता है। पूरा... स्वरूप क्या है, यह चलता है। इसके बाद आदरणीय क्या... यह बात। २४ और २५ दो कलश हो गये हैं। २६वाँ (कलश)

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः,
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः।

जीवतत्त्व क्वचित् सद्गुणों... वह केवलज्ञानादि गुणों से भी उसी समय बाहर प्रगट दिखायी देता है।....

सनाथ-मपि जीव-तत्त्व-मनाथं समस्तैरिदं,
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्धयै सदा ।।२६।।

जीव, यह वस्तु जीव कहो या आत्मा कहो। वह क्वचित् सद्गुणों केवलज्ञानादि गुण की पर्याय से विराजमान है। क्वचित् है न? सदा नहीं। किसी समय केवलज्ञानादि गुणसहित, उसे सद्गुण कहा है। नीचे (फुटनोट में अर्थ) है। **दिखायी देना; दिखना; झलकना; आविर्भूत होना; प्रगट होना।** पर्याय है न पर्याय? केवलज्ञान की पर्याय की बात है। **क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है,...** मति, श्रुत ज्ञानादि अशुद्ध गुणपर्याय कहने में आती है और **क्वचित् सहज पर्यायों सहित विलसता है...** स्वाभाविकपर्याय, व्यंजनपर्याय यद्यपि इसमें अशुद्ध व्यंजनपर्याय ही गिनी है। शुद्ध व्यंजनपर्याय सिद्ध में नहीं गिनी है। परन्तु **क्वचित् सहज पर्यायों सहित विलसता है...** ऐसी व्यंजन आदि निर्मल शुद्ध पर्याय किसी समय प्रगट सिद्ध आदि हो, तब होती है। **क्वचित् अशुद्ध पर्यायोंसहित...** व्यंजनपर्याय। आकृति नारकी, मनुष्य, देव आदि गति में उसकी पर्याय की योग्यता, जो आकार है, उस सहित विलसता है।

इन सबसे सहित होने पर भी... ऐसी पर्यायों में गुणों का भेद होने पर भी **भी जो इन सबसे रहित है...** वस्तु जो त्रिकाल नित्यानन्द प्रभु, सहजानन्द की मूर्ति आत्मा। अकेला

ध्रुवस्वरूप, वह उसकी पर्यायों के भेद हैं। पर्याय के भेद की बात की, परन्तु उनसे रहित अकेली चीज़ अन्दर है। वह तो **सबसे रहित है...** आहाहा! त्रिकाल नित्यानन्द प्रभु, शुद्ध चैतन्यघन, एक समय की पर्याय के प्रकाररहित, उस पर्यायसहित होने पर भी, वस्तु स्वयं त्रिकाल देखने पर पर्याय से रहित है।

ऐसे इस जीवतत्त्व को... ऐसा यह अन्दर नित्य ध्रुव, अनादि-अनन्त वस्तु जो नित्य है, ऐसा यह—प्रत्यक्ष **ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं...** मुनिराज स्वयं कहते हैं। **सकल अर्थ की सिद्धि के लिये...** मोक्ष की पर्याय की सिद्धि के लिये **सदा नमता हूँ,...** ऐसे त्रिकाली ध्रुव में मेरा नमन है। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु अन्दर चैतन्य आनन्द से विराजमान प्रभु अनादि-अनन्त, ऐसा यह आत्मा कहो या जीवतत्त्व कहो, उसे मैं सदा नमन करता हूँ। मेरा नमन, झुकाव वहाँ है। पर्याय को नमूँ, वह नहीं, नमन वहाँ है। ध्रुव पर मेरा झुकाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भाता हूँ। इस **सकल अर्थ की सिद्धि के लिये...** मोक्ष की-पूर्ण आनन्द की पर्याय के लिये उसे मैं भाता हूँ। ध्रुवस्वरूप वस्तु, मैं उसकी एकाग्रता से भावना करता हूँ। यह नियमसार की बातें सूक्ष्म हैं।

श्रोता : क्वचित् किस अपेक्षा से।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी समय होती है न। पर्याय है न? सदा तो त्रिकाल द्रव्य है। केवलज्ञानादिक पर्याय किसी समय होती है। कहीं सदा होती है? अनादि है? मतिज्ञान किसी समय, व्यंजनपर्याय किसी समय (होती है)। समझ में आया? यह तो अभी जीवतत्त्व कैसा है—पर्यायवाला, गुणवाला और द्रव्य, उसकी व्याख्या है। ऐसी पर्यायें अन्दर... यह सब समयसार की शैली ली है न? .... वह सब शैली ली है। वैसे देखो तो ऐसा है और यह देखो तो ऐसा है। क्वचित् शब्द इसीलिए है। अमृतचन्द्राचार्य की शैली अलग है। आहाहा!

यह देह तो मिट्टी जड़ है, कहीं आत्मा नहीं है। इसी तरह अन्दर आठ कर्म रजकण हैं, वे अजीवतत्त्व, वह कहीं आत्मा नहीं है। उसकी दशा में होनेवाले, किसी समय विकार की पर्याय अशुद्ध होती है, किसी समय केवलज्ञान की शुद्धपर्याय होती है, किसी समय मतिज्ञानादि के अशुद्ध गुणोंरूपी पर्याय होती है, तो शुद्धपर्याय, व्यंजनपर्याय संसार में किसी समय शुद्ध होती है या अशुद्ध होती है। परन्तु वस्तुरूप से देखें तो, इन सब पर्यायसहित प्रमाण में होने पर भी, वस्तुरूप से इन पर्यायों से रहित है। ऐसे आत्मा को मानना, अनुभव करना, श्रद्धा करना, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

श्रोता : उसमें होने पर भी उससे रहित मानना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में सहित है, वस्तु में सहित नहीं है। प्रमाण ज्ञान करने में द्रव्यसहित पर्याय का ज्ञान करने पर पर्याय में भेद हैं; निश्चय वस्तु देखने पर उसमें वे नहीं हैं। निश्चय पर्याय का निषेध करता है। प्रमाण पर्याय को मिलाता है और निश्चय छोड़ देता है। त्रिकाल ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, भूतार्थभाव, सत्यार्थभाव की नजर करनी है, उसकी ओर झुकना है। वह वस्तु ध्रुव है, उसके सन्मुख होना है, पर्याय से विमुख होना है। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

पुण्य-पाप के विकल्प अशुद्ध में जाते हैं, उनसे तो रहित होना है परन्तु इसके भेद हैं, उनसे भी रहित है, कहते हैं। एकरूप चैतन्यदल शुद्ध आनन्दघन में नमन और उसकी भावना करनेयोग्य है। भगवान तीर्थंकरादि को नमन, वह तो शुभविकल्प है और भगवान ऐसे... भेंट होओ और दर्शन दो, यह तो सब विकल्प की भावना है। यह तो मेरे प्रयोजन के लिये, प्रयोजन -सकल अर्थ की सिद्धि—पूर्ण आनन्द की पर्याय को प्रगट करने की सिद्धि के लिये भगवान पूर्णानन्दस्वरूप को नमन करता हूँ, उसकी भावना भाता हूँ। इसका नाम मोक्ष का मार्ग—यह नियमसार। समझ में आया ?

स्वयं ही वस्तु है न! वस्तु जगत में स्वयं है। पर है या नहीं, अपनी अपेक्षा से पर है ही नहीं। मैं ही एक हूँ। दूसरी चीज़ मेरी अपेक्षा से तो कोई है ही नहीं। ध्रुव की अपेक्षा से तो पर्याय ही नहीं है, वहाँ और परवस्तु तो होगी ही कहाँ ? ऐसी बात है। आहाहा! जगत में मेरा ही साम्राज्य है, मैं ही एक हूँ। मैं ध्रुव कैसा हूँ ? कि परवस्तुरहित तो हूँ और परवस्तु मेरी अपेक्षा से तो नहीं है। इस प्रकार मेरी चीज़ पर्यायरहित है और पर्याय की अपेक्षा से मैं नहीं हूँ। मेरी अपेक्षा से तो पर्याय भी नहीं है। मेरी अपेक्षा से त्रिकाल दूसरी चीज़ें हैं या नहीं ? (यह बात तो दूर रह गयी!) ऐसी बात है। सूक्ष्म है, धीरुभाई! आहाहा! थोड़ा अभ्यास चाहिए। ऊपर-ऊपर से यह पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। जगत में मैं एक ही हूँ। कहो, रतिभाई! क्योंकि मेरी पर्याय में एक समय में छह द्रव्य ज्ञात हो, ऐसी पर्याय भी प्रमाण के विषय की अपेक्षा से है परन्तु त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से वह पर्याय मुझमें नहीं है। तो उस पर्याय का विषय जो छहों द्रव्य, वे भी मुझमें नहीं है और मेरी अपेक्षा से पर्याय नहीं है तथा मेरी अपेक्षा से दूसरी चीज़ें भी नहीं है। आहाहा! ऐसा बहुत सूक्ष्म। दिगम्बर अर्थात् जैनधर्म। दिगम्बर तो नाम दिया है। जैनधर्म ही दिगम्बर धर्म, दिगम्बर धर्म वह जैनधर्म, विश्व धर्म। आत्मधर्म कहो, जैनधर्म कहो, विश्व धर्म कहो। इस अपेक्षा से, हों! विश्व के सब धर्म समान हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात!

एक समय का मेरा भगवान, कहते हैं कि वह सब उसकी पर्याय के भेद सब वर्तते हैं केवलज्ञान, मतिज्ञान, वह भले हो, परन्तु मुझमें नहीं है। आहाहा! मेरी अपेक्षा से वे पर्याय के भेद ही नहीं है। आहाहा! मेरी अपेक्षा से तो अनन्त वस्तुएँ ही नहीं हैं। कहो, समझ में आया? ऐसा सर्वस्व ध्रुवतत्त्व मैं हूँ। उसमें मेरा नमन, झुकाव, पूजन, भक्ति, उसकी भावना में मैं हूँ। ऐसा लोगों को भारी सूक्ष्म लगता है। लोगों को बाहर से... यह अन्तर क्या है, सुनते हुए (ऐसा लगता है) क्या बात कहते हैं यह? क्या कहते हैं यह? अनादि का अभ्यास नहीं और एक समय की प्रगट पर्याय की क्रीड़ा में अनादि से रमा है। उसकी सीमा ऐसी है। सीमा अर्थात्? उसकी मर्यादा, उसकी एक समय की पर्याय में यह अनादि से रमा है। उस पर्याय में अन्दर वस्तु है, उसमें आया नहीं।

वस्तु जो भगवान आत्मा नित्यानन्द, वही वास्तव में उसे आत्मा कहा है, उसे ही भूतार्थ और वही सत्यार्थ है। ऐसे सत्यार्थ की अपेक्षा से, पर्याय के सब भेद असत्य हैं। उसकी अपेक्षा से भले हों। आहाहा! समझ में आया? जगत में मैं एक ही वस्तु ज्ञायक ध्रुव हूँ। दूसरी चीज़ है या नहीं? मेरी अपेक्षा से नहीं तो फिर है या नहीं, उसका प्रश्न क्या? कहते हैं, आहाहा! जहाँ हो, वहाँ मेरी ज्ञानपर्याय भासित होती है। जगत को भासने पर जगत भासित नहीं होता; पर्याय भासित होती है। वह पर्याय मेरे द्रव्य में नहीं है। आहाहा! देखो तो सही तत्त्व! आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा में दो अंश। एक ध्रुव अंश, एक वर्तमान परिणमन बदलने का अंश। उस अंश में यह जगत पूरा अपने में अपने से ज्ञात होता है। यह है, इसलिए ज्ञात होता है, ऐसा नहीं। ऐसी जो पर्याय, जिसमें स्वतन्त्र उस काल में उसकी श्रुतज्ञान की पर्याय हो तो भी उसमें छह द्रव्य को जानने की ताकतवाली ही पर्याय है। एक अंश में छह द्रव्य तो अनन्त केवली भी एक अंश में ही ज्ञात हो जाते हैं, परन्तु उस अंश जितना मैं नहीं हूँ। आहाहा! उस अंश से रहित मेरी चीज़ है। क्या कहते हैं? समझ में आया? यह तो वीतराग का मार्ग है, भाई! समझ में आया? आहाहा! वीतराग का दरबार भराता होगा, समवसरण में केवली विराजते हैं। उन्हें कुछ सुनना नहीं है। सभा में केवली भी उनके स्थान में आते हैं। गणधर, तीन लोक के प्रिय बड़े इन्द्र, पूरे लोक के स्वामी-अर्द्धलोक के। आहाहा! उन वीतराग के मुख से जब दिव्यध्वनि खिरती होगी, उसके सुननेवाले कितने! उन्हें भगवान ने ऐसा कहा, भाई! तेरा जो त्रिकाली स्वरूप है न, उसमें तो हम भी नहीं हैं और हमें जानने की तेरी जो पर्याय है, वह उसमें नहीं है। धीरुभाई! यह ऐसा सूक्ष्म है। उस धन्धे-फन्दे में तो सब समझने जैसा होता है। आहाहा!

एक बार तू देख तो सही, सुन तो सही, बापू! तेरी समृद्धि। तेरी समृद्धि की ऋद्धि, तेरी सम्पदा... ओहोहो! एक समय में केवलज्ञान, एक समय में मति-श्रुतज्ञान और उसका सब स्वभाव इतना है, भले मति-श्रुत परोक्ष जाने, केवल(ज्ञान) प्रत्यक्ष जाने परन्तु जानने का प्रमाण है, वह कहीं असत्य नहीं है। आहाहा! श्रुतज्ञान की पर्याय में लोकालोक जाने, केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक जाने। दोनों की शक्ति तो इतनी है। ऐसी पर्याय कहते हैं कि हो, परन्तु वह मुझमें नहीं है परन्तु तू कौन? पर्याय तेरी नहीं? देखा?

मैं... आहाहा! इन सबसे सहित होने पर भी जो इन सबसे रहित **ऐसे इस जीवतत्त्व को...** देखा? कैसे तत्त्व को? ये पर्यायें, अवस्थायें होने पर भी, ऐसे जीवतत्त्व को कि जिसमें ये नहीं हैं। आहाहा! धर्म और उसका वीतरागी धर्म... आहाहा! अडिग धर्म। कहते हैं, **ऐसे इस जीवतत्त्व...** यह जीवतत्त्व कैसा? कि सभी पर्यायोंसहित होने पर भी यह जीवतत्त्व, उन सबसे रहित यह जीवतत्त्व है। इसे जीवतत्त्व कहना? भाषा देखो। समझ में आया? आहाहा! मेरा भगवान ऐसा है, कहते हैं कि वे सब पर्यायें मेरी दशा में हो, परन्तु मेरा तत्त्व जो है, मैं जीवतत्त्व, उसमें वे नहीं हैं। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं। पोपटभाई! यह बहुत सूक्ष्म है। समझ में आये उतना समझो। उसमें समयसार, नियमसार,... ओहोहो! केवलज्ञान के पथानुगामी की सब वाणी है।

पूरे लोक में यदि हो तो मैं एक जीवतत्त्व हूँ। वे सब पर्याय और पर्याय में ज्ञात होते तत्त्व, वे मुझमें नहीं हैं। आहाहा! **ऐसे इस जीवतत्त्व को...** इस तत्त्व को, मेरे इस तत्त्व को **मैं...** ऐसे तत्त्व को **सकल अर्थ की...** अर्थात् पूर्ण आनन्द की पर्याय की **सिद्धि के लिये सदा नमता हूँ,...**

श्रोता : द्रव्य या पर्याय.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य।

मैं सकल अर्थ की... यह पर्याय ऐसा कहती है। पर्याय ऐसा कहती है कि मैं, मैं यह हूँ। यह पर्याय कहती है कि मैं यह हूँ। उसे मैं पर्याय उसे नमती हूँ परन्तु मैं यह हूँ। आहाहा! भारी सूक्ष्म भाई! यह वह मात्र इच्छामि पडिक्कमणा... सामायिक करके बैठे। यह हो गयी सामायिक और हो गया प्रतिक्रमण। धूल में भी कहीं नहीं है। आहाहा!

ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिये... यह पर्याय ऐसा कहती है कि ऐसा जीवतत्त्व है, उस मैं **नमता हूँ,...** वहाँ मेरा ढलाव है, वहाँ मेरा झुकाव है, वहाँ मैं ढल गया हूँ। वहाँ मेरा वलण चुकता है। तुम्हारे वलण नहीं चुकाते? दूज के दिन। यह चैत्र

शुक्ल दूज का वलण है, ऐसा कहते हैं। उसका वलण। यह वलण मेरा यहाँ चुकता है, कहते हैं। मेरा चुकारा यहाँ होता है। समझ में आया?

ऐसे इस जीवतत्त्व को... ओहोहो! गजब बात की है! एक-एक कलश में भी अमृत कलश भरे हैं। भाई! तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं है। तू कितना, कहाँ, कैसा है? सर्वज्ञ की वाणी में भी तेरे पूरे कथन नहीं आये। समझ में आया? उन्होंने भी इशारा किया 'कह्या शास्त्र सुखदाई' आता है न? 'लक्ष थवाने तेहनु कह्या शास्त्र सुखदाई।' श्रीमद् में अन्त में आता है। वह सर्वज्ञ की वाणी भी यह लक्ष्य होने के लिये त्रिकाली शास्त्र कहे हैं। जो शास्त्र भी जहाँ... आनन्दघनजी में आता है 'शास्त्र दिशा दिखलाकर अलग रहते हैं।' मनुष्य ने पूछा, क्या महाराज? ऐ... ऐसा रहा। वह तो बताकर चला जाता है। बतानेवाला फिर साथ में होता है? वह फिर दो वाड़ के बीच में सिद्धपद का रास्ता निकलता है। उसमें सिद्धपद है न? यह उस ओर देख... चला जाए। हाथिया थोर की उसमें से रास्ता निकलता है। वहाँ से चले जाओ, सिद्धपद चले जाओ।

श्रोता : थोर में से रास्ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे वह दिशा बतलानी है। अन्यत्र आड़े-टेढ़े ऐसे मत निकलना, ऐसे मत निकलना, उसके बीच में से निकलना। समझ में आया? ऐसे छूना नहीं और ऐसे भी छूना नहीं। राग को छूना नहीं और पर्याय को छूना नहीं। बीच में से अन्दर चला जा। आहाहा!

अरे! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त कहाँ होगी? भाई! वह भी जैन दिगम्बर धर्म... आहाहा! सुनने को मिलता नहीं, वह बेचारा क्या करे? जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! यह अवतार नया अवतार नहीं होने के लिये अवतार (मिला है), उसमें अवतारहित की बातें नहीं मिलती। अरे! जन्म हुआ, वह अब नहीं जन्मने के लिये है। समझ में आया? भाई में एक शब्द है-सोगानी में। 'संग करते हैं, वह असंग होने के लिये है।' विचार है, वह अविचार होने के लिये विचार है। इसी प्रकार यह अवतार है, वह अवतारहित होने के लिये अवतार है। समझ में आया? उसमें अवतारहित की बातें, जो पर्याय अवतारहित हो, वह पर्याय भी द्रव्य में नहीं है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सिद्धि के लिये कहा न? सकल अर्थ की सिद्धि अर्थात् मुक्ति, जिसमें अवतार नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! गणधर भी उसकी महिमा पूरी नहीं कर सके। समझ में आया? भगवान की वाणी में भी जो ज्ञात हुआ, उससे अनन्तवें भाग आया। गणधरों ने वाणी सुनी, उसमें से बहुत अनन्तवें भाग उन्होंने पकड़ी। आहाहा! उन्होंने शास्त्र रचे वे तो... ओहोहो!

ऐसा अद्भूताद् अद्भुत जीवतत्त्व। समयसार में शब्द आता है न? पीछे आता है। अद्भूताद् अद्भूतं भगवान आत्मतत्त्व। ओहोहो! उसका चमत्कार और उसका आश्रय और उसकी विस्मयता की क्या बातें! ऐसे तत्त्व को मैं। मैं जीवतत्त्व हूँ। परन्तु वह पर्याय ऐसा जानती है। पर्याय ऐसा जानती है कि यह जीवतत्त्व। उसमें यह मैं पर्याय नहीं हूँ। आहाहा! कितनों को तो कबीर की वाणी जैसा लगे, सब अटपटा लगे। वस्तु ऐसी ही है, बापू! आहाहा! जिसके एक समय की पकड़ में अनन्त आनन्द का स्वाद आवे और जिसके पूर्ण में पूर्ण आनन्द का स्वाद आकर ऐसा का ऐसा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त काल की हद नहीं, ऐसा का ऐसा रहा करे। अरे! उसका उपाय कैसा होगा? और उस उपाय का ध्येय कैसा होगा? समझ में आया? उपाय, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और उसका ध्येय द्रव्य। समझ में आया? यह दुनिया के चक्रवर्ती के राज और इन्द्र के राज, जहाँ थोथा ज्ञात हो, सड़ा हुआ मुर्दा दिखायी दे। समझ में आया? ऐसी जिसकी पर्याय सर्वसिद्धि के लिये... परन्तु वह पर्याय भी उसमें नहीं। यह तो पहले कह गये न? परन्तु उसे प्रगट होने के लिये मैं इसे (आत्मस्वभाव को) नमन करता हूँ। समझ में आया? थोड़ा अभ्यास होवे तो (समझ में आये), भाई! यह तो कॉलेज है। एकड़ियावाला सीधा यहाँ आवे तो उसे लगे... आहाहा!

सदा नमता हूँ,... और सदा नमन करता हूँ। देखा! पर्याय में निरन्तर मेरा द्रव्य की ओर झुकाव है। वस्तु की ओर निरन्तर मेरा झुकाव है। आहाहा! उसकी भावना सदा कर। मेरी एकाग्रता सदा ही उसी में रहती है। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसा यह धर्म किसका होगा? वे कहते हैं, भाई! छह काय की दया पालो; वे कहे भगवान की भक्ति, पूजा, यात्रा, मन्दिर बनाओ। वे कहे वस्त्र छोड़कर नग्न होओ। यह और चौथा कहाँ से निकाला? उसमें यह है। क्यों प्रेमचन्दभाई! आहाहा! यह दशा जहाँ अन्दर स्वरूप का झुकाव होकर जहाँ चारित्र की उग्र दशा होती है, तब उसे वस्त्ररहित नग्नदशा (दिगम्बरदशा) हो जाती है। अन्दर में रूक्ष हो जाए, बाहर में वस्त्ररहित हो जाए। हो जाए, करे नहीं। करे कौन? आहाहा! समझ में आया? लो, यह १४वीं गाथा हुई। अब १५वीं गाथा। चन्दुभाई की उपस्थिति में यह आया। शीघ्रता से आया। आये देरी से परन्तु तीन दिन लेकर आये। क्यों अभी नहीं था... रविवार को तो था, आयेंगे ही... वह भी नहीं। घर में मेहमान आवे न। देह छोड़ने का समय हो और मेहमान आवे तो क्या होता होगा? कि भाई! तुम आये तब तक... आहाहा! ऐसे आत्मा का स्वकाल जहाँ आवे, वहाँ किसी की दरकार है नहीं।

१५वीं (गाथा)।

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा॥१५॥

इस व्यंजनपर्याय को विभाव में व्यंजनपर्याय ली है। शुद्ध व्यंजनपर्याय की बात इसमें नहीं ली है। व्यंजनपर्याय अशुद्ध को ही इसमें लिया है। बाकी शुद्ध की पर्याय व्यंजन शुद्धपर्याय है। परन्तु वह बात ली नहीं है। उसे अशुद्ध पर्याय नहीं, बस इतना कहा। व्यंजन अशुद्ध नहीं, इतना कहा। शुद्ध व्यंजनपर्याय है, ऐसा नहीं कहा। अर्थपर्याय में कहा। षड्-गुण हानि-वृद्धिवाला सिद्ध को भी है, प्रत्येक द्रव्य में है, छहों द्रव्य में है। आहाहा! नीचे (हरिगीत)

तिर्यंच, नारकी, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी।
पर्याय कर्मोपाधिवर्जित हैं कही स्वाभाविकी॥१५॥

लो, आज तीन यहाँ सामने हैं। नवरंगभाई, रतिभाई, और यह। राजकोट के प्रमुख अभी यहाँ हैं।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे यहाँ के कहलाते हैं। आहाहा! यह स्वार्थ के कारण बोलते हैं। हमारे राजकोट का करे, वे इसके हैं इसलिए करे, इसलिए बोलते हैं।

ओहो! यह कारणपर्याय की बात भी दिगम्बर मुनि के अतिरिक्त कहीं ३२-४५ (सूत्रों) में कहीं नहीं मिलती। इसमें भी इस एक जगह स्पष्ट बात है। यह वस्तु की स्थिति। समझ में आया?

टीका : यह स्वभावपर्यायों... शुद्ध **तथा विभावपर्यायों...** अशुद्ध। उसका यह **संक्षेप कथन है।** संक्षेप कथन है, थोड़ा कथन है। वास्तविकता का पार नहीं होता। **वहाँ, स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है :...** स्वाभाविक अवस्था... ऐसी पर्याय है न? अर्थात् पर्याय... से वहाँ कहा है न? **दो प्रकार से कही जाती है : कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय।** यह कारणशुद्धपर्याय की व्याख्या किसी श्वेताम्बर में नहीं, स्थानकवासी में नहीं, दिगम्बर में भी इसके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं। अन्यत्र होगी तो अपन निकाल सकते नहीं अर्थात् कि थोड़ा विचार किया था। ९०वीं गाथा में आता है न? कर्ताकर्म की। 'चूडा' में (संवत्) १९९९ के वर्ष। उसमें है, उसमें विचार किया था कि इसमें से कुछ निकलता है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : .....ऐई! छोटाभाई! तुम्हारे दरबार का। दरबार में उतरे थे न? तब विचार किया था। (संवत्) १९९९ के वर्ष की बात है। ९०वीं गाथा में आता है न! समयसार यहाँ क्यों नहीं रखा? मूल समयसार यहाँ इसमें नहीं है। यहाँ रखना चाहिए न? अन्दर से कुछ न कुछ याद आता है। यह है परन्तु.... ९०वीं गाथा है न! चन्दुभाई!

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता॥९०॥

उसमें से लिया है। '**तिविहो सुद्धो**' शुद्ध कहा है न? उसमें कहीं उपयोग शुद्ध है, उसमें कहीं पर्याय निकलती है कारण में? '**णिरंजणो भावो**' है न? त्रिकाल की बात है। पाठ में भी जरा ऐसा है न? **तीन मिथ्यादर्शन, अज्ञान, और अविरतिभावरूप परिणाम विकार के निमित्त (कारण से)-यद्यपि परमार्थ से तो उपयोग शुद्ध...** देखा? **उपयोग शुद्ध निरंजन अनादि निधन....** है न? वस्तु है। वहाँ से ऐसा आया था। उपयोग को ऐसा लिया है कि उपयोग शुद्ध है, निरंजन है, अनादि-अनन्त है। **वस्तु के सर्वस्वभूत...** यहाँ जरा अटका था। पर्याय में सर्वस्वभूत वहाँ आया। **सर्वस्वभूत चैतन्यमात्र भावरूप एक प्रकार का है...** उपयोग ऐसा त्रिकाल एक प्रकार का है। अनादि उपयोग को लिया। वह तो वहाँ भी उपयोग लिया था न? संवर में। उपयोग में उपयोग है, वहाँ तो शुद्ध पर्याय के आधार से आत्मा ज्ञात होता है, ऐसा लिया। यह तो उपयोग अनादि-अनन्त है और निरंजन है, शुद्ध है उपयोग। परन्तु उस वस्तु का अन्दर... भाव। **सर्वस्वभूत चैतन्यमात्र भावरूप...** ऐसा है न? सर्वस्वमात्र चैतन्यमात्र अर्थात् स्वभाव लेना। **एक प्रकार का है तो भी—अशुद्ध सांजन, अनेक भावरूप को प्राप्त करता हुआ।** पर्याय में अनेक होता है, वस्तु से इस प्रकार है। सूक्ष्म बात है। कल दोपहर को सूक्ष्म (बात) आयी थी।

कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय। स्वाभाविक पर्याय के दो भेद। विभाविक पर्याय के बाद में लेंगे। क्योंकि यह नियमसार है, वह मोक्षमार्ग की पर्याय का अधिकार है, इसलिए इसमें यह पर्याय डाली है। समझ में आया? और वह मुनिराज तो ऐसा कहते हैं कि इसकी टीका करनेवाले हम तो कौन! गणधरों से और परम्परा आचार्यों से चली आयी टीका है। है न प्रथम? पहले शुरुआत के कलश, देखो! **गुण के धारक गणधरों से रचित...** पाँचवाँ श्लोक है। **और श्रुतधरों की परम्परा से भले प्रकार व्यक्त किये इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन?** आहाहा! इसलिए यह कारणपर्याय की ऐसी व्याख्या **गुण के धारक गणधरों से रचित...** यह बात टीका है। रतनचन्दजी मान्य नहीं रखते

न ? कि नहीं, मुनि का नहीं। अरे ! भगवान ! यह तो गणधरों की...

श्रोता : मुनि होवे तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि क्या, अरे ! समकित होवे तो भी क्या ? वस्तु में कहीं अन्तर नहीं है। वह तो स्थिरता में अन्तर है। दृष्टि और दृष्टि का विषय और उसका जो ज्ञान और श्रद्धा सम्यक् तो सिद्ध जैसी है। तिर्यंच को सिद्ध जैसा समकित है। आहाहा ! सम्यक्त्व में कम-ज्यादा, ऐसा क्रम है कहीं ? चारित्र में क्रम होता है। ...यह तो एकरूप ही वस्तु है।

त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसमें रही हुई एक कारणपर्याय... आहाहा ! त्रिकाली वस्तु, वह कारणपरमात्मा और उसकी पर्याय का अंश है, वह कारणपर्याय, यह सब मिलकर उसे जीवतत्त्व कहा जाता है। जीव के अधिकार में यह बात आयी न ! यह जीव अधिकार है न ? वह भी गणधरों से रचित टीका। आहाहा ! जिस स्थान में चाहिए हो, वहाँ आया हो न ! मोक्षमार्ग की पर्याय। यह तो नियमसार है और यह आचार्य कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। उसमें वस्तु की बारम्बार एकाग्रता होती है। बारम्बार का अर्थ कि उसमें धारावाही एकाग्रता ही है। उसकी भावना के घोंटन में यह मैंने बनाया है। आहाहा ! दूसरे समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय में ऐसा शब्द नहीं है। निजभावना के लिये, मेरी भावना के लिये (बनाया है)। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे, मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो—तीसरे नम्बर पर आये। वे कहते हैं (कि) मेरी भावना के लिये मैंने यह बनाया है। आहाहा ! नियमसार प्राभृत। तीन में नहीं आया। परन्तु यह तो मन्दिर पर कलश चढ़ावे, ऐसा यह है। समझ में आया ? शुरुआत में लोगों को एकदम नया पड़ता है परन्तु अब तो यहाँ ३८-३८ वर्ष हो गये। यहाँ के लोगों को बारम्बार सुनने को मिले, उन्हें कहीं बहुत कठिन अब नहीं पड़ता। समझ में आया ?

यह कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय। अब कारणशुद्धपर्याय अर्थात् क्या ? **यहाँ सहज... स्वाभाविक शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त,...** आदि और अन्त रहित शुद्धनिश्चयनय से। वापस स्वाभाविक शुद्धनिश्चय से। केवलज्ञान आदि निश्चय है परन्तु सहज शुद्धनिश्चय नहीं। यह तो सहज शुद्धनिश्चय त्रिकाल। समझ में आया ? सहज शुद्ध वस्तु निश्चय कि जो अनादि-अनन्त है, अमूर्त है। भगवान आत्मा रंग, गन्ध, रस, स्पर्श रहित चीज़ है। सत्त्व है, सत् है, उसका सत्त्व पूरी चीज़। सत्वस्तु है, उसका स्वभाव सत्व पूरा जो है, वह सब अमूर्त है। द्रव्य और गुण सब अमूर्त है।

अतीन्द्रियस्वभाववाले... वह तो अतीन्द्रियस्वभाववाला पदार्थ है। आहाहा ! **और शुद्ध**

ऐसे... अतीन्द्रिय स्वभाववाले। यह ज्ञान-दर्शन कहेंगे न? **अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान...** शुद्ध ऐसा त्रिकाली स्वाभाविक ज्ञान, ध्रुव ज्ञान, नित्य ज्ञान। **शुद्ध ऐसे सहजज्ञान...** शुद्ध ऐसा **सहजदर्शन...** त्रिकाली। शुद्ध ऐसा **सहजचारित्र...** त्रिकाली। कहो, अब त्रिकाली चारित्र है, उसमें से प्रगट पर्याय हो, वह चारित्र सिद्ध में नहीं होता? सिद्ध को चारित्र नहीं, यह बड़ी चर्चा पण्डितों ने की है। कैलाशचन्दजी कहते हैं नहीं होता, दूसरे कहते हैं होता है।

श्रोता : वह तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरी बात है। नाम जो डाले हैं सामायिक, वह नहीं होते। वस्तु का स्वरूप चारित्र त्रिकाल है ऐसा का ऐसा। उसके आश्रय से प्रगट हुई पूर्ण दशा सिद्ध में पूर्ण चारित्र है। आहाहा! पण्डितों को ऐसा होता है न, बोलना होता है न, उसमें से वापिस मुड़ना भारी कठिन पड़ता है। मान जाता है... मान जाता है...

सहजचारित्र... त्रिकाल आत्मा में। द्रव्य स्वयं सहज चारित्र गुणवाला है। गुणस्वरूप है, गुणवाला भी नहीं। **सहज परमवीतराग सुखात्मक...** आहाहा! अनादि-अनन्त, अमूर्त शुद्ध स्वाभाविक परमवीतराग सुखस्वरूप उसका गुण है। स्वाभाविक परमवीतराग सुखस्वरूप। वीतराग परम सुखस्वरूप। यह दुनिया के कल्पित इन्द्रिय के सुख, वे तो दुःखरूप हैं, रागवाले हैं, जहर हैं। इन्द्रियों के विषय अकेले जहर। आहाहा! काले नाग मार डाले जिसे, वैसे यह विकार जहर है।

यह आत्मा जिसमें स्वभाविक परमवीतराग सुखस्वरूप। यह सब होकर **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** लो, मुख्य चार वस्तु ली। मुख्य चार लिये—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और आनन्द यहाँ अलग किया है? देखा? चारित्र को लेने पर भी आनन्द अलग किया।

आत्मा में अनादि-अनन्त अमूर्त शुद्ध स्वाभाविक वस्तु, ध्रुव त्रिकाल सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज चारित्र, सहज वीतराग, परम वीतराग वापस। स्वभाविक आत्मा में परम वीतराग सुखस्वरूप अन्दर गुण है। आहाहा! **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** शुद्ध अन्तःतत्त्व अन्तरभाव-स्वरूप। आत्मा में अन्तःतत्त्व भावस्वरूप। एकरूप ले लिया। वे चार लिये।

जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप... वह कैसा अन्तःतत्त्वस्वरूप?—कि जो स्वभाव अनन्त चतुष्टय। चार त्रिकाली स्वभाव अनन्त चार, उनका स्वरूप, ऐसे नित्यानन्द भगवान में ऐसे चार स्वभाव तत्त्व पड़े, वह सुखस्वरूप है। स्वाभाविक अनन्त चतुष्टय है। आहाहा! **उसके साथ की...** ऐसे पंचम पारिणामिकभाव, ऐसे स्वभाव अनन्त चतुष्टय का

स्वरूप, ऐसा जो स्वभावभाव, **उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति...** आहाहा! जिसका पूज्य भाव त्रिकाल, उसके साथ की पूजित पंचम भाव परिणति। **साथ की जो पूजित...** पूजनेयोग्य। **(-उसके साथ तन्मयरूप से...)** अनन्त चतुष्टय स्वभाव में तन्मय रही हुई। **(जो पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की...)** त्रिकाल जो पारिणामिकभाव, उसकी वह **(परिणति)...** अर्थात् ध्रुव पर्याय। समझ में आया? पंचम भाव, उसकी उत्पाद-व्ययरहित की परिणति। उसमें केवलज्ञान का उत्पाद हुआ और चार ज्ञान का नाश होना, वह उत्पाद-व्ययपना उसमें नहीं है। समझ में आया?

यह कैसे लिया है? क्यों इसमें है? धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल—चार पदार्थ अरूपी हैं न? धर्मास्ति, आकाश को द्रव्य से पारिणामिकभाव, गुण पारिणामिकभाव से, पर्याय पारिणामिकभाव से, परन्तु एक पर्याय उत्पाद-व्ययवाली एक धारावाही। आकाश में और धर्मास्ति में वह उत्पाद-व्ययवाली पर्याय एक सरीखी धारावाही, कम-अधिक-विकृत इससे भेदरहित। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। ऐसी धारावाही उत्पाद-व्ययवाली पर्याय आत्मा में तो नहीं है। क्योंकि संसार का भाव, वह अशुद्धभाव है। मोक्ष का मार्ग, वह किंचित् शुद्ध और किंचित् अशुद्ध, मोक्षमार्ग सादि-अनन्त पर्याय शुद्ध। इसलिए उत्पाद-व्यय में एक धारा नहीं रही। उसमें एक धारा है। इसमें उत्पाद-व्ययवाली एक धारा नहीं रही। तब उसमें कारणपर्याय जो त्रिकाल एक धारावाही है। समझ में आया? मार्ग ऐसा सूक्ष्म है न! बहुत शान्ति से, धीरज से समझनेयोग्य है। यह कहीं वार्ता नहीं है। आहाहा! यह तो भगवान की वार्ता।

जब आकाश नाम का पदार्थ है, जिसका अन्त नहीं, तो भी उसमें उत्पाद-व्ययवाली पर्याय तो अनादि-अनन्त एक सरीखी है। आकाश यहाँ है न? यहाँ उत्पाद-व्यय अन्दर है और ध्रुव भी है। पूरे आकाश में उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय पर्याय अनादि-अनन्त है, एक सरीखी है। आत्मद्रव्य भगवान जिसे जाननेवाला, वह है या नहीं? - उसे जाननेवाला तो आत्मा है। पाँच जड़ के अस्तित्व को जाना किसने? जगत में यह है, ऐसा जाना किसने? उसे तो खबर भी नहीं। समझ में आया? उसका जाननेवाला भगवान आत्मा, महाप्रभु, उसके उत्पाद-व्यय में एक सरीखी पर्याय क्यों नहीं? समझ में आया? उत्पाद-व्यय की एक सरीखी नहीं, तब ध्रुव के अन्दर एक सरीखी उत्पाद-व्ययरहित अनादि-अनन्त कारणपर्याय। समझ में आया? १९ गाथा में डाला है। नियमसार की १९वीं गाथा (तक) का व्याख्यान है। घर में पुस्तक होगी, भूल गये लगते हैं। यह १९वीं गाथा (तक) का व्याख्यान दिया है। (संवत्) २००० के वर्ष का न?

(-उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली...) ओहोहो ! पंचम भाव परिणति जो ध्रुवरूप कारणपर्याय। उपजने-विनशने बिना सदृशरूप, जैसा ध्रुव सदृश है, ऐसी उसकी पर्याय का अंश अनादि-अनन्त सदृश है। वह ध्रुव और कारणपर्याय मिलकर निश्चय का विषय एक होता है और उत्पाद-व्यय का विषय तो व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया ? यह सब भाषा... ऐसा मार्ग है। अरे ! जिसके केवलज्ञान में अनन्त सिद्ध, केवली ज्ञात हों, ऐसी पर्याय, वह प्रगट हुई नयी पर्याय भी सादि-अनन्त है। समझ में आया ? फिर भले सदृश-सरीखी रहे परन्तु सादि-अनन्त है। भगवान आत्मा में....

समुद्र का दृष्टान्त दिया था। है न वह... ? समुद्र है, उसमें पानी का दल ऐसा है। उसके ऊपर की जो धारा—सपाटी एक धारी। वह अंश है। वह त्रिकाली दल पारिणामिकभाव है और एक धारावाही सरीखी सपाटी, वह कारणपर्याय है। देखो ! सामने है। उस कौने में खिड़की के पास। पहले तो इसे १९वीं गाथा (तक के व्याख्यान की पुस्तक) में डालना था। परन्तु बड़ों को पूछा, वर्णीजी को... उन्हें नहीं बैठा। उन्हें नहीं बैठा तो बाहरवाले को क्या बैठे ? नहीं तो पुस्तक में नक्शा... है न, देखो न खिड़की के पास।

प्रत्येक गुण को कारणपर्याय है, ऐसा सिद्ध करना है। वस्तु, वस्तु का गुण, उसकी कारणपर्यायरूप ध्रुव, तीनों मिलकर निश्चयनय का विषय है। समझ में आया ? चार अजीव द्रव्यों में भी जब एक धारावाही पारिणामिकभाव की परिणति है, तो आत्मा में पारिणामिकभाव की एक धारावाही परिणति कौन सी ? उत्पाद-व्ययवाली तो एक धारा है नहीं। संसारमार्ग, बन्धमार्ग, मोक्षमार्ग और सिद्ध ये सब भंग पड़ गये। इससे वस्तु की स्थिति में ही एक पारिणामिकभाव की परिणतिरूप कारणपर्याय जो ध्रुव है, उसे कारणपर्याय कहते हैं। शीतलप्रसादजी ने इतना लिया (कि) जिसके मनन से कार्य हो, वह कारणपर्याय। इतना उन्होंने लिया। शीतलप्रसादजी ने अर्थ किया है न ?

समुद्र पूरा दल भरा है, उसकी ऊपर की सपाटी सरीखी होती है न ऐसी ? उसके ऊपर कम-अधिक ऐसे उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव चार (प्रगटते और विनशते हैं)। देखा है न ? है न यह ? यह ऊपर की लहरें। एक सरीखी लाईन, एक सरीखा दल। इसी प्रकार चैतन्य अनन्त गुण का दल एक सरीखा और ऊपर की पर्याय है, वह एक सरीखी ध्रुव और उसके ऊपर जो भाव है, उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव। यह तो बहुत सूक्ष्म है। यह पंचमभाव की परिणति। परिणति, तथापि उत्पाद-व्यय नहीं। वह परिणति उपशमभाव से नहीं, क्षायिकभाव से नहीं, क्षयोपशमभाव से नहीं; वह पारिणामिकभाव से है। **वही कारणशुद्धपर्याय है,...** उसे कारणशुद्धपर्याय है, ऐसा उसका अर्थ है, लो। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

१५

श्री नियमसार, गाथा-१५, प्रवचन - २८
दिनांक - ११-०३-१९७३

नियमसार, जीव अधिकार। १५ गाथा। टीका फिर से लेते हैं। कितने नये आये हैं न? तुम्हारे तो.... होता है न, सूक्ष्म अधिकार है।

टीका - यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है। इस गाथा में आत्मा जो वस्तु है, उसके त्रिकाली ज्ञान आदि अविनाशी अनन्त गुण हैं। इसलिए वस्तु जैसे आत्मा अविनाशी है, (वैसे उसके गुण भी अविनाशी हैं)। एकदम सूक्ष्म विषय है। **स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है : कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय।** स्पष्टीकरण करेंगे। कारणशुद्धपर्याय उसे कहते हैं कि जो वस्तु है, वह त्रिकाल द्रव्य और गुण, उसकी वर्तमान में उत्पाद-व्ययरहित जो पर्याय। समुद्र की सपाटी जैसे एक सरीखी होती है, वैसे भगवान आत्मा में यह द्रव्य और अनन्त गुण एकरूप सदृश त्रिकाल है। ....विषय है। उसकी पर्याय ध्रुवरूप पर्याय। उसमें उपजना-विनशना उसकी पर्याय का उसमें अभाव है। परन्तु है पर्याय, ध्रुवपर्याय, कारणपर्याय।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त। ....है इस प्रकार से। यह बात बाद में... पर्याय की आयेगी। समझ में आया? सूक्ष्म विषय है।

सम्यग्दर्शन का विषय जो त्रिकाली आत्मा और ऐसे त्रिकाली गुण और उनकी ध्रुव पर्याय-तीन मिलकर सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया? सागर का-समुद्र का दल होता है न, ऊपर सरीखी सपाटी होती है। वैसे आत्मा के अनन्त गुण, वह उसका दल और उसका एकरूप वह द्रव्य है। उस दल के ऊपर पर्याय का अंश कारण, कारणपर्याय त्रिकाल है। जिस कारणपर्याय के आश्रय से कार्यपर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? जैसे कि धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल—चार द्रव्यों का अस्तित्व। द्रव्य और गुण से तो वह पारिणामिकभाव से है परन्तु उनकी उत्पाद-व्यय की चार द्रव्यों की पर्याय ऐसी सरीखी, वह

पारिणामिकभाव से है। आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल, इन द्रव्यों की द्रव्य-गुण वस्तु तो पारिणामिक सहज स्वभावरूप है, वैसी उनकी उत्पाद-नयी अवस्था उपजे, पुरानी जाए— ऐसा उत्पाद-व्यय भी पारिणामिकभाव से एकरूप सदृश कायम एकरूप है। इसी तरह आत्मा में एकरूप पर्याय, उत्पाद-व्यय की नहीं है। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! कल आ गया है। परन्तु यह तो नये आये हैं न! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है।

आत्मा सर्वज्ञस्वभाव वस्तु स्वयं और सर्वज्ञ गुण, उसमें एक गुण की भी वर्तमान एक कारणपर्याय एक-एक गुण की है। उन सब गुणों का एकरूप कारणपर्याय ध्रुव है। जैसे चार द्रव्यों में उत्पाद-व्यय की एक सरीखी पर्याय है, वैसी इसमें पर्याय पूर्ण हो, तब अकेली निर्मल पर्याय (रहे)। वह तो भेद पड़ गया। इसमें एक धारावाहिक पर्याय नहीं आयी। सूक्ष्म है, भाई! ऐई! धीरुभाई! यह तो कॉलेज है। थोड़ा-बहुत सीखा हो फिर यह समझने में आवे। ऐसा मार्ग है, भाई! बहुत सूक्ष्म। जिसे कुछ अभ्यास ही नहीं कि अन्दर क्या आत्मा... इस देह के रजकणों से भिन्न चीज़। कर्म से भिन्न चीज़, पुण्य और पाप के विकल्प के राग से भिन्न चीज़, परन्तु उसके गुण और कारणपर्याय से भिन्न नहीं। समझ में आया? ऐसी जो त्रिकाल शुद्ध कारणपर्याय। पर्याय की ऊपर की सपाटी सरीखी है, इसी प्रकार वस्तु के ऊपर वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... है वह ध्रुव। परन्तु उसे वर्तमान पर्यायरूप से ध्रुव कारण ऐसी त्रिकाल है। एक सरीखी। जैसे पारिणामिकभाव से आकाश और धर्मास्ति के उपजने-विनशने की पर्याय एक सरीखी है, इसे (जीव को) एक सरीखी नहीं, तब इसे कारणपर्याय एक सरीखी है। ऐसा धर्म का स्वरूप है। दया पालने का कहे, व्रत पालने का कहे, भक्ति करने का कहे तो समझ में आये।

श्रोता : वह सरल लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान सरल लगता है। अनादि किया है न। आहाहा! यह तो इसकी जाति में भगवान स्वयं आत्मा साक्षात् भगवान है। वस्तुरूप से तो साक्षात् भगवान है, पर्यायरूप से भगवान साक्षात् वह कार्यपरमात्मा (कहा जाता है)। ऐसा जो यह भगवान आत्मा, इसकी कारणशुद्धपर्याय किसे कहना? यह व्याख्या है। समझ में आये, उतना समझना। पकड़ में आये, उतना पकड़ना।

यहाँ सहज शुद्ध निश्चय से,... सहज अर्थात् स्वभाविक शुद्ध निश्चय त्रिकाल। **अनादि-अनन्त,...** आदि नहीं, अन्त नहीं, ऐसा अनादि-अनन्त। वह इसमें जो है, उसका

वर्णन है। इसके घर में यह है, उसका यह वर्णन है। अब इसके घर की इसे खबर नहीं होती। पर की सब बातें। लोग नहीं कहते अपने कि घर की लड़का चक्की चाटे पड़ोसी को आटा। तुम्हारे में क्या कहते हैं ?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। कहावत तो सर्वत्र ऐसी ही होती है न ? इसी प्रकार स्वयं चीज़ सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा त्रिलोकनाथ जिसे आत्मा कहते हैं, वह कितना और कहाँ है और कैसे है ? उसकी खबर बिना उसे धर्म नहीं होता। धर्म करनेवाला आत्मा, अब आत्मा कितना और कैसा है - इसकी तो खबर नहीं होती। समझ में आया ? धर्म, वह तो पर्याय है। पर्याय किसमें होती है ? कौन उसे करे ? वह क्या चीज़ है ? इसकी जिसे खबर नहीं, उसे उसकी पर्याय का क्या कार्य आवे ? समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान आत्मा वस्तुरूप से अन्दर **सहज शुद्ध निश्चय से,...** शुद्ध निश्चय त्रिकाल **अनादि-अनन्त...** आदि नहीं, अन्त नहीं। है, उस वस्तु को शुरुआत क्या ? है, उस वस्तु का अन्त क्या ? है, वह वस्तु आदि और अन्तरहित वह चीज़ है। समझ में आया ? **अमूर्त...** है। भगवान आत्मा के गुण (अमूर्त है)। आत्मा अमूर्त और उसके गुण भी अमूर्त है। आत्मा शक्तिवान और उसमें कायम रहनेवाली शक्तियाँ अमूर्त हैं। शक्तिवान की सहज शक्ति उसे यहाँ सहज ज्ञान कहते हैं। त्रिकाल स्वभाविक ज्ञान, उसमें हीनाधिकता या परिणमना या बदलना उसमें नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

सहजज्ञान-सहजदर्शन-... उपयोग **सहजचारित्र-..** स्वभाविक वीतरागता आत्मा में त्रिकाल पड़ी है। जो दर्शन सहज कहा तो उसके आश्रय से दर्शन के उपयोग की पर्याय प्रगट होती है। वह प्रगट हो, वह तो उत्पाद-व्यय अर्थात् उपजती और विनशती है। वि-सदृश। जो सहज दर्शन वह सदृश त्रिकाल है। भाषा भी ऐसी। समझ में आया ?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे ? यह त्रिकाल उपयोग है। गुण त्रिकाल उपयोग। वर्तमान पर्याय नहीं। उपयोग त्रिकाल आ गया है न ? पहले आ गया है। सहज ज्ञान, स्वाभाविक ज्ञान-उपयोग अर्थात् शक्तिरूप त्रिकाल। व्यापाररूप वर्तमान नहीं।

सहजदर्शन... स्वाभाविक दृष्टापना। स्वाभाविक अर्थात् वह अनादि है। स्वाभाविक दर्शनोपयोगरूपी गुण-शक्ति त्रिकाल है। **सहजचारित्र...** सहज अर्थात् साथ में ही रहा हुआ।

द्रव्य के साथ में रहा हुआ स्वाभाविक चारित्र। स्वरूप में वीतरागता, वह तो त्रिकाली अन्दर में पड़ी है। समझ में आया? यह तो विषय ही एकदम सूक्ष्म है। बाहर के भंगभेद सीखें हों, उसे यह सब कठिन पड़ता है।... भाई!

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्होंने एक समय में... सवेरे कहा था। सर्व काल जाने। इसका अर्थ क्या हुआ? वर्तमान... और कारण से... जाने ऐसा है? सर्व काल अर्थात् ऐसी सभी पर्यायें जो छह द्रव्य का स्वकाल है, एक समय में विद्यमान सब है, ऐसा जाने। समझ में आया? ऐसी जो कार्य केवलज्ञान की पर्याय, उसका कारण जो अन्दर में सहज ज्ञानस्वभाव, वह है। और उसकी यह कारणपर्याय भी कार्यज्ञान का कारण है। यह भंगभेद बहुत सूक्ष्म कठिन है। यह कहे मुम्बई में ऐसा नहीं आता... ऐसा कहते हैं। मुम्बई में ऐसा कहाँ लगावे? यह तो अधिकार आया है, वह...

सहज परमवीतराग सुखात्मक... भगवान आत्मा में। आत्मा जैसे स्वभाविक वस्तु है। आदि-अन्तरहित अकृत्रिम अविनाशी, ऐसे उसके सहज वीतराग आनन्द सुखरूप अकृत्रिम अविनाशी सहज स्वभाव है। कहो, समझ में आया? स्वाभाविक परमवीतराग सुख। यह इन्द्रियों के विषयों में सुख की कल्पना, वह तो जहर है। समझ में आया? इस पैसे में, कीर्ति में, शरीर में... आहाहा! भोग में, खाने-पीने में जो मजा दिखता है, वह तो जहर है, दुःख है, आकुलता है, अमृत लुटकर वह आकुलता उत्पन्न होती है। यह तो आत्मा में सहज वीतराग आनन्द त्रिकाल है। समझ में आया? वस्तु जैसे त्रिकाल है, वैसे उसका सहजवीतरागसुखस्वरूप गुण भी त्रिकाली है। उसमें से आनन्द की दशा प्रगट होती है। समझ में आया? आनन्द के अर्थियों को, आनन्द के अर्थियों को सहजवीतरागसुखात्मकस्वरूप में से आनन्द उत्पन्न होता है। आनन्द के अर्थियों को। जिन्हें आनन्द का प्रयोजन है। समझ में आया?

ऐसा सहजवीतरागसुखस्वरूप। आत्मक अर्थात् (स्वरूप)। सहजपरमवीतराग... आहाहा! उसमें तो वीतरागता होती है, वह तो परमवीतराग, उसके गुण त्रिकाल हैं। परमवीतरागसुखस्वरूप ऐसा जो **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** ऐसा जो चतुष्टय का अन्तःतत्त्व, अन्तःभाव, अन्तर स्वभावस्वरूप। यह अटपटा जैसा लगे। तत्त्व का अभ्यास नहीं होता। यह बाहर के थोथा कर-करके मर गया। रतिभाई! वकीलों को भी ऐसा होगा या नहीं? सब बाहर का अभ्यास। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा की कॉलेज में तो यह चीज़ है। समझ में आया?

स्वाभाविक परमवीतरागसुखस्वरूप **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय...** त्रिकाल स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप **उसके साथ की...** उसके साथ रहनेवाली, उसके साथ रही हुई **जो पूजित...** पूजनेयोग्य **पंचम भावपरिणति...** त्रिकाली द्रव्य और त्रिकाली गुण, वह पंचम भाव है। सहज पंचम भाव। उदय, उपशम, क्षायिक, क्षयोपशम, वह पर्यायभाव है। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक, वह नहीं। यह तो त्रिकाली परमस्वभावभाव सहज वस्तु, बदले बिना की कूटस्थ चीज़, ऐसा जो पंचम पारिणामिक भगवान आत्मा का स्वभाव, उसकी परिणति, उसकी अवस्था, परन्तु यह उत्पादरहित अवस्था है। आहाहा! परिणति अर्थात् पंचम भाव त्रिकाल स्वभावभाव, उसके साथ वर्तमान में परिणति रही हुई, जो उपजना, विनशना, बदलना जिसमें नहीं है। सूक्ष्म है। छोटाभाई! यह सूक्ष्म है। गोंडल में ऐसा कहने लगे तो समझे कौन? जयभगवान! चलो!

मूल तत्त्व वस्तु पूरी सच्चिदानन्द प्रभु! आत्मा चित्चमत्कार भगवान आत्मा है, उसकी महिमा की जगत को खबर नहीं है। उसकी क्या महिमा है, वह चमत्कार कैसा है? जगत के चमत्कार की बाहर बातें सुनकर विस्मयता लगती है। अन्तर की चीज़ अन्दर भगवान आनन्द का नाथ पूर्ण सुखस्वरूप पंचम भाव... आहाहा! रागादि का उदयभाव, वह पर्यायभाव है। रागादि का सम्यग्दर्शन आदि उपशमभाव होता है, वह भी पर्याय अवस्था वर्तमान प्रगट भाव है। क्षायिक केवलज्ञानादि, वह भी प्रगट वर्तमान कार्य प्रगट है। क्षयोपशमभाव भी पर्यायरूप वर्तमान प्रगट है। वह नहीं। यह तो अप्रगट पर्याय में नहीं आया हुआ। इन चार पर्याय में। परन्तु कारणपर्याय में रहा हुआ है। ऐसा वह क्या होगा? आहाहा!

केवलज्ञानी परमात्मा, उसे 'क' बोलने में असंख्य समय जाते हैं, उसके एक समय में जिन्हें तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष भासित होते हैं। उस पर्याय का इतना सामर्थ्य है। समझ में आया? इतना ही उसका कार्यभाव, उसे ही ज्ञान कहा है। प्रवचनसार में नहीं आता, भाई! उसे ज्ञान कहते हैं। नहीं तो ज्ञान क्या? दिव्यज्ञान को ज्ञान कहते हैं, ऐसा कहते हैं। उसे ज्ञान क्या (कहते हैं)? ज्ञान ही नहीं है ऐसा कहा है। दिव्यज्ञान जिसका ज्ञानस्वभाव कार्यरूप... आहाहा! जिसके 'अ' बोलने में असंख्य समय जाते हैं। उसका एक समय का भाग, एक समय में तीन काल के... तीन काल के... ज्ञात हो जायें, ऐसा तो उसका कार्यज्ञान—केवलज्ञान है। उस केवलज्ञान का कारण तो अन्दर, पारिणामिकभाव की अन्दर परिणति... नजदीक चलती जाती है। शक्ति है ऐसे ध्रुव। वह भी ध्रुव परन्तु नजदीक ऐसे। उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है। कहो, जयन्तीभाई! यह तुम्हारा रविवार आया है। आहाहा! समझ में

आये, उतना समझो। पकड़ में आये ऐसा है। भाषा ऐसी कोई सूक्ष्म नहीं, भाव भले सूक्ष्म हो परन्तु भाषा में तो सादी बात आती है। आहाहा!

तू है या नहीं? है तो कब का है? है, उसकी उत्पत्ति होती है? है, उसका नाश होता है? है, वह शक्ति से खाली होता है? शक्ति कहो या गुण कहो या स्वभाव कहो। ऐसा जो भगवान, **अनन्त चतुष्टय का स्वरूप उसके साथ की...** चार को मुख्य किया। **पंचम भावपरिणति...** पंचम भाव की अवस्था। ऐसी अवस्था और उत्पाद-व्यय नहीं। कहलाती है, ध्रुव त्रिकाल की अवस्था है, द्रव्य नहीं। अवस्था अर्थात् अवस्थ। निश्चय से रहा हुआ। अवस्थ आता है न? द्रव्य, गुण को अवस्थ कहते हैं। अवस्थ अर्थात् रहा हुआ। निश्चय से ऐसे रहा हुआ। यह परिणति उसकी है, वह भी निश्चय से रही हुई है, परन्तु ध्रुव है। समझ में आया?

(-उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली...) ऐसा है न? **जो पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति) वही कारणशुद्धपर्याय है,...** भारी सूक्ष्म, भाई! इस १५वीं गाथा के अतिरिक्त ऐसा स्पष्ट अर्थ अन्यत्र कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में और अन्य मत में तो यह बात है ही नहीं परन्तु दिगम्बर में इस जगह के अलावा दूसरी जगह नहीं है। कही होगी परन्तु अपन निकाल नहीं सकते। कहो, समझ में आया? इस जगह स्पष्ट है। आहाहा!

तू कितना है? कहाँ है? कैसे है? उसकी यह बात है। आहाहा! घर के नलिया कितने होते हैं, उसकी खबर होती है। खिड़की के लिये कितने इंच के सरिया लाये थे, बाहर की खिड़की के लिये और अन्दर की खिड़की के लिये, अन्दर की खिड़की के लिये पतले सरिया, बाहर के लिये चोर जला न दे, यह इसे खबर होती है कि इतने इंच के ऐसे हैं, यह ऐसा है। धूल-धाणी। उसके इस ओर के तथा इस ओर के मंजिल की सीढ़ियाँ कितनी होती हैं, उसकी खबर होती है। वह जरा छोटी सी सीढ़ियाँ है, यह बड़ी है, उसमें चौदह सोपान हैं, इसमें दस सोपान हैं। एक सीढ़ियाँ झुकी हुई सात है और दो फिर ऐसी है और फिर सात ऐसे गयी है। धूल की सब खबर है। तुझमें क्या है, वह कौन है, कैसा है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! दरकार नहीं। सेठियाओं ने दरकार नहीं की? बात सत्य है। थी कहाँ? आहाहा! लो। ....

वही कारणशुद्धपर्याय है, ऐसा अर्थ है। स्वभावपर्याय के दो भेद—एक कारणस्वभावपर्याय, एक कार्यस्वभावपर्याय। कारणस्वभावपर्याय की यह व्याख्या है। भगवान

आत्मा... परन्तु उसे भगवान कहने से इसे ऐसा लगता है कि हाय... हाय... बापू! पामर तो तूने मानी हुई बात है, तूने मानी हुई बात है, पामर नहीं है। पूर्ण प्रभु है। आहाहा! प्रत्येक शक्ति से प्रभु और सामर्थ्यवाली शक्ति है। वहाँ नहीं आता? आता है न? प्रभुत्व पूर्ण शक्ति को प्रगट की नहीं, इसलिए ऐसा है। आता है। प्रभुत्वशक्ति। नियमसार में कलश में... मेरी प्रभुत्वशक्ति को पूर्ण प्रगट नहीं की, इसलिए अन्दर में रागादि दिखते हैं, अपूर्णदशा है। कर्म के कारण नहीं, समझ में आया? कर्म तो दूसरा परद्रव्य है। मेरी प्रभुत्वशक्ति का आश्रय का अवलम्बन मेरा थोड़ा है, इसलिए अन्दर पर्याय में अपूर्णता रह गयी है। प्रभुत्वशक्ति का पूर्ण आश्रय करके प्रगट करता हूँ—उसमें अपूर्णता नहीं रहती। वे तो डालते हैं कर्म के कारण यह होता है... कर्म के कारण यह होता है। मार डाला। जैन में कर्म, दूसरों में ईश्वर प्रधान। ईश्वर करे, वह होता है। ईश्वर के बिना पत्ता नहीं हिलता। यह कहता है कर्म के बिना नहीं होता। इसका ईश्वर कर्म हो गया। उनका ईश्वर चैतन्य।

श्रोता : दोनों एक...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। इसमें अन्तर है। उनका ईश्वर चेतन और इसे जड़ ईश्वर। कर्म ही राजा, कर्म ही रंक, कर्म ने डाला आडा अंक, ऐसा बोलता है। पहली स्तुति बोले न? वह यह। पाँच-दस मिनिट बोलते हैं न?...

वही कारणशुद्धपर्याय है,... ऐसे जोर दिया है। वह त्रिकाली परमपारिणामिकभाव सहजस्वरूप आत्मा, वह अनन्त चतुष्टयस्वरूप जो आत्मा, उसके साथ में वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान रही हुई वही कारणशुद्धपर्याय, उसे कारणपर्याय कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा घर में है और घर की खबर नहीं होती तथा सन्त उत्तराधिकार छोड़ गये हैं, वह उत्तराधिकार लेने की गरज नहीं होती। पिता पाँच-पचास हजार, लाख, दो लाख छोड़ गया। मर गया होगा तो तुरन्त... उठावे वहाँ से। फिर मुर्दा बाहर निकाले। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्त उत्तराधिकार छोड़ गये हैं। भाई! तेरी ऋद्धि का पार नहीं है। जगत की ऋद्धि चक्रवर्ती की और तीर्थंकर की... यह तो ऋद्धि का-समृद्धि का समुद्र भगवान। अरूपी महासागर। भगवान अरूपी महासागर, अनन्त गुण से डोलायमान, उसके साथ की वर्तमान पर्याय ध्रुव की, जिसके अवलम्बन से ज्ञान, दर्शन, आनन्द का जो कार्य होता है, उस परिणति को कारणपर्याय कहा जाता है। **ऐसा अर्थ है।** लो! यह अन्तिम लाईन। अमृतचन्द्राचार्य का है न? ऐसा उसका अर्थ है। प्रत्येक चारित्र उसका अर्थ है, अमुक ऐसा है। स्वरूप में चरना चारित्र है। लो, यह कारणपर्याय की व्याख्या हुई।

समुद्र का दृष्टान्त उस दिन दिया था। जैसे समुद्र है, उस समुद्र के ऊपर की एकरूप सपाटी, वह कारणपर्याय—पूरा वह गुण और द्रव्य तथा ऊपर का जो ऐसा राग की, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की लहरें आती हैं, वे उत्पाद-व्ययवाली पर्यायें हैं। समझ में आया? लो यह तो तुम्हारे डबल सुनने में आया। इन नयों को और... आहाहा! ....है। केवलियों का उत्तराधिकार लेनेवाले ये हैं। यह उत्तराधिकार जगत को देते हैं। लेना हो, वह ले। आहाहा! यह तो कहे, यह करना, तप करना, व्रत करना, भक्ति करना, पूजा करना—यह सब तो विकल्प है और राग है। अशुभ से बचने को ऐसा राग होता है, परन्तु वह वस्तु नहीं, धर्म नहीं, धर्म का कारण नहीं। धर्म का कारण तो यह त्रिकाली द्रव्य, गुण और यह कारणपर्याय है। समझ में आया? **ऐसा अर्थ है।** लो! कारणस्वभावपर्याय का अस्तित्व कैसा है, कहाँ, किस प्रकार से है, उस प्रकार से वर्णन किया।

अब, कार्यशुद्धपर्याय। अब उत्पन्न हुई नयी दशा, उसे यहाँ कार्यशुद्धपर्याय कहते हैं। अरिहन्त भगवान को केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि जो प्रगट होते हैं न, वह सब कार्य है। कार्य अर्थात् पर्याय प्रगट हुई। कारण में पर्याय प्रगट नहीं, ध्रुवरूप है, प्रगट पर्यायरूप नहीं। यह कार्यपर्याय कैसी है? **सादि...** उत्पन्न होती है। क्योंकि केवलज्ञान, वह अनादि की पर्याय नहीं है। वह कारणपर्याय तो अनादि-अनन्त है। समझ में आया? और उसके गुण भी अनादि-अनन्त है और भगवान आत्मा स्वयं भी अनादि-अनन्त है। यह जो है, वह तो सादि होती है। सादि अर्थात् आदि। सादि अर्थात् आदिसहित। स-आदि, आदिसहित। सादि अर्थात् वह विवाह करना, वह यहाँ नहीं। स-आदि। विवाह हुआ, यहाँ ऐसा नहीं कहना है। यहाँ तो स-आदि। आदिसहित ऐसा। आहाहा! केवलज्ञान जो आनन्दसहित प्रगट होता है, उसकी आदि है। केवलज्ञान की पर्याय कहीं अनादि की नहीं है। समझ में आया? उत्पन्न होती है, उत्पाद है। उत्पाद है अर्थात् वहाँ आनन्द का उत्पाद है। आहाहा! वह सादि है परन्तु अनन्त काल रहती है। उत्पन्न होती है, परन्तु ऐसी की ऐसी। वह की वह भले नहीं परन्तु वैसी की वैसी अनन्त काल रहती है। केवलज्ञान की पर्याय, वह दूसरे समय वह नहीं होती, परन्तु वैसी होती है। वह नहीं परन्तु वैसी होती है। आहाहा! इसलिए उसे ऐसी की ऐसी वैसी रहती है, इसलिए अनन्त काल रहेगी, ऐसा कहने में आता है। वह सादि-अनन्त है। भगवान आत्मा अनादि-अनन्त है, उसके गुण अनादि-अनन्त है, वह कारणपर्याय अनादि-अनन्त है, यह कार्य केवलज्ञान सादि-अनन्त है। समझ में आया?

सादि-अनन्त... उसमें अनादि-अनन्त था। उसे अमूर्त, उसमें भी कहा था, यह भी

अमूर्त है। उसमें सहज शुद्ध निश्चयनय से कहा था। यह निश्चय नहीं, यह व्यवहार है। व्यवहार है न ? 'आतमराम अविनाशी।' उसकी पर्याय विनाशी, गुण अविनाशी, वस्तु अविनाशी। उस अविनाशी के आशय से जो केवलज्ञान प्रगट होता है, उसे कार्यशुद्धपर्याय कहा जाता है। शुद्धकार्य लेना है न यहाँ ? त्रिकाली द्रव्य, गुण, पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, परन्तु वह भी अभी पूर्ण नहीं है। इसलिए उसे अशुद्ध कहने में आता है। पूर्ण नहीं है, उसे अशुद्धपर्याय कहने में आता है। यहाँ तो पूर्ण शुद्धपर्याय को कार्यशुद्धपर्याय कहा जाता है।

अतीन्द्रियस्वभाववाले... है वह केवली का अतीन्द्रिय स्वभाव। इन्द्रिय और विकल्प से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। अतीन्द्रिय स्वभाववाले, परन्तु है शुद्धसद्भूतव्यवहार, उसकी पर्याय है। आहाहा! समझ में आया ? **शुद्ध...** अर्थात् पवित्र है। **सद्भूत...** अर्थात् अस्ति धराता है और **व्यवहार...** अर्थात् एक अंश है, इसलिए (व्यवहार)। त्रिकाली भगवान आत्मा, उसका त्रिकाली गुण और त्रिकाली कारणपर्याय, वह तो निश्चय है और उसके आश्रय से, नहीं थी और प्रगट हुई, इसलिए उसे **सादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले...** वह तो अतीन्द्रिय स्वभाव तो उसको भी कहा था। परन्तु उसे सहज निश्चय त्रिकाल कहा। यह शुद्धसद्भूतव्यवहार (कहा)। आहाहा! वह कार्य केवलज्ञान शुद्ध है। पवित्र है, इसलिए शुद्ध है। अस्ति धराता है, अस्ति है, उसमें है, इसलिए सद्भूत है। रागादि तो असद्भूत है। यह सद्भूत है। अंश है, इसलिए त्रिकाली की अपेक्षा से व्यवहार है। समझ में आया ?

शुद्ध सद्भूतव्यवहार से, केवलज्ञान-केवलदर्शन-... आहाहा! **केवलसुख-केवलशक्ति...** वीर्य। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य। उसे केवल-केवल शब्द प्रयोग किया है। **केवलज्ञान-...** अकेला ज्ञान। **केवलदर्शन-केवलसुख-...** पर्याय में, वर्तमान अवस्था में अकेला आनन्द। भगवान आत्मा को केवलज्ञानी को अनन्त आनन्द का अनुभव है। समझ में आया ? उन केवली को शरीर में क्षुधा लगे, दुःख हो, तृषा लगे, रोग हो, दवा ले, ऐसा केवली को नहीं होता। समझ में आया ? केवल एक आनन्दस्वरूप ही है।

केवलशक्ति... अकेला वीर्य। अनन्त गुण की पर्याय को रचने का अकेला वीर्य, पूर्ण वीर्य प्रगट हुआ। वीर्य अर्थात् बल। आत्मबल जिसे कार्यरूप पूर्ण प्रगट हुआ। समझ में आया ? वह **फलरूप...** अनन्त चतुष्टय के साथ फल है न ? मोक्षमार्ग का फल है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्षमार्ग। यह नियमसार है न ? ऐसा त्रिकाली भगवान आत्मा, उसके अस्तित्व का अन्तर्मुख होकर प्रतीति, अनुभव होकर प्रतीति, ऐसी चीज़ का भान होकर

प्रतीति (होना), उसका नाम सम्यग्दर्शन। ऐसे त्रिकाली अनन्त गुण आदि पर्याय, उसके सन्मुख होकर ज्ञान का वेदन, स्वसंवेदन, स्व-अपना, सं-प्रत्यक्ष, वेदन-ज्ञान का (होवे), उसका नाम ज्ञान और उस स्वरूप में रमणता, स्थिरता, जमवट (होना), इसका नाम चारित्र है। ऐसा जो मोक्षमार्ग, उसका यह फल है।

केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल सुख, केवल वीर्य, यह **फलरूप...** फला, फला। फल आया। **अनन्त चतुष्टय...** वह अनन्त चतुष्टय चार है न? उसे केवल—केवल कहा, उसे यहाँ अनन्त चतुष्टय शब्द प्रयोग किया। अनन्त—केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य। ऐसी **अनन्त चतुष्टय के साथ की...** अर्थात् उसकी एकरूप पर्याय। **(अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रहनेवाली) जो परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की...** परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव। क्षायिकभाव तो चौथे, पाँचवें, (गुणस्थान में) होता है। परन्तु यह तो **परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव...** केवलज्ञान क्षायिकभाव से है। त्रिकाली द्रव्य, गुण और कारणपर्याय, वह पारिणामिकभाव से है। समझ में आया?

परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव... है यह पर्याय। वर्तमान प्रगट दशा। उसकी **शुद्धपरिणति...** अर्थात् एकरूप दशा। अनन्त चतुष्टय की प्रगट एकरूप दशा **वही कार्यशुद्धपर्याय है।** लो, समझ में आया? **वही कार्यशुद्धपर्याय है।** अस्ति है। भगवान आत्मा में द्रव्य, गुण और कारणपर्याय अस्ति है, उसके आश्रय से प्रगट हुई अनन्त चतुष्टय के साथ की पर्याय भी अस्ति है, मौजूदगीरूप है। नीचे स्पष्टीकरण किया है।

सहजज्ञानादि स्वभाव-अनन्त चतुष्टययुक्त... युक्त अर्थात् सहित। त्रिकाल स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक वीर्य आदि। वह अनन्त चतुष्टयसहित—युक्त / सहित **कारणशुद्धपर्याय में से...** जो कारणशुद्ध दशा त्रिकाल, उसमें से **केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टययुक्त...** केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि अनन्त चतुष्टयपने को **अनन्त चतुष्टययुक्त कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है।** यह केवलज्ञान और केवलदर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य, यह त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से प्रगट होते हैं अथवा उस कारणपर्याय के आश्रय से प्रगट होते हैं।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो वह का वही है। प्रगट हुई वह तो प्रगट है, ऐसा बताया। परन्तु उसका आश्रय लिया, उसका आश्रय लिया।

श्रोता : स्वयं परिणमी इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमी, परन्तु आश्रय लिया, तब परिणमी न ? वह परिणमी कब ? उसके ऊपर—सन्मुख दशा की तब। सन्मुख की, तब आश्रय हुआ, तब पर्याय हुई। वह सन्मुख किया, वही पर्याय हुई।

कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है। कारणशुद्धपर्याय में से। शीतलप्रसादजी ने मनन कहा है न ? शीतलप्रसाद, कारणशुद्धपर्याय का मनन, वह कार्यशुद्धपर्याय का कारण। **पूजनीय परमपारिणामिकभावपरिणति...** पूजनेयोग्य जो **परमपारिणामिकभावपरिणति...** वह कारणशुद्धपर्याय पूजनेयोग्य है, कहते हैं। आदर करनेयोग्य है, शरण लेनेयोग्य है। आहाहा ! समझ में आया ? अनन्त गुण का दल ऐसा जो द्रव्य, उसकी जो कारणपर्याय ध्रुव... ध्रुव..., वह पूजनीय है। उसके नजदीक की पर्याय, उसका आश्रय करने से कार्य प्रगट होता है। उस कारणपरमात्मा के साथ यह कारणपर्याय भी होती है। भारी, भाई ! भारी नहीं, हों ! है तो हल्की। ऐसी सूक्ष्म बात तो कितनों ने सुनी भी नहीं होगी।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित होकर सुनी भी नहीं होगी ? यह संस्कृत के प्रोफेसर हैं। जयपुर (के हैं)। नरम, नरम हैं। आहाहा ! बापू ! ऐसी बातें कहाँ हैं ? भाई ! ....करके बैठ गये। ओहो ! एक-एक श्वास में निगोद के अठारह भव। भाई ! तू कर चुका है, तुझे खबर नहीं है और माता के गर्भ में सवा नौ महीने उल्टे सिर। पैर ऊँचे, सिर नीचा। आहाहा ! तू भूल गया। उसमें गरीब घर में अवतार, और एक... आता है, खाने को हलुवा नहीं होता... आहाहा ! पलंग सोने के लिये ठीक नहीं हो, जमीन में... नीचे करे। आहाहा ! ऐसा का ऐसा खड़ा होकर उसे देखो, यह दशा। ऐसे अवतार अनन्त किये बापू ! महाप्रभु विराजता है, उसके सन्मुख तूने देखा नहीं। समझ में आया ?

वीतराग की वाणी में भी जिसका पूरा पड़े नहीं, ऐसी जिसकी माहात्म्यदशा ! ऐसा जिसका त्रिकाली स्वरूप। अरे ! ऐसा विराजता है। विद्यमान शक्ति को भी विद्यमानरूप माना नहीं। आहाहा ! अविद्यमान को विद्यमान मानकर विद्यमान को भूल गया। बाकी क्रियाकाण्ड करने में तो बाकी रखा नहीं। यह पुण्य के भाव अनन्त बार किये। थोथा मिले और भटके। पुण्य बहुत होवे तो यह स्वर्ग का देव हो। या तो यह धूल का धनी यह पैसेवाले कहलाते हैं न ? ऐई ! पोपटभाई ! करोड़ोंपति और अरबोंपति ये धूल के धनी हैं। ये चैतन्य के धनी नहीं हैं।

तू परमानन्द के पाट पर कभी बैठा नहीं, भाई! राग और पुण्य और पाप के पाट पर बैठकर भटककर मर गया। भगवान पुकार करते हैं। प्रभु! तू इतना है और उसके सन्मुख देखता क्यों नहीं? समझ में आया? भगवान केवलज्ञानी का पुकार है। आहाहा! प्रभु! तेरी पूर्ण प्रभुता अन्दर पड़ी है न! तुझमें क्या कमी है? क्या विपरीतता है? पूर्ण अविपरीतता का स्वरूप है। अरे! तूने सुना नहीं, तूने गिना नहीं, तूने गणना में लिया नहीं। धीरुभाई! यहाँ तो ऐसी बात है। आहाहा!

कहते हैं **पूजनीय परमपारिणामिकभावपरिणति वह कारणशुद्धपर्याय है और शुद्ध क्षायिकभावपरिणति वह कार्यशुद्धपर्याय है।** कहो, समझ में आया? भगवान ने भगवान को देखा नहीं। भगवान आत्मा ने भगवान को देखा नहीं। पामरता, पुण्य-पाप के फल में रुचि और यह मेरा। ....ठीक होवे वह... कहो, और ठीक नहीं, वहाँ तेरा आवास पूरा हो गया। आहाहा! आता है न? निर्जरा में। यह रहने का धाम प्रभु! यह तेरा नहीं। यह निर्जरा अधिकार में आयेगा। पुण्य और पाप के भाव वे बापू! तेरे रहने के स्थान नहीं हैं। तेरा रहने का स्थान तो अन्दर बड़ा पड़ा है। पूर्ण आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है। वह तेरे लिये रहने का स्थान है। रहने का स्थान वह है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें कहाँ हैं? यह बात सुनकर अन्दर में उल्लास आता है। ओहो! यह बात तो रह गयी। जो थी, वह रह गयी और नहीं थी, उसे कल्पित कर लिया। आहाहा!

कहते हैं, ऐसे जो **अनन्त चतुष्टय के साथ की जो परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति वही कार्यशुद्धपर्याय है।** देखो! स्वभाव कार्यपर्याय के दो भेद वर्णन किये। स्वभाव कारणपर्याय और कार्यपर्याय—ऐसे स्वभावपर्याय के भेद वर्णन किये। अब विभावपर्याय की बात रह गयी। समझ में आया?

अथवा... अब जरा कहते हैं। यह कारणपर्याय भी शुद्धकारणपर्याय में कही जाती है। **पूर्व सूत्र में कहे हुए सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से,...** सूक्ष्म अर्थात् बारीक, ऋजु अर्थात् वर्तमान। वर्तमान पर्याय में **छह द्रव्यों को साधारण और सूक्ष्म ऐसी वे अर्थपर्यायें...** छहों द्रव्यों में एक समय की पर्याय में षड्गुण हानि-वृद्धि का परिणमन है, उसे भी स्वभावपर्याय कहा जाता है। **वे अर्थपर्यायें शुद्ध जानना...** लो। **(अर्थात् वे अर्थपर्यायें ही शुद्धपर्यायें हैं।)** वह अर्थपर्याय है। अशुद्धपर्याय को व्यंजनपर्याय में डालेंगे। इसे शुद्धपर्याय कहा। व्यंजनपर्याय को शुद्ध की व्याख्या में नहीं लिया। अशुद्ध को व्यंजनपर्याय कहा। आत्मा के प्रदेश की आकृति विभाव। सूक्ष्म बात है। बाद में आयेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१६ **श्री समयसार, श्लोक - १२५, गाथा-१८१ से १८३, प्रवचन - २५७**
दिनांक - १९-०६-१९७९

(समयसार, १२४ कलश का) भावार्थ। अन्तिम दो लाईनें हैं न? **रंगभूमि में आस्रव का स्वाँग आया था उसे...** पहिचान कर हटाया, यह बात है। उसमें कुछ विशेष दूसरी बात नहीं है। मिथ्यात्व आदि आस्रव रंगभूमि में आये थे, उन्हें ज्ञान ने देख लिया। ज्ञान ने (देखा कि) मैं तो चैतन्य हूँ, पूर्ण आनन्द हूँ-ऐसे भाव द्वारा उस आस्रव को जीत लिया। आस्रव का नाश किया। यह है, ऐसा। पूरे आस्रव अधिकार का, आस्रव का स्वांग आया था। ऐसा, नाटक की भाँति इसमें कहा है न! **रंगभूमि में आस्रव का स्वाँग आया था, उसे ज्ञान ने उसके यथार्थ स्वरूप में जान लिया...** जो शुभ-अशुभभावादि आस्रव है, वह स्वभाव से भिन्न जाति है। स्वभाव है, वह शुद्ध चैतन्य है—ऐसा जानकर, उस स्वांग को जिसने दूर किया। स्वरूप में स्थिर होकर उस अस्थिरता का नाश किया। **इसलिए वह बाहर निकल गया।** इसीलिए आस्रव रंगभूमि में आया था, वह निकल गया।

अब इसके उस (अर्थ का) कलश

योग कषाय मिथ्यात्व असंयम आस्रव द्रव्यत आगम गाये,
राग विरोध विमोह विभाव अज्ञानमयी यह भाव जताये;
जे मुनिराज करैं इनि पाल सुरिद्धि समाज लये सिव थाये,
काय नवाय नमूं चित लाय कहूं जय पाय लहूँ मन भाये।।

हिन्दी में संक्षिप्त किया। **योग कषाय मिथ्यात्व असंयम आस्रव..** यह द्रव्यत्व है। जड़, जड़ पूर्व के (बाँधे हुए हैं।) **द्रव्यत आगम गाये,..** पूर्व के (कर्म) सत्ता में पड़े हैं। **राग विरोध विमोह विभाव अज्ञानमयी यह भाव..** ये भावास्रव। वे पूर्व के पड़े हैं, वे जड़ आस्रव (कहे)। वे कहीं बंध का कारण नहीं है। राग और विरोध अर्थात् द्वेष, विमोह अर्थात् मिथ्यात्व। ऐसा विभाव अज्ञानमय। अज्ञानमय जो भाव **यह भाव जताये;..** यह भावास्रव बतलाये।

जे मुनिराज करैं इनि पाल... जो मुनिराज अपना पालन (अर्थात्) स्वरूप की स्थिरता करे, **सुरिद्धि समाज...** (अर्थात्) अतीन्द्रिय आनन्द की ऋद्धिरूपी अपना समाज। **लये सिव थाये,...** वह अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति को पाकर मुक्ति को प्राप्त करे। **काय नवाय...** पण्डित जयचन्दजी स्वयं कहते हैं। हिन्दी टीकाकार! **काय नवाय...** मैं काया से उन्हें नमन करता हूँ। **चित लाय...** चित्त को साथ रखकर अर्थात् चित्त से भी नमन करता हूँ, ऐसा। **जय...** वे यह जयचन्द टीकाकार। **जय पाय...** ऐसे जय मिले और आस्रव टलकर जय हो और ऐसे 'जय' स्वयं का नाम डाला। **जय पाय लहूँ मन भाये।** मन में भावना यह है कि राग से रहित होकर मैं शुद्ध होऊँ, ऐसी मेरी भावना है।

इस प्रकार श्री समयसार की (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री समयसार परमागम की) श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेवविरचित आत्मख्याति नामक टीका में आस्रव का प्ररूपक चौथा अंक समाप्त हुआ।

अब पाँचवाँ संवर (अधिकार)।

मोहरागरुष दूरि करि, समिति गुप्ति व्रत पारि।
संवरमय आतम कियो, नमूं ताहि, मन धारि।।

मोह... अर्थात् मिथ्यात्व **राग...** और **रुष** (अर्थात्) द्वेष **दूरि करि, समिति गुप्ति व्रत पारि।** जिसे निश्चय समिति, गुप्ति और व्रत का विकल्प हो वह। वह भी लिया। **संवरमय आतम कियो,...** जिसने आत्मा को राग के विकल्प के आस्रव से रहित किया। **नमूं ताहि, मन धारि।** उसे मैं नमस्कार करता हूँ, मन से नमस्कार करता हूँ।

प्रथम टीकाकार आचार्यदेव कहते हैं कि 'अब संवर प्रवेश करता है।' अखाड़ा की, रंगभूमि की बात लेनी है न! **आस्रव के रंगभूमि में से बाहर निकल जाने के बाद अब संवर रंगभूमि में प्रवेश करता है।** संवर आता है। इसकी टीका की है न? कलश-टीका! वहाँ दूसरे की टीका करने से पहले ॐ नमः लिया है। संवर अधिकार है न! यह संवर अधिकार। पहले कलश टीकाकार ने ॐ नमः (लिखा है)। संवर अधिकार अलौकिक है। जो अनन्त काल में नहीं किया, इसलिए सब टीकायें कीं, परन्तु यह टीका करते हुए ॐ नमः लिखा है।

यहाँ पहले टीकाकार आचार्यदेव सर्व स्वाँग को जाननेवाले सम्यक्ज्ञान की महिमादर्शन मंगलाचरण करते हैं:- लो!

आसन्सार-विरोधि-सम्वर-जयैकान्तावलिप्तास्रव-
न्यक्कारात्प्रतिलब्ध-नित्य-विजयं सम्पादयत्सम्वरम् ।
व्यावृत्तं पर-रूपतो नियमितं सम्यक्स्वरूपेस्फुर-
ज्ज्योतिश्चिन्मय-मुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते ।।१२५।।

[आसंसार-विरोधि-संवर-जय-एकान्त-अवलिप्त-आस्रव-न्यक्कारात्] अनादि संसार से लेकर अपने विरोधी... आस्रव है, उसका विरोधी संवर है। मिथ्यात्व, अव्रत आदि आस्रव, उसका विरोधी संवर है। उस आस्रव ने **अपने विरोधी संवर को जीतने से...** संवर नहीं होने दिया। आस्रव के प्रेम में संवर नहीं होने दिया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **संवर को जीतने से जो एकान्तगर्वित...** हुआ है। कौन? आस्रव। मैंने बड़े मानधाताओं को गिराया है। साधु नाम धरानेवाले, ग्यारह अंग के पाठक, पंच महाव्रत के पालनेवालों को भी मैंने गिराया है। आस्रव है, इसमें उन्हें प्रेम है, वह आस्रव है। आहाहा! मेरे पंजे में से किसी को निकलने नहीं दिया। ऐसा अहंकार आस्रव को हुआ है। आहाहा!

एकान्तगर्वित (अत्यन्त अहंकारयुक्त) हुआ है, ऐसे आस्रव का तिरस्कार करने से... अब संवर (की बात करते हैं)। आहाहा! स्व का आश्रय लेकर और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करके, उसका (आस्रव का) तिरस्कार किया। **[प्रतिलब्ध नित्य-विजयं-संवरम्] जिसने सदा विजय प्राप्त की है...** उसने (आस्रव ने) तो मात्र अनादि काल से अमुक (समय) तक विजय (प्राप्त की) थी और इसने (संवर ने) तो सदा विजय प्राप्त की है। ऐसा कहकर क्या कहते हैं? कि जिसने राग और पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न आत्मा का अनुभव किया, शुद्ध चैतन्य और संवर प्रगट किया, उसकी अब सदा विजय रहनेवाली है। आहाहा! वह संवर अब आस्रव होनेवाला नहीं है। संवर से गिरनेवाले नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिसने भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसा जिसने अनुभव में लिया, वह संवर है। उस संवर ने सदा... आहा! विजय प्राप्त की है। आहाहा! ऐसा संवर... आस्रव पर सदा विजय प्राप्त की है, ऐसा संवर। जो संवर एक बार हुआ, वह बाद में गिरनेवाला नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आचार्य की भाषा देखो! **सदा विजय प्राप्त की है...** ऐसा संवर। क्योंकि आस्रव तो अमुक अनादि-सान्त था। यह तो सादि-अनन्त संवर प्रगट हुआ अर्थात् सादि-अनन्त संवर रहनेवाला है। आहाहा! सम्यक्त्व हुआ, वह सम्यक्त्व सादि-अनन्त रहनेवाला है। ऐसी बात है। यह श्लोक ऊँचा है!

[प्रतिलब्ध नित्य-विजयं-संवरम्] जिसने सदा विजय प्राप्त की है... ऐसा जो संवर। **[संपादयत्] उत्पन्न करती...** आहाहा! चिन्ं ज्योति की बात करनी है न! चिन्ं ज्योति-ज्ञानरूपी ज्योति, ऐसा जो भगवान आत्मा, यह चिन्मय ज्योति उत्पन्न करती। संवर को उत्पन्न करने से चैतन्यज्योति उत्पन्न हुई। वह जो आस्रव उत्पन्न था, (अब) यह यहाँ चैतन्य उत्पन्न हुआ। चैतन्य! संवर में, चैतन्यस्वरूप त्रिकाल के आश्रय से चिन्मय चैतन्यज्योति प्रगट हुई। आहा! ऐसा है।

[पररूपतः व्यावृत्तं] पुण्य और पाप के विकल्प से संवरदशा व्यावृत हुई, (आस्रव से) दशारहित हुई। आहाहा! यह संवर! ऐसे तो संवर बहुत लेकर बैठते हैं। आस्रव का तुम कराओ संवर। वह संवर नहीं। अन्तर के अनन्त आनन्द के स्वभाव का साक्षात्कार करके और उसमें लीनता हुई, इसलिए आस्रव उत्पन्न नहीं हुआ और वह नहीं हुआ, वह अब होनेवाला नहीं है। इस प्रकार संवर ने, संवर सदा रहे (ऐसी) विजय प्राप्त की है। आहा! और इसलिए चैतन्यज्योति पररूप से निवृत्ति हुई। चैतन्यज्योति-भाषा ऐसी है न? **उत्पन्न करती हुई,...** अर्थात् क्या (उत्पन्न करती हुई)? (कि) चैतन्यज्योति उत्पन्न करती हुई। आहा!

पररूप से भिन्न (अर्थात् परद्रव्य और परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले भावों से भिन्न),... परद्रव्य—शरीर, कर्म इत्यादि और परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले विकारी भाव, इनसे चैतन्यज्योति भिन्न हुई। आहाहा! इसमें पर्याय की बात है, हों! त्रिकाली चैतन्य है, वह तो है। यह तो चैतन्यज्योति पर्याय में प्रगट हुई। संवर पर्याय की बात है न! संवर, वह पर्याय है, तो वह चैतन्यज्योति त्रिकाल जो है, उसका आश्रय लेकर, पर से रहित होकर, स्व से सहित होकर चैतन्यज्योति पर्याय में प्रगट हुई। आहाहा!

[सम्यक्-स्वरूपे नियमितं स्फुरत्] अपने सम्यक् स्वरूप में... जो चैतन्यज्योति ज्ञानज्योति प्रगट हुई, वह अपने निश्चल स्थिर स्वरूप में **प्रकाश करती हुई,... अपने सम्यक् स्वरूप में निश्चयलता से प्रकाश करती हुई,...** आहाहा! **चिन्मय, उज्ज्वल (-निराबाध, निर्मल, दैदीप्यमान)...** ऐसी। **[निज-रस-प्राग्भारम्]** (अर्थात्) अपनी शक्ति के जोर से। **[प्राग्भारम्] चैतन्यरस (निजरस) के भार से युक्त...** आहाहा! आस्रव को तो कहीं तोड़ डाला, कहते हैं। अपने चैतन्यस्वरूप के भारवाली दशा प्रगट हुई है। चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... ऐसी जो शुद्ध परिणति और **[निज-रस-प्राग्भारम्] निजरस के (अपने चैतन्यरस के)...** आहाहा! आस्रव में तो दुःखरस था। यह निजरस, आनन्द के

रस से फैलती है। दो बोल लिये हैं। चैतन्य चिन्ं ज्योति प्रगट हुई परन्तु निजरस-आनन्दसहित प्रगट हुई। वहाँ ज्ञान और आनन्द अधिक लेते हैं।

अपने सम्यक् स्वरूप में... (निर्मल, दैदीप्यमान) और निजरस के (अपने चैतन्यरस के) भार से युक्त... चैतन्यरस की अतिशय-विशेषता हुई। आहाहा! आस्रव का अभाव करके और स्वरूप का आश्रय किया, तब ऐसी चैतन्यज्योति निजरस-आत्मा के रसवाली, आनन्द के रसवाली प्रगट हुई। ऐसा है। आहाहा! **ज्योति प्रगट होती है,...** लो! यहाँ कहा है न? उत्पन्न। उत्पन्न करती हुई, था न यहाँ? वह उत्पन्न करती हुई (अर्थात्) यह चैतन्यज्योति। **प्रगट होती है, प्रसारित होती है।** आहाहा! यह तो ज्ञान की मांगलिकता की।

अपने चैतन्यस्वरूप से भरा हुआ, उसका आश्रय लेकर चैतन्यज्योति प्रगट हुई, वह नित्य प्रकाशमान रहती हुई और अपने निजरस से प्रगट हुई। उसका पर रस टल गया। आनन्द के रस से प्रगट हुई। संवर हो, उसे आनन्द आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निजरस के... आहाहा! अतिशय से ज्योति-चैतन्यज्योति प्रगट होती है, विस्तार पाती है। ज्ञान स्वयं पर्याय में विस्तार.. विस्तार.. विस्तार पाता है, प्रसारित होता है। जैसे कमल खिले; वैसे भगवान आत्मा, आस्रव से रुककर स्वरूप-सन्मुख ढलने पर वह आत्मा पर्याय में खिल निकलता है। ज्ञान, आनन्द, श्रद्धा, आदि शान्ति आदि से खिल निकलता है। उसे यहाँ संवर कहा जाता है। लोगों में ऐसा थोड़ा हाथ जोड़कर खड़ा रहे तो (कहता है) संवर हो गया! यह जामनगर में अष्टमी और पाठी के उपवास करे और बहुत संवर करे। जैसे प्रौषध करे न, उसी प्रकार से संवर करे।

भावार्थ : अनादि काल से जो आस्रव का विरोधी है... अर्थात् कि संवर, **ऐसे संवर को जीतकर आस्रव मद से गर्वित हुआ है।** आहाहा! नौवें ग्रैवेयक गये, ऐसे दिगम्बर साधु मिथ्यादृष्टि को भी मैंने वश में किया है। हजारों रानी छोड़कर, घर-दुकान-मकान छोड़कर, धन्धा छोड़कर त्यागी हुआ, परन्तु फिर भी आस्रव कहता है कि उसमें मेरी जीत हुई है (क्योंकि) राग का भाव है, उसे ही उसने धर्म माना। आहाहा! महाव्रत के परिणाम आदि हैं, उन्हें अपना धर्म मान (लिया)।

यहाँ संवर लेते हैं। **उस पर जिसने सदा के लिये विजय प्राप्त की है...** लो! **उस आस्रव का तिरस्कार करके...** तिरस्कार करके अर्थात् फिर से अब तू होगा नहीं। आहाहा! **उस आस्रव का तिरस्कार करके उस पर जिसने सदा के लिये विजय प्राप्त की है...**

आहाहा! क्या आचार्य की शैली! ओहोहो! कहते हैं न? **सदा के लिये विजय प्राप्त की है...** इसमें से मैं अब गिर जाऊँगा, संवर से गिर जाऊँगा, अब यह वस्तुस्वरूप में ऐसा नहीं है। आहाहा! एक बात है न, 'नयपरिहिणा' में? आस्रव (अधिकार) में। बाकी आदरणीय यह है। आहाहा! संवर उत्पन्न हुआ, वह हमेशा के लिये विजय प्राप्त की। आहाहा!

आनन्दसागर आत्मा! पुण्य और पाप के शुभ-अशुभ सब राग मैल, आस्रव, अशुचि और जड़, दु:खरूप है। आहाहा! उनसे भिन्न पड़कर, उन्हें तिरस्कार करके और अपने चैतन्यस्वरूप में लीन हुआ, उसके निजरस से, आनन्द के रस से चैतन्यज्योति विस्तरित होती है। आहाहा! (लोग) ऐसा कहते हैं कि यह तो कष्ट है। मुनिपना अथवा यह धर्म कष्ट (रूप) है। ऐसा नहीं है। आनन्दरसवाला है। धर्म है, वह आनन्द के रसवाला है और वह तो कठिन पड़े, परीषह सहन करने में तो। आहाहा! निज रस के चैतन्य प्रकाश अपने स्वरूप से (अभिन्न)। **और अपने स्वरूप में निश्चल यह चैतन्य प्रकाश निजरस की अतिशयतापूर्वक निर्मलता से उदय को प्राप्त हुआ है।** आहाहा! टीकाकारी टीका के समय अभिलाषा है, अभिलाषा अन्दर से। आहाहा! हम अब अपनी ओर गये वह अब बाहर निकलनेवाले नहीं हैं। आहाहा! हम हमारे घर में गये, (इसलिए) सदा हमारी विजय हुई। आस्रव पर सदा के लिये विजय प्राप्त की। आहाहा! एक आस्रव (अधिकार में) और नयपरिहीणा बतलाया था, किसी को ऐसा हो। शुद्धनय से भ्रष्ट हो जाये।

यहाँ कहते हैं कि यह तो जैसा अन्दर भगवान प्रगट हुआ है, चैतन्यज्योति, जागती ज्योति, ऐसी की ऐसी रहनेवाली है। आहाहा! ऐसा कहकर अप्रतिहत संवरदशा बतलायी है। आहाहा!

संवर अधिकार के प्रारम्भ में ही, श्री कुन्दकुन्दाचार्य सकल कर्म का संवर करने का उत्कृष्ट उपाय जो भेदविज्ञान है, उसकी प्रशंसा करते हैं:- भेदविज्ञान उत्कृष्ट उपाय है। चाहे जैसा विकल्प हो, उससे भिन्न पड़ना और स्वरूप में अभेद होना, यह उपाय है। यह बात करते हैं, देखो!

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो।
कोहो कोहे चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो।।१८१।।
अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो।
उवओगम्हि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि।।१८२।।

एदं दु अविवरीदं णाणं जइया दु होदि जीवस्स।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओग-सुद्धप्पा।।१८३।।

हरिगीत—

उपयोग में उपयोग, को उपयोग नहिं क्रोधादि में।
है क्रोध क्रोधविषैं हि निश्चय, क्रोध नहिं उपयोग में।।१८१।।

उपयोग है नहिं अष्टविध, कर्मों अवरु नोकर्म में।
ये कर्म अरु नोकर्म भी कुछ हैं नहीं उपयोग में।।१८२।।

ऐसा अविपरीत ज्ञान जब ही प्रगटता है जीव के।
तब अन्य नहिं कुछ भाव वह उपयोग शुद्धात्मा करे।।१८३।।

टीका : वास्तव में एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है (अर्थात् एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती)... आहाहा! वास्तव में भगवान एक आत्मस्वरूप, उसकी दूसरी वस्तु नहीं है, दूसरी उसकी नहीं है। एक की दूसरी नहीं है। आहाहा! इसके पुण्य-पाप ही इसके नहीं हैं। आहाहा! एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है। **क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं...** आहाहा!

मुमुक्षु : विकार के प्रदेश भिन्न हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें कहा क्या? उपयोग में उपयोग है, उपयोग में उपयोग है। शुद्ध.. शुद्ध... श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति (की) परिणति, इस उपयोग में उपयोग / आत्मा है। क्या कहा? उपयोग में उपयोग है। पहला उपयोग है, वह शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की निर्मल परिणति। इस उपयोग में उपयोग है (अर्थात् कि) इसमें आत्मा है। क्योंकि इसके द्वारा आत्मा ज्ञात होता है। है न?

उपयोग में उपयोग है। आहाहा! पहला शब्द ही कठिन है। आत्मा किसमें है? कहते हैं कि आत्मा, शुभ-अशुभभावरहित शुद्धभाव दर्शन, ज्ञान और चारित्र, ऐसे भाव में आत्मा है। आत्मा में यह भाव है, ऐसा नहीं लेकर इस भाव में आत्मा है (-ऐसा कहा है)। क्यों? इसे आधार बनाया। आधेय बनाया आत्मा को। यह क्या कहा? शुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान पवित्र परिणाम को आधार बनाया। इसके आधार से ही आत्मा आधेय है। यह सूक्ष्म बात है।

उपयोग में उपयोग है। पहले उपयोग में अर्थात् शुद्ध परिणति। वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति, यह शुद्धपरिणति, वह उपयोग। इस उपयोग में उपयोग है। इस उपयोग की

परिणति में आत्मा है। वैसे देखें तो द्रव्य के आधार से पर्याय है। यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय के आधार से द्रव्य है। क्योंकि पर्याय से ज्ञात हुआ न इसलिए। समझ में आया? दूसरी शैली की अपेक्षा यह शैली अलग ली है।

उपयोग में आत्मा है। उपयोग अर्थात् शुद्ध उपयोग। राग-द्वेषरहित ऐसा जो शुद्ध उपयोग, उस उपयोग में उपयोग अर्थात् आत्मा द्रव्य है। क्योंकि इस शुद्ध उपयोग द्वारा ज्ञात होता है। जिससे ज्ञात हुआ, उसके आधार से आत्मा है, ऐसा कहा। थोड़ी सूक्ष्म बात है। यह गाथा थोड़ी सूक्ष्म है। आहा! क्योंकि परिणति जो शुद्ध है, उस शुद्ध में शुद्धद्रव्य है, ऐसा ज्ञात होता है। अशुद्ध से ज्ञात नहीं होता तथा शुद्ध में द्रव्य है, ऐसा जाना किसने? कि शुद्धपरिणति ने। इसलिए शुद्धपरिणति में शुद्धद्रव्य है। आहाहा! उपयोग में उपयोग है। आहाहा! अभी आगे लेंगे।

क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं.. क्या कहते हैं? यह आया इसमें। उपयोग शुद्ध है, उसमें आत्मा है। अब, यहाँ तो यह लेना है कि जो पुण्य और पाप के भाव हैं, उनके प्रदेश भिन्न हैं। असंख्य प्रदेश में वह पर्याय उत्पन्न हो, उसका भेद है। विकारी भाव उत्पन्न होता है, वह आत्मा के असंख्य प्रदेश से भिन्न प्रदेश है। लो, ऐसा सूक्ष्म है। हैं तो वे असंख्य प्रदेश, परन्तु उनका जो अन्तिम भाग है, उनके उन प्रदेश में हैं। इसलिए यहाँ कहा कि **दोनों के प्रदेश भिन्न हैं..** भगवान आत्मा की शुद्धपरिणति में ज्ञात हुआ, वे प्रदेश और आस्रव के प्रदेश दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। हैं तो इसके असंख्य प्रदेश। सूक्ष्म बात है, भाई! यहाँ तो विकार (लिया है)। नहीं तो निर्विकारी में भी प्रदेश भिन्न हैं।

निर्विकारी परिणति और शुद्धद्रव्य; वह पर्याय है, इसलिए उतना अंश, प्रदेश भिन्न है। परन्तु वह यहाँ अभी नहीं कहना है। यह चिद्विलास में आता है। चिद्विलास में! चिद्विलास। निर्मल परिणति के प्रदेश भिन्न हैं और द्रव्य के प्रदेश भिन्न हैं। निर्मल परिणति पर्याय है और द्रव्य है, वह ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं.. आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु! उसका जो भान हुआ, उस भान में आत्मा ज्ञात हुआ; इसलिए भान में आत्मा है। आत्मा में भान है, ऐसा नहीं। राग से, शुभ से तो ज्ञात नहीं होता। राग से भिन्न है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे आस्रव हैं, उनसे आत्मा ज्ञात नहीं होता और उनसे आत्मा को लाभ नहीं होता। यह अन्दर ज्ञात होता है (तो) आस्रवरहित शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, शान्ति और आनन्द की जो परिणति होती है, उसमें आत्मा ज्ञात हुआ। उसमें आत्मा है। जिसमें ज्ञात हुआ, उसमें वह है। यह सूक्ष्म है।

क्योंकि एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है। एक आत्मा, दूसरे आत्मा में नहीं; दूसरे आत्मा के कारण नहीं। आहाहा! एक परमाणु, दूसरे परमाणु के कारण नहीं। आहाहा! ऐसे यह आत्मा दूसरे द्रव्य के कारण नहीं, कर्म के कारण नहीं। आहाहा! **एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है..** एक वस्तु की दूसरी वस्तु कोई सम्बन्धी नहीं है। इस आत्मा को और कर्म को भी कोई सम्बन्ध नहीं है। कर्म परद्रव्य है, यह चैतन्य स्वद्रव्य है।

दोनों के प्रदेश भिन्न हैं.. देखो, वह वस्तु कही। किसे? उस आस्रव को भी वस्तु कहा। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम आस्रव-राग है। उन्हें यहाँ वस्तु कहा है। **एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है..** क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। आहाहा! पहले ये सिद्ध किया कि चैतन्यप्रभु, वह आस्रव वस्तु से भिन्न है। आस्रव वस्तु, वह जीव की नहीं और जीव, आस्रव का नहीं। आहाहा! **एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है..** आस्रव, आत्मा की वस्तु नहीं है। आत्मा के परमाणु आदि नहीं। आत्मा के यह पुत्र, स्त्री, पैसा, धन्धा, इसका नहीं है।

मुमुक्षु : निश्चय से नहीं, व्यवहार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार अर्थात् खोटा, बोलने के लिये होता है। आहाहा!

यहाँ तो आस्रव में यह वस्तु नहीं। वस्तु है, वह दूसरी वस्तु की नहीं अर्थात् आस्रव की नहीं। मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम हों, उनकी यह वस्तु नहीं। आहाहा! तो बाहर की बात तो कहाँ करना? कहो, चिमनभाई! क्या करना इसमें? कारखाने में जाना? आहाहा! यहाँ दो वस्तु ली है। एक ओर आस्रव तथा एक ओर आत्मा। दूसरी चीज़ तो है ही नहीं, परन्तु एक वस्तु दूसरी वस्तु में नहीं अर्थात् आत्मा, आस्रव में नहीं और आस्रव आत्मा में नहीं। आहाहा!

यह गम्भीर श्लोक है। क्योंकि (एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ) सम्बन्ध ही नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा और आस्रव को कोई सम्बन्ध ही नहीं है। आहाहा! भिन्न तत्त्व है या नहीं? आत्मा और आस्रव तो भिन्न तत्त्व है न? नव तत्त्व में भिन्न है या नहीं? तो यह नव तत्त्व में आया। आत्मा ज्ञायकतत्त्व है, आस्रव मलिन तत्त्व है; भिन्न तत्त्व है। आहाहा! ऐसी बात सुने नहीं, सुनने को मिले नहीं, फिर गड़बड़ करे। एक समय का संवर इसके जन्म-मरण का अन्त लाता है। आहाहा!

दो बातें हुई कि एक वस्तु को दूसरी वस्तु (के साथ) सम्बन्ध नहीं है। आत्मा को और आस्रव को सम्बन्ध नहीं है, आत्मा को और कर्म को सम्बन्ध नहीं है, आत्मा को और शरीर

को सम्बन्ध नहीं है, आत्मा को, बाहर का धन्धा, स्त्री-पुत्र के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, कहते हैं।

मुमुक्षु : कोई रोटियाँ नहीं घड़ देगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन (घड़े)? उसका आत्मा है, वह दूसरी चीज़ का नहीं है। उसका आत्मा है-स्त्री का आत्मा है, वह पति का नहीं। पति का आत्मा है, वह पत्नी का नहीं है। आहाहा! एक वस्तु को दूसरी वस्तु के (साथ) सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसा है।

यहाँ तो आगे ले गये। एक वस्तु—आस्रव, वह दूसरी वस्तु है, ऐसा कहते हैं। ऐसे तो नव तत्त्व में तो संवरतत्त्व ही भिन्न लिया है। अभी उसे शुद्ध संवर है, उसमें वह ज्ञात होता है, इसलिए उसके आधार से ज्ञात हुआ, इसलिए उसका आधार-संवर का आधार आत्मा को है। संवर का आधार आत्मा को है! क्योंकि संवर द्वारा ज्ञात हुआ। समझ में आया? आहाहा!

बहुत संक्षिप्त थोड़े में शुरुआत की है, गजब की है! **वास्तव में एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है..** निश्चय से अर्थात् वास्तव में, ऐसा कहा है। परन्तु व्यवहार से है या नहीं? -कोई ऐसा कहे। व्यवहार से कहने में आता है, वह तो कथनमात्र है कि भाई! यह मेरा शरीर है या ये मेरे कर्म हैं, या जीव को तीन शरीर हैं और जीव को औदारिक, तैजस, कार्माणशरीर है, यह कथनमात्र कहने में आता है। बाकी एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! यह तो और प्रदेश भिन्नवाली चीज़ें तो नहीं, परन्तु यह आस्रव है, वह तो अपने प्रदेश में है, तथापि वे प्रदेश भिन्न हैं और आत्मा के प्रदेश भिन्न हैं। निर्मल शुद्ध ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं और जितने अंश में से आस्रव उत्पन्न हो, वे प्रदेश भिन्न हैं। आहाहा! दो वस्तु भिन्न हैं तो दो वस्तुओं के प्रदेश भी भिन्न हैं। अरे! क्या कहा, समझ में आया?

आत्मा भगवान चिदानन्दस्वरूप में पुण्य और पाप के भाव दूसरी वस्तु है तो इसे और उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई सम्बन्ध नहीं, इतना नहीं, परन्तु अब (कहते हैं) उनके प्रदेश भिन्न हैं। आहाहा! जिस क्षेत्र में, जितने में ध्रुवपना है, उतने में वह आस्रव नहीं है। उससे जरा भिन्न प्रदेश अन्तिम अंश में आस्रव है। इसलिए इसके प्रदेश असंख्य में का प्रदेश भिन्न है। हैं तो अपने असंख्य (प्रदेश) जो हैं वे। आहाहा!

मुमुक्षु : एक अपरिणमते प्रदेश और एक परिणमते प्रदेश हैं? ध्रुव अपलटते प्रदेश में विराजमान और आस्रव पलटते प्रदेश में हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम अंश में है। अन्तिम अंश, असंख्य प्रदेश का अन्तिम अंश।

वह प्रदेश इतने भिन्न हैं। इस ओर पूरा ध्रुव आत्मा भिन्न है। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्तिम का मतलब की परिणमते प्रदेश, पलटते प्रदेश लेना न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पलटते, नहीं पलटते की अपेक्षा नहीं है। यहाँ तो क्षेत्र की अपेक्षा है। क्षेत्र ही भिन्न है। यह भाव भिन्न है, इसलिए उनका क्षेत्र भिन्न है। आहाहा! शरीर, वाणी, एक ओर रखो, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव, वे भाव भिन्न हैं; इसलिए वस्तु भिन्न है; इसलिए उनके प्रदेश भिन्न हैं। आहाहा! प्रदेश तो असंख्य प्रदेश में के ही हैं, परन्तु वे भिन्न हैं, यह भिन्न है। सूक्ष्म बात है। आहा! बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा!

क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं, इसलिए उनमें एक सत्ता की अनुपपत्ति है.. आहाहा! भगवान आत्मा की सत्ता और आस्रव की सत्ता, दोनों भिन्न होने से दोनों की एक सत्ता की अनुपपत्ति है। (अर्थात्) दोनों की एक सत्ता नहीं है। दोनों की दो सत्ता है। आहाहा! दो-तीन लाईन में तो (कितना भर दिया है)! **उनमें एक सत्ता की अनुपपत्ति है..** आस्रवभाव, मलिनभाव, अशुचिभाव। भगवान निर्मल और शुचि-पवित्र भाव है। दो की सत्ता भिन्न-भिन्न है। आहाहा! दो का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। आहाहा!

जैसे शरीर और कर्म से आत्मा भिन्न है, और आत्मा से वे भिन्न चीज़ें हैं। वे तो पृथक् प्रदेश हैं। यह शरीर, वाणी, कर्म के पृथक् प्रदेश हैं और आस्रव के पृथक् प्रदेश नहीं, उस में के प्रदेश का अन्तिम अंश, वह इसका प्रदेश है। यह शरीर, वाणी, मन के प्रदेश भिन्न हैं, पृथक् प्रदेश हैं। आत्मा के पृथक् और इसके पृथक्। इसमें (-आस्रव में) पृथक् हैं सही, परन्तु वे असंख्य में के पृथक् हैं। दूसरे पृथक् प्रदेश हैं, ऐसा नहीं है। क्या कहा?

असंख्य प्रदेश हैं, उनमें से, जितने अंश में जितने क्षेत्र में से आस्रव होता है, उसके प्रदेश भिन्न गिने हैं, उसके प्रदेश भिन्न गिनने में आये हैं। बहुत सूक्ष्म! असंख्य प्रदेश में से उसके प्रदेश भिन्न गिनने में आये हैं। हैं तो असंख्य (प्रदेश), परन्तु जितने क्षेत्र में से आस्रव उत्पन्न हो, वह क्षेत्र भिन्न, उसके प्रदेश भिन्न। जिसमें आत्मा निर्मलानन्द पड़ा है, उसके प्रदेश भिन्न, वह निर्मल क्षेत्र है।

मुमुक्षु : दृष्टान्त देकर समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त! यह तो सादी भाषा है, यह तो सादी भाषा है। जहाँ आत्मा की पर्याय में आस्रव जो है, वे अशुचि और मलिन हैं। इसलिए वे आत्मा की चीज़ से भिन्न हैं-एक बात। और भिन्न हैं, इसलिए उनके प्रदेश भी भिन्न हैं। कोई भी चीज़, यह घास उगे,

जमीन है उसमें पत्थर ऐसा ऊँचा हो। उसमें अन्तिम भाग में घास उगे। तो वह घास जितने में उगती है, उतने प्रदेश भिन्न हैं और इसके अतिरिक्त पूरा पत्थर बड़ा भिन्न है।

मुमुक्षु : आत्मा के पूरे प्रदेश में आस्रवतत्त्व नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : असंख्य प्रदेश में से... असंख्य प्रदेश में से जितने अंश में से पुण्य-पाप आस्रव उत्पन्न होता है, वे प्रदेश और इन प्रदेश के-निर्मल के प्रदेश से भिन्न गिनने में आये हैं। सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : एक-एक प्रदेश में भिन्न है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक प्रदेश-प्रदेश में भिन्न है। असंख्य प्रदेश से भिन्न है, इसलिए वह तो प्रत्येक प्रदेश से भिन्न ही है। असंख्य प्रदेश में अन्तिम अंश में आस्रव होता है और यह असंख्य प्रदेश में पूरा आत्मा है अर्थात् कोई प्रदेश आत्मा का-ध्रुव का जो है, वह आस्रवों का नहीं है। आस्रव का प्रदेश है, वह इसका (आत्मा का) नहीं है। आहा!

मुमुक्षु : आप ऐसा कहना चाहते हो कि ऊपर का भाग और अन्दर का भाग ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है तो वह की वह चीज़, परन्तु जरा ऊपर अन्तिम स्थिति और ऐसे अन्दर..

मुमुक्षु : आत्मा में से निकल जाता है इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : निकल जाता है, इसलिए अथवा प्रदेश तो कहीं निकलते नहीं। भाव निकल जाता है। इसलिए नहीं कहा। ख्याल में है। आस्रव का भाव निकल जाता है परन्तु कहीं वे प्रदेश निकल नहीं जाते परन्तु जहाँ तक आस्रव है, वहाँ तक के प्रदेश भिन्न हैं, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

(यहाँ कहते हैं) **उनमें एक सत्ता की अनुपपत्ति है..** आस्रव जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव है, वह आस्रव है और वह जितने अंश में से उत्पन्न हो, उसका क्षेत्र भिन्न है। इसलिए आत्मसत्ता और आस्रव की सत्ता दोनों एक नहीं है। दोनों की सत्ता दो अलग-अलग है। दो का अस्तित्व दो रूप है। आस्रव का अस्तित्व आत्मा से नहीं और आत्मा का अस्तित्व आस्रव से नहीं। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : दो के बीच अतद्भाव है या अत्यन्त अभाव है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अत्यन्त अभाव है। विकार है न! अत्यन्त अभाव है।

आहाहा! विकार को अत्यन्त अभाव कहा न! कठिन बात है, भाई यह सब। संवर अधिकार कठोर है। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा में से निकल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकल जाते हैं, तथापि प्रदेश तो इसके रहते हैं। अवस्था निकल जाये परन्तु जो प्रदेश निर्मल हैं और वे रहें। यहाँ तो जब तक आस्रव है और आत्मा है, तब तक की बात है। जब तक भगवान यहाँ है और आस्रव है, वह वस्तु भिन्न है; अतः भिन्न है तो प्रदेश भिन्न है। पश्चात् आस्रव निकल गये, फिर वे इसके प्रदेश थे, वे सब निर्मल हो गये। अरे.. अरे! बातें गजब!

मुमुक्षु : बड़ी कठिन पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कठिन पड़े; इसलिए धीरे-धीरे लेते हैं।

यह भाव आता है, उस प्रकार से पकड़ो। जो आस्रवभाव है, वह आत्मवस्तु से उसे दूसरी वस्तु ही कहा गया है। पर्याय को भी वस्तु कहने में आयी है। अन्य वस्तु (कहने में आयी है)। त्रिकाल की अपेक्षा से पर्याय को अन्य वस्तु कहा है। यों तो निर्मल पर्याय (भी)। आहा! चिद्विलास में बहुत अधिकार है। निर्मल पर्याय अन्य वस्तु है। आहाहा! त्रिकाली की अपेक्षा से एक समय की अवस्था, वह भिन्न है। तथापि वह पर्याय निर्मल है अन्दर और वस्तु भी निर्मल है। इसमें (चलते विषय में) अन्तर है। जितने में भगवान शुद्ध चैतन्य है, वे सब निर्मल प्रदेश हैं और जो प्रदेश के अंश में पुण्य-पाप, मिथ्यात्व आदि उत्पन्न हुआ, वह वस्तु भिन्न और वे प्रदेश भिन्न। जो प्रदेश भिन्न तो ऐसा कोई कहे कि आस्रव जाने के बाद वे प्रदेश कहाँ गये? आस्रव जाने के बाद प्रदेश निर्मल हो गये। फिर वह अन्य वस्तु नहीं रही। आहाहा! समझ में आया? आस्रव है, तब तक अन्य वस्तु के प्रदेश भिन्न हैं। आस्रव का नाश हुआ, तब फिर वे आस्रव के जो प्रदेश थे, वे तो अभिन्न हो गये, निर्मल हो गये। फिर वे प्रदेश आस्रव के थे, इसलिए भिन्न रह गये, निर्मल, परन्तु ऐसा नहीं है। ऐई!

मुमुक्षु : अगम-निगम की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अगम-निगम की बात है। आहाहा!

(अर्थात् दोनों की सत्ताऐं भिन्न भिन्न हैं); और इस प्रकार जबकि एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है,.. आहाहा! अब तीसरा बोल आया। **तब उनमें परस्पर आधाराधेय - सम्बन्ध भी है ही नहीं।** आहाहा! आत्मा के आधार से कर्म रहते हैं और कर्म के आधार से

आत्मा, (ऐसा) तो नहीं। यह शरीर, आत्मा के आधार से रहता है, (ऐसा नहीं) यह जीवित शरीर है, तब तक ऐसे रहता है, लो! जीव निकल जाने के बाद?

मुमुक्षु : गिर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : गिर जाये!

यहाँ कहते हैं कि जीव के आधार से यह सिर रहा नहीं है। आहाहा! किसी के आधार से कोई द्रव्य नहीं रहता। यहाँ तो आस्रव के आधार से आत्मा नहीं है, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! सूक्ष्म बात है (कलश) *टीकाकार ने इसीलिए यह ॐ नमः कहकर टीका शुरु की है। अन्यत्र ॐ नमः नहीं लिखा। ॐ नमः नहीं लिखा। मैंने कहीं रखा है, हाँ! है? यह नहीं, वह। नहीं। उसमें है। संवर अर्थात् मोक्ष का मार्ग, आत्मा की निर्मल परिणति। उसका मांगलिक करते हुए पहले ॐ नमः किया। आहाहा!

पहली यह बात हुई कि एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है। आ गया? फिर एक वस्तु के (और) दूसरी वस्तु के प्रदेश भिन्न हैं, ऐसा कहा। इसलिए दोनों की सत्ता एक नहीं है, ऐसा कहा। अब कहते हैं कि एक दूसरे को आधार-आधेय भी नहीं है। आधार-आधेय सम्बन्ध भी नहीं है, ऐसा है न? **आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं।** ये तो दो कहे, अब यह तीसरा कहना है। आहाहा! शरीर के आधार से आत्मा और आत्मा के आधार से शरीर। (ऐसा नहीं है।) आत्मा जब निकलकर स्वर्ग में जाये, तब कर्म के आधार से आत्मा वहाँ जाता है और आत्मा के आधार से कर्म जाता है - ऐसा नहीं। सबका कारण सब। आहाहा! स्वर्ग में जाये, तब कर्म तो साथ में है न? परन्तु उस कर्म के आधार से आत्मा चलता है और आत्मा गति करता है, इसलिए आत्मा के आधार से कर्म साथ आता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। आचार्यों ने गजब काम किया है! सादी भाषा में....

एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं होने से, ऐसा। एक के साथ दूसरे को, एक के साथ अर्थात् दूसरे के साथ दूसरे को आधार-आधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं। **इसलिए (प्रत्येक वस्तु का) अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप (दृढ़तापूर्वक रहनेरूप) ही आधाराधेय-सम्बन्ध है।** आहाहा! इसलिए अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप आधार-आधेयसम्बन्ध है अर्थात् आत्मा की निर्मल परिणति, वह आधार है और भगवान, वह आधेय है। उससे ज्ञात होता है, इसलिए वह आधेय है। आहाहा! आस्रव आधेय है और आत्मा उसे आधार है, ऐसा नहीं है। वे शोर मचाते हैं न कि व्यवहार से निश्चय होता है। (उनकी यह) झूठ बात है। राग-पुण्य-

पाप का, दया, दान का, आस्रव, वह वस्तु ही भिन्न है, उसके प्रदेश भिन्न हैं, उसकी सत्ता भिन्न है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अब चौथा।

अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप (दृढ़तापूर्वक रहनेरूप) ही आधाराधेयसम्बन्ध है। आहाहा! यह क्या कहते हैं? भगवान आत्मा निर्मल शुद्ध चैतन्य की शुद्ध परिणति को आधार-आधेय है। (शुद्धपरिणति) आधार है, उसे आत्मा आधेय है। दूसरे के आधार-आधेय के साथ सम्बन्ध कुछ नहीं है। जिसकी शुद्धपरिणति से ज्ञात हो, इसलिए उसे आधार कहा और आत्मा को आधेय कहा। ऐसा है।

इसलिए (प्रत्येक वस्तु का) अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप (दृढ़तापूर्वक रहनेरूप) ही आधाराधेयसम्बन्ध है। अपने साथ आधार है। अर्थात्? निर्मल परिणति, वह आधार और आत्मा, वह आधेय, ऐसा सम्बन्ध है। समझ में आया? निर्मल मोक्ष का मार्ग, वह आधार; आत्मा, वह आधेय। संवर, वह आधार; आत्मा, आधेय, क्योंकि संवर से वह आत्मा ज्ञात होता है। निर्मल परिणति से वह आत्मा ज्ञात होता है; इसलिए संवर की सत्ता और इसकी सत्ता यहाँ एक गिन डाली और उसे आधार-आधेय सम्बन्ध गिना है। संवर आधार है, वस्तु आधेय है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१७ **श्री समयसार, गाथा-१८१ से १८३, प्रवचन - २५८**
दिनांक - २०-०६-१९७९

(समयसार, १८१ से १८३ गाथा) **एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है...** इसमें पूरा सिद्धान्त है। एक चीज़ की दूसरी चीज़ नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि पुण्य और पाप के विकार भी इसके-आत्मा के नहीं हैं। **एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है...** दूसरी अनन्त अन्य (चीजें) हैं, वह तो नहीं, परन्तु अन्दर में होते हुए क्रोध, मान, पुण्य, दया, दानादि के भाव, वह भी एक वस्तु की - यह वस्तु आत्मा की नहीं, आत्मा में वह नहीं। आहा! **(एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती)...** निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहाँ गया?

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अर्थात् कुछ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कुछ तो कहे, जानने के लिये है। वह निमित्त उसके रूप, नैमित्तिक अपनी पर्यायरूप परिणमे। एक-दूसरे को कोई सम्बन्ध है नहीं।

क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं.. है? आत्मा के प्रदेश और शरीर, वाणी, कर्म के प्रदेश तो भिन्न है, परन्तु इसमें पुण्य-पाप के भाव हों, उनके प्रदेश यहाँ भिन्न गिनने में आये हैं। भिन्न गिनने में आये हैं। भिन्न अर्थात् हैं तो असंख्य प्रदेश में के, परन्तु उनका अंश जिसमें जितना विकार उत्पन्न हो, उतने क्षेत्र को भिन्न प्रदेश गिनने में आया है। समझ में आया? क्योंकि दूसरी, दूसरे की वस्तु नहीं अथवा सम्बन्ध नहीं। क्यों? कि दोनों के प्रदेश भिन्न होने से। आहाहा!

उस कान्तिलाल ने लिखा है, रत्नत्रय में, एक उसमें आता है न? पंच परमेष्ठी की स्तुति-भक्ति से विशुद्ध परिणाम होते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक... और विशुद्ध से फिर शुद्ध होते हैं, ऐसा आता है। विशुद्धि से शुद्ध होता है। ऐसा ढूँढ़कर डाले। यह तो जरा निमित्त से कथन किया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। जहाँ पंच परमेष्ठी की बात की न, वहाँ पंच परमेष्ठी की स्तुति विशुद्ध है। विशुद्ध परन्तु इसे ऐसे विशुद्ध (अर्थात्) मानो कि शुभ को ही विशुद्ध कहते

हैं, ऐसा। परन्तु विशुद्ध तो शुद्ध को भी कहते हैं, शुभ को भी कहते हैं। इस जगह भले विशुद्ध शुभ है, परन्तु दूसरी जगह शुद्ध को भी विशुद्ध कहते हैं और शुभभाव को भी विशुद्ध कहते हैं और शुभभाव विशुद्ध, वह बन्ध का कारण है।

यहाँ तो इस शुभभाव के प्रदेश ही भिन्न (कहे हैं)। भाव भिन्न तो उसका क्षेत्र-स्थान भी भिन्न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा के शुभभाव इसके नहीं। वह वस्तु दूसरी, उसके प्रदेश ही दूसरे हैं और इसके प्रदेश दूसरे हैं। भाव दूसरा, इसलिए वस्तु दूसरी। दया, दान के परिणाम भी आत्मा की अपेक्षा से दूसरी वस्तु है और उसकी अपेक्षा से... क्यों? कि प्रदेश भिन्न हैं। **दोनों के प्रदेश भिन्न हैं, इसलिए उनमें एक सत्ता की अनुपपत्ति है..** उन्हें-दो को एक सत्ता की उत्पत्ति नहीं है। राग के परिणाम, दया, दान आदि देव-गुरु-शास्त्र की व्यवहार श्रद्धा के (परिणाम) और आत्मा, इन दो की एक सत्ता नहीं है। आहाहा! दो की सत्ता तो भिन्न, अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! ऐसा है।

वह है, इसलिए उसमें डाला है, आज कुछ आया है-रत्नत्रय। एक समाचार पत्र निकालता है न! वह इसमें है न - मोक्षमार्गप्रकाशक में! वह खबर है, विशुद्धि (शब्द) दोनों जगह प्रयुक्त होता है। शुभभाव में भी प्रयुक्त होता है, शुद्ध में भी प्रयुक्त होता है। वह डाला है। अरिहन्त आदि के प्रति जो स्तवनादिरूप भाव होते हैं, वह कषाय की मन्दतापूर्वक होते हैं। इसलिए वे विशुद्ध परिणाम हैं। उन्हें विशुद्ध (कहा है)। देखो! इसमें है। विशुद्ध कहलाते हैं तथा समस्त कषाय भाव मिटाने का साधन है। निमित्त से कहते हैं। व्यवहार साधन कहीं कहा है न! इस अपेक्षा से ऐसा कहा। इसलिए वह शुद्धपरिणाम का कारण भी है। इतना है। अरे!

उसका क्षेत्र भिन्न, प्रदेश भिन्न, सत्ता भिन्न। किस जगह कहा हो, (वह समझना चाहिए)। यह तो व्यवहार साधन-साध्य (आता है)। निर्मल पर्याय का क्षेत्र भिन्न है, परन्तु यहाँ अभी उसका काम नहीं है। यहाँ तो मलिन परिणाम जो शुभ है, क्रोधादि... क्रोध कहेंगे, स्वभाव के प्रति विरुद्ध भाव, ऐसा जो क्रोध, मान, माया, लोभ। क्रोध, मान अर्थात् द्वेष और माया, लोभ अर्थात् राग। वह राग और द्वेष की सत्ता भिन्न है, उसके प्रदेश भिन्न हैं। वे आत्मा की वस्तु से वस्तु भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात है।

(दोनों की सत्ताऐं भिन्न भिन्न हैं);.. आहाहा! चैतन्य भगवान ज्ञायकस्वभाव और व्यवहाररत्नत्रय का राग, इन दोनों के प्रदेश भिन्न और सत्ता भिन्न। आहाहा! जगत को जँचना (कठिन पड़े।) **और इस प्रकार जबकि एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है,..** एक वस्तु

की दूसरी वस्तु नहीं होने से **तब उनमें परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं।** है ही नहीं, ऐसा कहा है। राग आधार और निश्चयस्वभाव आधेय - समझ में आये, राग के आधार से निर्मल (स्वभाव) समझ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा! निर्मल पर्याय है... उसमें नाशवान उपयोग लिया है परन्तु अकेला शुद्ध उपयोग है, वह सदा नहीं रह सकता। इसलिए उसका शुद्धपरिणमन आधार लिया। नहीं तो उपयोग में उपयोग है। शुद्ध उपयोग में आत्मा है, परन्तु ऐसा कहने जाये तो अकेला शुद्ध उपयोग कितनी बार नहीं, परिणमन शुद्ध है और उपयोग राग में जाता है। इसलिए इसका शुद्धपरिणमन है, आत्मा का शुद्ध परिणमन है, उसमें आत्मा है। समझ में आया? उपयोग का अर्थ ऐसा हुआ। ज्ञानस्वरूप जाननक्रिया, वह जाननक्रिया उपयोग का अर्थ किया है। आहा! वह अत्यन्त शुद्ध उपयोग करे तो शुद्ध उपयोग सदा होता नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार जबकि एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है, तब उनमें परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं। सम्बन्ध भी नहीं, ऐसा कहा। सत्ता तो भिन्न है, परन्तु आधार-आधेय सम्बन्ध भी नहीं है, ऐसा। **इसलिए भी है ही नहीं।** ऐसा (कहा)। यह भी नहीं, ऐसा (कहना है)। वह तो प्रदेश भिन्न है, सत्ता भिन्न, परन्तु आधार-आधेय सम्बन्ध भी नहीं है। राग, व्यवहाररत्नत्रय का राग आधार और उसके कारण आत्मा ज्ञात हो, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात संवर अधिकार में स्पष्ट रखी है। **इसलिए (प्रत्येक वस्तु का) अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप..** प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूप में आधार-दृढ़पने रहनेरूप 'ही' एकान्त किया। **आधाराधेयसम्बन्ध है।** अर्थात् कि प्रत्येक वस्तु को अपने स्वरूप में ही रहनेरूप आधार है।

इसलिए ज्ञान जो कि.. ज्ञान अर्थात् आत्मा। ज्ञान अर्थात् आत्मा। यह अपनी **जाननक्रिया..** ऐसी भाषा ली है। वह उपयोग न लेकर यह (जाननक्रिया) ली है। जो शुद्धचैतन्यस्वरूप है, उसकी जो जानने की, श्रद्धा की, स्थिरता की, आनन्द की क्रिया।

टीका। **वास्तव में..** अर्थात् निश्चय से। **एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है..** अर्थात्? एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अर्थात्? चैतन्यस्वरूप को और दया, दान, व्रत या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का व्यवहार का रत्नत्रय का राग, उस राग को और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! है? **एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती)..** कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्बन्ध अर्थात् निमित्त-निमित्त हुआ। यह तो कहते हैं। उसमें क्या, वह तो निमित्त वस्तु नहीं। वास्तव में तो वह ज्ञेय और यह, यह भी व्यवहार है। ज्ञान, ज्ञेय को जाने, यह व्यवहार है; ज्ञान, ज्ञान को जाने, यह निश्चय है। सूक्ष्म बात, सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

यहाँ तो पाठ तो ऐसा है, उपयोग में उपयोग में नहीं, ऐसा नहीं कहा। उपयोग में उपयोग है। तब यहाँ उपयोग में उपयोग है, ऐसा यदि लेने जायें तो शुद्ध उपयोग में आत्मा है, तो ऐसा लेने जायें तो शुद्ध उपयोग तो सदा रहता नहीं। इसलिए शुद्ध उपयोग में, शुद्ध उपयोग जो है, इसका अर्थ यह करेंगे, फिर जाननक्रिया अर्थ करेंगे, उपयोग अर्थ नहीं करेंगे। क्योंकि उपयोग है, वह शुद्ध उपयोग सदा नहीं रहता, तो फिर उसके आधार से ही हो तो जाननक्रिया परिणमन जो शुद्ध है, उसका आधार नहीं, ऐसा हो जाता है। है यह? उपयोग भले बाहर में- रागादि में जाये, तथापि आत्मा की जाननक्रिया, परिणमन क्रिया, शुद्ध परिणमनक्रिया, वही इतना उपयोग है। उसमें आत्मा है। आहाहा! नहीं राग में, नहीं अजीव में, नहीं शरीर में, नहीं वास्तव में तो शुद्ध उपयोग में भी त्रिकाल वस्तु नहीं है। जाननक्रिया में वह वस्तु है। आहाहा!

मुमुक्षु : जाननक्रिया में निष्क्रिय वस्तु कैसे कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननक्रिया, वह निर्मल परिणति है, उसके द्वारा जानने में आती है। जाननक्रिया का अर्थ यह कि स्वभाव का निर्मल परिणमन है, उसके द्वारा ज्ञात होती है। परिणमन है, वह आधार है; आत्मा, वह आधेय है। आहाहा! ऐसी शैली ली है।

(अर्थात् एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती) क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं.. आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय का राग और भगवान आत्मा दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। हैं असंख्य प्रदेश में के, परन्तु असंख्य प्रदेश में जिस प्रदेश के अंश में राग उत्पन्न होता है, वह राग भाव और उसका क्षेत्र; भाव और उसका क्षेत्र इसके भाव और इस क्षेत्र से भिन्न हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : मन में कल्पना करनी या दोनों भिन्न हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानस्वरूप यहाँ तो आत्मा लेना है।

मुमुक्षु : काल्पनिक रीति से भिन्न नहीं पड़ते।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न नहीं। आत्मा और ज्ञान दोनों एक ही यहाँ तो लिये हैं। राग भिन्न। ज्ञान शब्द से यहाँ आत्मा है। उपयोग कहा, उपयोग कहा न? उपयोग में उपयोग है।

उपयोग में उपयोग है, वह उपयोग है तो यह। आत्मा उपयोग में अर्थात् जाननक्रिया में उपयोग है अर्थात् आत्मा है। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। दोनों को सम्बन्ध नहीं है, क्यों? कारण देते हैं कि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। क्योंकि भाव भिन्न है तो भाव का क्षेत्र भी भिन्न है। ध्रुव और ध्रुव का क्षेत्र, ध्रुवभाव और क्षेत्र उससे भिन्न है और उनसे (क्रोधादि से) यह भिन्न है। यहाँ तो विकार में लिया है, परन्तु निर्विकारी परिणति हो, उसके भी प्रदेश भिन्न हैं, क्योंकि दो भाव हुए न, एक ध्रुवभाव है और एक परिणतिभाव है। दो भाव हुए, इसलिए दो भाव के प्रदेश दोनों के भिन्न हैं। शुद्ध परिणति के प्रदेश भिन्न हैं। यहाँ तो अशुद्ध (परिणति की) बात की है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। वे कहे, दया पालो, व्रत करो और अपवास करो, लो! हो गया (धर्म) जाओ! अब इन बनियों को यह समझना। एक दूसरे को सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि दोनों के अंश—क्षेत्र, भाव भिन्न होने से। (इसलिए) **उनमें एक सत्ता की अनुपपत्ति है..** शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा और राग, दोनों की एक सत्ता की अनुपपत्ति है। दोनों की एक सत्ता ही नहीं है, दो की सत्ता भिन्न है। आहाहा!

यह तो अभी कहा, वह कान्तिलाल ईश्वर है न? मासिक निकालता है न, उसमें डाला है। मोक्षमार्गप्रकाशक में पहले (आता) है कि भगवान की स्तुति से विशुद्ध परिणाम होते हैं, परन्तु विशुद्ध तो शुभ को भी कहा जाता है, शुद्ध को (भी कहा जाता है)। यहाँ शुभ को (विशुद्ध) कहते हैं। उसका अर्थ ऐसा नहीं कि शुभ है, इसलिए उसे विशुद्ध (परिणाम होते हैं)। अपेक्षा से विशुद्ध कहा है परन्तु तदुपरान्त मोक्षमार्गप्रकाशक में जरा स्वयं ऐसा लिया है कि विशुद्धि है, वह शुद्ध का कारण है। ऐसा लिया है। निमित्त से कथन है।

यहाँ कहते हैं विशुद्धि जो शुभभाव है, वह आत्मा में नहीं है। दोनों की सत्ता भिन्न है। भिन्न सत्ता, भिन्न सत्ता को क्या करे? आहाहा! ऐसा है। कठिन बात है कठिन। **एक सत्ता की अनुपपत्ति है (अर्थात् दोनों की सत्ताऐं भिन्न भिन्न हैं);..** आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव का भाव, उसे द्रव्य गिने तो उसके प्रदेश भी भिन्न हैं। जितने में से वह उठता है, उतने प्रदेश-क्षेत्र भिन्न है। उसे भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव लें तो काल उसका एक समयमात्र, क्षेत्र उस प्रदेश का अन्तिम अन्त, वस्तु स्वयं वह, भाव उसका वह विकारी। समझ में आया इसमें?

जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस राग के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भिन्न। आहाहा! और भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप के प्रदेश भिन्न। आहाहा! उन्हें एक सत्ता की प्राप्ति है ही नहीं।

आहाहा! परन्तु वह मोक्षमार्गप्रकाशक में जरा लिखा है न! विशुद्धि का आठवें पृष्ठ पर है। स्तवन से उसे विशुद्धि होती है। उसे मानो ऐसा कि शुभ को विशुद्ध कहा न! ऐसा। परन्तु उस शुभ को भी विशुद्ध कहा है और शुद्ध को भी विशुद्ध कहा है, दोनों है। शास्त्र में दोनों शब्द हैं। विशुद्ध अर्थात् उस कषाय की तीव्रता की अपेक्षा से उसे विशुद्धि कहा है। परन्तु है तो राग, कषाय और आत्मा की सत्ता दो भिन्न, दोनों के प्रदेश भिन्न, दो के भाव भिन्न। तदुपरान्त **एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है, तब उनमें परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं।** आहाहा! राग आधार और निर्मल परिणति आधेय, उसके आश्रय से प्रगटे, ऐसा नहीं है। आहाहा! आधार-आधेय सम्बन्ध भी नहीं है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति (आधार और आत्मा आधेय, ऐसा नहीं है)।

एक ओर कुन्दकुन्दाचार्यदेव मोक्षपाहुड़ में कहते कि 'परदव्वादो दुग्गई'! 'परदव्वादो दुग्गई' तथा एक ओर ऐसा कहे कि यह विशुद्धि, वह शुद्धता का कारण है। शुभभाव, वह परद्रव्य के लक्ष्य से (होता है) परन्तु वह दुर्गति है, चैतन्यगति नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। चर्चा से कुछ पार नहीं पड़ता। भाव समझना चाहे तो समझ में आये, ऐसी बात है।

परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं। क्या (कहा)? सत्ता भिन्न है, प्रदेश भिन्न है (और) यह भी नहीं, ऐसा; इसलिए 'भी' (शब्द) लेना पड़ा। समझ में आया? आहाहा! राग की क्रिया और आत्मा का स्वभाव, दोनों को कोई सम्बन्ध नहीं है, दोनों के प्रदेश भिन्न हैं, इसलिए दोनों की सत्ता इस कारण भिन्न है इसलिए; और इससे इनको-दोनों को आधार-आधेयसम्बन्ध भी नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, यह इनकार करते हैं। उसकी सत्ता भिन्न है, प्रदेश भिन्न है और दोनों को आधार-आधेयसम्बन्ध भी नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। सम्प्रदाय से तो इस (बात का) मेल खाना मुश्किल है। कितने बोल स्पष्ट किये हैं! आहाहा!

चैतन्य भगवान निर्मलानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द आदि अतीन्द्रिय गुण का धाम, वह आधेय है और उसका आधार, जो उसकी परिणति से ज्ञात होता है, इसलिए उसका आधार परिणति है। आहाहा! शुद्धपरिणति से आत्मा ज्ञात होता है। वह था, है भले हो। है भले, परन्तु है का हैपना इसे कब आवे? आहाहा! वह कारणपरमात्मा है अवश्य परन्तु वह है कब? कि पर्याय में कार्यपना हो, उसे वह कारणपरमात्मा है। इसलिए दूसरे को कारण -परमात्मा है, ऐसा कहाँ आया? आहाहा! सबको कारणपरमात्मा है, यह तो बराबर है, परन्तु कारणपरमात्मा का जिसे भान हुआ नहीं, उसे कारणपरमात्मा की श्रद्धा कहाँ है? आहाहा! इसलिए भाई ने

कहा था न ? त्रिभुवन वारिया ! ऐसा कि कारणपरमात्मा आप कहते हो तो कारण हो तो कार्य तो आना चाहिए ? (हमने कहा) परन्तु कारणपरमात्मा है, उसका अस्तित्व है—ऐसा जिसे प्रतीति में आया, उसे है या न हो उसे है ? और जिसे प्रतीति में आया, उसे समकित का कार्य आया ? समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा है। मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई !

एक-दूसरे के साथ **आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं।** वापिस 'ही' (लिखकर) एकान्त किया है। कथंचित् आधार-आधेयसम्बन्ध और कथंचित् आधार-आधेयसम्बन्ध नहीं, कथंचित् दोनों की सत्ता एक है और (कथंचित्) दोनों की सत्ता भिन्न है, ऐसा नहीं। आहाहा ! सम्यक् एकान्त नय का विषय सिद्ध किया है। आहाहा ! **इसलिए (प्रत्येक वस्तु का) अपने स्वरूप में..** अपने स्वरूप में (कहा है)। **प्रतिष्ठारूप (दृढ़तापूर्वक रहनेरूप) ही आधाराधेयसम्बन्ध है।** यह तो पहले सिद्धान्त किया। अब आत्मा पर घटित करते हैं।

इसलिए ज्ञान जो कि जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है.. आहाहा ! सिद्धान्त यहाँ है। उपयोग में उपयोग है, वह यहाँ (है)। पहले तो सिद्धान्त सिद्ध किया। आहाहा ! जो आत्मा, उसकी जो जाननक्रिया, जो परिणमन द्वारा आत्मा ज्ञात हुआ... आहाहा ! जिस परिणमन द्वारा आत्मा ज्ञेय जानने में आया, ज्ञेय हुआ, उस जाननक्रिया के आधार से वह ज्ञात हुआ। आहाहा ! क्योंकि कार्य हो, तब कारण कहलाये न ? इसी प्रकार यहाँ जब कार्य-जाननक्रिया हुई तो उससे आत्मा ज्ञात हुआ कि यह आत्मा है।

वैसे द्रव्य के आश्रय से गुण और पर्याय रहते हैं। वह तो एक वस्तु की सिद्धि करनी है। द्रव्य के आश्रय से गुण और पर्याय है। बस ! 'द्रव्याश्रया गुणा' तत्त्वार्थसूत्र का सूत्र है। द्रव्य के आश्रय से गुण (रहे हुए हैं), यह तत्त्वार्थसूत्र का (सूत्र है)। आहाहा ! उसमें भी-श्वेताम्बर में अट्ठाईसवें अध्ययन में भी है 'द्रव्याश्रया गुणो, एक दव्वसिया गुणा' वहाँ यह दूसरी बात है।

यहाँ कहते हैं, उसके आश्रय से जो कहा था, वह तो वस्तुसिद्ध करने को (कहा था), परन्तु अकेली वस्तुस्थिति जिसे ख्याल में, अनुभव में न आवे उसे क्या ? कहते हैं। आहाहा ! जिसे ख्याल में आवे, ज्ञान के परिणमन में, श्रद्धा के परिणमन में, शान्ति के परिणमन में अर्थात् स्वरूपाचरण स्थिरता इत्यादि परिणमन में ख्याल आवे कि यह आत्मा है, इसलिए जाननक्रिया, ऐसा अपना स्वरूप। वह जाननक्रिया इसका स्वरूप है। रागादि इसका स्वरूप नहीं है। जानना, जानना-देखना, ऐसा परिणमन वह तो इसका स्वरूप (परिणमन) है।

उस **जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है..** आहाहा ! उस अपने स्वरूप में

आत्मा-ज्ञान रहा है, ऐसा कहना है न ? ज्ञान अपने स्वरूप में रहा है। स्वरूप अर्थात् ? ज्ञान ऐसा जो अपना आत्मा, उसे जाननक्रियारूपी जो अपना स्वरूप, उसमें वह रहा है; इसलिए उसमें वह ज्ञात होता है। ऐसी बात है। समझ में आया इसमें ?

ज्ञान... अर्थात् आत्मा **जो कि जाननक्रियारूप..** वह अपना स्वरूप है। आहाहा! रागादि इसका स्वरूप नहीं था। जो जाननक्रिया, आत्मा जो ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसकी जो वर्तमान जाननक्रिया, श्रद्धाक्रिया, शान्ति की क्रिया, आनन्द की (क्रिया), उस जाननक्रिया में सब गुणों की पर्याय आ गयी। आहाहा! समझ में आया ? **जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है..** दोनों वस्तुएँ भिन्न की हैं। ज्ञान अर्थात् ही आधेय और जाननक्रिया, वह आधार। उस जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में रहा हुआ है। आहाहा! समझ में आया ? पुस्तक है न सामने ? इसमें लोहे में-बोहे में कहीं वहाँ हाथ आवे, ऐसा नहीं है। पैसा आवे, वह भी उसकी पर्याय का काल (होवे तो आवे)। आहाहा!

यहाँ तो पहले ऐसा कहा, प्रवचनसार में तो ऐसा आ गया कि द्रव्य अपनी पर्याय को पहुँचता है। द्रव्य अपनी पर्याय को पहुँचता है, प्राप्त करता है, पाता है और पर्याय द्रव्य-गुणों से उत्पन्न होती है। समझ में आया ? पर्याय, द्रव्य-गुण से उत्पन्न होती है और पर्याय को द्रव्य प्राप्त करता है। फिर विकार या अविकार दोनों, हों! यहाँ निर्विकारी (पर्याय की) बात नहीं है। द्रव्य जो है, वह अपनी जो परिणति है या पर्याय है, विकारी या अविकारी। द्रव्य है वह स्वयं मिथ्यात्व को पाता है, वह अपनी क्रिया / पर्याय है। ऐसा है। यह तो अपने बहुत बोल आ गये। ९८ और ९९वीं (गाथा) उसके अवसर में होनेवाला मिथ्यात्वभाव, उसे द्रव्य पहुँचता है, द्रव्य प्राप्त करता है, द्रव्य प्राप्त करता है। उसे द्रव्य प्राप्त करता है। आहाहा! आहाहा! दूसरी कोई चीज़ नहीं पाती, इतना वहाँ सिद्ध करना है।

यहाँ दूसरी बात सिद्ध करनी है। आहाहा! यहाँ तो वस्तु है परन्तु उस वस्तु का जहाँ अन्दर भान करते हैं, उसकी सन्मुखता होती है, तब जो ज्ञान और श्रद्धा का परिणमन हुआ, उसके स्वरूप के आधार से वह चीज़ है। क्योंकि उसके स्वरूप के आधार से वह ज्ञात हुआ है। इतना अब याद कब रखना ? कहो, त्रम्बकभाई! इसे मुम्बई का सम्हालना या कांप का सम्हालना या यह (समझना) ? क्या करना। आहाहा! उल्लासचन्दजी! यह अलग प्रकार का उल्लास है। आहाहा! (श्रोता—मुम्बई का और लोहे का दोनों का सम्हालना ?)

कहते हैं, प्रभु! एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है। यह रागादि और पर आदि की अपेक्षा। दोनों की सत्ता भिन्न, यह रागादि और पर की अपेक्षा। दोनों का आधार-आधेय नहीं,

यह रागादि और पर की अपेक्षा। यहाँ आधार-आधेय है। आहाहा! वह वस्तु तो वस्तु है। भगवान पूर्णानन्द प्रभु है, उस 'है' का यहाँ परिणमन में सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि परिणमन हुआ, उस परिणमन के आधार से 'यह है', यह है अंश। अंश का परिणमन हुआ, उस अंश में 'यह अंशी इतना पूरा है' ऐसा उसके आधार से ज्ञात हुआ। इसलिए उसे आधार (कहा), वस्तु तो आधेय (कहा)। आहाहा! कहो, मीठालालजी! ऐसी चीज़ है। लोगों को कठिन पड़े परन्तु क्या हो?

एक ओर ऐसा कहे कि प्रवचनसार ऐसा पुकारता है (कि) द्रव्य पर्याय को पहुँचता है। विकारी या अविकारी, हों! वहाँ तो द्रव्य, गुण और पर्याय सिद्ध करना है, इतना। यहाँ तो संवर सिद्ध करना है। संवर कब होता है? चैतन्यमूर्ति शुद्ध है, उसका आश्रय लेकर और शुद्ध परिणमन जो होता है, तब उस परिणमन में यह चीज़ ज्ञात हुई, इसलिए परिणमन, वह आधार है; आत्मा, वह आधेय है। आहाहा! इतना सब बदलना कितना! साफ है, ऐसी स्पष्ट (बात है)। आहाहा!

जिसे राग और कर्म का सम्बन्ध ही नहीं। निमित्त-निमित्त वह कोई सम्बन्ध नहीं है। ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध, वह भी व्यवहार है। आहाहा! आहाहा! उसमें होनेवाली शुद्ध परिणति, शुद्ध की दृष्टि से, लक्ष्य से (होती उस) परिणति में उसे ज्ञात हुआ कि 'यह द्रव्य है।' परिपूर्ण भगवान परिपूर्ण वस्तु, भले उस परिणति में वह द्रव्य आया नहीं, परन्तु परिणति में उस द्रव्य की जितनी सामर्थ्य है, उतना ज्ञान और प्रतीति हो गयी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह सब सिर फिर जाये ऐसा है। आहाहा!

जाननक्रियारूप अपने स्वरूप.. देखा यह? उसका परिणमन है और वह अपना स्वरूप है। चैतन्य भगवान ध्रुव है, उसका जो परिणमन है, वह अपना स्वरूप है। आहाहा! एक जगह ऐसा कहे कि पर्यायस्वरूप में द्रव्य नहीं आता और द्रव्यस्वरूप में पर्याय नहीं आती। यह बात तो ऐसी ही है। यहाँ भी ऐसा कहा, पर्यायस्वरूप है, उसमें द्रव्य ज्ञात हुआ, द्रव्य उसमें आया नहीं परन्तु जितना जैसा द्रव्य है, जितनी सामर्थ्यवाला है, अनन्त गुण के पुरुषार्थ के, एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है, ज्ञान में अनन्त पुरुषार्थ का रूप है, अनन्त आनन्द का रूप है, अनन्त अकर्ता, अकारण का रूप है। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का जो सामर्थ्य, ऐसा जो तत्त्व, जो जाननक्रिया के उपयोग में (आया), जाननक्रिया ली। उपयोग में उपयोग है, उसमें उपयोग में (अर्थात्) उसे यहाँ जाननक्रिया ली है। आहाहा! समझ में आया? है न सामने? पुस्तक है या नहीं?

जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है.. आहा! क्यों? (कि) **जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से,..** आहाहा! आत्मा चैतन्यस्वरूप पूर्ण आनन्द आदि, उसका जानना हुआ, श्रद्धान हुआ, स्थिरता हुई, अनन्त गुणांश शक्ति में जो थे, वे व्यक्तरूप हुए, सब अंश (व्यक्तरूप हुए), उस परिणमन के आधार से ज्ञात हुआ कि यह (आत्मा) है। आनन्द के आधार से ज्ञात हुआ कि पूर्ण आनन्द है, ज्ञान की व्यक्तता का अंश पूर्ण ज्ञान, (को बतलाता है), शान्ति के आश्रय से पूर्ण शान्ति (ज्ञात हुई), पुरुषार्थ के आश्रय से पूर्ण (पुरुषार्थ) ज्ञात हुआ, ऐसे वह प्रगट जो पर्याय (हुई), उसमें जो अंश आये, उन अंशों द्वारा वह ज्ञात हुआ; इसलिए उसे—अंश को आधार कहा जाता है और अंशी को आधेय कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से, ज्ञान में ही है;... वह आत्मा भगवान त्रिलोकनाथ, उसकी जो जानने की, देखने की श्रद्धा की पर्याय हुई, वह उसका स्वरूप है और इसलिए वह ज्ञान की क्रिया, श्रद्धा की क्रिया, शान्ति की क्रिया, वह ज्ञान से अभिन्न है, आत्मा के स्वभाव से वह पर्याय अभिन्न है। आहाहा! **अभिन्नत्व होने से, ज्ञान में ही है;..**

मुमुक्षु : पर्याय में द्रव्य आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस पर्याय में द्रव्य आया नहीं, परन्तु वह इस सन्मुख हो गया, इसलिए अभिन्न है, ऐसा (कहना है)। बाकी पर्याय, पर्याय है और द्रव्य, द्रव्य है। यह अभी नहीं लेना है। अभिन्नता का अर्थ अभेद हो गया। राग है भिन्न है, इस प्रकार से यह अभिन्न है, ऐसा।

मुमुक्षु : द्रव्य को और पर्याय को अभिन्न कहना, वह किस नय का कथन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी निश्चयनय का कथन है। ऐसी बात है। यह तो १९वीं बार वंचता है न! इसमें मौके से तुम आये हो। रतिभाई नहीं आये? मुम्बई होंगे, ठीक! आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान और आत्मा के प्रदेश अभिन्न होने से अभिन्न कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश तो भिन्न वह नहीं। वस्तु वह की वह, एक ही सत्ता है। उसमें स्वरूप में वस्तु रही है। स्वरूप जो जाननक्रिया है, उसमें यह वस्तु रही है, इसलिए वह वस्तु का स्वरूप है, वह स्वरूप होने के कारण वस्तु अभिन्न है, ऐसा। पकड़ में आये उतना पकड़ो, बापू! यह तो (भण्डार है)।

मुमुक्षु : पर्याय के प्रदेश भिन्न हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी भिन्न नहीं (कहना)। अभी तो विकारी पर्याय के प्रदेश भिन्न कहना है, पश्चात् निर्विकारी पर्याय के प्रदेश भिन्न; अभी नहीं। यह बात तो कल हो गयी थी, नहीं? कि भाई! विकारी पर्याय मिट गयी, फिर निर्मल पर्याय मिल गयी, निर्मल के साथ। इसलिए वह पर्याय मिल गयी निर्मल, परन्तु फिर भी उसके प्रदेश तो, पर्याय के अंश भिन्न हैं। जो त्रिकाली प्रदेश हैं, और एक समय के प्रदेश हैं, वे भिन्न हैं। अभी यहाँ तो मात्र पर से भिन्न करना है। आहाहा! ऐसा है।

जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से,.. अर्थात् जानने की जो परिणति की क्रिया है, उससे ज्ञान अर्थात् आत्मा **अभिन्नत्व होने से, ज्ञान में ही है;..** ऐसा। यह आत्मा आत्मा में ही है। जो आत्मा का परिणमन कहा, उसे आत्मा कहा, जाननक्रिया को आत्मा कहा। इसलिए आत्मा, आत्मा में हैं। वह आत्मा अपने स्वरूप में है। वह स्वरूप जाननक्रिया ऐसा स्वरूप है, इसलिए आत्मा उसमें है। समझ में आया? ऐसा स्वरूप है।

जाननक्रिया है, वह पर्याय है। उस पर्याय के आधार से आत्मा है। उस पर्याय के आधार से ज्ञात होता है, इसलिए उसे आधार कह है। आहाहा! जाननक्रिया, वह उत्पन्न क्रिया है, उत्पाद है, उत्पन्न है। उस उत्पन्न क्रिया के आधार से आत्मा ज्ञात होता है; इसलिए इस आत्मा का वह स्वरूप है। इसलिए उस स्वरूप के आधार से वह आत्मा है, इसलिए स्वरूप और आत्मा, दोनों अभिन्न हैं। यह अपेक्षा है। आहाहा! इसमें कितने पहलू (समझना)? नये लोगों को (कठिन लगे), बापू! वीतरागमार्ग बहुत अलौकिक है! वीतरागमार्ग के अतिरिक्त किसी धर्म में, किसी में यह सत्य बातें हैं ही नहीं। सबने कल्पित किया है। श्वेताम्बर धर्म में यह बात नहीं न! आहा! क्या कहें, परन्तु लोगों को कठोर पड़ता है। श्वेताम्बर धर्म और स्थानकवासी में जैनपने की शैली ही नहीं है। आहाहा! आहाहा!

कहते हैं राग और आत्मा की सत्ता दोनों भिन्न हैं परन्तु राग को जाननेवाला और अपने को जाननेवाला, ऐसी जो जानने की क्रिया, ऐसा जानने का जो उत्पाद परिणमन, उसको आधार (कहा जाता है) और आत्मा आधेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : संवर की बात तो कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संवर की बात तो बहुत सादी भाषा में—अत्यन्त सादी भाषा में मर्म खोला है। बापू! संवर अर्थात् क्या? आहाहा! आस्रवरहित संवर की उत्पत्ति है। उस संवर की उत्पत्ति (होना), वह जाननक्रिया है। वह आत्मा की जानन श्रद्धा, वह क्रिया है। वह क्रिया आत्मा का स्वरूप है और आत्मा का स्वरूप होने से उसके आधार से आत्मा रहा है।

आहाहा! उसे जाननेवाली उत्पन्न पर्याय यदि न हो तो वह किसके आधार से ज्ञात हो? ऐई! राग (के) आधार से तो ज्ञात होता नहीं, तो पर्याय ही उत्पन्न न हो, प्रगट (न हो) तो यह त्रिकाल है, उसे जाना किसने? आहाहा! मूल में बड़ा अन्तर है। आहाहा!

जाननस्वरूप ही उसका है, ऐसा कहते हैं। यह रागादि उसका स्वरूप नहीं, इसलिए उसकी सत्ता भिन्न, प्रदेश भिन्न, आधार-आधेय भिन्न.. आहाहा! और जाननक्रिया और आत्मा, दोनों की सत्ता एक, दोनों में आधार-आधेय एक, जानन (क्रिया) आधार और वस्तु आधेय। दोनों को अन्दर सम्बन्ध अवश्य। उसके आधार से रहे और आधेय उसमें रहे, ऐसा सम्बन्ध है। आहाहा!

यह जानन जो शुद्ध उपयोग; शुद्ध उपयोग अर्थात् परिणमन। शुद्ध उपयोग पाठ में लिया है, परन्तु अर्थ में जाननक्रिया ली है। कारण है कि वह उपयोग जो है, शुद्ध उपयोग में यदि आत्मा कहो तो शुद्ध उपयोग सदा नहीं रहता। कोई विकल्प में रहे, परन्तु शुद्ध का परिणमन सदा रहता है। चन्दुभाई! समझ में आया? शुद्ध का परिणमन, आहाहा! पर्याय की प्रगट सदा शुद्ध की कायम रहती है। उपयोग कदाचित् न रहे; इसलिए यह शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! उपयोग को 'जाननक्रिया' शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! यह टीका कहलाये, ऐसी! आहाहा! सन्तों-दिगम्बर मुनियों (ने) गजब काम किया है! आहाहा!

लोगों को अभ्यास नहीं (और) प्रवृत्ति के कारण निवृत्ति नहीं। आहाहा! प्रवृत्ति, प्रवृत्ति के घर रही। इसकी सत्ता में वह प्रवृत्ति है नहीं। आहाहा! इसकी सत्ता में तो शुद्धपरिणमन है। आहाहा! राग भी नहीं तो पर शरीर, वाणी, मन और धन्धे की क्रिया, वह तो कहाँ है इसमें? आहाहा! समझ में आया?

जाननक्रिया का ज्ञान से.. जाननक्रिया अर्थात् परिणमन—शुद्धपरिणमन। उसका **ज्ञान से..** अर्थात् आत्मा से। **अभिन्नत्व होने से,..** जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नपना होने से जाननक्रिया **ज्ञान में ही है;..** आहाहा! उससे भिन्न नहीं, ऐसा कहते हैं। है? आहाहा! **जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से,..** जाननक्रिया **ज्ञान में ही है;..** आत्मा में ही है। वह निर्मल पर्याय है, वह आत्मा में ही है, ऐसा कहते हैं। वह आत्मा है। आहाहा!

अब, यह सिद्ध करके अब विरुद्ध सिद्ध करते हैं। यह अविरुद्ध सिद्ध किया। जाननक्रिया स्वरूप प्रतिष्ठित उसमें आत्मा रहा हुआ है। जाननक्रियास्वरूप, उसके आधार से प्रतिष्ठित अर्थात् उसके आधार से रहा है। क्योंकि वह आत्मा है। जाननक्रिया का संवरभाव, वह आत्मा है। आहाहा! एक ओर शुद्धभाव अधिकार नियमसार (में ऐसा कहे कि) संवर,

निर्जरा और केवलज्ञान बहिर्तत्त्व है। किस अपेक्षा से? सभी तत्त्व (बहिर्तत्त्व है)। संवर, निर्जरा और सब बहिर्तत्त्व है। अन्तःतत्त्व तो एक त्रिकाली आनन्द का नाथ है परन्तु उसे जाननेवाले बिना, 'है'—ऐसा जाना किसने? ऐसा कहते हैं। उसे ज्ञेय बनाये बिना, यह ज्ञेय है, ऐसा जाना किसने? आहाहा!

महापुरुष कोई करोड़पति, अरबोंपति मिलने आया, परन्तु उसके सामने देखा नहीं और लड़के के साथ में आधे घण्टे खेल में रह गया तो वह उठकर चला गया। इसलिए इसे तो मिला ही नहीं। इसी प्रकार पूरी चीज़ प्रभु महा आत्मा पड़ी है, महात्मा—महा पुरुष, वह समीप में पड़ी है परन्तु उसके सामने देखे बिना (खबर कैसे पड़े)? आहाहा!

मुमुक्षु : वह चला नहीं जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो वहाँ का वहाँ (है परन्तु) इसकी दृष्टि में से चला गया न! वह चला गया। अनन्त काल से चला गया। आहाहा! इसकी सत्ता का अस्तित्व जैसा और जितना है, उतना उसके सन्मुख होकर जाना नहीं तो उसे तो यह सत्ता चली गयी है। आहाहा! ऐसा है। अरे! धन्य भाग्य! यह चीज़ कहाँ से कान में पड़े!! यह कोई सम्प्रदाय की चीज़ नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! वस्तु के स्वरूप की यह सब टीका है। आहाहा! यह (कहकर) अब विरुद्ध का लेते हैं।

क्रोधादिक जो कि क्रोधादिक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है.. आहाहा! क्रोधादि है, उनका परिणमन जो है, उसके आधार से यह क्रोध है। **क्रोधादिक जो कि क्रोधादिक्रिया..** (अर्थात्) परिणमन। आहा! क्रोध वस्तु है, वह वस्तु गिनी और फिर उसका परिणमन गिना। उस परिणमन के आधार से क्रोध है। आहाहा! आज सूक्ष्म आया, परन्तु अधिकार ऐसा है, वहाँ (क्या हो)? आहाहा!

क्रोध शब्द से द्वेष और आदि शब्द से राग। राग में लोभ और माया आवे। यह लोभ की-इच्छा की वृत्ति उत्पन्न हुई... आहाहा! यह इच्छा की परिणति, वह क्रोध की क्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है। यह इच्छा की परिणति, जो क्रोध, मान, माया, लोभ है, उनकी परिणति है, उसके आधार से वह है। उस परिणति के आधार से वह क्रोध है; आत्मा के आधार से नहीं। आहाहा!

क्रोधादि है न? क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय-वासना, रागादि, वह जो क्रोधादि क्रिया, उसका परिणमन, वह अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है। उसका स्वरूप—परिणमनस्वरूप उसका है। विकारीभाव का परिणमन, वह उसका स्वरूप है। आहाहा! उस स्वरूप में

प्रतिष्ठित है। उसके स्वरूप के आधार से विकार है, आत्मा के आधार से नहीं, आत्मा की पर्याय के आधार से नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म।

मुमुक्षु : क्रोधादि का आधार मोहकर्म गिनने में आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म-फर्म यहाँ नहीं। यहाँ तो अन्दर की बात है। कर्म-फर्म, नोकर्म तो बाहर रहे। वह आयेगा। यह मिलान के बाद आयेगा। आठ कर्म और नोकर्म बाद में (आयेगा)। आठ कर्म आयेंगे परन्तु यह तो पहले अन्दर का निश्चित करे, पश्चात् वह है। वह तो बाहर का (तत्त्व है), भिन्न है परन्तु वे भिन्न भासित नहीं होते; इसलिए उन्हें भिन्न बताकर फिर कहेंगे, इनकी तरह सब ले लेना। कर्म, शरीर, अमुक-अमुक... सब ले लेना। आहाहा!

मूल प्राण तो साधारण शरीर भिन्न है, कर्म भिन्न है, ऐसी धारणा तो बहुत बार हो गयी है। ग्यारह अंग का जानपना (तो हो गया है) परन्तु यह भिन्न हुए बिना, वह भिन्न है—ऐसा यथार्थपना नहीं आता। आहाहा! वैसे तो ग्यारह अंग का जानपना नहीं किया? शरीर भिन्न है, कर्म भिन्न है, इतना तो आया न? राग भिन्न है, ऐसा भी ख्याल में—धारणा में आया था, परन्तु भाव में नहीं आया था। आहाहा!

रागरहित स्वभाव की दृष्टि करके जो परिणमन होना (चाहिए), वह नहीं था। इसलिए इसे कहते हैं कि परिणमन के आधार से वह ज्ञात हुआ और क्रोध, और विकार है, वह परिणति के आधार से विकार है, वह आत्मा के आधार से विकार है ही नहीं।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१८ श्री नियमसार, श्लोक - २७१, गाथा-१५९, प्रवचन - १८४
दिनांक - १७-०७-१९८०

२७१ कलश।

मुक्त्वा मोहं कनकरमणीगोचरं हेयरूपं,
नित्यानन्दं निरुपमगुणालङ्कृतं दिव्यबोधम्।
चेतः शीघ्रं प्रविश परमात्मान-मव्यग्ररूपं,
लब्ध्वा धर्मं परम-गुरुतः शर्मणे निर्मलाय।।२७१।।

श्लोकार्थ : हेयरूप ऐसा जो कनक और कामिनी... कंचन और कामिनी जिसे प्रियरूप लगे हैं, उन्हें हेयरूप करना। फँस गया। यहाँ तो कहते हैं कि **हेयरूप ऐसा जो कनक और कामिनी सम्बन्धी मोह...** आहाहा! पर सम्बन्धी मोह। अपना चैतन्यस्वरूप आनन्दमूर्ति भगवन्त को छोड़कर। कंचन और कामिनी के मोह में पड़ा है, उसे छोड़कर।

भाषा तो सरल है, उसे छोड़कर परन्तु अन्दर में उसे छोड़कर। आत्मा का प्रेम और आनन्द का अनुभव हो तब कंचन और कामिनी का मोह छूटेगा। एक चीज़ की महिमा आवे तो दूसरी चीज़ की महिमा छूट जाती है। एक आत्मा की महिमा (आवे कि) ओहो! मैं आनन्द और ज्ञानस्वरूप एक आत्मा भगवान परमेश्वर हूँ। पर्याय में पर के ऊपर लक्ष्य जाने से अपने स्वरूप को भूल जाता है तो अपने स्वरूप को जानने के लिये पर का प्रेम छोड़ना। ओहोहो!

दो शब्द लिये। उसमें पूरी दुनिया आ गयी। आहाहा! कंचन और कामिनी अर्थात् कि बाहर की लक्ष्मी और स्त्री आदि, इनके मोह को छोड़कर। भाषा तो ऐसी ही आती है। बाकी तो छोड़ना, वह भी व्यवहार है। अपना आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द सुखरूप है, उसके रस और प्रेम में मोह छूट जाता है। मोह छोड़ना नहीं पड़ता परन्तु उपदेश में तो ऐसी पद्धति आती है कि उसे छोड़। यहाँ लगन लगा और उसे छोड़। आहाहा! अरे! तुझे जन्म-मरण, भवभ्रमण, परिभ्रमण छोड़ना हो तो, भव-भव की गति में भटकता है, उस भवभ्रमण को छोड़ना हो तो

इस ओर परिभ्रमण का कारण लक्ष्मी और स्त्री दो, उनमें सब आ गया... आहाहा! उनका मोह, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! जिसमें बिल्कुल लाभ का कारण नहीं, नुकसान का कारण है, उसमें प्रेमबुद्धि वह नुकसानकारक मिथ्यात्व है। आहाहा! साधारण बात नहीं है।

भाषा तो कंचन और कामिनी कही है परन्तु आत्मा के अतिरिक्त किसी भी परचीज़ में विशेष, अधिक, आश्चर्यकारी और सुखबुद्धि रखनेवाली कोई चीज़ हो तो उस चीज़ से अपनी चीज़ का पता नहीं लगता। आहाहा! ऐसा है। इसका अर्थ पूरे संसार का प्रेम छोड़। कंचन और कामिनी, एक ओर अकंचन और यह निर्दोष आनन्द भगवान का अनुभव करने से, अनुभव करने से परवस्तु जो है, कंचन और कामिनी तो दो नाम दिये हैं, परन्तु सब परवस्तु के प्रति मोह छोड़ दे। आहाहा!

हे चित्त! पर का मोह छोड़कर, हे चित्त! **निर्मल सुख के हेतु...** निर्मल आनन्द का कारण। निर्मल आनन्द का कारण **परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके...** परम गुरु यही समझायेंगे। बाकी सत्य बात परम गुरु बिना कहीं है नहीं। आहाहा! कुछ का कुछ दूसरा मिथ्यात्व के शल्य की विपरीतता डालेगा। वीतराग त्रिलोकनाथ के साधु अथवा उनकी वाणी, परम गुरु एक ही बात कहते हैं। परमानन्द का नाथ चैतन्य चमत्कार अनन्त आनन्द का सागर अन्दर है। प्रभु! अनन्त आनन्दस्वरूप तू है, वहाँ प्रीति लगा न! जिसमें दुःख है, स्वभाव का आदर है, उसमें दुःख है, उस प्रीति को छोड़। आहाहा! यह तो बाबा होवे तब छोड़े, ऐसा कोई कहता है। वह कहता था न? अमृतलाल। अमृतलाल। बाबा ही है। परन्तु कब? बापू, भाई! तू एक चीज़, स्वयं पर के सम्बन्धरहित एक चीज़ ही तेरे अन्दर है। दो बात है ही नहीं। कर्म और राग, वह तेरी चीज़ ही नहीं है। आहाहा!

यह कहते हैं, **हे चित्त! निर्मल सुख के हेतु...** यह निर्मल क्यों लिया? क्योंकि इन्द्रिय का सुख जहर है, दुःख है। आहाहा! अपने अतिरिक्त पर में किसी के भी प्रति शरीर, इन्द्रिय, पैसा और इज्जत उसमें कुछ भी प्रेम करने से मिथ्यात्व और दुःख होता है, तो **निर्मल सुख के हेतु...** वह निर्मल सुख तो आत्मा में है। **निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा...** सच्चे परम सत् सन्त द्वारा... आहाहा! और वही सत्य कहेंगे, ऐसा कहते हैं। परम गुरु, वे एक ही सत्य कहेंगे। बाकी गड़बड़.. गड़बड़ कर डालेंगे। आहाहा!

परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, परसन्मुख का मोह छोड़कर अर्थात् परसन्मुख की सावधानी छोड़कर अपनी चीज़ में सावधानी

कर। आहाहा! भाषा तो सरल है परन्तु... आहाहा! यह काम करना... आहाहा! अपनी चीज़ की सावधानी होने के कारण, अपने अतिरिक्त परचीज़ की सावधानी का मोह छोड़कर **हे चित्त!** हे आत्मा! **निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा...** आहाहा! **प्राप्त करके...** परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके। इसका अर्थ यह हुआ कि गुरु उसे कहते हैं कि जो आत्मा की प्राप्ति करावे। कुछ भी विकल्प में, राग में बीच में अटकाने की बात (न करे)। लोगों को एकान्त लगता है। दो सिद्धान्त लक्ष्य में बराबर ले कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता और प्रत्येक द्रव्य की क्रमसर पर्याय क्रमबद्ध होती है। आहाहा! ये दो सिद्धान्त लक्ष्य में ले तो परसन्मुख की सावधानी छूट जाती है। आहाहा! मैं उसका कर दूँ और मैं उसका कर दूँ... परन्तु तू तो पर को स्पर्श नहीं करता, पर को छूता नहीं तो पर का तू क्या कर सकेगा? आहाहा! शरीर को भी स्पर्श नहीं करता, वह तो जड़ है। उसकी जिस समय में, जिस क्षण में जो अवस्था होनेवाली है, वह होगी ही। तेरी सावधानी से उसमें कुछ फेरफार होगा, ध्यान रखने से शरीर की पर्याय ठीक रहेगी, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! यह सब दवा-बवा करे न? यह सब बातें।

जड़ और चेतन की पर्याय जिस समय में होनेवाली है, वह होकर ही रहेगी। दूसरा उसे करे, ऐसा तीन काल में नहीं बनता क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्यायरूपी काम के बिना नहीं रहता। प्रत्येक चीज़ निकम्मी नहीं रहती। निकम्मी का अर्थ? अपनी पर्याय का कार्य किये बिना कभी कोई चीज़ नहीं रहती। कोई चीज़ अपनी पर्याय का कार्य किये बिना नहीं रहती तो तू पर का क्या करेगा? आहाहा! शरीर का, वाणी का, मन का... आहाहा! तू किसी का कुछ कर सकता नहीं। कठिन बात है, भाई! धर्म कोई साधारण चीज़ नहीं है। वीतराग का धर्म... आहाहा!

तीन काल में एक चीज़ दूसरी चीज़ को कभी स्पर्श नहीं करती। यह सिद्धान्त जब तक न जँचे, तब तक मैं पर का करता हूँ, पर का करता हूँ, पर से लेता हूँ, पर से सुख मानता हूँ (ऐसा मानता है)। एक चीज़ दूसरी चीज़ को कभी तीन काल में स्पर्श नहीं करती। एक चीज़ दूसरी चीज़ को चुम्बन नहीं करती स्पर्श नहीं करती, प्रवेश नहीं करती। परद्रव्य में प्रवेश करके उसकी पर्याय बनावे, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! पूरे दिन काम होवे उससे। कहते हैं, तुझसे नहीं होता, तुझसे। आहाहा! बोलने का काम, चलने का काम, वह काम उस समय में होनेवाली पर्याय होकर ही रहेगी। तुझसे वह होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **हे चित्त! निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा...** आहाहा! जैन के गुरु उसे कहते हैं कि जो आत्मा का आनन्द (प्रगट) करने को कहते हैं, वे जैन के गुरु। बाकी कोई भी राग की क्रिया से तुझे लाभ होगा, व्यवहाररत्नत्रय करते-करते लाभ होगा (ऐसा कहे), वे जैन के गुरु नहीं हैं। आहाहा! इसलिए इतना शब्द प्रयोग किया है। **परम गुरु द्वारा...** परम गुरु द्वारा, यह निमित्त। धर्म सुनने में-देशनालब्धि (में) वे निमित्त हैं। प्राप्त करता है स्वयं से, परन्तु वहाँ निमित्त है। उन्होंने ऐसा कहा कि आत्मा राग से रहित निर्मलानन्द है तो वह शब्द से प्राप्त कर ले, ऐसा नहीं है। अन्तर में राग से भिन्न होकर आनन्दस्वरूप भगवान का स्पर्श करके अनुभव करे, उसमें तो भगवान की देशना और भगवान भी काम नहीं करते, परन्तु निमित्त बताते हैं। निमित्त गुरु हैं और वे उपदेश भी ऐसा देते हैं। आहाहा!

परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके... कैसा धर्म? निर्मल सुख का हेतु। यह कहा न? निर्मल सुख का हेतु, आत्मा के सुख का कारण, वह धर्म, गुरु बताते हैं। आत्मा के सुख का कारण निर्मल सुख, आत्मा के आनन्द का कारण ऐसा जो धर्म, उसे गुरु बताते हैं। उनके द्वारा सुनकर... ओहोहो! **तू अव्यग्ररूप...** शान्त हो जा। व्यग्रता छोड़ दे। अस्थिरता, मोह की व्यग्रता छोड़ दे, अव्यग्र हो जा। क्योंकि परम गुरु ने कहा है कि निर्मल सुख की प्राप्ति अपने स्वरूप के अवलम्बन से होती है। गुरु का यह उपदेश था। इसके अतिरिक्त दूसरी किसी चीज़ से आत्मा के अन्तर आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। आहाहा!

यह सब करना कब? मन्दिर बनाना, पूजा करना, शान्ति पाठ, पंच कल्याणक होता है न? यह चर्चा चली है। यह चर्चा एक पुस्तक में चली है। प्रतिष्ठा में पंच कल्याणक करना यह कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। भगवान की प्रतिष्ठा करना, उसमें पंच कल्याणक, उसमें माँ-बाप, उनके माता-पिता हो और फिर बने। बड़ी चर्चा चली है। लेख आते हैं। लोगों ने उपाधि बढ़ा ली है। आहाहा! मानो पर का कुछ करें तो पर को जरा ठीक हो। पर को ठीक हो। पर में नहीं परन्तु पर से। पर का कुछ करें... आहाहा! भगवान के यज्ञ-होम करें। यह पंच कल्याणक पूरा होकर... नहीं? पंच कल्याणक पूरा होकर होम करते हैं न? शान्ति का पाठ, होम। क्या होगा सब? ऐसा कहाँ से निकला? ऐसी चर्चा चली है। बात सत्य है। बाद में सब एकत्रित होकर फिर तिल को डालकर होम या होम... या होम... या होम (बोलते हैं) और धुँआ निकलता है, यह शान्तिपाठ। परन्तु उसमें शान्ति कहाँ आयी? आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो शान्ति का पाठ है न, ऐसा कि शान्तिरूपी कार्य नहीं, शान्तिरूपी पाठ है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : पाठ है न! पाठ में भाषा है। उसमें शान्ति कहाँ आयी? पाठ में क्या है? पाठ बोले, उसमें क्या है? आहाहा! वह तो यह मोरबी में अभी होता है न? भाई गया है न? हरिलाल। वह सब तूफान हुआ था न? तो वह शान्ति करते हैं। उसके कारण शान्ति होगी? यह तो क्या भ्रमणा है जगत की!

मुमुक्षु : काम में रहे, तब तक धन्धे में न जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : न जाए परन्तु वह तो शुभराग है। वह राग तो संसार है। उसमें निर्मल सुख की प्राप्ति कहाँ हुई?

यहाँ तो यह शब्द है न? **निर्मल सुख के हेतु...** आत्मा के आनन्द का हेतु। वह गुरु का उपदेश है। आहाहा! यह बड़ी चर्चा चली थी कि यह क्या? पंच कल्याणक और यह उपाधि और... प्रतिष्ठा करे उसमें दूसरा लम्बा बहुत चलता है, परन्तु परम्परा चली हो उसमें। क्योंकि व्यवहार के कथन ऐसे होते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, गुरु ने जो उससे कहा... **निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके तू अव्यग्ररूप...** हो जा। शान्ति, अन्तर में शान्ति है। भगवान आनन्द में अन्तर शान्ति है। बाहर की क्रिया करने से शान्ति मिलेगी, शान्ति का हवन करे और शान्ति का यह करे... आहाहा! गजब भाई! शान्ति करे, होम और यज्ञ करे, कितने तिल डाले, बड़ा धुँआ निकले।

मुमुक्षु : अपने बन्द कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अपने को तो कुछ खबर भी नहीं। हमने तो कुछ कहा भी नहीं कि करो या नहीं कहा वह कर। बाबूभाई! यह तीर्थ फण्ड का करते हैं, वह भी हमने कुछ कहा नहीं। यहाँ तो उपदेश के अलावा कोई बात ही नहीं। जो करते हों वे स्वयं स्वयं को... आहाहा!

यहाँ तो एक ही बात है। अन्त में आवश्यक में डाल दी। आवश्यक है न? आवश्यक तो यह एक ही है कि परम गुरु तेरे स्वरूप की निर्मल आनन्द की प्राप्ति करने का उपदेश देते हैं। आहाहा! उसका योगफल यह आना चाहिए। लाख बात की बात हो। तू निर्मल आनन्द है, प्रभु! अरे! कैसे जँचे? एक उड़द की दाल ठीक न हो वहाँ घनघनाहट (हो जाती है) किसने ऐसी बिगाड़ी? आहाहा! अरे रे! प्रभु! तुझे कहाँ जाना है? यह सब होता है वह... आहाहा!

अव्यग्रपना और उसका कारण तेरा आत्मा है। निर्मल सुख का कारण तो तेरा आत्मा

अन्दर है। बाकी सब दुःख के कारण हैं। आहाहा! यह होम और फोम और दूसरे शुभभाव की जो क्रिया (करे) वह सब दुःख का कारण है। बाबूभाई! ऐसा जँचना कठिन पड़ता है। परम्परा चलती हो। परन्तु इसे खबर नहीं भाई! बाहर की लाख, करोड़, अरब क्रिया हो। यहाँ तो यह कहा न, कंचन को छोड़कर। उस कंचन में सब आ गया। अपने अतिरिक्त पर कोई भी पदार्थ का प्रेम छोड़ दे कि उससे मुझे लाभ होगा तथा स्त्री का प्रेम छोड़ दे कि उसमें से कुछ सुख मिलेगा। आहाहा!

निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके... शब्द तो बहुत थोड़े हैं परन्तु गुलांट खिलायी पूरे संसार से। निर्मल सुख का कारण बताकर, धर्म निर्मल सुख का कारण है। धर्म निर्मल सुख अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का कारण है तो अतीन्द्रिय आनन्द तो भगवान आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है, तो उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द मिलेगा। आहाहा! बहुत सरस अन्त में... कंचन और कामिनी को हेय जानकर छोड़ दे और इस निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त कर ले। एक को छोड़ और एक को प्राप्त कर ले। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ सर्वांग शान्ति और सर्वांग सुख का सागर पड़ा है, प्रभु! उसमें जाकर निर्मल सुख की प्राप्ति कर। बाकी इसके अतिरिक्त कोई भी चीज़ देव-गुरु-धर्म से भी तुझे सुख नहीं मिलेगा। आहाहा! शोर मचावे न लोग! देव, गुरु, भगवान से भी तुझे धर्म नहीं होगा। भगवान की प्रतिमा और मन्दिर से भी तुझे धर्म नहीं होगा। वह सब तो शुभभाव का निमित्त है। पुण्य शुभभाव अशुभ से बचने के लिये वह भाव है, परन्तु उससे धर्म-बर्म नहीं है। उससे जन्म-मरणरहित (नहीं हुआ जाता)। आहाहा! इतनी सब धर्म की शर्तें! धर्म की इतनी शर्तें! देवीलालजी! कितनी शर्त?

तेरे अतिरिक्त सबकी वृत्ति छोड़ दे, क्योंकि निर्मल सुख का कारण तो तू आत्मा है। आहाहा! यह शर्त है। इसके अतिरिक्त सब दुःख का कारण है। तीर्थंकर साक्षात् भगवान हो तो भी दुःख का कारण है क्योंकि उस पर लक्ष्य जाएगा तो राग होगा। परद्रव्य पर लक्ष्य जाएगा तो राग होगा। राग है वह तो दुःख है। वीतराग त्रिलोकनाथ यह कहते हैं। आहाहा! बात सुनी नहीं, कभी सुनी नहीं। आहाहा! धन्धा-पानी करते-करते... अरे रे! पानी फेर डाला। इस शब्द में कितना गहनपना है।

परसन्मुख का मोह छोड़कर गुरु का उपदेश अन्तर आनन्द की प्राप्ति का उपदेश है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपदेश नहीं है। आहाहा! सब कथन और सब वांचन, सबका

फल यही आना चाहिए। स्व सन्मुख लक्ष्य करके आनन्द आना, वह वस्तु है। आहाहा! बहुत शास्त्र पढ़े तो अन्दर आनन्द आयेगा, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

तू अव्यग्ररूप (शान्तस्वरूपी) परमात्मा में— शान्तस्वरूपी परमात्मा, भगवान अन्दर शान्तस्वरूपी परमात्मा विराजता है। आहाहा! गृहस्थाश्रम में भी यह करना? मुनि तो ठीक त्याग करे। मुनि को चारित्र है। स्वरूप उपरान्त स्वरूप लीनता है और बाकी धर्म की शुरुआत इस आत्मद्रव्य का आश्रय है। आहाहा! बाकी सब बात है। आहाहा! अपना स्वरूप निर्मल आनन्द की प्राप्ति होना, वह एक ही बात भगवान तीन लोक के नाथ, अनन्त तीर्थंकरों का कहना है। आहाहा! यह बात परमात्मा के अतिरिक्त, अनन्त तीर्थंकरों के अतिरिक्त कहीं नहीं है। कहीं न कहीं गड़बड़ करे, ऐसा कर दें, ऐसा कर दें, हमको तू कुछ प्रसन्न कर तो तुझे लाभ होगा। सब मिथ्या बात है। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर को भी केवलज्ञान न हुआ हो और दीक्षा ली। दीक्षा के लिये जाएँ तो आहार दे तो पुण्य होता है। संसार का नाश तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। तीर्थंकर जैसों को आहार देने से (भी संसार का नाश नहीं होता)। यह वाणी वीतराग की है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसका ठिकाना कहाँ है? श्वेताम्बर शास्त्र में विपाक भरा है। पूरा विपाक। बहुत बात करते हैं, भाई! सब बात की थी। वह कौन गाँधी, नहीं? गोकलदास गाँधी के साथ बात की थी, देखो! यह बत्तीस सूत्र में विपाकसूत्र पूरा सब एकदम झूठा है। वहाँ मिथ्यादृष्टि लेनेवाला साधु, उसे आहार-पानी दे तो परित संसार हो, ऐसा पाठ है। विपाकसूत्र में पाठ है।

मुमुक्षु : दृष्टान्त भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, पाठ है न, सब मिथ्या बात है। आत्मा के अवलम्बन और आश्रय के अतिरिक्त धर्म तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। पंच परमेष्ठी के आश्रय से भी धर्म नहीं होता। आहाहा! भगवान की वाणी को लाख पूजे, उससे धर्म नहीं होता। आहाहा!

यहाँ संक्षिप्त में कहते हैं। अवश्य करनेयोग्य हो तो गुरु यह कहते हैं। आहाहा! **परमात्मा में—कि जो (परमात्मा) नित्य आनन्दवाला है,...** क्या कहते हैं? निर्मल आनन्द का उपदेश गुरु ने दिया। क्यों?—कि आत्मा **नित्य आनन्दवाला है,...** इसलिए निर्मल आनन्द का उपदेश दिया। आहाहा! अतीन्द्रिय नित्य आनन्द का नाथ आत्मा है। आत्मा के अतिरिक्त पर में सब में जहर का प्याला है। आहाहा! पैसे की ममता, स्त्री की ममता, पुत्र की ममता,

स्त्री का विषय, भोग आदि सब जहर का प्याला है। वह कहीं स्त्री को नहीं भोगता, उस पर लक्ष्य करके राग के जहर को भोगता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह बात तो सुनी भी नहीं होगी। एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को स्पर्श नहीं करता। पुरुष के शरीर का अवयव स्त्री के शरीर के अंग को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! एक ही बात परमात्मा की कि सब ओर से दृष्टि हटा ले, रुचि हटा ले, एक निर्मलानन्द का कारण आत्मा। कैसे आत्मा? निर्मल सुख का उपदेश क्यों दिया? —कि आत्मा आनन्दवाला है। आत्मा नित्य आनन्दवाला है। आहाहा! है? **(परमात्मा) नित्य आनन्दवाला है,...** आहाहा! एक कलश में तो गजब करते हैं न! इसमें बहुत शास्त्र की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती कि इतने शास्त्र पढ़े और इतने पढ़े तो ऐसा हो। आहाहा! यह पढ़े तो आत्मा हो। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ आत्मा नित्यानन्दवाला है। इस कारण से परम गुरु ने निर्मल सुख का उपदेश दिया। क्योंकि आत्मा नित्य आनन्दवाला है। आहाहा! कैसे जँचे? कभी देखा नहीं, कभी सुना नहीं, कभी स्पर्श नहीं किया, कभी उसकी ओर दरकार नहीं की। यह जगत की जंजाल। बालपन खेल में गया। 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देख के रोया' वृद्धपना आवे, फिर कहे हाय.. हाय.. हाय.. हमने कुछ किया नहीं। परन्तु तूने क्या किया? वह मुसलमान यह बोलता था। वह रोजा होते हैं न रोजा? वहाँ हमारे पालेज में दुकान के बाहर सोते हों न? वे रात्रि में निकले। तब वहाँ सुनते थे। 'बालपन खेल में खायो...' बालपन में खेल में बालक को कुछ खबर नहीं पड़ती कि यह क्या? ऐसे से ऐसे और ऐसे। 'जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देख के रोया' वृद्धपना, शरीर जीर्ण हुआ तब हाय... हाय... अब हम कुछ कर नहीं सकेंगे। चलने में भी ठिकाना नहीं रहता। अपने क्या काम करेंगे? बापू! पर से कुछ नहीं होता। आहाहा! वह वृद्ध हो या जवान हो या बालक हो।

यहाँ तो नित्यानन्दस्वरूप भगवान है। आहाहा! **नित्य आनन्दवाला है, निरुपम गुणों से अलंकृत है...** आहाहा! भगवान आत्मा, जो गुरु ने निर्मल सुख का उपदेश दिया, वह निर्मल सुख है कहाँ? ऐसा कहते हैं। उपदेश दिया परन्तु वह है कहाँ? आहाहा! वह नित्य आनन्दवाला भगवान आत्मा परमात्मा है। आहाहा! सब आत्मा नित्य आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर हैं। **नित्य आनन्दवाला है, निरुपम...** है। **निरुपम गुणों से अलंकृत है...** जिसकी कोई उपमा नहीं, ऐसे गुणों से अलंकृत—शोभित आत्मा है। आहाहा! जिसके गुण की कोई उपमा नहीं दी जा सकती, ऐसे गुणों से अलंकृत है। उसका उपदेश गुरु ने दिया कि जो निर्मल सुख का कारण है। आहाहा!

दिव्य ज्ञानवाला है... है ? यह ज्ञान नहीं। शास्त्रज्ञान और धारणा भूल जाए। वह तो नित्य ज्ञानवाला है, उसका ज्ञान है। आहाहा! **दिव्य ज्ञानवाला है...** वह ज्ञान कभी विस्मृत नहीं होता, कम नहीं होता। आहाहा! अन्तिम कलश है न ? आवश्यक—अवश्य करनेयोग्य हो तो यह एक है। बाकी सब व्यवहार की बातें हैं। व्यवहार आवे। आता है, होता है, परन्तु है राग, है दुःख का कारण। आहाहा!

परमात्मा **दिव्य ज्ञानवाला है उसमें—शीघ्र प्रवेश कर।** आहाहा! तो क्रमबद्ध कहाँ गया ? उसमें शीघ्र प्रवेश कर, ऐसा कहा न ? भगवान आनन्दस्वरूप है, उसमें शीघ्र प्रवेश कर। तो समय-समय में क्रमबद्ध होता है न ? परन्तु उसमें यह आया। क्रमबद्ध का निर्णय करते हैं, तब अन्दर में जाता है, तब निर्णय होता है। आहाहा! कठिन बात है बापू! यह तो वीतराग परमेश्वर के पेट की बात है। अभी तो इतनी अधिक गड़बड़ चलती है। खबर है न! शरीर को यहाँ ९१ वर्ष हुए। सवा पैंतालीस वर्ष तो यहाँ हुए। इस जंगल में सवा पैंतालीस वर्ष हुए। पैंतालीस वर्ष में यहाँ आये हैं, सवा पैंतालीस यहाँ हुए। बहुत देखा और बहुत सब... यह एक ही लगायी है। कुछ का कुछ और कुछ का कुछ।

एक ही सिद्धान्त—निर्मल सुख का कारण नित्यानन्द प्रभु.. आहाहा! उस ओर ढलकर आत्मा का अनुभव कर, यह बारह अंग का सार है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा! कभी सुना न हो, अब करना कहाँ ? बाहर में यह किया और यह किया और यह किया... आहाहा! वस्त्र सब अच्छे बनाये सफेद, पीले। दिखायी ऐसा दे मानो साधु पूजा करने जाए। पूजा करने जाए तब पीले वस्त्र (पहने) क्या उसमें ? आहाहा!

एक तेरी चीज़ नित्यानन्द प्रभु और गुरु का उपदेश, वह निर्मल सुख प्राप्त करने का है। उसमें सब आ गया। उसमें प्रवेश कर। तेरा प्रवेश राग में है। पर में लक्ष्य है, प्रवेश का अर्थ पर में लक्ष्य है, उसे छोड़ दे। सुखी होना हो तो अन्दर भगवान आत्मा विराजता है... आहाहा! उस ओर लक्ष्य करके प्रवेश कर। उस आनन्द में प्रवेश कर। राग में प्रवेश करेगा तो दुःख होगा। आहाहा! बहुत सरस श्लोक है। घीयाजी! बहुत सरस श्लोक आया। यह श्लोक। आहाहा! पौन घण्टा हुआ। एक छोटा श्लोक, चार लाईन है। प्रभु का मार्ग, बापू! आहाहा! बनियों की भाषा, मुनियों का हृदय... केवली के हृदय की तो बात ही क्या करना ? परन्तु मुनियों का हृदय अलौकिक है। दिगम्बर सन्त... आहाहा! उनका चाहे जो (कथन में) हेतु एक ही (है कि) निर्मल आनन्द का नाथ नित्यानन्द है तो मिलेगा। ऐसा कहते हैं। पहले कहा था न ?

निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके... क्यों ?—कि आत्मा नित्य

आनन्दमय है। आत्मा तो नित्य आनन्दमय है, तो तुझे आनन्द मिलेगा। वह कोई क्षणिक चीज़ नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर नित्य आनन्दमय है, तीन काल-तीन लोक में आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। तू भगवान को भूलकर भ्रमणा में भरमा गया है। आहाहा! कुछ पैसा देखे, शरीर को देखकर, स्त्री को देखकर, मकान को देखकर, इज्जत को देखकर भगवान भरमा गया है। आहा! तेरी चीज़ अन्दर पड़ी है, भगवान! उसकी रुचि और दृष्टि तो कर, यह मार्ग है। इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। फिर उसमें स्थिरता करना वह चारित्र है। वह भी उसमें स्थिरता करना, जिसमें नित्य आनन्द भरा है, उसमें दृष्टि करके उसमें लीनता करना... आहाहा! वह तेरे सुख का कारण है।

शीघ्र प्रवेश कर। आहाहा! है? शीघ्र कहाँ आया? शीघ्र कहाँ आया? '**चेतः शीघ्रं**' शीघ्र में कहना क्या है?—कि इस ओर लक्ष्य है उसे इस ओर कर। होगा तो जिस समय में जो होना होगा उस समय में होगा परन्तु ऐसा निर्णय करने में, जिस समय में जो पर्याय होगी, उसका निर्णय करने में तेरी दृष्टि द्रव्य पर जाएगी। आहाहा! जहाँ नित्यानन्द प्रभु पड़ा है। जिस समय में जो पर्याय होनेवाली होगी, वह होगी, क्रमबद्ध होगी, फेरफार नहीं होगा, ऐसा निर्णय करने जाने पर नित्यानन्द पर तेरी दृष्टि जाएगी, तब उसका निर्णय सच्चा होगा। आहाहा! यह तो बाहर का सब उड़ा देते हैं। यह लड़के हुए 'पंकज', तीन लड़के, और सब काम करते हैं अब। ऐसे एक थे, वे करते हैं अब इसलिए अपने अब छोड़ो। आहाहा! लड़के अच्छे, और धर्म का बहुत प्रेम। पंकज बीच का, उसे प्रेम है। आहाहा! उसके कारण इसे क्या? आत्मा को क्या? आहाहा! यह अधिकार पूरा हुआ।

अब दूसरा अधिकार—शुद्धोपयोग अधिकार, १२वाँ। आहाहा!

अब, समस्त कर्म के प्रलय के हेतुभूत... आहाहा! यह धर्म बताया। अब धर्म का फल क्या आया? **समस्त कर्म के प्रलय के हेतुभूत शुद्धोपयोग का अधिकार कहा जाता है।** आहाहा! शुद्धोपयोग होता है, वह कर्म के नाश करने का कारण है। दूसरा कोई कारण नहीं है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वह अशुभराग है, वह अशुद्धोपयोग है। दया, दान, व्रत, पूजा भक्ति भी अशुद्धोपयोग है। शुभ-अशुभ, दोनों अशुद्धोपयोग है, दोनों बन्ध का कारण है। उससे रहित अन्दर भगवान का उपयोग - शुद्धोपयोग अधिकार, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा!

ऐसा सुनने को मिले नहीं न, पोपटभाई! पोपटभाई का साला तो अरबपति है। वह तो गुजर गया। लड़के अरबपति हैं। आहाहा! परन्तु धर्म की बात नहीं। आते है, बात करते हैं। जय भगवान। आहाहा! लड़का वहाँ मुम्बई आया था। अरब रुपये। कितने? दो अरब से

ऊपर। आहाहा! चालीस करोड़—दो अबर चालीस करोड़ रुपये। इनके साला के पास इनका साला तो गुजर गया है। साला के लड़के हैं। गोवा... गोवा... गोवा में। अपने दशाश्रीमाली बनिया है। दो अबर चालीस करोड़—धूल-धूल। आहाहा! परन्तु इस आत्मा में अलंकृत अनन्त गुण भरे हैं, इतने तो वे पैसे हैं नहीं।

यहाँ यह कहते हैं **समस्त कर्म के प्रलय...** अर्थात् नाश। उसके **हेतुभूत शुद्धोपयोग का अधिकार कहा जाता है।**

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणएण केवली भगवं।
केवल-णाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं।।१५९।।

व्यवहार से प्रभु केवली सब जानते अरु देखते।
निश्चय नयात्मक द्वार से निज आत्म को प्रभु पेखते॥१५९॥

ओहोहो! **टीका : यहाँ, ज्ञानी को स्व-पर स्वरूप का प्रकाशकपना कथंचित् कहा है।** कथंचित् स्व-पर प्रकाशक कहा है। सर्वथा परप्रकाशक है ही नहीं। आहाहा! सर्वथा तो नित्य प्रकाशक है। अरे रे! यह बात कहाँ? पर का कर्ता तो नहीं, पर को स्पर्शता नहीं, पर्याय क्रमबद्ध बदलती नहीं। आहाहा! यहाँ पर को जानना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! यह अन्तिम ले गये। पर का स्पर्श तो है नहीं, पर की क्रमबद्ध में तेरा अधिकार नहीं। आहाहा! परन्तु पर को जानना, वह भी व्यवहारनय से है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! तू तुझमें जा। तू तुझे देख। वह निश्चय वस्तु है। पर को देखना कहना, (वह भी व्यवहार है), क्योंकि पर में तन्मय नहीं होता। पर को जानने में पर में तन्मय नहीं होता, तो तन्मय हुए बिना जानना क्या? वह तो व्यवहार है। पर सम्बन्धी का ज्ञान अपना है। अपने में अपना ज्ञान है, उसमें तन्मय है तो उसमें अपने को ही जानता है। पर को जानना कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! कहाँ ले गये!

दया, दान और व्यवहाररत्नत्रय से धर्म नहीं होता, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि उसे जानना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! इसमें निवृत्ति कहाँ मिले? व्यापार और धन्धे के कारण पूरे दिन होली सुलगती है। यह लाये और यह लिया और यह छोड़ा और यह छोड़ा। आहाहा! होली सुलगती होगी। कषाय की अग्नि। कहो, रामजीभाई! इन्द्र खेती का धन्धा है। करोड़पति है। खेती का धन्धा। खेती-खेती। आहाहा! धूल का धन्धा है। आहाहा!

आतमराम पर को जानना, ऐसा कहना, वह आतमराम को व्यवहार है। अर र! पर का करना और परसम्बन्धी, पर संग से अपने में रागादि होना, वह तो अधर्म है। आहाहा! भगवान

की भक्ति, भगवान का स्मरण, वह सब राग अधर्म है। आहाहा! शुभराग कहो या अधर्म कहो। इससे आगे जाकर भगवान पर को जानता है, यह भी व्यवहार है। आहाहा! यह नियमसार! नियम-नियम। निश्चय नियम। जगत का निश्चय व्यवस्था का नियम क्या है? उसका इसमें कथन है। नियम अन्दर पाठ में आ गया। आहाहा!

ज्ञानी को स्व-पर स्वरूप का प्रकाशकपना कथंचित् कहा है। 'पराश्रितो व्यवहारः' देखो! जितना पर को जानना—ऐसा कहना, वह पराश्रित व्यवहार है। आहाहा! तीन लोक के नाथ को जानना, यह कहना व्यवहार है। **'पराश्रितो व्यवहारः'** आहाहा! अब इतनी अधिक उपाधि में से निकलना, उसमें जवान शरीर को, पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ पैसे (रुपये) प्राप्त करे। आहाहा! कुछ अन्यत्र बाहर नजर पड़े नहीं। अन्दर भगवान विराजता है, उसके सन्मुख देखने का तो समय भी नहीं मिलता। तीन लोक का नाथ नित्यानन्द सहजानन्द प्रभु, कहते हैं कि उसे पर को जानना—ऐसा कहना, वह पराश्रित है। आहाहा! कहाँ ले गये?

'पराश्रितो व्यवहारः' (व्यवहार पराश्रित हैं) ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से,... ऐसा भगवान का—शास्त्र का वचन होने से **व्यवहारनय से वे भगवान परमेश्वर परमभट्टारक आत्मगुणों का घात करनेवाले घातिकर्मों के नाश द्वारा...** क्या कहा? आत्मगुणों का घात करनेवाले निमित्त। कर्म निमित्त है। **घातिकर्मों के नाश द्वारा...** जो अपने गुण के नाश में निमित्त है, उसे नाश करनेवाले **प्राप्त सकल-विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन...** आहाहा! **द्वारा त्रिलोकवर्ती तथा त्रिकालवर्ती...** त्रिलोकवर्ती-तीन लोक में वर्तनेवाले, तीन लोक में रहनेवाले। आहाहा! **सचराचर द्रव्य-गुण-पर्यायों को...** सचराचर—कोई गति करनेवाले तो कोई स्थिर—ऐसे सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय को **एक समय में जानते हैं...** एक समय में परमात्मा जानते हैं। आहाहा! यह द्रव्य की श्रद्धा कराते हैं। द्रव्य एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानता-देखता है, यह भी व्यवहार है। अपने को तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला अपना आत्मा है। आहाहा! वह **जानते हैं और देखते हैं। शुद्धनिश्चय से परमेश्वर...** शुद्ध सत्य दृष्टि से। व्यवहारनय तो असत्य से कथन हुआ। व्यवहारनय असद्भूत कथन हुआ। आहाहा! शुद्धनिश्चयनय अर्थात् शुद्ध यथार्थ परमेश्वर महादेवाधिदेव सर्वज्ञ वीतरागदेव को **परद्रव्य के ग्राहकत्व,...** परद्रव्य को जाननेवाले और देखनेवाले **दर्शकत्व, ज्ञायकत्व आदि के विविध विकल्पों की सेना की उत्पत्ति मूलध्यान में अभावरूप होने से...** पर को जानने-देखने में भी विकल्प रहता है पर के ऊपर लक्ष्य जाए तो। आहाहा! पर को जानना-देखना भी अपना स्वभाव नहीं। अपना स्वभाव तो अपने को जानना-देखना है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(११) श्री नियमसार,गाथा-४८-४९, श्लोक-७२, प्रवचन - १६
दिनांक - २५-०९-१९६९

बिन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव हैं भवलीन त्यों॥४८॥

क्या कहते हैं।

टीका - और यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है। कहते हैं कि जिन सिद्ध भगवान ने पूर्ण केवलज्ञानादि प्राप्त किये, वे कार्यसमयसार हैं और त्रिकाली आत्मद्रव्य, वह कारणसमयसार है। समझ में आया? यह तो सिद्ध भगवान लोकाग्र में... देखो! लोकाग्र में शब्द पड़ा है न? '**लोयग्गे सिद्धा**' सिद्ध भगवान लोक के अग्र में जो अनन्त सिद्ध हैं, उन्हें कार्यसमयसार कहा जाता है। और यह आत्मा द्रव्य... पहले, दो मिनिट पहले आना चाहिए। सेठी! दो मिनिट पहले आना चाहिए। बीच में गड़बड़ होती है न? यह तो धर्मकथा है। समझ में आया? यह धर्मकथा है, इसकी शुरुआत हो, उससे पहले आना चाहिए। जिसे आना हो उसे। नहीं आना हो, उसे कुछ नहीं। क्योंकि यह कथा कहीं दूसरी नहीं है। यह तो आत्मा की कथा है। उसमें नियमसार है। यह बात अलौकिक है। समझ में आया?

सिद्ध भगवान अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन आदि पर्यायसम्पन्न है, कार्यसम्पन्न है। पर्याय में पूर्णता, उस कार्यसम्पन्न है। सम्पन्न है, इसलिए उन्हें कार्यसमयसार कहा जाता है। समझ में आया? देखो! **यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में...** कारणसमयसार अर्थात् द्रव्य। जो यहाँ शुद्धभाव अधिकार है वह। त्रिकाली द्रव्य। एक समय की पर्याय लक्ष्य में न लेकर... क्योंकि कार्यसमयसार है, वही पर्याय है और संसारपर्याय है, वह भी पर्यायनय का विषय है। यहाँ तो कहते हैं कि जैसे सिद्धभगवान हैं, वैसा ही यह अनादि संसारी का आत्मा है। देखो! '**जीवा संसिदी णेया**' उसकी दृष्टि में उसे यह बात अनादि से बैठी नहीं। वह वस्तु ऐसी है और अन्तर्मुख दृष्टि करके उसका अनुभव करना, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ

में आया? जो अन्तर वस्तु है, वह कार्यसमयसार जैसे सिद्धभगवान हैं, वैसा ही यह आत्मा है।

कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है। अन्तर है ही नहीं है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' समझ में आया? देखो! पाठ है '**जीवा संसिदी णेया**' जीव पर्याय में संसार में रहने पर भी, निगोद की पर्याय में रहने पर भी, द्रव्यस्वभाव अखण्डानन्द अभेद सम्यग्दर्शन का जो विषय है, वह चीज़ तो सिद्ध जैसी ही यह चीज़ है, उसमें कोई अन्तर नहीं है। समझ में आया? यह कथन है।

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं,.... देखो! यहाँ लोकाग्र में लिया। धर्मास्तिकाय का अभाव (है, इसलिए आगे नहीं जाते, ऐसा नहीं है)। लोकाग्र में रहनेवाली चीज़। कल प्रश्न उठा था न कि धर्मास्तिकाय अभावात्। वह तो व्यवहार का कथन है। लोकाग्र में रहते हैं, वह पर्याय का, द्रव्य का स्वभाव ही है।

लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण... यह तो पाँच शरीर का प्रपंच है। **अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं,...** ऐसा आगे सब ले लेना। **जिस प्रकार...** आगे अन्तिम लाईन है। **उसी प्रकार संसार में भी यह संसारी जीव किसी नय के बल से (किसी नय से)...** अशरीरी है, ऐसा लेना। अन्तिम शब्द है। जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्ध भगवान विराजते हैं, ऐसा निश्चयनय से। **(किसी नय से)...** अर्थात् निश्चयनय। इस नय से आत्मा अशरीरी है। अभी अशरीरी है क्योंकि शरीर की तो उसमें नास्ति है। शरीर, शरीर के कारण से टिकता है, निभता है, रहता है; वह आत्मा के कारण से है नहीं। समझ में आया? ऐसे ये संसारी जीव निगोद से लेकर (सब) द्रव्यदृष्टि से देखो तो कारणसमयसार भगवान त्रिकाली वस्तु, कार्यसमयसार सिद्ध भगवान जैसी है। सेठ! क्या कहा? जैसे सिद्ध हैं, वैसा आत्मा का द्रव्यस्वभाव अभी है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? उसमें दृष्टि करना, वह करना, दूसरा क्या करना है? द्रव्यस्वभाव ऐसा है, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि करके स्थिर होना, यह करना है। दूसरा क्या करना है? आहाहा! समझ में आया? ऐसा है, ऐसी अन्तर्दृष्टि से निर्णय करना और ऐसा है, उसमें स्थिर होना, बस यह करना है। दूसरा क्या करना? यहाँ मोक्षमार्ग की बात चलती है न! दर्शन, निर्णय करना और स्थिर होना, वह चारित्र। ज्ञान तो... समझ में आया?

एक बोल हुआ। '**असरीरा अविणासा**' है न ४८ गाथा में ? **निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों...** यह मनुष्य का शरीर आदि गति। समझ में आया ? मनुष्य का, नारकी का, देव आदि, ढोर-पशु ऐसी **पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण...** आत्मा में ग्रहण-त्याग का अभाव है। सिद्ध में अभाव है। कोई ग्रहण-त्याग है ? ऐसा ही आत्मा में है। चार गति के शरीरादि का ग्रहण-त्याग आत्मा में नहीं है।

श्रोता : वह तो पर्याय में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं वह तो जड़ में है। आत्मा में कहाँ है ? जीव में है ही नहीं। वह तो सब जड़ की दशा है। गति आदि पर की अवस्था है, आत्मा की कहाँ है ? आहाहा! ऐसी पूरी गुलाँट खाकर, पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि करना, इसका नाम मोक्षमार्ग है। समझ में आया ?

त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण... अर्थात् क्या ?—कि जन्मे तब ग्रहण है, मरे तब छोड़ता है, ऐसा आत्मा में है ही नहीं। सिद्ध में नहीं तो आत्मा में भी नहीं। ऐसा कहते हैं।

श्रोता : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब क्या ? आहाहा! किसी का त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। किसे छोड़ना ? मृत्यु काल में समाधिमरण करके देह छोड़ना। जन्मकाल में शरीर का संयोग होता है। किसे ? जन्म-मरण आत्मा में है ही नहीं न। आहाहा! समझ में आया ?

वास्तव में मनुष्य और नारकी, मनुष्य, देवादि **पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण...** सिद्ध भगवान '**अविनाशी**' **हैं,...** यह सिद्ध भगवान की व्याख्या चलती है। वैसे ही आत्मा भी द्रव्यदृष्टि से वैसा ही अविनाशी है। आत्मा में चार गति का ग्रहण-त्याग, जन्म-मरण का त्याग, यह जन्म संयोग ग्रहण किया, त्याग किया—ऐसा है ही नहीं। कहो, समझ में आया ? '**अविनाशी**' **हैं,...** इस कारण से। वे नाशवान कहे न ? आते हैं और जाते हैं, आते हैं और जाते हैं। उत्पाद-व्यय हो, ऐसी वह वस्तु नहीं है। वस्तु तो अविनाशी सिद्ध भगवान है। आना-जाना सिद्ध में नहीं है; ऐसे भगवान आत्मा चार गति का संयोग हो और गति का अभाव हो, ऐसा वस्तु में नहीं है। समझ में आया ?

और **परम तत्त्व में स्थित...** आत्मा में परमवस्तु, उसमें **सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को...** कारणशुद्धस्वरूप अर्थात् त्रिकाली द्रव्यस्वभाव। परम तत्त्व जो त्रिकाली वस्तु, उसमें स्थित रहनेवाला स्वभाविक दर्शन, ज्ञान और आनन्द। दर्शन आदि आनन्दरूप

कारणशुद्धस्वरूप त्रिकाली द्रव्य, उसे **युगपद् जानने में समर्थ...** एक समय में जानने में समर्थ **ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा...** सहज ज्ञानज्योति द्वारा **जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं, ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण...** स्वरूपवाले होने के कारण। **'अतीन्द्रिय' हैं,...** कौन? सिद्ध भगवान। धीरे-धीरे कहते हैं न, देखो!

परम तत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप... त्रिकाली। **युगपद् जानने में समर्थ...** कौन? सिद्ध। **ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा...** अपनी स्वाभाविक ज्ञानज्योति द्वारा **जिसमें से समस्त संशय दूर...** करके निःसंशय परिणमन हुआ है। **ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,...** सिद्ध भगवान। इसी प्रकार आत्मा भी अतीन्द्रिय ही है। समझ में आया? परमतत्त्व अर्थात् द्रव्यस्वभाव, वस्तु आनन्दकन्द, सहजानन्द में रहे हुए सहज दर्शन, आनन्द, वह त्रिकाली कारणशुद्धस्वरूप है। उसे एक साथ जानने में समर्थ। कौन? सिद्ध। **ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा...** सिद्ध को पर्याय में। **जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' (सिद्ध) हैं,...** इसी प्रकार आत्मा भी वैसा ही है।

श्रोता : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी।

उस पर्याय द्वारा जानता है। त्रिकाल द्रव्य को जानने की शक्ति द्वारा जानने का ही उसका स्वभाव है, ऐसा कहना है। समझ में आया? सिद्धभगवान पर्याय द्वारा त्रिकाल **परम तत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप...** परमज्ञानज्योति द्वारा जानता है। इसलिए वह सिद्धपर्याय अतीन्द्रिय है। उसी प्रकार यह आत्मा भी अपनी अन्तर दर्शन-ज्ञान की शक्ति द्वारा आत्मा त्रिकाल द्रव्य को जाने, ऐसी सामर्थ्यवाला है। इस अपेक्षा से उसे अतीन्द्रिय कहते हैं। समझ में आया?

श्रोता : ....स्वभाव की शक्तिरूप है और पर्याय में व्यक्तिरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यक्तरूप है, वह जानता है। यहाँ शक्तिरूप है, ऐसा जानने का उसका स्वभाव है। आहाहा! बहुत कठिन काम। वस्तु... वस्तु... वस्तु है। कारणसमयसार भगवान वह कैसा है, उसे कभी ख्याल में लिया नहीं। यह व्रत लिये और दया करे। कल रात्रि में एक प्रश्न उठा था न? यह प्रतिक्रमण आदि करते हैं, शुभभाव है। समझे न? और व्रत का शुभभाव है। वह शुभभाव नहीं और शुभभाव करने जाता है, कर्तृत्वबुद्धि होवे तो मिथ्यात्व का

पोषण होता है। मिथ्यात्व का पोषण होता है। ऐसी बात है कि सम्यग्दर्शन बिना शुभभाव हो। समझ में आया? व्रत का शुभभाव नहीं होता।

श्रोता : वह किस गुणस्थान में होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पंचम गुणस्थान में होता है अर्थात् व्रत का शुभभाव और इस शुभभाव में बहुत अन्तर है। अर्थात् कोई यह... ऐसा कहते हैं कि जैसे पंचम गुणस्थानवाला शुभभाव आता है और कर्तृत्वबुद्धि होवे तो मिथ्यादृष्टि है। इसी प्रकार यहाँ शुभभाव होवे परन्तु वह व्रत का शुभभाव यहाँ नहीं। यह तो स्वाध्याय, भक्ति आदि का शुभभाव है। परन्तु उस शुभभाव (के समय भी) लक्ष्य तो अन्दर होना चाहिए। स्वभाव की ओर (होना चाहिए), तो शुभभाव हो, उसे जाननेवाला रहता है और उसकी कर्तृत्वबुद्धि होवे, तब तो मिथ्यात्व है। परन्तु वहाँ चौथे गुणस्थान में या मिथ्यात्व में उस व्रत का शुभभाव नहीं होता। इतना बड़ा अन्तर है। समझ में आया? व्रत का शुभभाव। इसे सम्यग्दर्शन बिना और मिथ्यात्व होवे, उसमें नहीं होता। सम्यग्दर्शन होवे तो भी उस सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में व्रत का भाव नहीं होता, पाँचवें में होता है। जब स्वरूप में बहुत दृष्टि और शान्ति प्रगट हुई, तब व्रत का शुभभाव आया। वह शुभभाव भिन्न है और यह शुभभाव भिन्न है।

मिथ्यादृष्टि को भी व्रतरहित दया, दान आदि का शुभभाव आता है और सम्यग्दृष्टि को भी व्रतरहित दया, दान, भक्ति का भाव आता है। परन्तु व्रत के परिणाम शुभ हैं। वह सम्यग्दर्शन बिना और सम्यग्दर्शन होवे तो भी शुभभाव का कर्तृत्व उसे नहीं होता। यहाँ तो सम्यग्दर्शन नहीं है और व्रत के परिणाम (करके) मानता है कि मैं व्रती हूँ, तब तो व्रत के परिणाम की योग्यता की उसे भूमिका ही नहीं है। पण्डितजी! और उस शुभभाव का कर्तृत्व (होता है)। क्योंकि रखने का भाव तो प्रयत्न है। दृष्टि तो स्वरूप में है नहीं, दृष्टि का अनुभव तो हुआ नहीं और उसे व्रत के परिणाम में रखने का भाव हुए बिना रहेगा नहीं। मैं ऐसे रखूँ, मैं ऐसे रखूँ। समझ में आया? वह तो मिथ्यादृष्टि का पोषण है। इस बात में बहुत अन्तर। यह ऐसा स्वरूप है।

श्रोता : न जाने तो क्या दिक्कत?

पूज्य गुरुदेवश्री : न जाने तो मिथ्यात्व पोषण करता है। न जाने क्या? दिक्कत कुछ नहीं। यहाँ दिक्कत कैसी? नरक और निगोद में जाए, ऐसी दिक्कत है।

श्रोता : शुभभाव करे और नरक-निगोद में जाए?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाववाला निगोद में जाए। एकाधभव उस समय थोड़ा पुण्य बाँधे। परन्तु मिथ्यात्व का पोषण करता है और मिथ्यात्व तो निगोद का कारण है। समझ में आया? व्रत, तप—ऐसा जो विकल्प, वह तो पंचम गुणस्थान में शुरु होता है। सम्यग्दर्शन बिना नहीं। और यहाँ तो सम्यग्दर्शन बिना व्रतादि लेते हैं, सम्यग्दर्शन बिना दया, दान, भक्ति, पूजा का ऐसा भाव आता है। समझ में आया? तो उससे उसे पुण्यबन्ध होता है परन्तु वह मेरा कर्तव्य है, ऐसा स्वीकार करे, तब तो मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध होता है। वास्तव में तो मिथ्यादृष्टि को व्रत के परिणाम होते ही नहीं। समझ में आया? इसलिए कहा न कि अज्ञानी को तो बालव्रत और बालतप है।

श्रोता : दृष्टि.....

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि ही.... अभी चैतन्य निर्विकल्प ज्ञातादृष्टा है, ऐसा अनुभव तो (हुआ नहीं)। सम्यग्दर्शन की भूमिका तो प्रगट हुई नहीं।

श्रोता : चारों कषायें मौजूद हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारों कषायें और मौजूद तथा मिथ्या अभिप्राय मौजूद है। कठिन काम, भाई! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में चौथे गुणस्थानवाले को शुभभाव होता है। दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, नामस्मरण का, यात्रा करूँ.... उसे व्रत का भाव नहीं होता। वहाँ उसकी भूमिका नहीं है। समझ में आया? तो वहाँ सहज शुभभाव होता है, उसे सम्यग्दृष्टि जानता है। सहज होता है, वहाँ जानता है। और पंचम गुणस्थान में भी भूमिका की निर्मलता बहुत प्रगट हुई और शुभभाव आया, तो उसे भी सहज आया, ऐसा जानता है। मैं खींचकर लाऊँ, ऐसा नहीं होता। और अज्ञानी को तो खींचकर व्रत करना और ऐसा करना और वैसा पालना, ऐसा आता है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि विकल्प आदि और उसका कर्तृत्व आदि वस्तु में है नहीं। जैसे सिद्ध में नहीं है, वैसे आत्मा में अभी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह तो जानने-देखनेवाला आत्मा है। सिद्ध भगवान पर्याय से जानते हैं। इस द्रव्य का स्वभाव वह अपने द्रव्य को जाने-देखे, ऐसी शक्ति का स्वभाव उसमें पड़ा है। सिद्ध भगवान कार्यपर्यायरूप परिणमित हुए हैं और आत्मद्रव्य अभी कार्यरूप परिणमित नहीं हुआ है परन्तु द्रव्य है। द्रव्यस्वरूप जो कारणसमयसार है और कार्यसमयसार, दोनों में अन्तर नहीं है। भारी गड़बड़ हुई है न?

इसलिए मूल वस्तु इसे हाथ में आना मुश्किल पड़ती है और फिर व्रतादि सिर पर ले लिये हों और वस्तु तो है नहीं। अब उनके पालने के लिये जो तड़फड़ाहट अन्दर मारता है। नहीं तो बाहर में इज्जत जाए। समझ में आया?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तानुबन्धी गये बिना दूसरे कहाँ से निकले! कठिन काम है, भाई! यह तो निर्मानरूप से काम करना है। यह कहीं बाहर से मान ले कि हमें ऐसा हुआ और ऐसा है, तो वह चीज़ है नहीं। यहाँ तो सहजानन्द ज्योति अतीन्द्रिय अविनाशी निर्विकल्प राग और मोक्ष की पर्याय की क्रियारहित, ऐसे द्रव्य की दृष्टि का अनुभव हुए बिना कारणसमयसार की सम्यक् दृष्टि नहीं होती। समझ में आया?

मलजनक क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण... देखो! यह तो कहते हैं, क्षयोपशम और उदय यह सब मलजनक विभाव है। उसमें कर्म के निमित्त की अपेक्षा है न? विभावभाव है। वह सिद्ध में नहीं है, इसी प्रकार आत्मा में भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **मलजनक क्षायोपशमिकादि...** मलजनक का अर्थ क्षयोपशम तो स्वभाव का अंश है परन्तु उसमें कर्म का निमित्त पड़ा है न? क्षायिक हुआ ही नहीं। क्षायिक होवे तो भी निमित्त की अपेक्षा से उसे भी विभावभाव गिनने में आया है। त्रिकाली परमस्वभाव की अपेक्षा है। आहाहा! **मलजनक क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण...** क्योंकि क्षयोपशमज्ञान की पर्याय है, उसका आश्रय करे तो राग-मल ही उत्पन्न होता है। सिद्ध में वह है नहीं। **क्षायोपशमिकादि...** क्षयोपशम आदि लेना, उपशम आदि। **विभावस्वभावों के अभाव के कारण...** सिद्ध भगवान **'निर्मल' हैं...** इसी प्रकार यह आत्मा भी... पीछे शब्द है।

उसी प्रकार संसार में भी यह संसारी जीव... ऐसे ही हैं। शुद्धनय से। पाठ में है न? **'जीवा संसिदी णेया' 'जीवा संसृतौ ज्ञेयाः'** संसारी जीव को भी उस प्रकार से अन्तर में दृष्टि से जानना। आहाहा! **और द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों के अभाव के कारण...** सिद्ध में नहीं है आठ कर्म और नहीं दया, दान के विकल्प के भावकर्म। ऐसा आत्मा **अभाव के कारण 'विशुद्धात्मा' हैं,...** विशुद्धात्मा, देखो! यहाँ सिद्ध को विशुद्धात्मा कहा। केवलज्ञान को विशुद्ध कहा। किसी समय शुभभाव को विशुद्ध कहते हैं, किसी समय शुद्ध निर्मल पर्याय को विशुद्ध कहते हैं। अल्प शुद्धपर्याय को भी.... समझ में आया? विशुद्ध कहते हैं, शुद्धभाव को भी विशुद्ध कहते हैं, केवलज्ञान को भी विशुद्ध कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

'**विशुद्धात्मा**' **हैं, उसी प्रकार...** देखो! है? **संसार में भी...** यह संसारी विकारी पर्याय उदयभाव के काल में भी **यह संसारी जीव किसी नय के बल से (किसी नय से)...** अर्थात् निश्चयनय के बल से **शुद्ध है।** समझ में आया? सबको कहा है। यहाँ विशुद्ध आत्मा के लिये है, ऐसा नहीं है। यह पद है न? पहले कहा न? '**असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला**' इस कारण से... समझ में आया? लो! **शुद्ध है।** भगवान त्रिकाल ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... शुद्धकन्द, आनन्दकन्द दल है। वह तो जैसा सिद्ध की पर्याय में है, वैसा ही भगवान द्रव्यस्वभाव तो वस्तु ऐसी है। समझ में आया? स्तवन में आता है न? 'जैसा वहाँ वैसा यहाँ फेर नहीं।' 'जैसो शिव... वैसो ब्रह्म यहाँ बसे, तहाँ वहाँ फेर नहीं।' बात इसे अन्तर में अभिप्राय से बैठनी चाहिए। ऐसा कैसे होगा? ऐसा कैसे होगा? वह सब मिथ्यादृष्टि महाव्रत पाले, व्रत के विकल्प हैं, वे सब मिथ्यात्व को ही पोसते हैं। महापाप जो अनन्त संसार का कारण है, उसी पाप को पोसते हैं। पोपटभाई! आहाहा! ऐसा है, भाई! क्या हो?

वापस उसमें ऐसा कहा कि अभव्य है, वह भोग के लिये व्रतादि पालन करता है, ऐसा लिखा है और भव्य अशरीर होने के लिये व्रत पालता है, उसे मुक्ति होती है। गाथा है न? वहाँ तो दृष्टान्त दिया है कि अभव्य व्रतादि पाले तो मुक्ति नहीं होती। अतः भव्य को भी ऐसा है। बात तो ऐसी है। ऐसा अर्थ किया है, लो! भोग है न भोग? भोग निमित्तम्। भोग निमित्तम् लिखा है बन्ध अधिकार। बन्ध अधिकार न? कितनी गाथा है? भोग-भोग। गाथा है न? '**सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि। धम्मं भोगणिमित्तं**' इसकी व्याख्या की। कैसी की? कि जैसे किसान अनाज को जमीन पर डालता है। इसलिए नहीं कि वह बेकार है, अपितु इसलिए डालता है परन्तु इसलिए डालता है कि ऐसा करने से मुझे अधिक होकर अधिक फल देगा। इसी प्रकार अभव्य मुनि भी वर्तमान भोगों का त्याग करता है, वह वैराग्य से नहीं परन्तु मैं मानवोचित भोगों को छोड़ दूँगा तो मुझे स्वर्ग के भोग प्राप्त होंगे, इसलिए करता है।

यह तो नौवें ग्रैवेयक न जाए। और शरीर के काय-क्लेश आदि तप करता है। इसलिए कि यदि मैं शरीर को तप में लगाऊँगा तो मुझे वैक्रियक आदि ऋद्धिवाला मिलेगा। इसलिए नहीं कि मैं अशरीरी बन जाऊँगा। क्योंकि अशरीरी होने की तो उसे खबर नहीं है। इसलिए उसका श्रद्धान आदि नहीं है। ठीक! भव्य जो करता है, वह अशरीरी होने के लिये करता है। परन्तु उसमें इसका अर्थ हो गया न? अशरीर, लो ठीक! यह तो आ गया न? इसमें ही आ गया। भव्य जीव स्वयं अशरीरी होने के लिये उन्हें धारण करता है। वह यहाँ बात ही कहाँ है? अरे! भगवान!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि भाई! देखो! जितने जिनवरकथित व्रत, तप आदि शुभभाव अज्ञानी भोग के लिये करता है, इसका अर्थ (ऐसा कि) राग का अनुभव वर्तमान में है और अनुभव के लिये करता है। स्वभाव का अनुभव नहीं, राग का अनुभव है। उस राग के अनुभव में रहा करता है तो राग के अनुभव के लिये करता है, ऐसा कहा। अरे! भगवान! उससे मुझे स्वर्ग मिले तो पाप उपजे। तो नौवें ग्रैवेयक में जाए कैसे? कैसा अर्थ करता है? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि व्रत, तप, भक्ति या चाहे वह शुभभाव अभव्य करे परन्तु अशरीरी चैतन्यदृष्टि नहीं है, इस कारण से व्यवहार है, वह निषेध करनेयोग्य है। वह आत्मा को लाभदायक नहीं है। चाहे तो अभव्य करे या भव्य करे, ऐसा कहते हैं। वह तो अभव्य का दृष्टान्त दिया है। यह तो कहे, अभव्य के लिये कहा है। भव्य तो अशरीरी होने के लिये करता है। अशरीरी के लिये व्यवहार-व्रत पाले? आहाहा! क्या करता है? ऐसा समयसार छापे, लोगों को खबर नहीं होती। समझ में आया या नहीं? यह तुमको भी खबर नहीं होती। फिर ऐसा पढ़े तो हाँ, हाँ हो जाए।

श्रोता : नौवें ग्रैवेयक तक तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार गया है, अनन्त बार गया। आहाहा! परन्तु बात क्या? यह सुनी ही नहीं। वहाँ तो दृष्टान्त दिया है। भाई! जिनवर ने कहे हुए व्रत, तप, वह तो अभव्य भी अनन्त बार पालन करता है, तो उससे तो स्वर्ग मिले, कोई मुक्ति तो है नहीं। तू भी ऐसा करे तो तुझे भी स्वर्ग मिले, मुक्ति मिलती नहीं - ऐसा कहा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! आत्मा अन्दर अत्यन्त शुद्ध त्रिकाली है। यह व्रत का विकल्प भी नहीं है और व्रत के विकल्प का त्याग भी उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसा शुद्ध भगवान आत्मा, उसकी अन्तर्दृष्टि करना, आश्रय करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली भूमिका है। समझ में आया?

[अब ४८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं :]

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं
शुद्धं कारणकार्यतत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक् स्वयं
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम्॥७२॥

मुनि भी कहते हैं कि ओहोहो ! **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** देखो ! क्या कहते हैं ? **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना... विपरीत कल्पना; मिथ्या मान्यता; अनिश्चय; शंका; भेद करना।** यह शुद्ध और अशुद्ध पर्याय का भेद, वह मैं हूँ, ऐसा मिथ्यादृष्टि को होता है। पर्यायबुद्धि की बात करते हैं न ! समझ में आया ? पर्याय से शुद्ध और संसारदशा में अशुद्ध। ऐसा एक द्रव्य में भेद डालता है, वह पर्यायबुद्धिवाला मिथ्यादृष्टि है। समझे नहीं, हम तो नहीं समझे। फिर से कहते हैं न, उसमें लिखा है ?

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;... हमेशा होती है, इसका अर्थ कि अज्ञानी की दृष्टि द्रव्य और स्वभाव पर नहीं है तो अज्ञानी विकल्प में और पर्याय में मैं अशुद्ध हूँ और पर्याय शुद्ध होगी, ऐसी पर्याय पर उसकी दृष्टि है। तो पर्याय पर दृष्टि के कारण से विपरीत मान्यता है। विपरीत मान्यता के कारण से मिथ्यादृष्टि है।

श्रोता : द्रव्य शुद्ध है, ऐसा नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य शुद्ध नहीं आया। पर्याय में यह अशुद्ध है, वह निकलकर पर्याय में शुद्ध होगा। दृष्टि पर्याय में और पर्याय में है। समझ में आया ? गजब डाला है, देखो ! उसको कठिन पड़े ऐसा है।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरी बात है। उसकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो द्रव्यदृष्टि के विषय में वह बात नहीं है। समझ में आया ? यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय के अंश ऊपर यह अशुद्ध है और यह अंश टलेगा तो शुद्धता (प्रगट होगी)। ऐसी उसकी दृष्टि अंश के ऊपर, पर्याय के ऊपर है। समझ में आया ? पूरा द्रव्य जो चिदानन्द चौसलुं भरा है अखण्डानन्द, उसका अनादर हो गया। ऐसी बात है। आहाहा !

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अवगुण देखना-बेखना नहीं। देखता कौन है ? अवगुण देखे कौन ? द्रव्यदृष्टि होवे, तब अवगुण की पर्याय का ज्ञान करे। इसके बिना अवगुण देखे कौन ? चन्दुभाई ! यह सब अलग प्रकार है। गत काल में सब शून्य रखने पड़ेंगे। कहो, समझ में आया ? उसमें आता अवश्य है न ? 'अधमा अधम अधिपो पतित सकल जगत में मैं, ऐसा लक्ष्य हुए बिना...' वह तो इसकी पर्याय में ऐसा हूँ, ऐसा ज्ञान कराते हैं। समझ में आया ? ऐसा कि... होता है वहाँ। यह शब्द जरा कठिन है, देखो ! लोग वे... '**शुद्धाशुद्धविकल्पना**

भवति सा मिथ्यादृशि' उसका अर्थ कि पर्यायरूप जो अवस्था है, द्रव्य तो त्रिकाली आनन्दकन्द ध्रुव है, उस पर तो इसकी दृष्टि ही नहीं है और पर्याय के अंश पर इसकी खलबलाहट है। पर्याय में खड़े रहकर, अवस्था में खड़े रहकर यह अशुद्ध है, फिर शुद्ध होगा; इस प्रकार पर्याय में खड़े रहकर यह बात विचारता है तो वह पर्यायबुद्धिवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

बहुत देखो न! '**शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि**' आहाहा! यह तो आगे आवश्यक के अधिकार में कहेंगे। समझे? बहिरात्मा ने यह विचार यह है न एक दूसरा बोल? आवश्यक में है? आलोचना? आवश्यक-आवश्यक का नहीं एक? इसमें कहाँ है? श्लोक है १५०।

अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा॥

लो! यह तो हिन्दी है न, इसलिए और आ गया। १५०वीं गाथा। १५० है न? देखो! इसका अर्थ लो। **जो अन्तर्बाह्य जल्प में वर्तता है, वह बहिरात्मा है...** भाषा देखो! इसका अर्थ कि पर्यायबुद्धि में वर्तता है। समझ में आया? **वह बहिरात्मा है....** है शब्द? शोभालालजी!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ठीक। ऊपर शब्दार्थ है। **जो अन्तर्बाह्य जल्प...** यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य का महासिद्धान्त है। अन्वयार्थ-शब्दार्थ है। उसके ऊपर, तुमने पढ़ा उसके ऊपर। शब्दार्थ है। **वह बहिरात्मा है...** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। पर्याय के भेद में पड़ा है। अभी तुम्हारे ऐसा प्रकार नहीं चलता। पर्याय के भेद में पड़ा है। पूरा द्रव्य चूक जाता है। ऐ... बसन्तजी! आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, देखो!

जो अन्तर्बाह्य जल्प में वर्तता है,... इसका अर्थ कि विकल्प की पर्याय में वर्तता है। शुभादि वर्तमान विकल्प आया कि मैं ऐसा हूँ, ऐसा हूँ - ऐसे विकल्प में वर्तता है। विकल्प में वर्ते, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? द्रव्यस्वभाव में वर्ते, वह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! गजब काम, भाई! यह नियमसार तो समयसार से भी कितनी ही बातों में सूक्ष्म है। इसलिए लोगों ने जरा ठीक पढ़ा नहीं और नियमसार निकला ही अभी। वे भाई शीतलप्रसाद नहीं? हाथ आया। जयपुर में न? जयपुर में चातुर्मास था। शीतलप्रसाद। यह नियमसार बाहर नहीं था। श्रीमद् के समय में बाहर आया नहीं था। श्रीमद् को यह मिला ही नहीं। यह तो अभी शीतलप्रसाद वहाँ रहे थे, उसमें बाहर आया। फिर उन्होंने थोड़ी हिन्दी टीका बनायी। पश्चात् बाहर आया। अभी ही आया है, पहले बन्द था।

श्रोता : शीतलप्रसाद कब हुए ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे अभी हुए। अभी थे न।

अपने है यहाँ। यह नियमसार है। शीतलप्रसाद का। शीतलप्रसाद (संवत्) १९९४ के वर्ष में यहाँ आये थे। पन्द्रह दिन रहे थे। अपने जो उघाड़ा न ? स्वाध्यायमन्दिर। स्वाध्यायमन्दिर का यह जो वह किया न, समयसार की प्रतिष्ठा। वह उनके हाथ से की थी। अपने को कहाँ मन्त्र-बन्त्र ऐसे आते हैं। वे यहाँ थे। उद्घाटन हुआ और पन्द्रह दिन यहाँ थे। शीतलप्रसाद, १९९४ में आये। फिर गुजर गये। लखनऊ में रहते थे न ? उद्घाटन किया। मित्र के साथ रहते थे। १९९४ के वर्ष में यहाँ पन्द्रह दिन रह गये। दृष्टि की खबर नहीं थी, निमित्त की प्रधानता से यहाँ कथन करते थे। शीतलप्रसाद ने किया। समझ में आया ? उससे पहले उनके हाथ में आया। जयपुर के भण्डार में से (हाथ में आया था)। चातुर्मास किया, तब हाथ आया। फिर उन्होंने हिन्दी बनाया। वह पुस्तक यहाँ है, पुरानी। यह तो नया बनाया। यह हिम्मतभाई ने मूल संस्कृत को लगकर बनाया है। ऐसा शुद्ध तो उसमें नहीं है। समझ में आया ? ओहोहो !

श्रोता : बहुत गम्भीर भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात गम्भीर है, भाई ! शीतलप्रसाद ने उसमें लिखा है कि समयसार से भी नियमसार बहुत सूक्ष्म है, उससे भी अधिक है। ऐसा उन्होंने लिखा है। यह पढ़े, समझे नहीं। क्या कहते हैं ?

अब स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा कि अन्तर और बाह्यजल्प में वर्तता है, वह मिथ्यादृष्टि है। अब इसमें से निकाला क्या ? विकल्प नहीं है ? समकिती को नहीं ? सुन तो सही ! समकिती जल्प में वर्तते नहीं। समकिती ज्ञान में वर्तते हैं। जल्प का ज्ञान करते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? राग में वर्तते हैं, वर्तन में पड़ा है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वह तो आस्रव में वर्तता है। जो आत्मस्वभाव नहीं है, उससे विरुद्धभाव (है), उसमें वर्ते तो कुन्दकुन्दाचार्य ने १५० गाथा में कहा कि **अन्तर्बाह्यजल्प में वर्ते वह...** मिथ्यादृष्टि है। तब कोई भड़के... अरर ! बस ! तो समकिती को, मुनि को विकल्प होता ही नहीं। मुनि को अट्ठाईस मूलगुण और महाव्रत के विकल्प होते हैं। अरे ! सुन तो सही। तुझे खबर नहीं है। वह विकल्प है, उसमें ज्ञानी वर्तते नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? आस्रव में वर्ते तो दृष्टि मिथ्यात्व हो गयी। मिथ्यात्व हो गया। आहाहा ! यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य १५० गाथा में पुकार करते हैं। समझ में आया ? और यहाँ टीका का कलश है।

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना... हमारे पण्डितजी ने विकल्पना का अर्थ किया न? **विपरीत कल्पना;...** विपरीत कल्पना अर्थ द्रव्यदृष्टि छोड़कर पर्यायबुद्धि में आया? पर्याय में अपना सर्वस्व माना, ऐसा कहते हैं। भगवान आनन्दकन्द ध्रुवस्वभाव का अनादर हुआ। समझ में आया? अरे! एक समय की पर्याय, उसमें खड़े रहना, वही मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वह पर्यायबुद्धि है। धर्मी को पर्यायबुद्धि नहीं है। समझ में आया? वह आता है न? पर्यायबुद्धि नहीं। बनारसीदास में है। 'ऋद्धि सिद्धि दिषै घट में प्रगट सदा अन्तर ऐसी लक्षी सौं अजाचि लक्षपति है, दास भगवन्त के उदास रहे जगत सों, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है।' चौथे गुणस्थान की बात करते हैं। न गृहस्थ है, न यति हैं। नहीं श्रावक, नहीं साधु। चौथे की बात करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि अहो! **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** विपरीत मान्यता अर्थात् कि अंशबुद्धि में रहकर अंश की कल्पना में वर्ते, **वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** क्योंकि वस्तु द्रव्य है, वह तो दृष्टि में आया नहीं तो पर्याय में ऐसी कल्पना करता है कि यह अशुद्ध है, शुद्ध होगा। वह तो पर्याय में खड़े रहकर सब बात विचारता है, करता है, बोलता है। वह तो पर्यायबुद्धि है। वह तो मिथ्याबुद्धि है। अंशबुद्धि में पूरे द्रव्य का अभाव करता है। गजब काम। समझ में आया? **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** ऐसी भाषा है। क्यों? चाहे तो व्रत, तप, दया, दान, भक्ति करे और मौन रहे और बोले तो उसमें राग का ही अन्दर आश्रय और राग पर ही उसकी बुद्धि है। आहाहा! समझ में आया? **सदैव होती है;...** ऐसा कहा है। देखो! निरन्तर, सम्यग्दृष्टि को निरन्तर विकल्प में वर्तना है नहीं। आहाहा! **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** भेदबुद्धि, पर्यायबुद्धि, विपरीत कल्पना, वस्तु से विपरीत पर्यायबुद्धि की कल्पना, **वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** हमेशा होती है। आहाहा! एक अंश में खड़ा रहकर सब विचारता है। समझ में आया? एक अंश में खड़ा है, वह तो अंशबुद्धि होगी, पर्यायबुद्धि हुई। परसमय हुआ।

सम्यग्दृष्टि को तो सदा (ऐसी मान्यता होती है कि)... देखो! सामने डाला है। गुलांट खाकर। **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं।** कारणद्रव्य भी शुद्ध है और कार्यभगवान सिद्ध भी शुद्ध है। ऐसी मान्यता में उसकी पर्यायबुद्धि नहीं होती। द्रव्यबुद्धि होती है, ऐसा कहते हैं न? **सम्यग्दृष्टि को तो सदा (ऐसी मान्यता होती है कि)** कारणद्रव्य त्रिकाल शुद्ध है। पर्याय अशुद्ध और फिर पर्याय शुद्ध (होगी), वह तो पर्यायदृष्टि की बात है। द्रव्य में ऐसा है नहीं। **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं।**

इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा... देखो! अहो! **इस प्रकार परमागम के...** भगवान का परमागम, उसका जो अतुल अर्थ, उपमारहित अर्थ। आहाहा! **परमागम के अतुल अर्थ को...** अतुल अर्थ के निश्चय का जो अर्थ है, उसे अर्थ समझता है, ऐसा कहते हैं। **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि...** सार है तो कारणद्रव्य है, बाकी रागादि या पर्याय आदि असार है। आहाहा! देखो! यह गाथा अपने आ गयी। कलश में आया था। सर्व तत्त्व में सार आत्मा है। संवर, निर्जरा, पर्याय भी नहीं। समझ में आया? पहले ३८वीं गाथा में आया था न? कलश में आया था न? कलश में। **सर्व तत्त्व में जो एक सार है...** ३८ गाथा का पहला कलश है। ५४वाँ कलश है। **सर्व तत्त्व में जो एक सार है...** सर्व तत्त्व में एक सार। एक सार अर्थात् द्रव्य सार। पुण्य-पाप विकल्प और संवर, निर्जरा, मोक्ष सर्व तत्त्व में भी एक द्रव्य सार। एक सार और पर्याय आदि असार—दोनों का विचार करने में सुन्दर बुद्धिवाले सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं, देखो!

इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को... परमागम के अतुल—उपमारहित जो न्याय कहना है, ऐसे **अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,...** कारणतत्त्व द्रव्यस्वभाव और कार्य, दोनों शुद्ध ही है। बस, उसमें और अशुद्धता यहाँ है और पश्चात् शुद्ध होगा, ऐसा द्रव्य में नहीं है। **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को...** शास्त्र के महाअलौकिक अर्थ को, **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को तो सार चीज़ एक ध्रुव ही है। सम्यग्दृष्टि का विचार और सार तो एक ध्रुवतत्त्व ही है। ऐई!

श्रोता : कार्यशुद्ध...

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्यशुद्ध वह तो सिद्ध की बात की है। कारणतत्त्व तो द्रव्य लिया। वह तो पहले आ गया। समझ में आया? यह बात तो सम्प्रदाय में चलती नहीं। सम्प्रदाय में तो व्रत करो, तप करो, दया करो, दान करो, यह छोड़ो... यह छोड़ो... सब छोड़ो। छोड़ो धर्म। आहाहा! क्या करे? आहाहा! लुटाया है, लुट गया है। पूरा जगत वीतरागमार्ग से विरुद्ध जाकर लुट गया है। वीतराग परमात्मा कहते हैं, उसकी इसे खबर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो उसमें भी आया न? समस्त नष्ट होनेयोग्य भाव से दूर है। उत्पाद-व्यय से भी दूर है। यह आया था। **सर्व तत्त्व में जो एक सार है...** और समस्त नष्ट होनेयोग्य भाव से दूर है। राग से तो भगवान दूर है, परन्तु उसकी पर्याय उत्पाद-व्यय से भी दूर है। क्या कहते

हैं ? समझ में आया ? ....देवीलालजी ! अभी तो एकेन्द्रिया, दो इन्द्रिया, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिया, पंचेन्द्रिया में पड़ा हो। तत् मिच्छामि दुक्कडम्... पूरा आत्मा छूट गया। आत्मा किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा !

कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि कैसे हैं ? कि परमागम के उपमारहित निश्चय के अर्थ। **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,...** स्वयं जानता है। पर की अपेक्षा रखे बिना (जानता है)। द्रव्य त्रिकाली ध्रुव शुद्ध है, वह मैं हूँ। पर्याय आवे, जावे, उत्पन्न हो, वह भी मेरा त्रिकाली स्वरूप नहीं है। आहाहा ! मुनि कहते हैं, अहो ! **उसे हम वन्दन करते हैं।** यह तो मुनि। प्रमोद आता है। आहाहा ! धन्य भाई ! तेरा अवतार, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह... अर्थात् बहुत आदर करते हैं, ऐसा। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की प्रधानता से कथन है न ? समझ में आया ? यहाँ मुनि जो सम्यग्दृष्टि है, उसे... यहाँ उसका आदर करते हैं। अहो ! धन्य भाग्य ! तेरी दृष्टि और तेरा ज्ञान यथार्थ है। ऐई ! समझ में आया ? लो, ४८ गाथा पूरी हुई। ४९ (गाथा)।

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्धसहावा सुद्धणया संसिदी जीवा॥४९॥

ध्यान रखना। अन्दर टीका में उपादेय शब्द आयेगा। यह '**ववहारणयं पडुच्च भणिदा**' इसका अर्थ यह किया है। व्यवहारनय से बतलाये हैं, उसका अर्थ यहा उपादेय अर्थात् ज्ञान करने के लिये कहा है। समझ में आया ?

व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये।
हैं शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से॥४९॥

कौन ? यह नरकगति, राग और पर्याय ये सब। व्यवहारनय (जीव के कहे) उदयभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव... यह धर्म की पर्याय और आत्मा भगवान ने व्यवहारनय से कहा है। है न ? '**ववहारणयं पडुच्च**' व्यवहारनय के आश्रय से कहा है। यह अर्थ इसमें उपादेय में लिया है। उपादेय अर्थात् वे जाननेयोग्य हैं। वह व्यवहारनय का विषय जाननेयोग्य है और स्वभाव त्रिकाली वस्तु आदरणीय है। समझ में आया ? भवलीन अर्थात् संसारी। **संसिदी** है न अन्दर ? **संसिदी** अर्थात् भवलीन। वह सिद्धस्वभाव सिद्धस्वभाव जैसे सर्व

आत्मा हैं। व्यवहारनय से ज्ञान कराया। उदयभाव, क्षायिकभाव आदि पर्याय में व्यवहारनय से है। ओहोहो! समझ में आया?

सच्चा मोक्षमार्ग जो चिदानन्द भगवान आत्मा के अन्तर आश्रय से जो प्रगट हुआ, वह भी व्यवहारनय का विषय जाननेयोग्य है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अस्ति है न? अस्ति अर्थात् जाननेयोग्य है। जानने के लिये उसे उपादेय कहने में आता है। कहा न? यह टीका में आयेगा उपादेय का अर्थ। त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है, वही जाननेयोग्य और आदरणीय है। परन्तु पर्याय में जो क्षायिकभाव आदि उदयभाव है, वह जाननेयोग्य है, उसका ज्ञान करनेयोग्य है। वह अस्ति है न? पर्याय में रागादि है, निर्मल पर्याय है तो उतना ज्ञान करना, इसके लिये उपादेय कहा गया है। ज्ञान करने के लिये। समझ में आया? आश्रय करनेयोग्य और आदर करनेयोग्य है, ऐसा नहीं है। यह बात ही बोलता है न? देखो न? **'ववहारणयं पडुच्च भणिदा'** व्यवहारनय आश्रय कहा। कहा अर्थात् जाननेयोग्य है। ऐसा उसका अर्थ लेना। कथन तो वाचक है परन्तु व्यवहारनय से वह पर्याय है, उसे जाननेयोग्य है। समझ में आया? अरे! गजब बात!

देखो! **टीका - यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन (कथन) है।** देखो! यह उपादेय का अर्थ वह व्यवहारनय को जानने का अर्थ किया है। उसका दूसरा पद है न? वह जाननेयोग्य है। व्यवहारनय का विषय नहीं है, ऐसा नहीं है। है? वेदान्त कहता है कि अकेला द्रव्य है और पर्याय नहीं, राग नहीं (तो) ऐसा नहीं है। पर्याय है, शुभराग आदि है, क्षायिकभाव आदि है, उपशमभाव आदि है। है, उसे जानना। ऐसे ज्ञान का ग्रहण करना, ऐसा कहने में आया है। वह भी उसमें आया न, मोक्षमार्गप्रकाशक में। नय को ग्रहण करने का कहा न? यह उपादेय अर्थात् ग्रहण। उपादेय अर्थात् ग्रहण। ग्रहण करने का कहा है न? ग्रहण करने का अर्थ जाननेयोग्य है। समझ में आया? इसका विशेष अर्थ कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२०

श्री नियमसार,गाथा-५०, प्रवचन - १८
दिनांक - २७-०९-१९६९

५० गाथा, नियमसार।

यह, हेय-उपादेय अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है। यह बहुत ऊँची-सर्वोत्कृष्ट गाथा है। सार-सार है।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा॥५०॥

परद्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व है आदेय ही॥५०॥

इस गाथा में हेय कौन है और अंगीकार करनेयोग्य उपादेय कौन है? उसकी गाथा है—मोक्षमार्ग के अधिकार की। **त्याग-ग्रहण के स्वरूप...** हेय का त्याग और उपादेय का ग्रहण। जो ४९ गाथा में व्यवहार से है, ऐसा जो कहा था, वह कोई विभावगुण पर्याय है, व्यवहार से है। पर्याय है। इतना, हों! आदरणीय-फादरणीय का प्रश्न नहीं है। अस्ति धराती है। सवेरे आया था न? परमार्थ से नहीं। व्यवहार से पर्याय में राग पर्याय, उदय, क्षयोपशम पर्याय है, बस इतना। समझ में आया? व्यवहारनय से विभावगुणपर्याय अर्थात् चार भाव की पर्याय—दया, दान आदि विकल्प, उपशम समकित आदि पर्याय, क्षयोपशमज्ञान आदि पर्याय और क्षायिक समकित आदि पर्याय—ये चार। चारों ही विभावगुणपर्याय है। समझ में आया?

विभावगुणपर्यायें हैं, वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं... जाननेयोग्य है। है—ऐसा जाननेयोग्य जो कहा था, **किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से) वे हेय हैं।** लो!

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, इनकार किया न? उसमें है ही नहीं।

श्रोता : नहीं, तू नहीं, मैं... तू नहीं, मैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो एक क्षायिक केवलज्ञान भी अपना स्वरूप नहीं है। समझ में आया ? मिथ्यात्वभाव, शुभाशुभरागभाव और उपशम समकित आदि भाव, क्षायिक समकित आदि भाव या उपशमचारित्र आदि पर्याय या केवलज्ञानादि पर्याय। जितने उदयभाव, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक वह सब पर्याय है। तो पर्याय से वह जाननेयोग्य है, ऐसा व्यवहारनय से कहा है। है, पर्याय है इतना। **किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से...** अन्तर द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करनेवाले ज्ञान से **वे हेय हैं।** चारों पर्याय हेय हैं। ओहोहो ! अभी तो यहाँ शुभराग हेय मानने में इसे पसीना आता है। ऐई ! शोभालालजी !

श्रोता : पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो चारों पर्याय। यहाँ तो अभी शुभ उपयोग हेय है, यह मानना भी कठिन पड़ता है। सुने वहाँ अरेरे... (हो जाता है)।

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य एक आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वभाव, त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, त्रिकाली कारणपरमात्मा, वही आदरणीय है। इसके अतिरिक्त शुभभाव या उपशम आदि भाव या क्षयोपशम, क्षायिक वह आदरणीय नहीं है। पाठ में ऐसा लिया है **'परदव्वं परसहविमिदि हेयं'** अर्थ में **'परदव्वं परसहविमिदि हेयं'** (लिया है)। टीका में.. **'हेयं परसहविमिदि 'परदव्वं'** ऐसा लिया है। टीका में पहले हेय लिया है। पश्चात् परस्वभाव और परद्रव्य लेंगे। पाठ में **'परदव्वं परसहविमिदि हेयं'** है। उस हेय को टीका में पहले डाला है। क्योंकि उपादेय-हेय करना है न ? समझ में आया ? शान्ति से समझने की बहुत अलौकिक गाथा है।

वस्तु एक समय में ध्रुव चैतन्यकन्द निर्विकल्प निष्क्रिय। 'निष्क्रिय' शब्द से उसमें क्षायिकभाव की पर्याय नहीं, उपशम की नहीं, क्षयोपशम की नहीं और राग की तो नहीं, यह तो साधारण बात है। समझ में आया ? ऐसा आत्मा त्रिकाली निष्क्रिय ध्रुव, वही सम्यग्दृष्टि को उपादेय और आदरणीय है। इसमें है ? देखो ! समझ में आया ? आहाहा !

व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं... ४९ गाथा में। उपादेय अर्थात् जाननेयोग्य कहने में आयी थी। जानना अर्थात् ग्रहण करना, ऐसा कहने में आया था परन्तु यहाँ कहते हैं कि वास्तविक दृष्टि से भगवान आत्मा में दो अंश है। नय तो अंश को विषय करता है न ? नय पूरे को विषय नहीं करता, द्रव्य-पर्याय दोनों को विषय करे तो प्रमाणज्ञान होता है। समझ में आया ? पूरा पूर्ण द्रव्य और एक समय की अवस्था, दोनों का ज्ञान करे, वह तो प्रमाणज्ञान हुआ परन्तु नय में तो एक अंश का ज्ञान है, तो व्यवहारनय है, वह वर्तमान चार पर्याय है, ऐसा जानता है। द्रव्य में वर्तमान पर्याय में चार प्रकार की अवस्था है,

ऐसा व्यवहारनय, प्रमाण का अंश है, इस कारण व्यवहारनय का अंश अस्ति है, ऐसा जानता है। समझ में आया?

परन्तु निश्चयनय, उस पर्याय के अंशरहित त्रिकाली द्रव्य जो है, वह **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** देखो! **व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं...** वही। **किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से...** अन्दर संस्कृत में है। है न? '**व्यवहारनयादेशादुपादेयत्वेनोक्ताः शुद्धनिश्चयनयबलेन हेया भवन्ति।**' वह तो अनादि सनातन सत्य है। लोगों की समझ में नहीं आता और ऐसा पकड़कर... यहाँ तो कहते हैं कि एक समय के अंश में जहाँ रुका तो द्रव्य का अनादर हो जाता है। राग में तो नहीं, राग तो शुभभाव दूसरी चीज़ रही, परन्तु क्षयोपशमज्ञान जो राग को जाननेवाली (ज्ञान) की जो पर्याय है, वह अंश है, वहाँ खड़ा रहा तो द्रव्य का अनादर किया। समझ में आया? पर्याय में रहकर द्रव्य को देखना, ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। पर्याय से द्रव्य में देखना। परन्तु वह द्रव्य ध्रुव है, उसमें पर्याय को स्थापित करना। आहाहा! समझ में आया? राग में, निमित्त में रहकर द्रव्य की दृष्टि नहीं होती, द्रव्य की दृष्टि नहीं होती परन्तु एक समय की पर्याय में रहकर द्रव्य की दृष्टि नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? गजब बात, भाई!

शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से)... बल कहा न? उसके कारण से। **वे हेय हैं।** चार प्रकार के उदयभाव जो इक्कीस प्रकार के... आदि है न? क्षायिक के नौ प्रकार। पहले आ गया है। क्षायिक के नौ प्रकार, उपशम के समकित-दर्शन (और चारित्र) दो प्रकार, क्षयोपशम के कितने प्रकार? उदय के इक्कीस और क्षयोपशम के अठारह। ये सब प्रकार धर्मी को दृष्टि में हेय है। आहाहा!

श्रोता : हेय का ज्ञान कराया?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? समझ में आया?

एक परमपारिणामिक त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, वही धर्मी जीव को सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो... क्या बताया? बराबर कहा है। ४९वीं गाथा में कहा था कि जाननेयोग्य है, इस अपेक्षा से ग्रहण करनेयोग्य है। इस अपेक्षा से कहा था। वह यहाँ कहते हैं कि वे चारों पर्यायें हेय हैं। एक द्रव्यस्वभाव त्रिकाली ध्रुव वह सम्यग्दृष्टि को उपादेय

है। आहाहा! क्या हो? पूरा मार्ग ही गुलाँट खा गया। सम्प्रदाय में तो पूरी चीज़ ही उल्टी कर डाली है। शास्त्र देखे नहीं, शास्त्र पढ़े नहीं और अपनी दृष्टि से अन्दर अर्थ करे। पण्डितजी! यह पण्डित लोगों को निवृत्ति नहीं है। अपनी दृष्टि से पढ़े, निवृत्ति नहीं। समझे? फुरसत नहीं और पढ़े तो अपनी दृष्टि से। क्या तत्त्व है?

यहाँ तो कहते हैं कि पहले धड़ाके सम्यग्दर्शन के काल में, सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ उस काल में अकेला द्रव्यज्ञायकस्वभाव ध्रुव अखण्ड अक्रिय, निष्क्रिय। चार प्रकार की पर्याय तो सक्रिय है। पलटन क्रिया है। समझ में आया? एक समय की अवस्था। केवलज्ञान भी एक समय की अवस्था है। समझ में आया? उपशम समकित भले असंख्य समय रहे, परन्तु एक समय की अवस्था है, दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी (होती है)। तो कहते हैं कि भगवान आत्मा, जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो अर्थात् जिसे आत्मद्रव्य अंगीकार करना हो... समझ में आया? तो आत्मा में जो वर्तमान पर्याय अंश दिखता है, वे सब अंश चार प्रकार की पर्यायें सभी हेय हैं, आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा!

श्रोता : बहुत आश्चर्यकारी बात है साहेब।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह देह और देह की क्रिया तो कहीं जड़ में रह गयी। यह दया, दान और व्रत के परिणाम तो विकार में कहीं भिन्न रह गये। आहाहा! क्या करे? महासागर ध्रुव प्रभु! एक समय में चिदानन्द, परमानन्द, अनन्त सिद्धपर्याय जिसमें अन्तर (में) पड़ी है, ऐसा भगवान ध्रुवस्वरूप एक समय के अंश से रहित, उस अंश में द्रव्य नहीं और द्रव्य में वह अंश नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि जो वहाँ ४९ गाथा में विभावगुण (कहे थे), विभाव शब्द से ये चारों ही, हों! निमित्त की अपेक्षा का अभाव होकर होता है तो केवलज्ञान को भी एक न्याय से यहाँ विभावपर्याय कही है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गुण की पर्याय है न? यह गुण शब्द से कहा। गुणपर्याय। गुणपर्याय कहा न? गुण नहीं, गुण की पर्याय। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानगुण की केवलज्ञान एक समय की पर्याय, ज्ञानगुण की क्षयोपशम एक समय की पर्याय और चारित्रगुण की एक समय की विरुद्धरूप से शुभराग पर्याय और समकितरूपी श्रद्धा नाम के गुण की क्षायिक समकित एक समय की पर्याय। वह क्षायिक समकित की पर्याय भी हेय है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! क्योंकि पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती। समझ में आया?

श्रोता : विभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त की अपेक्षा आयी न? विशेषभाव। सामान्य भाव नहीं, त्रिकाली सामान्य भाव नहीं। समझ में आया?

पहले शब्दार्थ करते हैं, हों!... टीका करने से पहले शब्दार्थ करते हैं। देखो! अन्वयार्थ है न, अन्वयार्थ?

अन्वयार्थ : '**पूर्वोक्तसकलभावाः**' यह ऊँची गाथा है न? पहले अन्वयार्थ लेते हैं। **पूर्वोक्त...** पूर्व में कहे हुए ऐसे। **सर्व भाव...** भाव अर्थात् पर्याय। वह '**परस्वभावाः**' **पर स्वभाव हैं,...** आत्मस्वभाव नहीं है। आहाहा! वाह! केवलज्ञान की पर्याय परस्वभाव, क्षायिक समकित की पर्याय परस्वभाव है। त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से परस्वभाव है। आहाहा! पूनमचन्दजी! गजब बात है। दुनिया को... हिन्दुस्तान में तो झगड़ा चलता है। यहाँ तो अब बहुत परिचय हुआ न, सुननेवाले भी अभी समझते नहीं। सुनने आते हैं, वे भड़कते हैं। हाय.. हाय.. हें! दया, दान, व्रत के परिणाम का कर्तृत्व मिथ्यात्व? अब सुन तो सही। यह दया, दान, परिणाम करने योग्य है, ऐसी मान्यता, वह मिथ्यात्व है, विकार है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जो **पूर्वोक्त सर्व...** पर्याय। भाव शब्द से यहाँ पर्याय। कितनी? कि उदयभाव के जो बोल हैं, क्षयोपशमभाव के जो बोल हैं, उपशमभाव के और क्षायिक के। सर्व पर्यायें '**परस्वभावाः**' है। द्रव्यस्वभाव अपना स्वभाव और वह परस्वभाव। पर्याय जाने पर है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं, देखो तो सही। ओहोहो! वह मैं नहीं। केवलज्ञान की पर्याय मैं नहीं। आहाहा! शोच मचावे। पर्याय व्यवहारनय का विषय है, वह मेरा नहीं है। मैं तो ध्रुव त्रिकाली शुद्ध द्रव्य हूँ, ऐसा धर्मी की दृष्टि में ध्रुव उपादेय है। आहाहा! भगवानजीभाई! यह तो अलौकिक गाथा आयी है। इस समय पर्यूषण में सब अधिकार अच्छा आया है। सवेरे समयसार संवर (अधिकार), दोपहर को नियमसार। आहाहा!

कहते हैं कि **पूर्वोक्त...** जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने द्रव्य की पर्याय में कहा था, वह सर्व पर्याय परस्वभाव है, उसका अर्थ कि स्वस्वभाव नहीं है। आहाहा! पाठ में पहले परद्रव्य है, फिर परस्वभाव लिया है परन्तु यहाँ इसमें पहले परस्वभाव है, इसलिए परद्रव्य है, ऐसा लिया है। समझ में आया? आहाहा! टीका में पहले हेय कहकर पश्चात् परस्वभाव और परद्रव्य कहा। फिर परद्रव्य लेंगे।

श्रोता : परस्वभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहना तो एक ही है। परस्वभाव है, वह विशेष पर्याय हुई न? विशेष अवस्था। सामान्य नहीं।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर का स्वभाव है। वह द्रव्य के स्वभावरहित है, तो पर का ही स्वभाव है। समझ में आया? '**व्यवहारो अभुयत्थो**' व्यवहार, वह असत्यार्थ है। तो वह पर्याय सब असत्यार्थ है। त्रिकाली की अपेक्षा से असत्यार्थ है। (समयसार) ११वीं गाथा में भी यही कहा है। यह बात है। आहाहा!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब दूसरे प्रकार से बात की है। पर्यायमात्र व्यवहार है। क्या? परिणाममात्र व्यवहार है। चाहे तो केवलज्ञान परिणाम हो या चाहे तो क्षयोपशम समकित के परिणाम हों, परिणाममात्र-पर्यायमात्र व्यवहार है।

श्रोता : व्यवहार असत्यार्थ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार असत्यार्थ है, हेय है; आदरणीय नहीं। आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समकिती के कारण। जिसे समकित ग्रहण करना है, उसके लिये। यह तो अभी क्या आया? समकित की बात चलती है, मोक्षमार्ग की बात चलती है। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, पहले चौथा गुणस्थान जिसे प्रगट करना हो, आहाहा! उसे सर्व पर्याय परस्वभाव है। आहाहा! बात वह भी कुछ बात है न! द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से पर्यायस्वभाव परस्वभाव गिनने में आया है। निश्चयस्वभाव की अपेक्षा से पर्यायस्वभाव व्यवहारस्वभाव कहने में आता है, तो व्यवहारस्वभाव... उसे परस्वभाव कहने में आया है। शोभालालजी! कभी सुना नहीं। ऐई..! गड़बड़ सब गड़बड़। भगवान परमात्मा शुद्ध चैतन्यध्रुव महासागर अनन्त पुरुषार्थ का सागर, अनन्त ज्ञान का सागर, अनन्त दर्शन का सागर। लो! यह सागर आया तुम्हारे। 'सागर उछल्यो ने...' क्या? ऐसा आता है न कुछ? गाते थे न? लहरियां चढीं... क्या कहा?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय है। स्वसमय की एक समय की पर्याय है, वह परस्वभाव है। यहाँ तो बहुत उत्कृष्ट बात है। जरा सूक्ष्म बात है। स्वसमय की जो पर्याय है न, केवलज्ञान

सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र—वह पर्याय है, वह परसमय है अथवा पर्याय वह परभाव है, परस्वभाव है, अपना निजस्वभाव नहीं। आहाहा! चिल्लाहट मचा जाए। यह गाथा तो बहुत सार मक्खन है। यह तो ११वीं गाथा में कहा उसका यहाँ स्पष्टीकरण दूसरे प्रकार से कहा है। समझ में आया?

पर स्वभाव हैं,... अर्थात् द्रव्यस्वभाव नहीं है। द्रव्यस्वभाव जो ध्रुवस्वभाव, वह यह भाव नहीं है। आहाहा! **परद्रव्य हैं,...** देखो! यह चार प्रकार की पर्याय परद्रव्य है। आहाहा!

श्रोता : अखण्ड में परद्रव्य कही?

पूज्य गुरुदेवश्री : अखण्ड में नहीं, पर्याय है, वह परद्रव्य है। अखण्ड द्रव्य तो एकरूप ध्रुव है, उसमें वह नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

आत्मा त्रिकाली स्वभावभाव जो है, वह स्व-अपना भाव है। पारिणामिकभाव जो त्रिकाली भाव, ध्रुवभाव वह अपना भाव है और एक समय की पर्याय का भाव परभाव है। तब स्वद्रव्य जो है, त्रिकाली ज्ञायक, उसे द्रव्य कहा था पर्याय तो परद्रव्य कहा। जिस कारण शरीर और कर्म तो कहीं रहे परद्रव्य। अब सुन न! समझ में आया? जड़-चेतन दूसरे आत्मा से भिन्न है, उसे परद्रव्य कहो परन्तु अपनी पर्याय, प्रमाण के विषय में अपनी पर्याय को परद्रव्य कहा? कहते हैं, हाँ। स्वद्रव्य का ज्ञान होवे तो परद्रव्य का प्रमाणज्ञान सच्चा है। परद्रव्य अर्थात् पर्याय। पण्डितजी! देखो! इसमें है। आहाहा!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग तो परद्रव्य, यहाँ तो क्षायिक केवलज्ञान परद्रव्य, क्षायिक समकित परद्रव्य। शोर मचा जाता है न! क्योंकि आश्रय करनेयोग्य नहीं है, वहाँ टिकनेयोग्य नहीं है। दृष्टि तो ध्रुव पर देनी है। त्रिकाली द्रव्य पर दृष्टि पसरने से सम्यग्दर्शन होता है। पर्याय पर दृष्टि करने से तो विकल्प उत्पन्न होता है। समझ में आया?

पूर्वोक्त सर्व... पर्याय **परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, इसलिए हेय हैं,...** इसलिए हेय है। कारण बतलाया। आहाहा! समझ में आया? परिणाममात्र हेय है। राग की तो कहाँ बात रही और स्त्री-पुत्र हेय, वे तो हेय कहाँ, वे तो ज्ञेय हैं, पर है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ धर्म अलौकिक है। वह चीज़ कोई दूसरे स्थान पर नहीं है और वह भी एक दिगम्बर सम्प्रदाय में ही है, अन्यत्र है नहीं। समझ में आया? उसमें भी समझते नहीं तो वह सम्प्रदाय भी अन्य जैसा हो गया। दूसरे जैसा हो गया। बाबूलालजी! आहाहा!

'**पूर्वोक्तसकलभावाः**' शब्द पड़ा है न ? देखो पाठ में। '**पुव्वुत्तसयलभावा**' पूर्व में कही वे सभी पर्यायें। ४९ गाथा में सब कही थी न ? देखो ! वे '**एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा**' '**सव्वे सिद्धसहावा सुद्धणया संसिदी**' तथापि द्रव्यस्वरूप तो सिद्ध समान ही सबका है। यहाँ हेय-उपादेय का व्याख्यान किया। पाठ में ऐसा लिया कि '**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं**' यह तो शब्द की सन्धि करनी है न ? '**परदव्वं परसहविमिदि हेयं**' वह परद्रव्य है, इसलिए परभाव है, इसलिए हेय है। परन्तु इस सन्धि में नहीं आता, यहाँ स्वस्वभाव है, इस अपेक्षा से पर्याय परस्वभाव है, इस अपेक्षा से परद्रव्य है, इस अपेक्षा से परद्रव्य को हेय कहा गया है। आहाहा ! यहाँ तो अभी शुभराग को हेय माने, वहाँ तो पसीना उतरे। हाय.. हाय.. हाय.. अरर ! शुभ उपयोग ! पूनमचन्दजी ! .....नहीं होता। दया और व्रत के परिणाम ! अरे ! समकिती को मुनि है, उसे महाव्रत के परिणाम। मुनि को, समकिती को, हों ! अज्ञानी को है कहाँ। महाव्रत के परिणाम ! कि महाव्रत परिणाम हेय, हेय और हेय। परन्तु वह अपने से अपने में महाव्रत के परिणाम का ज्ञान किया, वह ज्ञान की पर्याय भी हेय है। समझ में आया ?

श्रोता : श्रद्धा में हेय.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा में हेय, यहाँ चारित्र-फारित्र कहाँ था ? श्रद्धा में हेय है न ? और राग आता है, राग है तो श्रद्धा-ज्ञान का काम, श्रद्धा-ज्ञान करते हैं या नहीं ? राग आया और उस समय श्रद्धा-ज्ञान... पड़ी है ? श्रद्धा-ज्ञान काम करते हैं या नहीं ? कि यह उपादेय है। ऐसी दृष्टि यहाँ है और वह आदरणीय नहीं है। उसका काम तो श्रद्धा-ज्ञान तो करते ही हैं। भले राग हो, शुभराग हो, अशुभ हो। उसमें क्या है ? आहाहा ! समझ में आया ? यह तुमने चारित्र की, श्रद्धा की बात कही, इसलिए चलता है। श्रद्धा, द्रव्यस्वभाव ध्रुव अकेला निजानन्द प्रभु ध्रुव, उसका जहाँ श्रद्धा-ज्ञान होने के पश्चात् विकल्प हो तो विकल्प के काल में भी श्रद्धा-ज्ञान, श्रद्धा-ज्ञान का काम करते हैं या नहीं ? या श्रद्धा-ज्ञान कूटस्थ पड़े हैं ? समझ में आया ? वैसे यह द्रव्य कूटस्थ है, वैसे श्रद्धा-ज्ञान हुए, सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ कि यह ध्रुव आदरणीय है—ऐसा भान हुआ; राग आया, अशुभराग आया, विषय-वासना का राग आया, उस समय श्रद्धा-ज्ञान काम करते हैं या मुफ्त के पड़े हैं ? श्रद्धा-ज्ञान काम करते हैं कि यह आदरणीय है और यह आदरणीय नहीं। ऐसा श्रद्धा-ज्ञान निरन्तर समय-समय में काम करते हैं। आहाहा ! क्या हो ? लोगों को मूल रीति और मूल मार्ग ही जहाँ ख्याल में आया नहीं और बाहर से मान लिया है।

कहते हैं कि **पूर्वोक्त सर्व भाव परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं,...** पहले परस्वभाव लिया। इससे वे परद्रव्य हैं। **इसलिए हेय हैं,...** अर्थात् वहाँ लक्ष्य देने योग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? देखो! भगवान सर्वज्ञ ने कहा हुआ तत्त्व। पहले सम्यग्दृष्टि दशा में ही चौथे गुणस्थान से (ऐसा है) सम्यग्दर्शन की पर्याय जो ध्रुव पर गयी, तब सम्यग्दर्शन हुआ। तो कहते हैं कि पर्याय जो है, वह परस्वभाव है। आहाहा! गजब बात है न! वह परद्रव्य है। **इसलिए हेय हैं, अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य—** भाषा देखो! स्वभाव लिया न, इसलिए परद्रव्य। तो अन्तःतत्त्व ऐसा भाव, वह स्वद्रव्य। अन्तःतत्त्व का स्वभाव, वह स्वद्रव्य।

श्रोता : वास्तविक....

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तविक परद्रव्य है। यथार्थ में आश्रय करनेयोग्य नहीं है। स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य। स्वद्रव्य द्रव्यरूप से है और पर्याय अवस्तु है। द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय अवस्तु है। उसकी अपेक्षा से भले वस्तु हो। स्वद्रव्य की अपेक्षा से अवस्तु है तो अवस्तु कहो या परद्रव्य कहो। आहाहा! समझ में आया? गजब बातें, भाई! सम्प्रदाय में तो सुनने को (मिलती नहीं)। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान! तू तो द्रव्य है न? तो वह द्रव्य ही वस्तु का स्वरूप है। द्रव्य का स्वरूप वह स्वरूप, पर्यायस्वरूप वह द्रव्य का स्वरूप नहीं। इसलिए उसे परभाव कहकर, परद्रव्य कहकर हेय कहा। पर्याय में रुकना नहीं। उस पर्याय की एकताबुद्धि ही मिथ्यात्व है। सुनो! वह पर्याय का अंश है, वह मुझमें है—ऐसी एकताबुद्धि, आहाहा! वही मिथ्यात्व है। ***पर्याय से सर्वथा द्रव्य भिन्न है।***

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो नाशवान पर्याय है। नाशवान पर्याय की अपेक्षा से अविनाशी सर्वथा भिन्न है। आहाहा! यह तो कोई बात है! वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग, केवलीपण्णतो धम्मो शरणम् - ऐसा बोलते अवश्य हैं। शाम-सवेरे मांगलिक में बोलते हैं न? परन्तु क्या धर्म है और कैसे होता है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

कहते हैं, **हेय हैं, अन्तःतत्त्व...** इस अर्थ में सब भाव लेंगे, हों! वास्तव में सहज ज्ञानादि भाव अन्तःतत्त्व में कहेंगे। यहाँ भाव लिया है न? यहाँ न्याय समझो। एक समय की पर्याय को परभाव कहकर, परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा। फिर हेय तो ठीक। इसलिए हेय है। अब अन्तःतत्त्व, जो आत्मा है, उसमें अन्तःतत्त्व जो अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र आनन्द जो ध्रुवस्वभावभाव है, वह अन्तःतत्त्व है। **ऐसा स्वद्रव्य—** है। वह भाव जो अन्तःतत्त्व

है, वह स्वद्रव्य है। त्रिकाली अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, ध्रुव गुण, ध्रुव स्वभाव। समझ में आया?

अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य—इसमें विशिष्टता देखो न! अर्थ में बहुत सरस कहा है। अन्तःतत्त्व अर्थात् त्रिकाली ज्ञान ध्रुव, त्रिकाली दर्शन ध्रुव, त्रिकाली आनन्द ध्रुव। वह अन्तःतत्त्व, अन्तःभाव, वह अन्तःतत्त्व, वह स्वद्रव्य। जैसे पर्याय परभाव, इसलिए परद्रव्य है। अन्तःतत्त्व स्व, इसलिए स्वद्रव्य। आहाहा! अलौकिक बात है। भगवानजीभाई!

श्रोता : तादात्म्यसम्बन्ध नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, पर्याय को और द्रव्य को तादात्म्यसम्बन्ध है ही नहीं। अनित्य-तादात्म्यसम्बन्ध है, नित्य तादात्म्यसम्बन्ध है ही नहीं। अरेरे! प्रमाण परन्तु भले प्रमाण, परन्तु वह निश्चय का स्वीकार रखकर प्रमाणज्ञान करता है। प्रमाण ऐसा ज्ञान नहीं करता कि निश्चय अभेद है, उसे छोड़कर ज्ञान करता है। निश्चय को तो ऐसा ही रखता है। निश्चय को साथ में रखकर व्यवहार का ज्ञान करे, उसका नाम प्रमाणज्ञान है। समझ में आया?

प्रमाण का अर्थ क्या? निश्चय जो है, वह द्रव्य का आश्रय करता है और द्रव्य को ही स्वीकार करता है। वह स्वीकार तो प्रमाण में भी है। परन्तु एक अंश का है तो, दूसरा अंश भी साथ में लेकर प्रमाण करता है, ऐसा कहते हैं। पर्याय है, ऐसा ज्ञान करता है। पर्याय कहाँ है? पर्याय, पर्याय में है; द्रव्य में नहीं। समझ में आया? ऐई! वजुभाई! गजब बात, भाई! यह सब विचारना पड़ेगा।

श्रोता : पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का आश्रय पर्याय में, आत्मा में नहीं। पर्याय का कारण पर्याय। पर्याय के षट्कारक पर्याय में पर्याय के कारण से है; आत्मा के कारण से नहीं। आत्मा सत् है, वह पर्याय का कर्ता नहीं और पर्याय सत् है, वह द्रव्य सत् का कर्ता नहीं। भारी गजब बात है। ऐसा वीतराग का मार्ग! समझ में आया?

श्रोता : अनादि अनस्पर्शित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनस्पर्शित है। द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। असंख्य प्रदेश में एक होने पर भी स्पर्शता नहीं। प्रदेश भिन्न कह दिया न? आहाहा! वह तो पर्याय का अंश-प्रदेश एक न्याय से भिन्न है। आहाहा! गजब बात है।

श्रोता : आधार नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आधार नहीं, वह तो राग के कारण से कहा था। परन्तु यहाँ तो पर्याय का आधार द्रव्य नहीं, द्रव्य का आधार पर्याय नहीं, ऐसी जरा बात है। बसन्तभाई! आहाहा! भाई! वह सत् है या नहीं? सत् है। द्रव्य भी सत् है या नहीं? तो सत् है तो उसकी पर्याय आधार कैसे? और पर्याय भी सत् है तो पर्याय को द्रव्य का आधार कैसे हो? आहाहा! गजब बात है। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो तत्त्व जाना, वह ऐसा भगवान ने जाना है। ऐसा कहे कि भगवान सच्चे। परन्तु क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं है। उसमें तुझे सच्चे कहाँ आये? समझ में आया?

श्रोता : मान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : है ऐसा माने तो भगवान सच्चे। आहाहा! और तेरा भगवान सच्चा, हों! वे भगवान सच्चे तो पर में गये। आहाहा! भगवान तो कहते हैं कि हमारे सन्मुख देखने से तुझे विकल्प उठता है और विकल्प तो कषाय है। हम कहते हैं कि तेरे द्रव्य की अपेक्षा से तो वह तुझे हेय है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान ऐसा कहते हैं। त्रिलोकनाथ परमेश्वर इन्द्रों और गणधर के समक्ष परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान में विराजमान हैं। समझ में आया? उन परमात्मा की यह वाणी है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ भगवान के पास गये थे। भगवान की... परम्परा से यहाँ भी उन्हें मिली थी। साक्षात् परमेश्वर की यात्रा हुई, महाविदेह में गये। और कोई कहे-महाविदेह में गये नहीं। अरे! भगवान! यह विवाद, अभी कोई आया था न? सनावद में तो ऐसा कहते हैं कि महाविदेह में नहीं गये। ऐई! कुँवरचन्दजी! आये थे, कल बात करते थे। पत्र आया था। महाविदेह में गये नहीं। परन्तु यह आचार्य लिखते हैं न महाविदेह में गये हैं? यह पाठ में और पंचास्तिकाय में। समझ में आया? यह पंचास्तिकाय में है। लो!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आचार्य ने कहा है या नहीं? ...देखो! यह पहली टीका में है। पंचास्तिकाय न? जयसेनाचार्य में, हों! जयसेनाचार्य में है।

यह लिखा है, देखो! **श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव हैं। उनके दूसरे नाम पद्मनन्दि...** है। **अब श्री कुमारनन्दि सिद्धान्तिदेव के शिष्य श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने—जिनके दूसरे नाम पद्मनन्दि इत्यादि थे उन्होंने—प्रसिद्ध कथा न्याय से पूर्व विदेह में जाकर वीतराग सर्वज्ञ सीमन्धरस्वामीदेव के दर्शन करके...** पंचास्तिकाय, जयसेनाचार्य की टीका है।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, यहाँ आया है। और एक दूसरी जगह वहाँ देवसेनाचार्य में आया है। और तीसरी जगह अष्टपाहुड़ की टीका श्रुतसागर (कृत) तीन जगह है। एक यहाँ पंचास्तिकाय में आया है, एक देवसेनाचार्य की दर्शनसार में आया है। अहो! कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास न गये होते तो यह पूरी चीज़ हमें कहाँ से मिलती? ऐसा लिखा है। यहाँ पंचास्तिकाय में जयसेनाचार्य की टीका में और अष्टपाहुड़ में। अष्टपाहुड़ है न उसमें, उसमें श्रुतसागर कहते हैं। अन्त में।

यहाँ तो कहते हैं कि अहो! **तीर्थंकर परमदेव के दर्शन करके, उनके मुखकमल से निकली हुई दिव्यवाणी के श्रवण द्वारा अवधारित पदार्थ द्वारा शुद्धात्मतत्त्वादि सारभूत अर्थ को ग्रहण करके, वहाँ से वापस आकर अन्तःतत्त्व और बहिःतत्त्व...** देखो! **अन्तःतत्त्व और बहिःतत्त्व के गौण-मुख्य प्रतिपादन के लिये...** देखो! अन्तःतत्त्व ज्ञायकभाव, बहिर्तत्त्व पर्यायादि पर। **गौण-मुख्य प्रतिपादन के लिये अथवा शिवकुमार महाराजादि संक्षेपरूचि शिष्य के प्रतिबोधन के लिये रचित...** है। लो!

श्रोता : वहाँ रहते तो मोक्ष चले जाते।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष वहाँ जाए? यहाँ के प्राणी वहाँ मोक्ष में जाए? पंचम काल में जन्मे हुए प्राणी किसी जगह मोक्ष जाए? भगवान के पास गये थे परन्तु क्षायिक समकित नहीं था। यहाँ के हैं न, आहाहा!

श्रोता : वहीं के वहीं क्यों नहीं रहे? यहाँ किसलिए आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वहाँ उनकी योग्यता थी? आहार-पानी... साढ़े तीन हाथ के। क्या कहलाये समझे न? तीड जैसे लगें। तीड-तीड होता है न? ५०० धनुष २००० हाथ ऊँचे। तब इतने ऐसे तीड जैसे लगे। चक्रवर्ती कहता है यह कौन तीड है। यह मनुष्य के आकार में पक्षी जैसा, तीड जैसा कौन है? भगवान कहते हैं कि यह तो भरतक्षेत्र के प्रमुख आचार्य महाराज। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, ओहो! **इसलिए हेय हैं, अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य—** यह और **आत्मा...** वापस ऐसा कहकर तीन शब्द प्रयोग किये। अन्तःतत्त्व अर्थात् अनन्त ज्ञान, दर्शन जो ध्रुव, ऐसा जो अन्तःतत्त्व, वह स्वद्रव्य और स्वद्रव्य, वह आत्मा। अभी तो आधार-आधेय लेंगे। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा, वह **आत्मा—उपादेय 'भवेत्' है।** वह उपादेय है।

मूल गाथा का इतना अर्थ है। भगवान अन्तःतत्त्व, वह ध्रुव, ज्ञान, दर्शन, आनन्द जो भाव है, वह अन्तःभाव, वह द्रव्य—वह आत्मा, वही अंगीकार करनेयोग्य है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में वही आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा उपादेय है। ... ऐसा है न? '**भवेत्**' है न? अन्तःतत्त्व '**भवेत्**' आत्मा। अन्तःतत्त्व वही होता है आत्मा। '**स्वद्रव्यमुपादेयम्**' अन्तःतत्त्व वही आत्मा। वही आत्मा। आहाहा! ऐसा स्वद्रव्य। पर्याय-फर्याय आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो कुछ बात! वह व्यवहार आत्मा है-पाँच पर्याय वह व्यवहार आत्मा है। व्यवहार आत्मा त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ आत्मा है। अरे रे! गजब बात है न! यह तो वीतराग की वाणी ऐसा कहे, हों! जगत को रुचे, न रुचे, बैठे न बैठे परन्तु मार्ग तो ऐसा है।

अब अपने यहाँ टीका। जो व्यवहारनय से पर्याय कही थी, वही शुद्धनिश्चय के बल से अन्तरध्रुव पर दृष्टि देने से, वह हेय है, वह लक्ष्य में नहीं रहती। पर्याय अन्दर लक्ष्य में नहीं आती, इसलिए हेय कहने में आती है। आहाहा! **किस कारण से?** अब कहते हैं कि हेय कहा, वह किस कारण से? समझ में आया? **शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से) वे हेय हैं।** चार पर्याय हेय है। ओहोहो! अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवलदर्शन, आनन्द अनन्त पर्याय जो पर्याय में है। समझ में आया? जो केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त सिद्ध और तीन काल, तीन लोक ज्ञात होता है। एक समय की पर्याय है, इसलिए हेय है। आहाहा! श्रुतज्ञानी को तो है नहीं परन्तु जिसे केवलज्ञान है, वह केवलज्ञान भी इस धर्मी जीव को आश्रय करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया?

किस कारण से? लो! किस कारण से हेय है, ऐसा अब कहना है। पाठ में तो ऐसा कहा '**परदव्वं परसहविमिदि हेयं**' अन्वयार्थ में ऐसा लिया '**परस्वभावाः परद्रव्यम् हेयाः अन्तस्तत्त्वं स्वद्रव्यम् उपादेयम्**' अर्थ में अब टीका में **किस कारण से?** हेय है। किस कारण से हेय कहते हो? चार पर्याय, केवलज्ञानादि की पर्याय, क्षायिक समकित की पर्याय, अरे! चारित्र की पर्याय, धर्म-चारित्र, चारित्तं खलु धम्मो—ऐसी चारित्र पर्याय, तीन कषाय के अभाव की पर्याय, वह शुद्ध त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से हेय है।

श्रोता : यथाख्यातचारित्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : यथाख्यातचारित्र भी हेय है। यहाँ तो अभी है नहीं, इसलिए यह लिया। क्षायिक में यथाख्यातचारित्र आ नहीं गया? आहाहा!

किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं,... क्योंकि वे परस्वभाव हैं। ओहोहो ! वह अपना द्रव्यस्वभाव नहीं। अंशभेद, वह अपना द्रव्यस्वभाव नहीं। बसन्तभाई ! ऐसी बातें कहीं मुम्बई में मिले, ऐसा नहीं है, हों !

श्रोता : कहीं नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं नहीं ? लो ! ऐई ! सेठी ! तुम्हारा चिरंजीवी कहता है, ऐसी बात कहीं नहीं है। आहाहा ! बात तो ऐसी है, भाई ! भगवान के घर में ऐसी बात है।

श्रोता : मुम्बई में बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात यहाँ नहीं होती। दस-दस हजार लोग भड़के सब। यह क्या कहे, वह समझ में नहीं आवे। एक व्यक्ति कहता था। बेचारा प्रेम से सुनने आया था। महाराज कहते हैं कुछ परन्तु मुझे कुछ समझ में नहीं आता। कोई श्वेताम्बर था। कहीं बात ही नहीं चलती। सम्प्रदाय में है नहीं। है तो सब विपरीत बात है। ऐसा करना, ऐसा खाना, ऐसा पीना, ऐसा रहना, ऐसा छोड़ना। आहाहा ! समझ में आया ? परद्रव्य के ग्रहण-त्याग की बुद्धि तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा !

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निज द्रव्य है इसके अतिरिक्त... पर-हेय क्यों कहा ? पर्याय को हेय क्यों कहा ? चार प्रकार के भाव की जो पर्याय है, उसे हेय क्यों कहा ? किसलिए ? कि वह परस्वभाव है, वह द्रव्यस्वभाव नहीं है। आहाहा ! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शान्ति, आनन्द जो ध्रुवस्वभाव, वह पर्याय नहीं है। समझ में आया ? यह तो अलौकिक गाथा है। अमरचन्दभाई ! आहाहा ! अरे ! परस्वभाव ? परस्वभाव कहो तो परद्रव्य की पर्याय को परस्वभाव कहो। बहुत तो विकार दया, दान के विकल्प को परस्वभाव कहो। क्षायिक समकित और चारित्र की पर्याय परस्वभाव ? त्रिकाली स्वस्वभाव की अपेक्षा से वह परस्वभाव है। समझ में आया ?

क्षणिक है, एक समय की पर्याय है और त्रिकाली द्रव्यस्वभाव ध्रुव है। त्रिकाली द्रव्य का स्वभाव तो ध्रुव है। परमपारिणामिक भगवान आत्मा सहजस्वभावरूप वस्तु, वह स्वस्वभाव है; तब पर्याय है, वह परस्वभाव है। आहाहा ! यह बात ! बाबूलालजी ! कभी सुना नहीं। लो ! यह पण्डित लोग कहते हैं, कभी सुना नहीं। आहाहा !

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य है। समझ में आया? परन्तु यह अनुभूति कैसे हो? यह बात चलती है कि द्रव्य पर दृष्टि देने से अनुभूति होती है। पर्याय पर, विकल्प पर, निमित्त पर दृष्टि देने से अनुभूति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि अनुभूति है और उसे देखना वह भी पर्यायबुद्धि हो गयी। ऐई! अनुभूति यह है और यह विकार है, यह तो पर्याय की दृष्टि हुई। यहाँ तो द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि देने से अनुभूति होती है, परन्तु उस अनुभूति का लक्ष्य करना, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय का लक्ष्य हुआ, द्रव्य का लक्ष्य छूट गया।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ....सुनते हो या नहीं यह?

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...नहीं। यही सत्यार्थ है। ....ऐसा नहीं। चिमनभाई! सम्यग्दर्शन होने में ध्रुव का ही शरण है, पर्याय का शरण नहीं।

श्रोता : प्रारम्भिक पाठ...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रारम्भिक पाठ है... हमारे सेठी (कहते हैं)। यह प्रारम्भिक-पहला पाठ है। आहाहा! अलौकिक बात है, भाई!

कहते हैं, यह चार पर्याय हेय ली है। पहले स्वभाव में लिया था, परस्वभाव है इसलिए परद्रव्य, इसलिए हेय है। यहाँ तो पहले से कहा कि हेय है। अब हेय किस कारण से कहा। ये परस्वभाव हैं, इसलिए हेय हैं, परस्वभाव हैं। आहाहा! क्षयोपशमज्ञान, ज्ञान का उघाड़, नव-नव पूर्व का, दस-दस पूर्व का, चौदह-चौदह पूर्व का, बारह अंग का, पर्याय जो उघाड़ की है, सम्यग्दृष्टि की, तो कहते हैं कि यह बारह अंग का विकास जो पर्याय में हुआ, कहते हैं कि वह परस्वभाव है। आहाहा! त्रिकाल महासागर ध्रुव स्थित है, उसके सामने एक अंश की गिनती क्या? समझ में आया? महासागर पड़ा है, प्रभु महासागर। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... केवलज्ञान का गर्भ जिसमें पड़ा है, उसके भाव में। आहाहा! ऐसा अपना अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, ऐसा स्वभाव है, स्वतत्त्व इस अपेक्षा से... पर्याय हेय क्यों कही? - कि परस्वभाव है, इस अपेक्षा से हेय कही। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान की वाणी हेय है। हाय... हाय... दिव्यध्वनि हेय है। परन्तु वह तो परद्रव्य है। उसे सुनने में विकल्प आवे, वह हेय है, वह तो राग है। परन्तु ज्ञान करता है, ज्ञान अपना, सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञेय स्व का ज्ञान हुआ, उसमें राग आया, उस राग का ज्ञान पर्याय करती है कि वह पर्याय भी परस्वभाव है, त्रिकाली ध्रुवस्वभाव की अपेक्षा से परस्वभाव है, अपना निजस्वभाव नहीं। आहाहा! यह तो कोई बात है! बसन्तभाई! ऐसा कभी सुना ही नहीं। यह तो शब्द-शब्द का अर्थ होना चाहिए न! ऐसा का ऐसा मान ले, ऐसा नहीं चलता। उसे न्याय से ख्याल में आना चाहिए न?

श्रोता : स्वसमय और परसमय?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वसमय और परसमय की यहाँ अभी बात नहीं है। वह दो पर्याय। उसकी बात अभी नहीं है। यहाँ तो द्रव्य और पर्याय दो के बीच बात है। स्वसमय तो '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।**' यह तो पर्याय हुई। इस पर्याय को यहाँ कहते हैं कि वह परस्वभाव है, क्योंकि वह दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! गजब काम, भाई! समझ में आया?

क्योंकि वे परस्वभाव हैं, और इसीलिए परद्रव्य हैं। इसीलिए परद्रव्य हैं। जैसे शरीर, वाणी, कर्म परद्रव्य है, तो उसमें से अपनी नयी धर्मपर्याय प्रगट नहीं होती। इसी प्रकार पर्याय जो प्रगट है, उसमें से नयी पर्याय प्रगट नहीं होती। तो वह स्वद्रव्य नहीं हुआ। द्रवे, वह द्रव्य। समझ में आया? पर्याय द्रवे और पर्याय में से नयी पर्याय आती है, ऐसा नहीं है, इसलिए वह परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? इसीलिए हेय है, ऐसा कहा। हेय से लिया न, हेय से? सर्व पर्याय हेय क्योंकि परस्वभाव है, इसलिए परद्रव्य है। अब उपादेय कौन है, यह बात करेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२१) **श्री नियमसार, श्लोक १२९-१३०, प्रवचन - १०३**
दिनांक - ११-१२-१९७९

आज कुन्दकुन्दाचार्य की आरोहण पदवी का दिन है। अपने मागशर कृष्ण ८ है। सिद्धान्त और आगम के हिसाब से आज पोष कृष्ण ८ है। कृष्ण १ वीं बैठती है न? शुक्ल के पश्चात् यह पोष कृष्ण ८ है। इसमें भगवान कुन्दकुन्दाचार्य को आज आरोहण आचार्यपद दिया था। आचार्य पदारोहण का यह दिवस है। जिन्हें, 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो'—तीसरे पद में जो आये हैं। जिनका भरत पर अनन्त उपकार वर्तता है। इन्होंने जो समयसार आदि शास्त्र रचे हैं, वे साक्षात् भगवान को सुनकर और आकर ये रचे हैं। उनकी यह तिथि का आचार्य की पदवी का दिवस है। आहाहा! उन्होंने आचार्यपदवी में पाँच पद का आराधन किया, चैतन्य का आराधन किया। परमपारिणामिकस्वभाव ज्ञायकभाव, यह अपने आ गया है। समस्त मुनियों के हृदयकमल में हंस वर्तता है। आ गया है न? आहाहा!

ये कुन्दकुन्दाचार्य आचार्य हैं। ऐसे ऊपर से दे, इसलिए आचार्यपद आ जाए - ऐसा नहीं है। सहज अन्तर की दशा है। आहाहा! जिन्हें तीन कषाय का अभाव हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र वैभव प्रगट हुआ। यह (समयसार) ५वीं गाथा में कहा है - प्रचुरस्वसंवेदन। बहुत ही आनन्द का वेदन आया है। जो स्वरूप से सौख्यरूप। सौख्यरूप, सुखस्वरूप, सुखस्वभाव, स्वभाव, सुखस्वभावस्वरूप आत्मा है, उसका पर्याय में प्रचुर वेदन वर्तता है। आहाहा! उसे यहाँ आचार्य पदवी कहा जाता है। अलौकिक बात है, भाई! पाँच आचार और परम उपयोग। प्रवचनसार में कहा है न? आचार्य, उपाध्याय और साधु। परम पंच आचार के उपयोग में होते हैं। विकल्प में नहीं। अन्दर निर्विकल्प परम आचार, परम ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार, ऐसे परमशुद्धोपयोग... आहाहा! उसमें विचरनेवाले, उन्हें संघ ने आचार्य पद दिया... ऐसी यह बड़ी तिथि है। तिथि पूर्व की अपेक्षा से कहें तो वर्तमान में ही- आज ही यहाँ भगवान को आचार्यपना दिया हो। आचार्य पद आज ही दिया हो, ऐसा नैगमनय से भूतकाल को वर्तमान काल में कहा जाता है। आहाहा!

इसमें—नियमसार में कहा है न? कि सिद्ध को भी गत काल के अनन्त बहिरात्मा आदि जो हुए, वे भी अभी पूर्व की अपेक्षा से उन्हें (बहिरात्मा आदि) कहा जाता है। नियमसार (में) पहले आ गया। आहाहा! सिद्ध को भी बहिरात्मा, अन्तरात्मा ऐसी सब दशाएँ जो व्यतीत हो गयी, सब वर्तमान में भी नैगमनय से कहा जा सकता है। आहाहा! पहले भाग में है। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य को तो परमात्मपद होनेवाला है। आहाहा! कहा न? हम तो केवलज्ञानमय हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुखस्वरूप हैं और हम तो परम केवलज्ञानादि हैं। आहाहा! शक्ति से तो हैं... शक्ति से तो हैं, परन्तु व्यक्ति से हम परमात्मदशा, मोक्ष के मार्ग में हैं, हम अभी मोक्ष में ही हैं—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

प्रवचनसार में उनकी स्वयं की गाथा है। मोक्षमार्ग को मोक्षतत्त्व ही कहा (गाथा २७२)। हम मोक्ष में ही हैं। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, उसे तो वास्तव में तो उसमें आरूढ़ होना, वह आचार्यपद है। बाहर में तो व्यवहार... अन्तर में आनन्दस्वरूप में आरूढ़ होना। आहाहा! वह अब यहाँ कहते हैं।

देखो, **और (इस ९७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं)** है? १२९वाँ श्लोक है। १२९, ऊपर का पढ़ा गया है।

आत्मानमात्मनि निजात्मगुणाढ्यमात्मा,
जानाति पश्यति च पञ्चम-भाव-मेकम्।
तत्याज नैव सहजं पर-भाव-मन्यं,
गृह्णाति नैव खलु पौद्गलिकं विकारम्।।१२९।।

आहाहा! मार्ग कोई अलौकिक है। साधुपद से आचार्यपद, मुनिपद कोई अलौकिक है। वास्तव में तो पाँच पद स्वरूप आत्मा है, अन्दर स्वभाव ही उसका है, तब बाहर में आता है, प्रगट होता है। जो आचार्यपद प्रगट हुआ, वह तो अन्दर स्वभाव में है, वह बाहर में प्रगट होता है। वह यहाँ कहते हैं कि **आत्मा...** अपूर्व बात है, बापू! आहाहा! यह आत्मा अन्दर इस देह से भिन्न है, यह (देह) तो मिट्टी है, जड़ है। शरीर, मिट्टी, अजीव धूल है। अन्दर कर्म मिट्टी-धूल है। वे तो आत्मा के प्रदेश-पर्याय में भी नहीं है परन्तु पुण्य और पाप के, दया, दान, काम, क्रोध के परिणाम वे भी वस्तु में नहीं हैं, वे आत्मा के नहीं हैं, आत्मा की चीज़ नहीं है। आहाहा! उसे यहाँ आत्मा परमेश्वर कहते हें।

यह **आत्मा आत्मा में...** आहाहा! यह **आत्मा आत्मा में...** परम शुद्धस्वभाव जो त्रिकाली आत्मा, वह **आत्मा आत्मा में निज आत्मिक गुणों से समृद्ध...** अपने आत्मा के गुण जो ज्ञान-

दर्शन-आनन्द, ऐसे जो अनन्त गुणों से भरपूर भगवान आत्मा अन्दर है... आहाहा! जिसके माहात्म्य की वाणी में भी माहात्म्य पूरा नहीं आया। ऐसा वह प्रभु अन्दर देह में विराजमान है। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। यहाँ कहा न? **आत्मिक गुणों से समृद्ध...** है। आहाहा!

लोग यह बाहर के धूलवाले हों, उन्हें ऐसा कहते हैं न? कि यह पच्चीस लाख का आसामी, पचास लाख का आसामी, करोड़ का आसामी। चिमनभाई! यह चिमनभाई का सेठ पचास करोड़ का आसामी है। पचास करोड़ का आसामी। धूल का। वह नहीं, बापू! वह तो मिट्टी, धूल, जगत की चीज़ है। वह कुछ तुझमें नहीं है, तू उसमें नहीं है, तेरी वह नहीं है परन्तु तुझमें पुण्य और पाप हो, उसमें भी तू नहीं है, वे तुझमें नहीं है, वे तेरे नहीं हैं, तू उनमें नहीं है, वे तुझमें नहीं हैं। आहाहा! अरे! ऐसी बात।

इस जगत में रहना, संसार का धन्धा-पानी। कठिन काम। रमणीकभाई पूछते थे। यह पाँच वर्ष दुकान का धन्धा किया, तब रस था या नहीं? ऐसा पूछते थे। पहले से मैं तो भगत कहलाता था। दुकान चलती थी, घर की-पिताजी की दुकान थी परन्तु मैं भगत ही कहलाता था। दुकान चले, चलावे, तथापि पहले वस्तु धर्म यह। शास्त्र श्रवण, वांचन पहला। फिर दुकान। अठारह वर्ष की उम्र से। यह तो नब्बे वर्ष हुए। शरीर को तो नब्बे वर्ष हुए। यह तो ७२ वर्ष पहले की बात है। आहाहा! उसमें कहीं रुचि नहीं थी, रस नहीं था, रस। अवसर आया तो भाई को कहा, बापू! में नहीं रह सकूँगा। यह संसार और दुकान मैं नहीं चला सकूँगा। मैं दुकान छोड़ देता हूँ। अरे! यह कहाँ दुकान, कहाँ राग, कहाँ प्रभु! आहाहा! वह बाहर की चीज़ तो जड़ कहीं रही, वह तो आत्मा कर नहीं सकता परन्तु आत्मा में जो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति के काम, क्रोध के भाव होते हैं, वह भी इसका कर्तव्य नहीं है, वह इसका कार्य नहीं है। व्याप्य-व्यापक अपने आ गया है। वह व्याप्य नहीं है। आत्मा का व्याप्य-अवस्था नहीं है। विकारी आत्मा का कार्य नहीं है। आहाहा!

भगवान चैतन्यस्वरूप अपने गुणों से समृद्ध है, ऐसा कहा। पर के कारण नहीं, राग के कारण नहीं। आहाहा! राग, वह विकार है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी राग है, विकार है। उससे समृद्ध आत्मा नहीं है। आहाहा! है इसमें? **आत्मा आत्मा में निज आत्मिक गुणों से समृद्ध...** है। निज आत्मा के गुणों से समृद्ध है। आहाहा! कब बैठे और कब विचार करे? यह दुनिया ऐसी की ऐसी चली जाती है। आहाहा! **निज आत्मिक...** पहले दो शब्द लिये। **आत्मा आत्मा में निज आत्मिक गुणों से समृद्ध...** है। आत्मा, आत्मा में अपने गुणों से समृद्धिवाला है। अपने गुणों की समृद्धि उसमें भरी है। आहाहा!

यहाँ तो एक मूला अच्छा मिले। सब्जी लेने जाए, वहाँ चार आने की सब्जी मिले, एक मूला मुफ्त देना। मूली-मूली। लड़की... देखा होवे तो कहे, लाओ भाई... दूं। एक मूली मिले वहाँ प्रसन्न हो जाता है। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ गया? प्रभु! तू कितना है? कहाँ है? वीतराग परमेश्वर पुकारते हैं। प्रभु! तू कितना है? कहाँ है? तू आत्मा तो आत्मिक गुणों से समृद्ध है। आहाहा! ऐसा सुना नहीं होगा। आत्मा, आत्मा करे। आत्मा है। देह में आत्मा है। हो गया जाओ। आत्मा हिले और चले, वह आत्मा। अरे! प्रभु! हिलना-चलना तो कहीं रह गया परन्तु उसमें अल्पता भी नहीं। पुण्य-पाप के विकार भी नहीं। आत्मा के गुण से समृद्ध है - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य भगवान का (आचार्यपद) तिथि आरोहण का दिवस है। वे कहते हैं कि **आत्मा आत्मा में निज आत्मिक गुणों से...** अर्थात् निज स्वरूप के गुणों से **समृद्ध आत्मा को...** आहाहा! ऐसा जो समृद्ध भगवान आत्मा अन्दर विराजता है। आहाहा! कभी सुनने को नहीं मिले, खबर नहीं मिले। **एक पंचमभाव को—जानता है...** वह शुद्धात्मा को अर्थात् एक **पंचमभाव को—जानता है...** आहाहा! धर्मी जीव, सम्यग्दृष्टि जीव, वीतराग ने कहाँ वैसा यह आत्मा, आत्मा में आत्मा के गुणों से समृद्ध ऐसे एक को जानता है। आहाहा! ऐसा कहीं सुनने को नहीं मिलता। झवेरचन्दभाई! यह तुम्हारा मामा का सब संसार का कहा था। आहाहा!

यह भगवान आत्मा स्वयं **आत्मा आत्मा में...** आहाहा! **निज आत्मिक गुणों से समृद्ध...** से भरपूर भगवान एकरूप है। आहाहा! क्या शब्द! पार नहीं आता। आत्मा, अन्दर भगवान आत्मा अन्दर वस्तु, वह तो भगवत्स्वरूप है, परमेश्वरस्वरूप है। परमेश्वर हुए, अरिहन्त और सिद्ध (हुए), वे कहाँ से हुए? बाहर से हुए हैं? वह अन्दर में है, वैसा स्वरूप बाहर आया है। आहाहा! अरे, इसने कभी जाना नहीं, इसने माना नहीं, इसलिए इसने माण्यो नहीं, जाना नहीं, माना नहीं, इसलिए माण्यो नहीं अर्थात् अनुभव नहीं किया। आहाहा! यह वर को छोड़कर सब बारात कर दी। भटकने की पट्टी से चार गति में भटकता है। आहाहा! क्या शब्द प्रयोग किये हैं?

आत्मिक गुणों से समृद्ध आत्मा को... तीन और चार बार आत्मा शब्द आया है। है न? निज गुण की समृद्धि। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता से भरपूर यह भगवान है। ऐसी अपनी समृद्धि से भरपूर आत्मा को **एक पंचमभाव को—जानता है...** आहाहा! यह पंचमभाव जो त्रिकाली स्वभावभाव, जिसे कोई अपेक्षा नहीं। अन्दर त्रिकाली एकरूप परमात्मा है। स्वयं ही परमात्मस्वरूप है। आहाहा! एक को ही जो जानता है। **देखता**

है... आहाहा! जो आत्मा ऐसा अन्दर जानता है, देखता है। आहाहा! वह सब बाहर का देखना छोड़कर अन्दर स्वयं भगवान है, उसे देखता है। बाहर का जानना छोड़कर अन्दर जानने में अपने को जानता है। आहाहा!

उस सहज एक पंचम भाव को उसने छोड़ा नहीं ही है... आहाहा! ऐसा जो प्रभु, अपनी सत्ता का अस्तित्व, पंचमभावस्वरूप, पारिणामिकभावस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप, अनादि-अनन्त स्वरूप, कभी उसने छोड़ा नहीं है। पंचम भाव को उसने... पंचम भाव समझ में आता है? पाँच भाव है न? उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और पारिणामिक। चार पर्याय है और ऐसे गुण स्वभाव है। पंचम भाव वह स्वभाव है तथा उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, यह चार उसकी पर्याय है। गुण और पर्याय उसकी, परन्तु खबर नहीं होती और हम जैन वाड़ा में पड़े हैं, जैन हैं। आहाहा! अरे जिन्दगी चली जाती है। मूल वीतरागमार्ग कहते हैं, उसे समझने की दरकार नहीं करता। आहाहा!

कहते हैं, **एक पंचम भाव को उसने छोड़ा नहीं...** एक शब्द प्रयोग किया है। **सहज एक पंचम भाव को उसने छोड़ा नहीं ही है...** भगवान ऐसा का ऐसा विराजता है। आहाहा! अपने गुण की समृद्धि से, अपने गुण की ऋद्धि से, अपने अनन्त गुण की सामग्री से, शुद्धि से, ऋद्धि से एक को उसने कभी छोड़ा नहीं है। आहाहा! ऐसा कैसा उपदेश? वह कहे कि दया पालना, व्रत करना, सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, ऐसा तो समझ में आये। ऐसा तो अनन्त बार किया है। यह सब शुभराग की क्रिया है, इसमें कहीं आत्मा-फात्मा नहीं है। वहाँ आत्मा नहीं आता और आत्मा को वहाँ जरा भी लाभ नहीं होता। आहाहा!

ऐसा जो पंचम भावरूप आत्मा, अर्थात् पर्याय में उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय है। वह नहीं। यह तो त्रिकाली ध्रुव ऐसे **पंचम भाव को उसने छोड़ा नहीं ही है...** आहाहा! जब देखो तो विराजमान भगवान पूर्णानन्द ही है परन्तु तेरे देखने के आलस से पड़ा रहा है। 'नयन ने आलसे रे न निरखया नयने हरि' हरि अर्थात् आत्मा। राग और द्वेष और अज्ञान को व्यवहार से घात करे, उसे यहाँ हरि और आत्मा, वह हरि। दूसरा हरि-वरि कोई कर्ता-फर्ता नहीं है। कोई ईश्वर है और ईश्वरकर्ता हरि है, वह नहीं। हरि तो यहाँ भगवान आत्मा हृदय में विराजता है। श्रीमद् ने ऐसा कहा है। अधिष्ठाता एक है, वह मैं हृदय में देखता हूँ। वह अधिष्ठाता यहाँ है। बाहर में कहीं है नहीं। आहाहा!

तथा अन्य ऐसे परभाव को... पंचम स्वभावभाव कभी छोड़ा नहीं। ध्रुवभाव, नित्यभाव, अविचल नित्य प्रभु! - ऐसे भाव को कभी छोड़ा नहीं। उसे छोड़े अर्थात् नित्य को छोड़े तो

क्या होगा ? नित्यपना नहीं रहेगा तो वस्तु नहीं रहेगी। वह तो कभी छोड़ा ही नहीं। आहाहा! **तथा अन्य ऐसे परभाव को**... आत्मा के अतिरिक्त दूसरे भाव को, **कि जो वास्तव में पौद्गलिक विकार है...** वह तो पुद्गल का विकार है। पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध, वह तो पुद्गल का विकार है, प्रभु! तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! तुझमें तो चैतन्य चमत्कार आनन्द का नाथ पड़ा है, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द की समृद्धि से भरपूर प्रभु तू है। अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा है। (यदि ऐसा) न होवे तो वीतरागता आयेगी कहाँ से ? यह प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से आता है। आहाहा! ऐसा उपदेश!

ऐसे परभाव को—कि जो वास्तव में पौद्गलिक विकार है... आहाहा! वह तो वास्तव में तो इन्होंने क्षायिकभाव भी गिना नहीं है। उसे पौद्गलिक विकार गिना है। चार भाव को विकार गिना है। आता है न ? नियमसार में अन्दर आता है। विकार क्या ? कि जिसे कर्म की अपेक्षा आयी न ? वस्तु तो त्रिकाल एकरूप प्रभु है। अनन्त-अनन्त गुण की समृद्धि से भरपूर भगवान है, उसे किसी कर्म के अभाव और कर्म के सद्भाव की कोई अपेक्षा ही नहीं है। क्षायिकभाव और क्षयोपशमभाव में कर्म के अभाव की अपेक्षा है। उदय में कर्म की अपेक्षा है। उसमें अभाव की अपेक्षा है। एक यह अपेक्षारहित चीज़ है और वास्तव में उस पंचम भाव के अतिरिक्त... आहाहा!

अन्य ऐसे परभाव को—कि जो वास्तव में पौद्गलिक विकार है... आहाहा! अनन्त गुण की समृद्धि से भरपूर भगवान, इसके अतिरिक्त सब विकार है। आहाहा! है ? **उसे—वह ग्रहण नहीं ही करता।** वह द्रव्यस्वभाव, ज्ञायकभाव, वह कभी विकार को पकड़ता नहीं। निज को छोड़ता नहीं और पर को ग्रहण नहीं करता। अरे रे! ऐसी बातें। आहाहा! ऐसा जैनधर्म। वीतराग जैन परमेश्वर, त्रिलोकनाथ को सर्वज्ञरूप से ज्ञात हुआ, वह यह बात भगवान जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा!

अनन्त आत्माएँ अपने अनन्त गुण की समृद्धि से भरपूर भगवान ने देखे हैं। आहाहा! परभाव कभी स्पर्श नहीं किया और जो भाव है, उसे कभी नहीं छोड़ा, कभी अल्पज्ञरूप से भी नहीं हुआ। विकाररूप से तो हुआ नहीं परन्तु वह स्वभावभाव-स्वभावभाव त्रिकाली स्वभावभाव, त्रिकाली गुण समृद्धिभाव, भगवान, वह अल्पभाव से हुआ नहीं। आहाहा! अल्पभाव को और विकार को कभी ग्रहण नहीं किया। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन का विषय है। उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, बापू! यह तो लोगों को किसी को कुछ खबर नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्र को मानो, वह समकित। नवतत्त्व को मानो तो समकित हो गया। चल निकले। आहाहा!

तीन लोक के नाथ जिनेश्वर परमात्मा का यह हुकम है। कुन्दकुन्दाचार्य यह हुकम लेकर आये हैं। भगवान के पास गये थे। सीमन्धरस्वामी भगवान प्रभु महाविदेह में विराजमान हैं। सीमन्धरस्वामी तीर्थंकर विराजते हैं, वहाँ दो हजार वर्ष पहले आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे हैं। आहाहा! भारी गजब बात! **आत्मा आत्मा में...** आत्मा में गुण समृद्धि से भरपूर आत्मा, उसे कभी छोड़ता नहीं और अन्य भाव को कभी ग्रहण नहीं करता। आहाहा! यह भाषा थोड़ी, प्रभु! मार्ग बहुत अलौकिक है। आहाहा! उसे तो अभी सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यक्चारित्र तो दूसरी बातें हैं, बापू! वह चारित्र कहाँ? लोग मानते हैं, वह चारित्र-फारित्र नहीं है। वस्त्र छोड़े और दीक्षा ली, महाव्रत, वह दीक्षित चारित्र-फारित्र नहीं है। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, वहाँ चारित्र कहाँ आया? आहाहा!

श्लोक बहुत सरस है। पद्मप्रभमलधारिदेव टीका करनेवाले ने यह श्लोक कहा है। **उसे—वह ग्रहण नहीं ही करता।** आहाहा!

श्लोक १३०।

मत्स्वान्तं मयि लग्नमेतदनिशं चिन्मात्रचिन्तामणा-
वन्यद्रव्यकृताग्रहोद्भवमिमं मुक्त्वाधुना विग्रहम्।
तच्चित्रं न विशुद्ध-पूर्ण-सहज-ज्ञानात्मने शर्मणे,
देवाना-ममृताशनोद्भव-रुचिं ज्ञात्वा किमन्याशने।।१३०।।

किमन्याशने... आहाहा! देवों को अमृत का भोजन है। देव हैं न देव? चार गति है न? यह मनुष्य, तिर्यंच, नीचे नरक हैं और ऐसे देव हैं। उन देव को हजारों वर्ष में अमृत के भोजन की डकार आती है। जिन्हें अमृत के भोजन का स्वाद है, उन्हें रोटीरूपी रांधना और बनाना उन्हें कहाँ से आया? आहाहा! यह तो दृष्टान्त दिया है।

अन्य द्रव्य का आग्रह करने से उत्पन्न होनेवाले इस विग्रह को अब... विग्रह है न? **रागद्वेषादि कलह...** राग-द्वेष है, पुण्य-पाप है, वह कलह है। सूक्ष्म बात, भगवान! यह तो बहुत बातें, भाई! यह हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना तो कलह है परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह भी कलह, क्लेश और राग है। आहाहा! एक शुभराग है और एक अशुभराग है। दोनों राग है। आहाहा! यह राग-द्वेष **आग्रह करने से उत्पन्न होनेवाले इस विग्रह को... रागद्वेषादि कलह; शरीर।** यह राग-द्वेष, वह शरीर है। आहाहा!

एक ओर भगवान चैतन्य का अनन्त गुण की समृद्धि से भरपूर शरीर तथा एक ओर पुण्य-पाप के क्लेश से भरपूर शरीर। आहाहा! एक ओर अमृत का सागर भगवान अन्दर।

पूर्ण अमृत भरपूर। सिद्ध भगवान हुए, वह अमृतपना कहाँ से आया ? अन्दर से। अमृत अर्थात् स्वयं मरे नहीं और दूसरे को मारे नहीं। दूसरे से मरे नहीं, दूसरे को मारे नहीं, स्वयं मरे नहीं। ऐसा जो अमृत। आहाहा! ऐसा जो यह भगवान अन्दर ध्रुव नित्य अमृतस्वरूप भगवान, वह अमृत है। अ-मृत। वह कभी मरता नहीं। अमृत है, वह कभी किसी को मारता नहीं। अमृत ऐसा है, वह कभी किसी से मरता नहीं। आहाहा! ऐसा जो अमृत का सागर प्रभु! तिथि का आचार्य के पदारोहण का दिवस है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, प्रभु! प्रभु कहकर ही यहाँ तो बुलाते हैं। भगवान आत्मा। आहाहा!

अन्दर देह-देवल में... यह (शरीर) तो मिट्टी और हड्डियाँ - चमड़ी है, बापू! अन्दर पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह भी विकार-विकाररूपी शरीर है। यह तेरा शरीर, विकार शरीर से भिन्न है। शरीर अर्थात् ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप वह शरीर तेरा भिन्न है। आहाहा! 'ज्ञानविग्रहं' ऐसा पाठ है। ज्ञानरूपी शरीर। यह (विकार) क्लेशरूपी शरीर... आहाहा! शुभ और अशुभराग, वह क्लेशरूपी शरीर है। कठिन बात है, प्रभु! नयों को पहले सुनना कठिन पड़ता है। अनादि से वस्तुस्वरूप तो यह है। वह अमृत का सागर अन्दर डोलता है। उस अमृत के सागर से भरपूर भगवान! अ-मृत किसे कहें ? कभी मरे नहीं, किसी को मारे नहीं, किसी से मरे नहीं। आहाहा! कोई उस ध्रुव को स्पर्श नहीं कर सकता। आहाहा!

ऐसा जो अमृतस्वरूप भगवान। आहाहा! उस **द्रव्य का आग्रह करने से...** परद्रव्य का आग्रह करने से—शरीर मेरा, वाणी मेरी, पुण्य मेरा, दया, दान, व्रत मेरे, ऐसे विकल्प राग है, वे मेरे। ऐसा **आग्रह करने से उत्पन्न होनेवाले इस विग्रह को...** होनेवाले क्लेश को, होनेवाले इस विग्रह के शरीर को **अब छोड़कर,...** अब छोड़कर। यह क्या कहा ? बापू! अब तो छोड़, नाथ! प्रभु! तुझे पकड़ने में अनन्त काल गया। अनन्त काल व्यतीत हुआ, नाथ! तेरे ऊपर ऐसे भवभ्रमण के डण्डे सिर पर पड़े हैं। अब तो छोड़... अब तो छोड़... आहाहा! इससे अब दूसरा क्या कहें ? अब तो छोड़। अर्थात् ? अभी तक किया, प्रभु! तूने उल्टा बहुत किया और चौरासी के भवभ्रमण-अवतार में अनेक योनियों में अनंत अवतार कर चुका है, बापू! आहाहा! अब तो छोड़। आहाहा!

अब तो प्रभु के ऊपर नजर डाल। जो अमृत सागर है, वहाँ नजर डाल। आहाहा! तब संसार छूटेगा। इसके बिना संसार छूटे, ऐसा नहीं है। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा और करोड़ों के दान करे, बड़े मन्दिर बनावे मानो कितने ही। भाई गये न ? चन्दुभाई, बड़ोदरा में मन्दिर बनाते हैं न ? एक लाख पैंतीस हजार डाले हैं। उन्होंने स्वयं दिये हैं। एक लाख पैंतीस

हजार। चन्दुभाई नहीं थे? उसमें सायला के भभूतमल ने आठ लाख रुपये दिये, बैंगलोर में मन्दिर बनाया न? दिगम्बर जिनमन्दिर (बनाया उसमें) आठ लाख का, चार लाख दूसरे जुगराजजी ने (दिये)। मुम्बई में महावीर मार्केट है, स्थानकवासी है, करोड़पति है, उन्होंने चार लाख दिये। बारह लाख का मन्दिर बनाया। परन्तु उनसे कहा, भाई! तेरे बारह लाख, बीस लाख, पचास लाख... आहाहा! यह राग की मन्दता हो तो शुभभाव पुण्य है।

पुण्य है, क्लेश है, राग है, वह कषाय का शरीर है; चैतन्य का शरीर नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! दो करोड़ रुपये हैं तो उसमें से आठ लाख रुपये दिये, उसमें क्या हुआ? उन स्थानकवासी जुगराजजी को एक करोड़ हैं, उन्होंने चार लाख दिये। बैंगलोर में मन्दिर बनाया न? बारह लाख का दिगम्बर जैन मन्दिर बनाया, परन्तु उसमें से कोई प्रसन्न हो जाए कि हमने धर्म किया, यह नहीं, बापू! धर्म कोई अलग चीज़ है, प्रभु! वह विकल्प और राग है। राग को तो यहाँ क्लेश कहते हैं, क्लेश... शरीर कहते हैं। आत्मा के ज्ञानशरीर से भिन्न शरीर कहते हैं। आहाहा!

ऐसा कहाँ है? तुम्हारे कलकत्ता में ऐसा सुनने को मिलता है? शान्तिभाई! आहाहा! क्या हो? प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं, नाथ! और यह हीनता करने का पार रखा नहीं। आहाहा! एक बीड़ी पीकर तलब चढ़ जाए वहाँ... आहाहा! एक रोटी कैसी कहलाये पुरणपोली... पुरणपोली की रोटी और अरबी के भुजिया खाता हो, वहाँ मानो... आहाहा! प्रभु! यह तुझे क्या हुआ? तेरी महिमा का पार नहीं और तू हीनता में इतना अधिक चला गया? आहाहा! प्रभु! तेरी महिमा करते हुए पार नहीं आता, इतना बड़ा तू और तू यह कहाँ गया? तू यह क्या करता है? प्रभु! भगवन्त! यहाँ तो भगवन्त होने की बातें हैं, बापू! आहाहा! बातें देखो न की है!

यह **अन्य द्रव्य का आग्रह...** आत्मा के अतिरिक्त **अन्य द्रव्य का आग्रह...** आहाहा! यह तीन लोक के नाथ तीर्थंकर कहते हैं कि मैं परद्रव्य हूँ। यह तेरे सिवाय मैं अन्य द्रव्य हूँ, मेरा **आग्रह करने से उत्पन्न होनेवाले इस विग्रह को अब छोड़कर,...** आहाहा! ऐसा आया है या नहीं इसमें? आहाह!

मुमुक्षु : विग्रह छोड़ना सरल है या कठिन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल है। इसमें है नहीं और छोड़ने का प्रश्न... उसके अस्तित्व का स्वीकार किया कि इसमें नहीं है। अनभ्यास है, इसलिए कठिन है। दो बातें रखीं। आहाहा! एक तो यह बात सुनने को नहीं मिलती। स्थानक में जाए तो सामायिक करो, प्रौषध करो,

प्रतिक्रमण करो। यह करे; और मन्दिरमार्गी में जाए तो पूजा करो, भक्ति करो, गिरनार और सम्मेदशिखर... दिगम्बर में जाए तो वस्त्र छोड़ो, दो-चार-पाँच प्रतिमा ले लो। भगवान! क्या होगा? प्रभु! यह कोई विरुद्ध की बात नहीं है, प्रभु! यह तो मार्ग यह है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि विग्रह है। आहाहा! स्वद्रव्य के प्रेम की दृष्टि के अतिरिक्त, स्वद्रव्य वस्तु के अतिरिक्त परद्रव्य का जितना राग का आग्रह है, वह सब विग्रह का क्लेश है। अब तो छोड़। आहाहा! करते-करते तेरा अनन्त काल गया। प्रभु! तो भी तुझे अभी कहीं तृप्ति नहीं हुई। आहाहा! विषय में, भोग में, इज्जत में, कीर्ति में... आहाहा! दस लाख मिले तो बीस लाख, और बीस लाख मिले तो पचास लाख... आहाहा! अभी कहा न? एक बीस लाख की मोटर। एक मोटर बीस लाख की। मैंने कहा—यह क्या? बापू! यह क्या करेगी? मैंने कहा—यह महंगी क्यों? उसका जो वह था न, अपने आता है, यहाँ आता है। नाम क्या? उसका मोटर का ड्राईवर राजू-राजू, राजू बताता था। मैंने कहा इतनी अधिक महंगी? तो वह बताता था। मुम्बई से यहाँ आना था, तब उसमें बैठे थे, तो वह मोटर रखी। बीस लाख की। कहा—इतना अधिक? कहा ऐसा किया, देखो! ऐसा करे, तब यहाँ प्रकाश हो जाए। ऐसा करे, तब काँच ऊँचा हो जाए। ऐसा करे तो ऐसा हो जाए। अरे रे! क्या हो? यह तो नजरों से देखा है। उसमें बैठे थे न, मुम्बई से स्टेशन आना था न, प्लेन में? अरेरे! क्या चीज़? भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : परद्रव्य कहाँ बाधक है?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा परद्रव्य बाधक है? परद्रव्य का आग्रह कहा है। आग्रह कहा है। द्रव्य का आग्रह करने से, ऐसा कहा है। परद्रव्य नहीं कहा। समझ में आया? परद्रव्य तो इसे स्पर्श भी नहीं करता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श ही नहीं करता। बहुत कठिन पड़े, बापू! परद्रव्य का आग्रह / पकड़। यह मेरे हैं, यह स्त्री मेरी है, पुत्र मेरा, पैसा मेरा, मकान मेरा, इज्जत मेरी, धन्धा-व्यापार चलता हो और पाँच-पच्चीस लाख की आमदनी होती हो तो वह धन्धा मेरा, हमारे अच्छे नौकर, होशियार लड़के जगे हैं तो सर्वत्र दुकान सम्हालते हैं। दस दुकानें हैं। चिमनभाई!

चिमनभाई के सेठ के पास पचास करोड़ हैं। मुम्बई में व्याख्यान में आया था। आवे तो सही। उसमें सुने। यह कहाँ कभी सुनने को मिलता नहीं। पचास करोड़ रुपये। अपने यहाँ भी साहूजी के पास चालीस करोड़ थे। गुजर गये न बेचारे? इसके अतिरिक्त गोआ में अपने शान्तिलाल। शान्तिलाल खुशाल गोवा में, दो अरब चालीस करोड़ है। स्वयं मर गया। अभी लड़के हैं। धूल में क्या? मर गया। उसने मार डाला - अपने माहात्म्य को छोड़कर परद्रव्य

का आग्रह / पकड़-पकड़। परद्रव्य की महिमा, परद्रव्य की विस्मयता परद्रव्य की स्वद्रव्य से अधिकता, स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य की भभक। आहाहा! ऐसा जो किया, वह तो कहते हैं विग्रह-क्लेश शरीर है। अब तो छोड़।

विशुद्ध-पूर्ण-सहजज्ञानात्मक सौख्य की प्राप्ति के हेतु,... मुनिराज स्वयं कहते हैं। **विशुद्ध-पूर्ण-सहजज्ञानात्मक सौख्य की प्राप्ति के हेतु,...** मेरा नाथ स्वभाविक ज्ञानस्वरूप शुद्ध आनन्द है। उसकी **प्राप्ति के हेतु, मेरा यह...** आहाहा! **मेरा यह निज अन्तर मुझमें—चैतन्यमात्र-चिन्तामणि में निरन्तर लगा है...** है? देखो! यह मुनिपना। आहाहा! मेरा आत्मा अन्दर आनन्दमूर्ति प्रभु में। कहा न? **विशुद्ध-पूर्ण-सहजज्ञानात्मक सौख्य...** आत्मा की **प्राप्ति के हेतु, मेरा यह निज अन्तर...** मेरा अन्तर निज मन। **मुझमें—चैतन्यमात्र-चिन्तामणि में निरन्तर लगा है—उसमें आश्चर्य नहीं है,...** उसमें आश्चर्य नहीं है, क्योंकि वह तो है, उसमें लगा, उसमें क्या आश्चर्य?—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ऐसा भगवान अन्दर विराजता है, उसमें मन लगा है, उसमें आश्चर्य क्या? वह तो वस्तु का स्वरूप है। ऐसा कहा, देखो! आहाहा! बाहर के अटकने के रास्ते का पार नहीं होता। छुटकारे का एक रास्ता अन्तरस्वरूप में अन्तर्दृष्टि करना। अरे रे! ऐसी बातें आवें। क्या हो? बात तो यह है। आहाहा! **चैतन्यमात्र-चिन्तामणि में...** आहाहा! चैतन्य चिन्तामणि में निरन्तर मेरा मन लगा है। आहाहा! यह लिखते समय भी मेरा मन तो वहीं लगा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लिखते समय का विकल्प है, लिखने की क्रिया वह तो भाषा की, परमाणु की क्रिया है; मेरी क्रिया नहीं। विकल्प उठा, वह राग-क्लेश है; वह मैं नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन लगे न? यशपालजी! दूसरे को-नये लोगों को लगे। ऐसा लगे कि यह क्या? ऐसी बात कहाँ से निकाली? सब बात सुनी है, उसमें से एक भी बात नहीं आती। व्रत पालो, छह परबी दया पालो, छह परबी ब्रह्मचर्य पालो, ऐसी बात तो इसमें कहीं नहीं आती। अब ऐसा तो अनन्त बार किया है न, सुन न अब।

वह यह भगवान अन्दर चैतन्य की समृद्धि से भरपूर भगवान के सन्मुख तूने कभी देखा नहीं और पर का-सामने का आग्रह तूने कभी छोड़ा नहीं। आहाहा! यह अमृत बरसता है। आहाहा! यह अमृत की वाणी भगवान की है। वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर का यह कथन है, प्रभु! तुझे जँचे, न जँचे, कठिन लगे... यह तो बहुत ऊँची बात है, ऐसा लगे। अरे! प्रभु! पहली ही बात यह है। धर्म की पहले में पहली बात यह है। आहाहा!

मेरा मन मुझमें... आहाहा! मेरा पूर्ण सहज ज्ञान-आनन्द-सुखस्वरूप, उसके लिये।

मेरे पूर्ण ज्ञान और आनन्द सुख के लिये, **मेरा यह निज अन्तर मुझमें—चैतन्यमात्र-चिन्तामणि...** चैतन्यमात्र चिन्तामणि भगवान... आहाहा! फाट-फाट अन्दर से। **चैतन्यमात्र-चिन्तामणि...** प्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! प्रभु! तुझे उसकी कीमत नहीं। आहाहा! वह **निरन्तर लगा है—उसमें आश्चर्य नहीं है,...** उसमें क्या कहते हैं आश्चर्य है? है उसमें रहना, उसमें क्या आश्चर्य है? ऐसा कहते हैं। नहीं है, उसमें जाना, वही आश्चर्य है कि अर..र..र.! वह कहाँ गया? यह क्या करता है? आहाहा!

कारण कि अमृत भोजनजनित स्वाद को जानकर देवों को अन्य भोजन से क्या प्रयोजन है? देवों की तैंतीस सागर की जिनकी आयु है, उन्हें तैंतीस हजार वर्ष में कण्ठ से अमृत की डकार आती है। उन्हें वहाँ दाल-भात बनाना पड़े, चाय बनानी पड़े, पूरणपोली की रोटी बनानी पड़े, ऐसा वहाँ नहीं है। उसे आहार की डकार हजार वर्ष में आती है। तैंतीस सागरवाले को तैंतीस हजार में आती है। दो सागरवाले को दो हजार में आती है। कण्ठ में से अमृत आता है। जैसे यह अमृत आता है न? मुँह में अमृत की मिठास आती है न? उसी प्रकार अमृत अन्दर झरता है। आहाहा! जिसे अमृत का स्वाद आया... यहाँ उसे कहते हैं कि जहर का स्वाद किस प्रकार आवे? आहाहा! है?

जिसे, **अमृत भोजनजनित स्वाद को जानकर...** अमृत के भोजन के स्वाद को देवों ने जाना... आहाहा! वह देव अब खिचड़ी और दही किस प्रकार खायें? दही का घोलन करे और खिचड़ी में नमक डाले। कहते हैं न, जिसे अमृत का स्वाद आया... आहाहा! अब वह बाहर के भोजन को क्या करे? बराबर है? **(जिस प्रकार अमृत भोजन के स्वाद को जानकर देवों का मन अन्य भोजन में नहीं लगता, उसी प्रकार ज्ञानात्मक सौख्य को जानकर...)** ज्ञानस्वरूप आनन्द आत्मा। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है और अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप से भरपूर भगवान है। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर खान - निधान है। अरे रे! कब इसे जँचे? ऐसा **(जानकर देवों का मन अन्य भोजन में नहीं लगता, उसी प्रकार ज्ञानात्मक सौख्य को जानकर...)** वह सौख्य का निधान-खान आत्मा है। वह **(चैतन्यमात्र-चिन्तामणि के अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं लगता)**। आहाहा!

चिन्तामणि चैतन्य में ज्ञान और आनन्द की रुचि के समक्ष, उसके स्वाद के समक्ष देव को अमृत के स्वाद के समक्ष दूसरे भोजन और दूधपाक तथा पूड़ी का स्वाद उन्हें नहीं आता। इनकी इच्छा भी नहीं करते। आहाहा! इसी प्रकार जिसे आत्मा के अमृत का स्वाद आया, वह दूसरे स्वाद को नहीं चाहता। इसका नाम अमृत का अनुभव और इसका नाम समकित कहा जाता है। (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२२) श्री समयसार, श्लोक २७१, प्रवचन - ६२९
दिनांक - १७-०२-१९७४

कलश चलता है। कहते हैं,

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१॥

सूक्ष्म बात है। आत्मा पुण्य-पापभावरूप तो नहीं है परन्तु पर के ज्ञेय को ज्ञेय करे और स्वयं जाने, ऐसा भी भेद उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसा कहते हैं कि यह ज्ञानमात्र भाव, जाननहार भाव, जाननहार स्वभावभाव वह मैं हूँ। **उसे ज्ञेयों के ज्ञानमात्ररूप नहीं जानना चाहिए;...** ओहोहो! छह द्रव्य हैं आत्मा के अतिरिक्त भिन्न, उनका ज्ञान वह करता है, वह... उसके कारण चार गति में भटकता है, वह चाहे जितने दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव करे, वह कर्ता होकर करे तो वह तो मिथ्यादृष्टि है परन्तु वह व्यवहार के जो भाव हैं, वे ज्ञेय और उनका यहाँ ज्ञान है, इतना वह ज्ञान, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि वे ज्ञेय रागादि हैं, वे पर हैं और उन्हें जाननेवाली पर्याय तो स्व है।....है, भाई! उसे धीरज से, धीरज से, एकान्त... ज्ञेय... हो, अन्दर चैतन्य में देखना... और माना है कि हम कुछ करते हैं। उसे हम... अनन्त भव व्यतीत करेगा।

कहते हैं कि उस ज्ञान में ज्ञेय होने की ताकत अपनी अपने कारण से है, पर को ज्ञेय करना और ज्ञान, ऐसा नहीं है। आहाहा! ...भाई! परन्तु ऐसा सूक्ष्म बहुत। और उसका जो ज्ञानगुण है, उसमें प्रमाण होने की शक्ति है। अर्थात् कि स्वद्रव्य-गुण-पर्याय ज्ञेय और उनका ज्ञान करे, ऐसा ही उसका स्वभाव है। राग का ज्ञान करना या पर का ज्ञान करना, वह वस्तु में नहीं है, परन्तु अपने अस्तित्व में उस राग का और पर का ज्ञान करे, वह अपने अस्तित्व में... अपने अस्तित्व में तो अपना उस सम्बन्धी का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान वह अपना ज्ञान अपने

अस्तित्व में है। ऐसा सूक्ष्म। गाथा ऐसी आयी है न! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव निकाल डाले, अनन्त शक्तियाँ हैं, उनके भेद निकाल डाले। चार को निकालकर यहाँ तीन को लिया है। वह भी वास्तव में तीन रूप नहीं है।

वहाँ कहा न? देखो! **ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना चाहिए।** वह तो वस्तु स्वयं ही ज्ञेय, स्वयं ही ज्ञान और स्वयं ही ज्ञाता है। ....यह अलग प्रकार का है। आहाहा! भाई! तेरे जन्म-जरा-मरण का—पूरे चौरासी के अवतार, उस दुःख में जुड़ा हुआ आत्मा, कहते हैं कि दुःख उसका स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! दुःख स्वरूप तो नहीं परन्तु दुःख को जानता है, इसलिए दुःख ज्ञेय और आत्मा ज्ञान—ऐसा भी नहीं है। आहाहा! यह एक ऐसी चीज़ है, ऐसा इसके ख्याल में तो आना चाहिए। बाहर से मानकर बैठा है कि धर्म होता है और धर्म (करते हैं), बापू! यह धर्म नहीं है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर का कहा हुआ तत्त्व अपूर्व और सूक्ष्म है।

यहाँ तो कहते हैं, ज्ञान भी स्वयं जाननेवाला एक शक्ति, ज्ञेय भी स्वयं एक शक्ति, ज्ञाता में अनन्त शक्ति है। समझ में आया? वस्तु... शरीर, वाणी यह तो जड़ मिट्टी है। इसे और उसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। उसे जानता है, ऐसा कहना वह कहते हैं कि यह बराबर नहीं है। क्योंकि वह ज्ञेय और ज्ञान अपना, ऐसा भेद नहीं है। उस सम्बन्धी का ज्ञान स्वयं से हुआ स्वयं में उस ज्ञान की कल्लोलें और द्रव्य-गुण वे स्वयं ज्ञेय हैं। वे ज्ञेय और उन्हें ज्ञान जानता है और ज्ञाता ऐसी अनन्त शक्ति का भगवान, ज्ञातारूप से ज्ञेय और ज्ञान को धारण करनेवाला... आहाहा! ....भाई! आ गया है परन्तु अधिक लोग हों... न बैठे। अभ्यास नहीं होता। अन्तरतत्त्व का भगवान चैतन्यस्वरूप विराजमान है, वह सर्वस्व स्वरूप उसका ज्ञान ही है और ज्ञान स्वयं ही अपना ज्ञेय है और ज्ञेय को ज्ञान का ज्ञाता स्वयं ही है, दूसरा कोई है नहीं। आहाहा! यह सब विवाद उठे हैं।

दिव्यध्वनि। स्वप्रमाण है, परप्रमाण है। क्या कहलाता है वह? खानियाचर्चा हुई। ऐसा प्रश्न उठाया था। ....भगवान आत्मा वह तो ज्ञानमूर्ति प्रभु है। जब वाणी उठे, वाणी, वाणी निकलती है, उस ज्ञान के कारण से वाणी का प्रमाणपना है या वाणी के कारण से वाणी का प्रमाणपना है? वह वाणी जो निकलती है, वह वाणी स्वयं स्व-पर कहने की ताकतवाली वाणी स्वयं से है। केवलज्ञान है, इसलिए वाणी में कुछ ताकत आती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार वाणी और लोकालोक ज्ञान की पर्याय का निमित्त है। वह निमित्त है, इसलिए उसका यह ज्ञान करता है, ऐसा नहीं है। वह निमित्त लोकालोक है, उसका ज्ञान

केवलज्ञानी करते हैं, ऐसा नहीं है। वह तो अपनी ज्ञानपर्याय की ही ऐसी ताकत है। उसे उस ज्ञान से उसको जानते हैं। लोकालोक को जानते हैं, ऐसा कहना वह असद्भूतव्यवहारनय है। आहाहा!

भाई! तेरी स्वतन्त्रता इतनी स्वतन्त्र है कि जिसे परज्ञेय की अपेक्षा ज्ञान में नहीं है, ऐसा कहते हैं। परज्ञेय... उसमें आता अवश्य है न? ज्ञानज्ञेय प्रमाण, भाई! प्रवचनसार में आता है न? इसलिए जरा... ज्ञानज्ञेय प्रमाण, वह लोकालोक और ज्ञेय लोकालोक। ऐसा तो उसका प्रमाण का माहात्म्य कितना है, ऐसा बतलाया है। उस ज्ञेय के कारण से ज्ञान का माहात्म्य है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! बहुत सूक्ष्म।

श्रोता : स्व-परप्रकाशक...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व-परप्रकाशक भी अपनी आत्मज्ञ शक्ति है, पर को प्रकाशित करता है, ऐसा नहीं। वह पर को प्रकाशित करने की पर्याय अपनी है। वह अपने को स्वयं ज्ञान ज्ञान को जाने, वह ज्ञान सब दूसरे गुणों को जाने, ऐसा स्व-परप्रकाशक है। भारी सूक्ष्म बात है, भाई! नियमसार में है। आत्मा ज्ञान है। वह ज्ञान ज्ञान को जाने और ज्ञान दूसरे आनन्द आदि गुण को जाने, इसका नाम स्व-परप्रकाशक है, निश्चय से। पर को जाने, इसलिए स्व-परप्रकाशक है, ऐसा नहीं है। वह तो व्यवहार हुआ। वह वास्तविकता नहीं। आहाहा!

ज्ञानस्वभाव भगवान! वह तो अमृत का प्रवाह है। अमृत अर्थात् मुक्ति, यह तो उसके कारण की बातें हैं। मुक्त को अमृत कहते हैं, मोक्ष को अमृत कहते हैं। ऐसा अमृतस्वरूप भगवान मुक्ति, उसके उपायरूप की यह बात है। भाई! तुझे बाहर से तो आँखें मींचनी पड़ेगी। आहाहा! तू तुझे जानता है, तू तुझे देखता है, तू तुझे देखता है, और देखनेवाले को देखता है और देखने की योग्यता वस्तु, ये तीन में भेद उसमें नहीं है; यह वचनभेद से ऐसा कथन करने में आता है। समझ में आया? ...फिर आगे कहेंगे। अभी तो ज्ञात हुआ है न। कितने ही हिन्दी समझते नहीं हैं। हिन्दी आयेंगे, फिर होगा। एक तो बात सूक्ष्म, उसमें भाषा गुजराती। इसमें विस्तार आवे, वैसा हिन्दी में नहीं आता। इसके ख्याल में तो बात ले। ख्याल करनेवाला मैं, ख्याल का करनेवाला मैं और ख्याल कराये, वह भी मैं और उस ख्याल का ज्ञेय और ज्ञान की शक्ति से अनन्त शक्तिवाला ज्ञाता, वह मैं। ...सम्यग्दर्शन के अद्भुतपने का विषय और तो भी पर्याय प्रगट हो वह... अलग है। यह तुरन्त ही आयेगा। आहाहा! समझ में आया? यह ज्ञान जानना...

ज्ञान अर्थात्... ज्ञान अर्थात् अपना स्वभाव। जाननस्वभाव की मौजूदगी-सत्ता वह ज्ञान और उस ज्ञान को स्वयं ज्ञेय करे, वह ज्ञेय और स्वयं ज्ञेयशक्ति तथा ज्ञानशक्ति से अनन्त गुणी शक्ति का धारक ज्ञाता-ये तीनों होकर वस्तु एक है, दूसरी वस्तु की उसमें अपेक्षा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो अभी व्यवहार करते-करते निश्चय होता है, वहाँ अटके हैं। भाई! व्यवहार— दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो राग की मन्दता है, निश्चय से तो वह परज्ञेय है। परज्ञेय से स्वज्ञेय को लाभ हो, ऐसा तीन काल में नहीं बनता। सेठ! ऐसा सूक्ष्म है। अरे! भगवान! तुझमें अनन्तगुणी ताकत है, भाई! परन्तु छुपाकर बैठा, पामर होकर माना। हम तो पामर हैं... ऐसे हैं... हम इतना अधिक समझने के योग्य नहीं हैं। अरेरर! कहते हैं, केवलज्ञान प्रगट करने की ताकतवाला और ऐसा समझने के लायक नहीं? प्रभु! यह तो कलंक लगता है। समझ में आया? इसके बिना इसके जन्म-मरण कभी मिटे, ऐसा नहीं है। आहाहा! ....पाव-आधे घण्टा होवे तो... भव... किस जगह... कहाँ गया? ऐसी भव की भ्रमणा में...

कहते हैं कि भव और भव का भाव वह ज्ञेय और आत्मा ज्ञान, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा ज्ञान तो समीप में है। राग और व्यवहार को ज्ञेय करके यह ज्ञान है, इतना वह ज्ञान नहीं। वह ज्ञान और वह ज्ञेय व्यवहार। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। ऐसा जो आया था। १२वीं गाथा। उसे यहाँ... आहाहा! उसमें आया है। ११वीं गाथा में। भगवान आत्मा भूतार्थ सत्यार्थवस्तु सत्चिदबिम्ब। शुद्ध ध्रुव चैतन्यधातु ध्रुव, वह सत्यार्थ त्रिकाल रहनेवाली चीज़ सत्यार्थ है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, जन्म-मरण की गाँठ उसके आश्रय से गलती है और फिर पर्याय में राग बाकी रह गया, अशुद्धता थोड़ी सी रही, उसे जानना, उसको व्यवहार कहने में आता है। पन्नालालजी! आहाहा! वह जाना हुआ प्रयोजनवान है व्यवहार। अर्थात् ज्ञात होता है... ज्ञात होता है, वह प्रयोजनवान है—ऐसा कहकर वहाँ व्यवहार का ज्ञान करते हैं, ऐसा कहा। यहाँ उड़ा दिया। समझ में आया?

यह तेरी कला, बापू! अलौकिक है, भाई! आहाहा! परन्तु उसे एक साधारण जहाँ मान मिले, वहाँ अर्पित हो जाता है। आहाहा! एक मीठे बोल से बुलावे वहाँ मानो कि... आहाहा! क्या हो गया इसे? सुविधा जहाँ बाहर की मिले लड़के, पैसे। ...६० वर्ष हुए, ७० हुए। किया क्या? परन्तु कितने ही अभिमानी होते हैं। रोग कभी आया नहीं कहे। भाई! ....कल्याणभाई की... है। अहमदाबाद। कल्याणभाई अपने... थे न? उनकी बहू कहे कि वह फिर कहते थे। उसने पूरी जिन्दगी में रुपये की दवा खायी नहीं। ऐसा उसे रोग नहीं था, ऐसा कहती है। कितनी उम्र थी? ५५? ५५ होगी। यहाँ तो... गुजर गये। ...४२ वर्ष।

कल्याणभाई है न? अहमदाबाद में। ...रात्रि में एकदम पाव घण्टे में। कुछ नहीं। साढ़े दस हुए होंगे, नहीं? रात्रि साढ़े दस बजे। जिन्दगी में किसी दिन एक रुपये की दवा खायी नहीं। आया अटेक... आहाहा! बाहर आये। बात करते-करते देह छूट गयी। आहाहा! परन्तु वह तो संयोगी चीज़ थी। वह वियोग से ही थी। संयोगी चीज़ वियोग से ही रही हुई थी। उसका क्षेत्र बदलना हुआ, दूसरा क्षेत्र अर्थात् उसे लगा कि यह क्या? वह तो भिन्न ही था। अरे! ऐसे-ऐसे भव तो इसने अनन्त बार किये। आहाहा! परन्तु इसे भवभ्रमण का त्रास नहीं लगता। अरेरे! यह भव...

योगसार में आता है न, नहीं? चार गति... भाई! तुझे चार गति के दुःखों का डर नहीं। आहाहा! यहाँ तो दुःख का डर नहीं, वह तो निकाल डाला, वह दुःख ज्ञेय है, यह भी निकाल डाला। समझ में आया? तेरी वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। दुःख तो तेरी दशा में नहीं, वस्तुस्वरूप में नहीं। आहाहा! यहाँ तो दृष्टि की अपेक्षा से बात की है न! देखो न, यहाँ तुरन्त ही कहा। ऐसा जो भगवान आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूपी, अस्तित्वसत्ता और उसका ज्ञेय भी स्वयं अस्तित्वसत्ता, वह ज्ञान स्वयं अपने को ज्ञेय करे और वह ज्ञेय और ज्ञान की ऐसी अनन्त शक्तिवाला तत्त्व ज्ञाता, वह द्रव्य, ज्ञानगुण और ज्ञेय तीनों। यहाँ पर्याय ली है। उसे जाने अर्थात् राग को और पर को, ऐसा नहीं। वह तो राग सम्बन्धी का अपने को अपने से हुआ ज्ञान है, वह उसका ज्ञेय है। ऐसा सब सूक्ष्म आया। उसकी अपेक्षा सामायिक, प्रौषध करे, प्रतिक्रमण करे। ऐई! मंगलदासभाई!

श्रोता : सामायिक ही कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! भाई! सामायिक कहाँ से आयी, भाई? तुझे खबर नहीं है। आहाहा! जिस स्वरूप से ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञातारूप से भी जहाँ भेद नहीं है, ऐसी चीज़ को तूने जाना नहीं। और सामायिक आयी कहाँ से? आहाहा! सामायिक में सम-आय (अर्थात्) वीतराग का लाभ हो। वीतराग पर्याय का लाभ हो। कब हो? राग की क्रिया तो मेरी नहीं, शुभराग वह तो मेरा नहीं। उससे मुझे लाभ हो, ऐसा तो नहीं परन्तु शुभराग का ज्ञेय और मैं ज्ञान, वह भी है नहीं। आहाहा! अनन्त जीव यह काम करके चले गये हैं। न हो सके, ऐसी चीज़ नहीं है। हो सके, ऐसी चीज़ है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! और आचार्य जगत को सुनाते हैं, वह हो सकने के लिये सुनाते हैं, या नहीं हो सके, उसके लिये सुनाते हैं। आहाहा!

अपने को प्यास लगी हो तो घर में हजार रुपये का बैल हो और घोड़ा हो, उसे कहे

कि पानी लाना ? आठ वर्ष की लड़की हो-पुत्री हो, उससे कहे कि बेटा ! पानी लाना। वह जानता है कि मैं कहता हूँ, उस भाव को वह समझेगी। घोड़ा और बैल नहीं समझेगा। आठ वर्ष की लड़की समझेगी। उससे कहेगा, बेटा ! पानी लाओ। आचार्य कहते हैं प्रभु ! हम यह बात राग को और शरीर को नहीं कहते। जो अन्दर समझनेवाला ज्ञानमूर्ति है, उसे हम कहते हैं। आहाहा !

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहते हैं, भाई ! चैतन्यबिम्ब प्रभु है, उसे हम कहते हैं कि हमारी वाणी भी ज्ञेय है और आत्मा ज्ञान करता है, ऐसा भी तुझमें नहीं है, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? वाणी सुनते हुए... त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि सुनते हुए जो ज्ञान की पर्याय होती है, वह ज्ञान की पर्याय कहीं वाणी से नहीं हुई। वह तो अपनी ज्ञान की पर्याय अपने से हुई है। तो भी वह ज्ञान की पर्याय हुई, वह यथार्थ ज्ञान नहीं है। क्योंकि वह तो परलक्ष्यी ज्ञान की पर्याय हुई। उस वाणी को ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ। भले ज्ञान हुआ अपने से। समझ में आया ? आहाहा ! गजब बात करते हैं न ! कहते हैं कि वाणी ज्ञेय और आत्मा की पर्याय ज्ञान, ऐसा हम नहीं कहते। कान्तिभाई ! यह जिन्दगी में सब सुना नहीं होगा। सवेरे कहते थे, असत् का सत् हो गया।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ दिखता नहीं, मानता है यह। इसकी पर्याय उस काल में उस कारण से उत्पन्न होती है, तो भी वाणी उसे निमित्त है और ज्ञेय है, इसलिए ज्ञान हुआ, यह वस्तु का स्वरूप नहीं है। भगवान ! तेरी जाति की स्वतन्त्रता, कर्तास्वभाव से स्वतन्त्र अपनी पर्याय को ज्ञेयरूप से जाननेवाला ज्ञान स्वयं प्रगट करता है। जिस समय ज्ञान की पर्याय होती है, उस समय वह ज्ञान उसे ज्ञेय करता है। ...इसे ऐसा मनुष्य देह मिला, बापू ! कब करेगा ? आहाहा ! यहाँ से कहाँ जाना ?

वीतराग की वाणी और वीतराग, वह ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय है और उसे ज्ञान जानता है, ऐसा वस्तु में नहीं है। उस समय की जो ज्ञान की पर्याय (हुई), वह स्वयं ज्ञेय होकर ज्ञान उसे जानता है, उसे स्वलक्ष्यी होकर उसे ज्ञान जाने, तब उस पर्याय का यथार्थ ज्ञान, ज्ञान में ज्ञेयरूप से आया और ज्ञाता ने उसे ज्ञान द्वारा जाना, ऐसा भेद तब कहलाता है। समझ में आया ? बहुत समाहित किया है, आचार्य ने कलश में बहुत समाहित किया है। ओहोहो !

कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य सन्तों ने केवलज्ञानी को तो खड़ा रखा है। पंचम काल में केवलज्ञानी का विरह उन्होंने भुलाया है। भगवान! तू ज्ञानस्वरूपी प्रभु और तुझे ज्ञेयरूप से तो तेरा ज्ञान और तेरी चीज़ ज्ञेयरूप से... परचीज़ को कहाँ स्पर्श करता है और पर का तो तुझमें अत्यन्त अभाव है। परज्ञेय का और तेरे ज्ञेय को तो अत्यन्त अभाव है। आहाहा! ....लालजी! ऐसी सूक्ष्म बात, इसलिए फिर भड़कते हैं, हों! सोनगढ़वाले अकेली निश्चय की बातें करते हैं। बातें करते हैं... बातें करते हैं।

श्रोता : निश्चय की बात करना, वह स्वयं ही व्यवहार हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भेद पाड़कर अभी तो स्वयं ज्ञेय, स्वयं ज्ञान और ज्ञाता, यह भेद पाड़ना, वह भी व्यवहार है। सुन न अब। ऐई! आहाहा! यह तो उसे असद्भूतव्यवहार जो दया, दान, भक्ति, पूजा ऐसा करते-करते आत्मा में जाया जाता है। भगवान! उस परज्ञेय से आत्मा में नहीं जाया जाता। आहाहा! ***वास्तव में वह पर को नहीं जानता। वह अपनी ज्ञान की दशा को जानता है।*** आहाहा! कल थे न? मूलजीभाई को... .... गृहस्थ व्यक्ति पैसेवाले। के वर्ष में सोलह लाख, अठारह लाख... मुम्बई से। इतना सब लम्बा... दूसरे बढ़ गये। करोड़ोंपति हो गये। ... दस लाख और बीस लाख ...। उसने वाँचन किया है। उसे ऐसी रुचि। अन्त में हार्ट दर्द आया। ...भाई! हार्ट-हार्ट। ... कहा, बुलाओ डॉक्टर को। ... व्यक्ति है, ...व्यक्ति है। यह कहे, बुलाओ लालभाई को। लालभाई आये। ...लालभाई ने ऐसा कहा, मूलजीभाई! इस देह के दुःखों को ज्ञान जानता है, देह का दुःख वह ज्ञान जानता है। वह देह का दुःख आत्मा को नहीं है। तब जवाब देता है, जवाब देता है—इस देह के दुःख को आत्मा जानता है या अपने को जानता है? यह मरने की तैयारी। धनाढ्य व्यक्ति, हों! ९९ की अपेक्षा साढ़े ९९... पहले बहुत सुविधा होगी। ...ऐसा-ऐसा हो। हमने देखा है। मरते समय, देह छोड़ते समय यह हार्ट की... ऐसा जहाँ करे, मूलजीभाई! देह के दुःख वे आत्मा में... आता है न? वह ज्ञात होते हैं। तब जवाब देता है कि देह के दुःख को ज्ञान जानता है या ज्ञान ज्ञान को जानता है? पण्डितजी! ....

यह बहिन... बहिन को। ....वह तो बहुत अभ्यासी थीं। चिन्तन, विचार, मनन... आहाहा! देह में 'देह का धर्म जीवपद में ज्ञात होता है' ऐसा आता है। श्रीमद् में आता है न। 'यह पद्मनन्दि पंचविंशति... पद्मनन्दि पंचविंशति में यह बोल है। पद्मनन्दि पंचविंशति है न? ग्रन्थ है। यह अपेक्षा से कथन है। व्यवहार के कथन बहुत आते हैं। उसे भेद तो नहीं परन्तु उसे जानता है। देह को क्या? जड़ की पर्याय वह तो मिट्टी की पर्याय है। आहाहा! १०८

डिग्री बुखार आवे तो बुखार तो जड़ में है। आत्मा में है ? आहाहा! उसे जानता है—ऐसा कहना, कहते हैं कि वह भी व्यवहार है। लादूलालजी! गृहस्थ व्यक्ति है, हों! मरते हुए... जाए कहाँ ? आहाहा!

देह के दु:ख को आत्मा जाने ? दु:खदशा तो पर है। काया की अवस्था, वह तो पर है। ज्ञानस्वरूप उससे पर है। अत्यन्त अभाव है। वह ज्ञान उसे जानने में रुके ? ...उसे ....वाँचन बहुत और वाँचन बहुत, इसलिए विचार हुआ। आहाहा! अरे! अवसर पर उसे... आना! ...भिन्न हो गया। ...भिन्न हो गया। ...उलझन... उलझन... उलझन... वहीं का वहीं उलझकर... आहाहा! ऐसे अवसर में कहे, बापू! यह आत्मा दु:ख को नहीं जानता। आहाहा! काया की क्रिया को आत्मा नहीं जानता।

यहाँ तो कहते हैं कि काया की क्रिया का जो ज्ञान हो और वह ज्ञेय, इन दोनों का सम्बन्ध ही झूठा है। उसे जो ज्ञान की दशा में पर्याय परिणमित हुई है, वह अपनी... वह ज्ञेय होकर ज्ञान उसे जानता है... । समझ में आया ? वहाँ उसे समाधि सम्यग्दर्शन प्रगट होता है और उसे मरते हुए, देह छूटने पर भी वह समाधिमरण से उसे देह छूटेगी। आहाहा! बाकी तो... आहाहा!

(संवत्) १९७६ में कहा था न ? १९७६ के वर्ष में। ध्रांग्रध्रा, सोनी थे। जेठालाल सोनी। तब अपने को बहुत खबर नहीं। १९७६ की बात है। कितने वर्ष हुए ? ५४ वर्ष। तब ऐसा कहीं हार्टफेल हमने सुना हुआ नहीं। हम तो कहीं बहुत जानते नहीं। १९७६ के वर्ष। अर्थात् देह की तीस वर्ष की उम्र और ५४ वाँ अर्थात् १९८४ चलता है न ? इसलिए अपने को बहुत खबर नहीं, इसलिए कहे महाराज को बुलाओ। मन्दिर... अकेली... कैसे ? फूलचन्द... नहीं थे ? बहुत... थे। परिवर्तन के बाद भी आते थे। ...तड़फड़ाहट करे... वहाँ ... उस ओर फिरे... उसकी ओर फिरे... पहले-पहले देखा यह तो। १९७६ के वर्ष। यह क्या है ? कहीं उसे चैन नहीं आवे। क्यों ? कि शरीर और राग में एक बुद्धि है। आहाहा! शरीर में होता है, वह मुझे होता है।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार जाग तो सही। यह जागकर देख तो तू तेरे ज्ञान को जानता है। उस पर को नहीं। आहाहा! कितनी दृष्टि समेटी है। **ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना चाहिए। (अर्थात् स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञेय, स्वयं ही ज्ञाता—इस प्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्र जानना चाहिए।)** तीन भावसहित भी वस्तुमात्र जानना। बहुत सरस बोल है। मक्खन है मक्खन। आहाहा!

भावार्थ - ज्ञानमात्र भाव ज्ञातृक्रियारूप होने से... ज्ञान का जानने का स्वभाव, वह पर्याय में **ज्ञातृक्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है।** वे कहीं परस्वरूप है नहीं। **और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है।** ज्ञेय ज्ञान से भिन्न हैं। रागादि, शरीरादि, वाणी आदि, देव-गुरु-शास्त्र आदि। वे **बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है, वे ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते; ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर...** परन्तु वे ज्ञेय जिस स्वरूप है, उनका यहाँ अपने से ज्ञान होने पर आकार की झलक प्रविष्ट होती है। झलक शब्द से वह जैसी चीज़ है, ऐसा यहाँ ज्ञान होता है। **ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखायी देता है...** ज्ञान मानो परज्ञेय के आकार हुआ, ऐसा ज्ञात होता है। **परन्तु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं।** वे ज्ञान की तरंगें उठती हैं। वह पर के ज्ञेयाकार हुआ नहीं, वह स्व के ज्ञानाकार ज्ञान हुआ है। आहाहा! ऐसी बात नहीं, शान्तिभाई! सर्वत्र गप्प-गप्प मारते हैं। आहाहा!

तीन लोक का नाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर (कहते हैं) तेरी शक्ति का ऐसा तत्त्व है, उसे सम्हाल। अब दूसरे की सम्हाल करना छोड़ दे। समझ में आया? यह ज्ञान में परवस्तु की जो स्थिति है, उसी प्रकार का ज्ञान परिणमता हुआ मानो **ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखायी देता है परन्तु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं।** वह ज्ञेयाकार नहीं। वह ज्ञानाकार ही ज्ञान उस प्रकार से हुआ है। आहाहा! सूक्ष्म तो है, भगवान! तेरी बात ही सूक्ष्म है न, प्रभु! यहाँ तो शुभभाव से निश्चय हो, वह तो कहीं रह गया परन्तु शुभभाव को ज्ञेयरूप से जानता है...

श्रोता : स्वयं ही ज्ञेय...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं ही ज्ञेय हो गया। ओहोहो! दिगम्बर सन्तों की वाणी... उत्कीर्ण हुई। आत्मा में उत्कीर्ण कर डाले तो भव पार हो जाए। आहाहा! दूसरे को साधारण को तो ऐसा लगे... लगे व्यक्ति को। यह धर्म की बातें करे, पागल है। पागल को तो पागल ही दिखेगा न? आहाहा! वह ज्ञान की पर्याय है। वह ज्ञेयाकार हुआ, वह ज्ञेय की पर्याय नहीं। शरीर, वाणी, मन, राग, जो ज्ञेय है। जैसा ज्ञेय है, वैसा यहाँ ज्ञान हुआ है। वह भी ज्ञेय का ज्ञान नहीं, वह तो ज्ञान का ज्ञान है। समझ में आया?

वे ज्ञान तरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। देखा? वह ज्ञान की पर्याय जो है, वह ज्ञान द्वारा ज्ञात होती है। ज्ञान द्वारा यह ज्ञात होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने तो गजब काम किया है न! **इस प्रकार स्वयं ही स्वतः जाननेयोग्य होने से...** देखा? ज्ञान और ज्ञेय आ गया। अब स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से **ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है।** ज्ञाता हो

गया। उसमें-कलश टीका में ऐसा लिया है कि ज्ञेयशक्ति अपनी, ज्ञान भी शक्ति और ज्ञाता अनन्त शक्ति का पिण्ड, ऐसा कहा। ज्ञाता अनन्त शक्ति। वस्तु लेना है। ज्ञान एक शक्ति है, ज्ञेय भी एक शक्ति है। अपनी अपने में। ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु ज्ञाता है।

और स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। इस प्रकार ज्ञानमात्र भाव ज्ञान,... जानने के स्वभावरूप स्वयं ज्ञान, ज्ञात होता है, वह **ज्ञेय और ज्ञाता— इन तीनों भावों से युक्त सामान्य विशेषस्वरूप वस्तु है।** सामान्य अर्थात् ध्रुव। उसकी जानने की पर्याय है, वह विशेष। ऐसी वस्तु है। **'ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ' इस प्रकार अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभव करता है।** आहाहा! समझ में आया? वेदान्त ऐसा कहता है न, अनुभव करनेवाला और अनुभव, और ये दो कहाँ से लाये? ये दो हैं वे है अवश्य... अभेद है यहाँ। वे ऐसा कहते हैं। आत्मा अनुभव करनेवाला और यह अनुभव करे, यह दो हो गये— द्वैत हो गया। तुझे खबर नहीं। द्वैत है परन्तु वह अभेदरूप से जाने, तब उसे द्वैत उड़ जाता है। अनुभव करनेवाला और अनुभव - दो है। पर्याय है। अनुभव करनेवाला तो ज्ञाता है, अनुभव पर्याय है। परन्तु अभेद होने पर अनुभव करनेवाला मैं और अनुभव में आता है, ऐसे दो भेद नहीं रहते। अरे! ऐसा धर्म। वे तो ऐसा कहते हैं, भाई! एकेन्द्रिय की दया पालना, दो इन्द्रिय की दया पालना, दु:खी... बेचारे को मदद करना, उन सबके आँसू पोंछना, नंगे-भूखे हों उन्हें आहार, पानी, वस्त्र देना। सुन तो सही, प्रभु! यह क्या तू कर सकता है? वह क्रिया तो नहीं परन्तु अन्दर का भाव है, वह भी तेरी चीज़ है? दया, दान, व्रत, आदि का भाव, वह कहीं तेरी चीज़ है? वह तो पर का विकल्प है, राग है। आहाहा!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में है न? आहाहा! ज्ञानचन्दजी! ऐसा यह वीतरागमार्ग में होता है, अन्यत्र कहीं नहीं होता। अन्यत्र समन्वय करने जाए... बापू! कहाँ है ऐसी बात? और वह भी... आहाहा! नागा बादशाह से आघा। ऐसी दिगम्बर सन्तों की वाणी है। उसका ऐसा स्वरूप है। यह कहीं कल्पित करके खड़ा किया है, ऐसा है? आहाहा!

भाई! तेरा स्वरूप ही ज्ञान है न, उस ज्ञान की पर्याय को ज्ञान जानता है और वह ज्ञान की पर्याय ज्ञेयरूप से जाने, ऐसी अनन्त शक्ति का तू तो ज्ञाता है। ये तीनों एक हैं। उसमें आता है न? 'कर्ता परिणाम द्रव्य, करमरूप परिणाम, किरिया परजय की फिरनि वस्तु एक त्रय नाम।' 'करता परिणामी द्रव्य...' निर्मल वीतरागी पर्याय का कर्ता जीवद्रव्य और कर्मरूप

परिणाम। यह वीतरागी पर्याय है, वह कर्म है-कार्य है-अवस्था है। कर्ता परिणाम द्रव्य कर्मरूप परिणाम, क्रिया पर्याय की फेरनी। और जो पूर्व की पर्याय पलटी और जो हुई, वह क्रिया भी परिणाम है। यह वस्तु एक तीन नाम। वस्तु तो एक है, तीन नाम पड़े हैं। यह समयसार की १६वीं गाथा में है। समयसार।

'कर्ता परिणामी द्रव्य', वास्तव में तो उसका अंश है कर्ता, द्रव्य तो त्रिकाल है परन्तु वह अंश उसके परिणाम निर्मल वीतरागी पर्याय का कर्ता, वीतरागी पर्याय कार्य और पूर्व की पर्याय से परिवर्तन किया और वीतरागदशा (हुई), पूर्व में वीतराग पर्याय थी, उसमें से वीतराग पर्याय नयी हुई, वह उसकी क्रिया। वह आत्मा की क्रिया। राग की और पर की वह आत्मा की क्रिया नहीं। तीन नाम पड़े हैं परन्तु वस्तु एक है। इसी प्रकार यहाँ तीन भेद पड़े हैं परन्तु वस्तु एक है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इस प्रकार अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभव करता है। लो! अब यह कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२३ **श्री समयसार, गाथा ३०८-३११, श्लोक १९४, प्रवचन - ३७९**
दिनांक - २७-१२-१९७९

समयसार, सर्वविशुद्ध अधिकार। १९४ कलश है, १९४।

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत्।
अज्ञानादेव कर्तायं तदभावादकारकः॥१९४॥

'**कर्तृत्वं अस्य चितः स्वभावः न**' आत्मा पर का कुछ कर सके, यह स्वभाव नहीं है। आहाहा! यह क्रमबद्ध में आयेगा, यह यहाँ सिद्ध करना है। आत्मा शरीर, मन, वाणी, कर्म या परपदार्थ का कुछ कर नहीं सकता। आहाहा! '**कर्तृत्वं अस्य चितः स्वभावः न**' उसका स्वभाव नहीं है। वह तो ज्ञान, दर्शन और आनन्दस्वरूप है। पर का कर्ता नहीं। आहाहा! तथा भोक्ता भी नहीं। परवस्तु को भोगे आत्मा, तो आत्मा तो अरूपी है। रंग, गन्ध, रसरहित और ज्ञान और आनन्द उसका रूप है। वह किसे भोगे? पर का कर्ता नहीं और पर का भोक्ता नहीं। आहाहा! संसार की सब बातें उड़ जाए न? उसमें आयेगा।

अज्ञान से ही कर्ता है,... अज्ञान से। स्वरूप का भान नहीं, इसलिए कर्ता मानता है कि मैं यह शरीर का करूँ, देश का रूप, परिवार का करूँ... आहाहा! पर की दया पालूँ, ऐसे अनेक भाव अज्ञानरूप से करता है। आहाहा! '**तद्-अभावात् अकारकः**' **अज्ञान का अभाव होने पर अकर्ता है।** स्वयं स्वरूप से अकर्ता है। अभाव होने पर स्वरूप से अकर्ता है। कुछ भी पर को (करता नहीं)। आहाहा! एक पत्ता तोड़ने की भी आत्मा में शक्ति नहीं है। पत्र.. पत्र..। नीम का कोई पत्ता तोड़ने की शक्ति नहीं है। आहाहा! वह तो जड़ की क्रिया है। उसका भाव है तो उसके पास रहा, परन्तु क्रिया नहीं कर सकता। ओहोहो! लौकी की सब्जी बनाते हैं न? छुरी से ऐसे (टुकड़ें करें), वह आत्मा नहीं कर सकता। लौकी के टुकड़े आत्मा नहीं कर सकता तथा गुड़ मुँह में डाले और दाँत से पतला करे, वह आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा! यह गाथा है, हों!

अब, आत्मा का अकर्तापना... यह क्रमबद्ध की व्याख्या है, परन्तु यहाँ अकर्तापना

सिद्ध करते हैं। **अब, आत्मा का अकर्तापना दृष्टान्तपूर्वक कहे है—** आत्मा अकर्ता है। शरीर, वाणी, मन, कर्म, परद्रव्य बिल्कुल परद्रव्य का (अकर्ता है)।

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह॥३०८॥

जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि॥३०९॥

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो आदा।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि॥३१०॥

कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।
उप्पज्जंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसदे अण्णा॥३११॥

नीचे हरिगीत

जो द्रव्य उपजे जिन गुणों से, उनसे जान अनन्य वो।
है जगत में कटकादि, पर्यायों से कनक अनन्य ज्यों।।३०८।।

जीव-अजीव के परिणाम जो, शास्त्रोंविषैं जिनवर कहे।
वे जीव और अजीव जान, अनन्य उन परिणाम से।।३०९।।

उपजै न आत्मा कोइसे, इससे न आत्मा कार्य है।
उपजावता नहिं कोइको, इससे न कारण भी बने।।३१०।।

रे! कर्म-आश्रित होय कर्ता, कर्म भी करतार के।
आश्रित हुवे उपजे नियम से, अन्य नहिं सिद्धी दिखै।।३११।।

आहाहा! **टीका** - यह तो अभी शिविर में वाँचन हो गया है। वाँचन हो गया है, पहले वाँचन हो गया है। प्रत्येक पदार्थ परमाणु हो या आत्मा, प्रत्येक पदार्थ जो उसकी पर्याय उत्पन्न होने का काल है, उस समय में पर्याय उत्पन्न होती है। आत्मा कहे है कि मैं फेरफार करूँ। जिनेन्द्रदेव भी अपनी पर्याय में आगे-पीछे फेरफार नहीं कर सकते। आहाहा! जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न (होनेवाली है), वह जन्मक्षण है। उस पर्याय में उत्पत्ति का काल है। आहाहा! उसे नियतवाद हो जाता है। यह लोगों को नियत लगता है। परन्तु नियतवाद में पाँचों समवाय आ जाते हैं। उसमें एक नहीं, यह कहेंगे देखो!

प्रथम तो जीव क्रमबद्ध... क्रमबद्ध, यह सिद्धान्त है। प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा के क्रमसर परिणाम होते हैं। क्रमवृत्ति तो पर्याय का धर्म ही है। क्रमवृत्ति तो पर्याय का धर्म है परन्तु यहाँ तो क्रमबद्ध। उसमें विशेष (यह है कि) जिस समय में जो होना है, वह होता है। इसके लिये क्रमबद्ध कहा है। आहाहा! यह सब दुकान पर बैठकर व्यापार करते हैं, धन्धा करते हैं। कहते हैं, एक तिनके दो टुकड़े करने की आत्मा में ताकत नहीं है। एक तिनका... तिनका, उसके दो टुकड़े करने की आत्मा में शक्ति नहीं है। उस समय में होनेवाली क्रिया, उससे दो टुकड़े होते हैं। उसे अज्ञानी मानता है कि मैं इन्हें करता हूँ। वह कर्ता अज्ञानी मानता है, वह कर नहीं सकता। आहाहा! बहुत कठिन बात।

प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे... समय-समय में जो पर्याय होनेवाली है, उसे प्रवचनसार में तो ऐसा कहा है कि प्रत्येक द्रव्य की जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह उसका जन्मक्षण है, उत्पत्ति का काल है। वह पर्याय उत्पन्न (होने में) किसी निमित्त की अपेक्षा या द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं है। वह पर्याय स्वतन्त्रकर्ता होकर, उस समय में पर्याय उत्पन्न होती है। जिस समय में उत्पन्न होने का वह काल है, वह होती है और वह पर्याय उत्पन्न होनेवाली को द्रव्य की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! निमित्त की अपेक्षा तो नहीं, परन्तु द्रव्य की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसा वह **जीव क्रमबद्ध...** आहाहा! जिस समय में जो पर्याय होनी है, उस समय में होती है। इसमें बड़ा विवाद था। विवाद है न? अभी आजकल बड़ा विवाद है। ऐसा होगा तो नियतवाद हो जाएगा, अमुक हो जाएगा, अमुक हो जाएगा। इसमें अकर्तापने का पुरुषार्थ है, भाई!

जिस समय में जो पर्याय जहाँ होती है, उसका आत्मा कर्ता नहीं, तब अकर्ता का वहाँ पुरुषार्थ है और अकर्तापना यहाँ सिद्ध करना है। ऊपर यह लिखा है न? अकर्तापना सिद्ध करना है। परजीव की ऐसे दया पालना या पर की हिंसा करना या पर को स्पर्श करना। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता, स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं—स्पर्शता नहीं तो करे क्या? आहाहा! यह कठिन बात है।

जीव क्रमबद्ध ऐसे... भावार्थ में इसकी इतनी अधिक गम्भीरता नहीं लिखी है। उनके ख्याल में आयी नहीं। भावार्थ है, और साधारण है। जिसके परिणाम हों, उसके परिणाम हों... परन्तु क्रमबद्ध है, इसका अर्थ नहीं लिखा, ख्याल में आया नहीं। आहाहा! जो जीव क्रमबद्ध एक समय में जो पर्याय होती है, परन्तु ऐसा जिसका लक्ष्य हो कि क्रमबद्धपर्याय होनी है, वह होगी। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में भी ऐसा लिखा है। जिस समय में भगवान ने देखा, उस

समय में वहाँ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से होकर वहाँ होने का उस समय में होता है। आहाहा!

श्रोता : यह न माने तो मिथ्यादृष्टि...

पूज्य गुरुदेवश्री : न माने तो वहाँ मिथ्यादृष्टि कहा है। ऐसा न माने तो मिथ्यात्व और माने तो सम्यग्दृष्टि कहते हैं, ऐसा शब्द है। आहाहा! तब इसमें पुरुषार्थ क्या? पुरुषार्थ आया। क्रमबद्ध अर्थात् पर्याय होती है, उसे करनी है कहाँ? होती है, उसे करना कहाँ है? अपनी भी होती है, वहाँ करना कहाँ है? पर की भी पर्याय होती है, वहाँ तो दूसरा कहाँ कर सके? दूसरे परमाणु और आत्मा की जिस समय में पर्याय होती है, वह होगी, उसे आत्मा किस प्रकार कर सके? आहाहा! लड़कों को उनके माता-पिता बड़े करते हैं न, छोटे हों उन्हें बड़े करते हों, यह भ्रमणा है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कहीं कुछ नहीं करता, अकर्ता है। आहाहा!

वह अकर्ता **अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** क्रमबद्ध ऐसे अपने समय में स्वतन्त्ररूप से, स्वतन्त्ररूप से... आहाहा! वह-वह द्रव्य उस समय की पर्याय स्वतन्त्ररूप से कर्ता होने से, **अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** ऐसा कहते हैं। अपने परिणाम से, क्रमबद्ध और अपने परिणाम से उत्पन्न होता हुआ, **क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** ऐसी भाषा है। है इसमें? क्या कहा? क्रमबद्ध। **जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** बस। आहाहा! अपने परिणाम स्वयं क्रमसर होते हैं, उन्हें उपजावे। वे आनेवाले अथवा पर्याय होनेवाली, उसे उल्टी-सीधी नहीं कर सकता। ओहोहो! यह कठिन काम है।

यह **जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से...** क्रमसर आनेवाले परिणाम, वे अपने परिणाम। आहाहा! जिस समय में जिसका भवअन्त आनेवाला हो, वह आता है। जिस समय में जिसे भटकना हो, वह आता है। आहाहा! कालनय आया है न? नय आया, कालनय। जिस समय में उसका काल होता है, उसे उस समय में मोक्ष होता है। फिर अकालनय भी लिया है, परन्तु अकाल अर्थात् कहीं काल बदले, ऐसा नहीं है। काल के साथ पुरुषार्थ और स्वभाव लेकर अकाल कहा गया है। अकेला काल नहीं अर्थात्; बाकी अकाल (अर्थात्) आगे-पीछे मोक्ष होता है, अकाल में मोक्ष होता है, ऐसा नहीं है। अकाल में मृत्यु होती है, ऐसा भी नहीं है, देखो!

भगवती आराधना में ऐसा लिखा है कि अकाल में मृत्यु है। ऐसा न माने तो खोटा है, यह व्यवहार से बात की है, व्यवहार से बात है। परमाणु का संक्रमण इस प्रकार से होने का था, इसलिए वहाँ हुआ है परन्तु आयुष्य कम हुआ और आयुष्य का क्रम टूट गया, इसलिए

वह मर गया, देह छूटा - ऐसा नहीं। उसके वे परिणाम उसी समय में, वे ही छूटने के, उस क्षेत्र में, उस काल में, उस संयोग में, उस निमित्त से (वैसे छूटेंगे)। उसमें कोई दूसरा फेरफार नहीं कर सकता, डॉक्टर-वॉक्टर कोई दवा और इंजेक्शन देकर (बचा ले, ऐसा नहीं है)। डॉक्टर नहीं कोई? कहो, समझ में आया?

क्रमबद्ध ऐसे अपने... आहाहा! यहाँ वजन वहाँ है। **जीव...** यहाँ पहले जीव का लिया है। जड़ का बाद में लेंगे। जड़ का कार्य कर नहीं सकता, यह बाद में कहेंगे। पहले तो **जीव क्रमबद्ध ऐसे...** एक के बाद एक अनुक्रम से। अनुक्रम कब कहलाता है? कि एक के बाद एक, एक के बाद एक जो होनेवाली पर्याय, वह होती है, उसे अनुक्रम कहते हैं, उसे क्रमबद्ध कहते हैं। आहाहा! यह टिकिट लेने बैठे हों तो ऐसे नम्बरवार होते हैं न? पहले खड़ा हो, उसकी पहली टिकिट, दूसरे को दूसरी, तीसरे को तीसरी। यह टिकिट रेल की या फिल्म की। हार... हार... होता है, जिसका पहला नम्बर हो, उसे दे, पश्चात् दूसरे को, तीसरे को, ऐसा लाईन में खड़ा रहने का (होता है)। छाछ लेने जाते हैं, वहाँ भी ऐसा होता है। यह छाछ की (दुकान) होती है न? वहाँ लोग एक के बाद एक खड़े हों, उन्हें देते हैं। आहाहा! है, देखा है। इसी प्रकार यहाँ आत्मा एक के बाद एक क्रमबद्ध अनुक्रम से आनेवाले जो परिणाम हैं, उन परिणामरूप वह उपजता हुआ। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। अधिक स्पष्ट तो भाई हुकमचन्दजी ने लिखा है। क्रमबद्ध की पुस्तक बाहर प्रकाशित होनेवाली है। अपने भी पहले दो बार हो गया है। वैसे तो बहुत बार हो गया, परन्तु अभी दो बार ताजा-ताजा हुआ है।

ओहोहो! भगवान आत्मा **क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से...** क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणाम। आहाहा! ऊपर कहा था न? अकर्ता सिद्ध करना है, ऐसा कहा था न? आत्मा का अकर्तापना दृष्टान्तपूर्वक सिद्ध करना है। क्रमबद्ध सिद्ध करना है, ऐसा नहीं आया। अकर्तापना सिद्ध करना है, उसमें क्रमबद्ध आया है। समझ में आया? आहाहा! आत्मा (के) अकर्तापने की पराकाष्ठा यहाँ है। जगत का ईश्वरकर्ता है, यह मान्यता जैसे झूठी है, वैसे एक आत्मा पर का कर सके, यह बात झूठी है। वैसे यह द्रव्य पर्याय को आगे-पीछे कर सके, यह भी झूठ है और उस पर्याय को द्रव्य करता है, यह भी नहीं; पर्याय, पर्याय को करती है। यह अकर्तापना सिद्ध करना है। ठेठ अकर्तापना लेते हैं। आहाहा!

यह पुस्तक आत्मा बना नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह वकील वकालात कर नहीं सकते, ऐसा कहते हैं। भाषावर्गणा बोले, वह तो जड़ की पर्याय है; आत्मा नहीं, आत्मा नहीं। आहाहा! डॉक्टर इंजेक्शन देते हैं, उससे कुछ पर में होता है, (ऐसा नहीं है)।

इंजेक्शन शरीर को स्पर्श नहीं करता, आत्मा इंजेक्शन दे नहीं सकता। आहाहा! ऐसी बात! पंगु हो गया, पर के लिये पंगु; अपने लिये परमेश्वर। अपना कार्य करने के लिये परमेश्वर, दूसरे के कार्य के लिये पंगु। आहाहा! ऐसी बात सुनने को कहाँ मिले? करो, यह करो, यह करो। 'दया वह सुख की वेलड़ी, दया वह सुख की खान; अनन्त जीव मुक्ति गये...' वह पर की दया से नहीं। वे दया के परिणाम ही राग है।

यहाँ कहते हैं कि वह **क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** भले उत्पन्न हो। वह **उत्पन्न होता हुआ जीव ही है,...** जीव क्रमसर-अनुक्रम से अपने परिणाम से उपजता हुआ जीव है। आहाहा! बहुत गहरा है। समझ में आया? इसमें एक लाईन में कितना भरा है! जीव प्रथम कहा न? '**तावत्**', ऐसा। मुख्य बात यह कहनी है कि आहाहा! **जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से...** आहाहा! होते हैं क्रमबद्ध ऐसे, अपने क्रमसर हों, ऐसे परिणामों से भी, **परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** जीव परिणामरूप उपजता हुआ। आहाहा! उत्पाद की पर्याय है न? **अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है,...** आहाहा!

जीव खा नहीं सकता। कहो! रोटी, दाल, भात, सब्जी खा नहीं सकता। चाय और दूध पी नहीं सकता। आत्मा तो अन्दर अकर्ता है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! वीतराग की बात बहुत सूक्ष्म। आहाहा! सिर पर यह टोपी भी ओढ़ नहीं सकता, टोपी को घुमा नहीं सकता, कपड़े को ऐसे बदल नहीं सकता। कपड़ा ऐसे पहिनना या ऐसे पहिनना। आहाहा! बहुत कठिन काम। इसमें बहुत भरा है।

जीव क्रमबद्ध ऐसे... क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... वापस वे अपने परिणाम। आहाहा! उनसे **उत्पन्न होता हुआ जीव ही है,...** वह जीव ही है। **अजीव नहीं;...** वह जीव ही है और अजीव नहीं अर्थात् वहाँ अजीव की परिणाम की सहायता है, यह जरा भी बिल्कुल नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय क्रमसर अपने परिणाम से उत्पन्न होती है। उसमें कहते हैं दूसरे कर्म की बिल्कुल अपेक्षा है नहीं। आहाहा! इस क्रमबद्ध में सम्यग्दर्शन की पर्याय आयी, वह परिणाम स्वयं अपने को स्वयं उत्पन्न की है और वह उपजता हुआ स्वयं स्वरूप है। पर के कारण वह ज्ञान की पर्याय या सम्यग्दर्शन की (पर्याय) उत्पन्न नहीं होती। आहाहा!

सुनने से ज्ञान की पर्याय उत्पन्न नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह तो क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणाम से उत्पन्न होती है। इसे ऐसा भ्रम पड़ता है कि मैं बाहर था और मेरे दूसरे

परिणाम थे और यहाँ आया, वहाँ मुझे यह सुनने के परिणाम हुए, इसलिए यह सुनने से यह परिणाम हुए, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बात।

जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है,... उसमें अजीव की बिल्कुल अपेक्षा नहीं है। अजीव शब्द से? अजीव तो सही, यहाँ अजीव को सिद्ध करना है। बाकी इस जीव के अतिरिक्त दूसरे सब अजीव, जीव नहीं, उनका भी आत्मा कुछ नहीं कर सकता। आहाहा! ऐसा है। लड़के को पढ़ा नहीं सकता, बड़ा नहीं कर सकता, विवाह नहीं कर सकता। अरे... अरे...! आहाहा!

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... बहुवचन है न? एक ही प्रकार के परिणाम नहीं, अनन्त परिणाम हैं, अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुण के अनन्त परिणाम (एक) समय में है। क्या कहा, समझ में आया? जीवद्रव्य एक है परन्तु गुण अनन्त है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द आदि। इन अनन्त गुणों की क्रमबद्ध अपने परिणामों से... इसलिए तो बहुवचन है। इन अनन्त गुणों की उस समय की जो पर्याय ज्ञान की होनेवाली, दर्शन की, शान्ति की, चारित्र की, आनन्द की, वीर्य की। जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह आत्मा ही है, वह आत्मा उस प्रकार से उसमें उत्पन्न होता है। आहाहा! गजब बात की है न! (कोई ऐसा कहता है), क्रमबद्ध पाठ नहीं है। परन्तु पाठ में क्रमनियमित है न? क्रमनियमित है, वही क्रमबद्ध है, दूसरा क्या? लोग ऐसा कहते हैं, क्रमबद्ध रखना, क्रमबद्ध कहाँ कहा है? पाठ में तो क्रम भी कहा नहीं, ऐसा कहते हैं। अकर्तापना कहा है। परन्तु टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। है, उसमें है, वह कहते हैं या दूसरा नया कहते हैं? जो भाव उसमें भरे हैं, उसे खोलते हैं, उसे खोलते हैं, छनावट करते हैं। आहाहा! बहुत बात आयी।

जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने... अर्थात् अनन्त गुणों के। ओहोहो! जितने गुण की संख्या अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण हैं, उन प्रत्येक की पर्याय, वह अपने समय में अपने परिणाम से जीव उत्पन्न होता है। आहाहा! किसी गुण की पर्याय दूसरे से होती है, ऐसा नहीं है। इस प्रकार वह **जीव ही है, अजीव नहीं;...** उसमें शब्द आया न? जीव ही है। परिणाम से अनन्त गुणों की पर्याय जो उत्पन्न हुई, वह जीव ही है, अजीव नहीं। आहाहा!

एक ओर कहना कि राग है, वह पुद्गल है। वह तो स्वभाव में नहीं है, इसलिए उसे निकाल डालने की बात है। बाकी राग भी उसे समय में होता है। परन्तु जिसे उस समय में होता है, उसकी बुद्धि में उसका अकर्तापना होता है, तब उसके समय में होता है, ऐसा उसका

निर्णय सच्चा है। अकर्ता ज्ञातादृष्टा है। अकर्ता का दूसरा अर्थ ज्ञातादृष्टा है। जानने-देखनेवाला है, बस! बाकी दूसरा कुछ करनेवाला आत्मा नहीं है। ओहोहो!

इसी प्रकार अजीव भी... पाँच द्रव्य अजीव। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल, आकाश और पुद्गल। इसमें मूल तो पुद्गल की बात अधिक है। **अजीव भी क्रमबद्ध अपने...** आहाहा! यह शरीर की पर्याय, वाणी की पर्याय, वह **क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव...** आहाहा! यह भाषा जो बोली जाती है, वह आत्मा से नहीं। आहाहा! भाषा तो आत्मा कह नहीं सकता, आत्मा शरीर को हिला नहीं सकता। आहाहा! डोरी ऐसे हिलती हो, उसे पकड़ रखे, डोरी ऐसे स्थिर हो जाए, वह कर नहीं सकता, कहते हैं। डोरी होती है, डोरी ऐसे हिलती हो, उसे स्थिर रखे। वह कर नहीं सकता। वह तो उस समय की उसकी पर्याय वैसी होनेवाली है। आहाहा! अजीव, अजीव की बात है न यह तो? यह डोरी अजीव है। आहाहा! ऐसी व्याख्या लोगों को कठिन पड़ती है। कर्ताबुद्धि है न पूरे दिन। यह करूँ और यह करूँ। यहाँ भी मन्दिर बनाऊँ और मूर्ति बनाऊँ और यह बनाऊँ और वह बनाऊँ। सब कर्ताबुद्धि से होता है।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बन नहीं गया, अपने आप बनने का था और बन गया है। यह रामजीभाई से नहीं बना है। समझ में आया? आहाहा!

अजीव भी... शरीर भी, वाणी, शरीर दाल-भात, लड्डू चूरमा और पापड़, वह उसके समय में **अजीव भी क्रमबद्ध ऐसा...** अनुक्रम से उस परमाणु की पर्याय आवे, वह अपने परिणामों से (आती है), क्योंकि उसमें अनन्त गुण हैं। परमाणु में भी अनन्त गुण हैं। जितने गुण जीव में हैं, उतने ही गुण परमाणु में हैं। वह जड़ है और यह चेतन है। बाकी जितनी संख्या गुण की जीव में है, उतनी संख्या गुण की परमाणु में है। एक परमाणु। यह तो अनन्त परमाणु इकट्ठे हैं। इकट्ठे लगते हैं, है नहीं, पृथक्-पृथक् हैं। परमाणु उसमें-स्कन्ध में पृथक्-पृथक् हैं। आहाहा! वह आता है न? ८७ गाथा में, नहीं? परमाणु स्कन्ध में रहा होने पर भी पृथक् काम करता है, अपनी पर्याय से काम करता है, पर के कारण नहीं। आहाहा! यह आता है न? जिस परमाणु में दो गुण स्निग्धता हो, वह चार गुण स्निग्धतावाले को मिले तो चार गुण हो जाते हैं। इसलिए देखो! पर के कारण होता है, ऐसा (लोग) कहते हैं। उस समय में उस परमाणु में चार गुनी स्निग्धता होने के क्रमबद्ध उपजने के अपने परिणाम से वह उत्पन्न हुआ है। साथ में चार गुण जो स्निग्धता परमाणु था, वह उसके कारण यहाँ चार गुण

हुए, गुण अर्थात् भाग—चार प्रकार, एक, दो, तीन ऐसे अनन्त-अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं परन्तु उस-उस समय में उसके अपने से अपने में होते हैं। आहाहा! ऐसा कठिन है।

अजीव भी क्रमबद्ध... वह भी क्रमबद्ध अपने परिणाम, वह भी क्रमसर, अनुक्रम से। अजीव में भी अनुक्रम से **अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है,...** आहाहा! दो बोल में तो चौदह पूर्व का सब समाहित कर दिया है। आहाहा! धीर हो, धीर हो, भाई! तू ज्ञानस्वरूप है न, प्रभु! तेरा स्वरूप तो ज्ञान और आनन्द है। वह ज्ञान, ज्ञान वह करे - कर्ता किसका करे? उसे कर्ता काम सौंपना, वह किस प्रकार ज्ञान करे? तेरा अज्ञान है, वह उसे ज्ञान में माने कि मैं कर सकता हूँ। आहाहा! समझ में आया? पहले आ गया था। **अज्ञान की कोई गहन महिमा...** है। आया था न? पहले आया था। इस श्लोक में (आया था)। इसके पहले श्लोक में। १९५ कलश है? १९५ कलश तो अब आयेगा। परन्तु यह तो ज्ञान की महिमा... वाँचन हो गया होगा, वाँचन हो गया होगा न इसलिए... **गहन महिमा...** यह देखो! **वह वास्तव में अज्ञान की कोई गहन महिमा...** आहाहा!

वस्तु ज्ञानस्वरूप चैतन्यमूर्ति लोकालोक को एक समय में अनुक्रम से आनेवाली पर्याय का जाननेवाला, देखनेवाला है। आहाहा! उसे राग करना या दूसरे का करना या अल्पज्ञपने की विकारी पर्याय का कर्ता होना। आहाहा! अविकारी पर्याय पर्याय से होती है।

यहाँ कहते हैं कि अजीव क्रमबद्ध... यह आ गया। उसमें क्रमबद्ध, ऐसा है न? **क्रमबद्ध ऐसा अपने परिणामों से...** यहाँ भी ऐसा लेना **अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से...** देखा? वे अजीव के परिणाम हैं। आहाहा! पृष्ठ ऐसा फिरावे, वह अजीव के परिणाम हैं, उसे आत्मा फिरा नहीं सकता। आत्मा पृष्ठ को ऐसे फिरा नहीं सकता। अकेला निश्चय रह गया, कहते हैं। परन्तु निश्चय वही सत्य है। व्यवहार तो सब आरोपित कथन है। व्यवहार है अवश्य, व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है। बोला जाता है, भाषा बोली जाती है, ऐसा बोले। ज्ञानी हो वह ऐसा भी बोले, भाई! यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पुत्री है। बोले, मानने में नहीं। आहाहा! यह मेरा घर है, यह मेरे समधी हैं, ऐसा ज्ञानी भी बोले। बोलना अलग और मानना अलग। मान्यता में ऐसा है ही नहीं। आहाहा! अब ऐसा अन्तर पाड़ना।

अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता... अजीव है न ऊपर। **होता हुआ अजीव ही है,...** अजीव प्रत्येक अजीव परमाणु, एक परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु के जो स्कन्ध हों, दो परमाणु इकट्ठे, तीन परमाणु इकट्ठे, चार आदि क्रमबद्ध उसके परिणाम

में जो होनेवाले हैं, उस जगह उत्पन्न होते हैं। आहाहा! आत्मा ऐसा कहता है कि भाई! तू लड्डू बाँध नहीं सकता। आहाहा! यह तो हाथ है, जड़ है। वह हाथ भी लड्डू बना नहीं सकता तो फिर आत्मा किस प्रकार करे? आहाहा!

श्रोता : आत्मा प्रेरणा तो करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेरणा बिल्कुल नहीं करता। प्रेरणा... प्रेरणा से जरा भी नहीं... आहाहा! एक-दूसरे में अत्यन्त अभावरूप नास्ति है। एक द्रव्य और दूसरे द्रव्य के बीच अत्यन्त अभाव है। अत्यन्त अभाव का विशाल किला पड़ा है। उसमें दूसरा किस प्रकार प्रवेश करे? आहाहा! कठिन काम है। यह अधिकार ही सूक्ष्म है।

श्रोता : सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सर्वविशुद्ध है न! एकदम यहाँ तो, बन्ध और मोक्ष का भी जाननेवाला, यहाँ तक लिया है। आहाहा! एकदम भगवान चैतन्य दल जाननस्वभाववाला तत्त्व, वह जानने की पर्याय तो करे, ऐसा कहना, वह अभी व्यवहार है। वह पर्याय पर्याय के काल में पर्याय वहाँ होती ही है। आहाहा! उसमें भाव नाम का गुण है, उस गुण के कारण द्रव्य की जहाँ दृष्टि हुई, द्रव्य का-वस्तु का स्वीकार हुआ तो उसमें भाव नाम का एक गुण है कि जिससे पर्याय होती ही है। करूँ तो हो, न करूँ तो (न) हो, यह कुछ प्रश्न है नहीं। आहाहा! कठिन काम है। यशपालजी! ऐसा कुछ सुना है कभी? कठिन बात है। लोग मजाक करें ऐसा है। पूरे दिन यह करते हैं और कहे, करता नहीं, करता नहीं। करो, बापू!

श्रोता : स्वयं अपनी मजाक करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु क्या करे? यह सब जानने के बाद तो विरोध करे। क्रमबद्ध का विरोध करते हैं। क्रमबद्ध का लेखन भाई ने - हुकमचन्दजी ने विद्यानन्दजी को दिया था। विरोध किया। खोटा है, कहे। क्योंकि उनकी मानी हुई एक भी बात सत्य नहीं रहती। उन्हें सबको सुधारना है, ऐसा करना है, ऐसा करके बाहर में प्रसिद्ध होना है, लोकरंजन करना है। यहाँ लोकरंजन हो, ऐसा इसमें नहीं है; आत्मरंजन हो, ऐसा है। आहाहा! क्या हो? भाई! ऐसी बात सुनने के लिये भी लोग थोड़े होते हैं और साधारण जैसी बात करे, ऐसा करो, दया पालो, ऐसा करो, मण्डल बाँधो, एक-दूसरे को सहायता करो, कपड़े दो, खाने को दो... (ऐसा) समझाये तो लोग ज्यादा इकट्ठे हों। अब यह कहते हैं कि कपड़ा-फपड़ा किसी को कुछ दे नहीं सकता, किसी को अनाज दे नहीं सकता, पानी दे नहीं सकता। ठीक! आहाहा! अनाज, पानी, औषध और कपड़ा, स्थल कुछ दे, अच्छी जगह रहने के लिये

दे। यहाँ कहते हैं कि वह चीज़ तो उसके समय में उस काल में अजीव की होनेवाली वह अजीव के अपने परिणाम से वह अजीव उत्पन्न हुआ है। तू जाने कि मुझसे उत्पन्न हुआ है। आहाहा! यह मकान छब्बीस लाख का बना है, वह उसके कारण से उत्पन्न हुआ है।

श्रोता : छब्बीस लाख दे, कहा उसमें छब्बीस लाख पैसा देखा ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : छब्बीस लाख भी उसमें से आनेवाले थे वे आये। आहाहा! आत्मा छब्बीस लाख को खर्च नहीं करता। आत्मा पैसा ले नहीं सकता, पैसा दे नहीं सकता। ऐसी बातें! बहुत कठिन काम! आहाहा! निश्चय से तो मन्दिर और प्रतिमा स्थापित करना, वह आत्मा कर नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। मात्र उसका शुभभाव हो, तब उसकी क्रिया होनेवाली हो तो होती है। उसका शुभभाव पुण्य, धर्म नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

अपने परिणामों से... अर्थात् बहुवचन (लिया है)। परिणाम से नहीं। अजीव में भी अनन्त गुण हैं, इसलिए वह अजीव भी अनुक्रम से... भी लिया न? भी। भी क्यों लिया?— कि पहले जीव कहा इसलिए। जैसे जीव के परिणाम कहे, वैसे अजीव भी, ऐसा। इसलिए 'भी' लिया है। **क्रमबद्ध अपने परिणामों से...** यह भी बहुवचन। अनन्त गुण परमाणु यह रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, अस्तित्व, वस्तुत्व वह प्रत्येक गुण **अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है, जीव नहीं;...** जीव नहीं, जीव उसका कर्ता नहीं। आहाहा! परमाणु और शरीर आदि की पर्याय का कर्ता नहीं, अकर्ता है। आहाहा! इस अकर्तापने में क्रमबद्ध का सिद्धान्त आ जाता है। आहाहा!

क्योंकि... दृष्टान्त कहते थे न? लिखा था न ऊपर? कि अकर्तापना दृष्टान्तपूर्वक कहेंगे। अब दृष्टान्त कहते हैं। ऊपर लिखा था ऊपर। ऊपर आया था। अकर्तापना दृष्टान्तपूर्वक आया था न? **आत्मा का अकर्तत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं...** ऐसा आया था न? गाथा के ऊपर, गाथा के ऊपर। आहाहा! गाथा के ऊपर ही वह (आया था)। अकर्तापना दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं। अब दृष्टान्त देते हैं। पहले अकर्तापना सिद्ध किया, अब उसका दृष्टान्त देते हैं।

क्योंकि जैसे (कंकण आदि परिणामों से उत्पन्न)... सोने से सोने का कंकण हो या गहना हो। दागीना को क्या कहते हैं? जेवर। उस **सुवर्ण का कंकण आदि परिणामों के साथ तादात्म्य है...** सोने के जेवर को-गहनों को, स्वर्ण को कंकण आदि परिणामों के साथ सम्बन्ध है। उस सोने को उसके परिणाम के साथ सम्बन्ध है। उस सोनी ने कंकण बनाया नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उस सोनी ने किया नहीं है, कहते हैं। आहाहा!

श्रोता : हथौड़े न किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किया, उसे सोने ने किया है, अरे! सोने के परिणाम ने किया है। सोने ने नहीं, सोने के परिणाम ने किया है। ऐसी बात है। दुनिया से जिनेश्वर का वीतरागमार्ग अलग प्रकार है, भाई! आहाहा! दुनिया तो बाहर से चलाती है। यह करो, यह अपवास करो और अमुक करो और अमुक करो, आठ-दस अपवास किये तो ओहोहो! विशाल शोभायात्रा निकालो, पताशा की, अमुक की, पेड़े की प्रभावना करो, यह सब धर्म है। उसमें धर्म कहाँ था? वह तो शुभभाव है। वह भी उस काल में वह होनेवाला है, वह-वह होता है। उसमें तेरा भाव होवे तो शुभभाव होता है। पुण्य; धर्म नहीं। आहाहा! करोड़ों रुपये का दान दे, तो भी उसे राग की मन्दता हो तो पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा!

श्रोता : पुण्य को भी आपने पाप में डाल दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पुण्य तो किस अपेक्षा से? पवित्रता की पवित्रता से नीचे गिरता है इसलिए। पुण्य के परिणाम शुभभाव भी, पवित्र प्रभु है, वहाँ से हट जाए - पतित हो, तब शुभ होता है। इसलिए फिर कहते हैं कि भाई! 'पाप को पाप तो सब कहे, परन्तु अनुभवी जन तो पुण्य को पाप कहे।' यह कठिन बातें हैं। दुनिया से अलग प्रकार है। कठिन बात। कितनों को पहले सुनना ही कठिन पड़ती है। पूरे दिन यह बाहर के क्रियाकाण्ड में लगे पड़े हों, रचे-पचे हों। आहाहा! एक तो संसार की क्रिया में निवृत्त नहीं होता, निवृत्त हो और घण्टे भर सुनने जाए तो मिले ऐसा क्रियाकाण्ड और सब बातें। वह घण्टा लुट जाता है, हो गया। आहाहा! पूरी जिन्दगी व्यर्थ ढोर की तरह जाती है। जैसे ढोर जाए, वैसे जिन्दगी जाती है। आहाहा! और मरकर वापस ढोर होता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन नहीं है तथा सत्समागम रोज दो-दो, तीन-तीन, चार-चार घण्टे करना चाहिए, चार-चार घण्टे पढ़ना चाहिए, तो इसे पुण्य भी हो, तो पुण्य-पुण्य हो, हों! आहाहा! ऐसा कठिन है।

दृष्टान्त दिया है। सोने का जो कंकण हुआ, **सुवर्ण का कंकण आदि परिणामों के साथ तादात्म्य है...** उस स्वर्ण को कंकण अर्थात् कड़ा लो, कड़ा लो, कोई भी सोने की अँगूठी लो, वह सोने के साथ उसका तन्मय है। उससे भिन्न नहीं। वे द्रव्य के ही परिणाम हैं, उस सोने के ही वे परिणाम हैं। उस समय में क्रमसर अनुक्रम से आते हुए वह कड़ा हुआ, कंकण हुआ इत्यादि-इत्यादि। आहाहा!

कंकण आदि... आदि है न? कड़ा हो, अँगूठी हो इत्यादि। गहना हो, सोने का कड़ा

हो, पैर में क्या कहलाता है पैर में वह ? बहिनें पैर में पहनती हैं। नहीं ? कड़ा नहीं, दूसरा वह कडला, कडला। कहते थे न पहले ? पहले कडला पहनते थे। वह फिर बदल गया परन्तु वह कडला-बडला आत्मा से हुआ नहीं। आहाहा! सोनी ने घढ़ा नहीं, सोनी ने उस ऐरण को स्पर्श नहीं किया, सोनी उस सोने को स्पर्श नहीं करता।.... आहाहा! और कंकण होता है। क्रमबद्ध ऐसे अजीव के परिणाम उस काल में, होने के काल में अपने परिणाम में परिणाम उपजते हैं। आहाहा! कहो, पुनातर! ऐसी कठिन बात है।

श्रोता : सिद्धान्त तो ऐसा है—परस्परोग्रहो जीवानाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपग्रहो, यही सब डालते हैं न! अभी सवेरे ही पढ़ा था। उस उपग्रह का अर्थ निमित्त, एक-दूसरे को निमित्त है, ऐसा कहते हैं। उपग्रह का अर्थ उपकार है, ऐसा नहीं है परन्तु सब अब यह डालते हैं। चौदह ब्रह्माण्ड का चित्र डालकर पीछे (लिखते हैं) परस्परोग्रहो। उपग्रह का अर्थ ही भाई ने किया है सर्वार्थसिद्धि में इसका अर्थ किया है। वह निमित्त है, उसे ऐसे उपग्रहो कहा, बाकी उससे कुछ होता है, ऐसा कुछ नहीं है। परस्पर उपग्रह, परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। वह निमित्त सम्बन्ध है, उसका अर्थ यह कि निमित्त उसमें कुछ करता नहीं, इसलिए उसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहा जाता है। सामने पर्याय होती है तब जो निमित्त होता है उसे निमित्त से नैमित्तिक कहा जाता है। कर्म के निमित्त से विकार हुआ, ऐसा कहा जाता है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। उस निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से कहा गया है। वास्तव में तो विकार विकार से हुआ है, कर्म से विकार हुआ ही नहीं। आहाहा! कहो, ऐसी बात है।

श्रोता : दूसरा विकार कैसे करता है ? दोनों इकट्ठे मिलें तो विकार होवे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों कभी इकट्ठे मिलते ही नहीं। दो के बीच अत्यन्त अभाव है। अत्यन्त अभाव है, उसमें भाव कहाँ से लाना ? स्पर्श करे, वह तो भाव हो गया। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! बहुत सूक्ष्म तत्त्व है। वीतराग का तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। उसमें भी दर्शनशुद्धि पहले करना, वह तो महावस्तु है। दर्शनशुद्धि से इस धर्म की शुरुआत होती है। इस दर्शनशुद्धि का जिसके ठिकाना नहीं, उसके तो ज्ञान भी खोटा, चारित्र भी खोटा, सब खोटा है। आहाहा!

है या नहीं ? सामने पुस्तक है। **सुवर्ण का कंकण आदि परिणामों के साथ तादात्म्य है...** तादात्म्य है। ठीक! पर्याय को और द्रव्य को तादात्म्य कहा। परिणाम को और परिणामी को तादात्म्य कहा। वास्तव में तो पर्याय, पर्याय में तादात्म्य है और द्रव्य, द्रव्य में तादात्म्य है।

तथापि मात्र दूसरे से भिन्न करने के लिये तादात्म्य है, (ऐसा कहा)। स्वर्ण को कंकण आदि परिणामों के साथ तादात्म्य है। वह अजीव के साथ नहीं, ऐसा सिद्ध करना है, अजीव के साथ उसे है नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा!

उसी प्रकार... जैसे सोने का दृष्टान्त दिया। **उसी प्रकार सर्व द्रव्यों का...** सभी द्रव्यों को। परमाणु, आत्मा, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल **सर्व द्रव्यों का अपने परिणामों के साथ तादात्म्य है।** जैसे सोने को उसके परिणाम के साथ तद्रूप है, वैसे प्रत्येक द्रव्य को अपने परिणाम के साथ तद्रूप है। यहाँ तो अभी परिणाम की बात सिद्ध करनी है न? पश्चात् परिणाम और द्रव्य की बात सिद्ध करनी हो, तब दूसरी बात आती है। आहाहा! तब तो ऐसा कहते हैं कि आत्मा बन्ध और मोक्ष के परिणाम को करता नहीं। ३२० गाथा। परिणाम, परिणाम को करता है; परिणाम द्रव्य को पर्याय को करता नहीं परन्तु यहाँ तो मात्र अभी दूसरे से भिन्न पाड़कर अपने परिणाम को स्वयं करता है। पर के परिणाम को नहीं (करता), इतना यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा!

इस प्रकार पद्धतिसर घण्टे भर भाषण दे, वह बराबर घण्टे भर दे सकता है। आहाहा! गजब! भाषा का काल हो, निकलने का क्रम (हो), तद्नुसार भाषा निकलती है; आत्मा के कारण नहीं। आहाहा! आत्मा उसका कर्ता नहीं। कठिन तो पड़ेगा, बापू! क्या हो? यह अधिकार ही कठिन है। सब कथन थोड़ा-थोड़ा आ गया है। विशेष तो क्रमबद्ध की पुस्तक छपती है, तब आयेगा। आहाहा! सर्व द्रव्य अर्थात् प्रत्येक द्रव्य। ओहोहो! एक ओर नियमसार में ऐसा कहते हैं कि अब काल न हो तो परिणाम नहीं होते। कालद्रव्य नहीं हो तो परिणाम नहीं होते, इसलिए कालद्रव्य चाहिए।

श्रोता : वह तो काल की सिद्धि के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसा आया, लो! वह तो काल है, निमित्तरूप से वस्तु एक सिद्ध करनी है, इतना। परन्तु परिणाम उस काल के कारण परिणमता है? प्रत्येक वस्तु परिणामी तो स्वभाव है, नित्य परिणामी तो अपना स्वभाव है। नित्य परिणामी—टिककर बदलना वह तो प्रत्येक द्रव्य का स्वतः स्वयंसिद्ध स्वभाव है। समझ में आया? तो भी वहाँ ऐसा कहते हैं कि कालद्रव्य के बिना परिणाम (नहीं होते)। वह तो कालद्रव्य को सिद्ध करना है। कालद्रव्य के बिना दूसरे न परिणमे तो परिणमनस्वभाववाला द्रव्य नहीं है? पाठ तो ऐसा है, लो! आहाहा! प्रत्येक द्रव्य अपने परिणाम से परिणमता हुआ दूसरे द्रव्य की कोई आशा है नहीं।

आहाहा! ऐसा उत्साह और हर्ष। लड़के का विवाह हो और पैसा (रुपये) पचास-पचास हजार खर्च करना हो... देखो! तुम्हारे हर्ष और हर्ष, हर्ष। मानो हम क्या करते हैं! आहाहा! बापू! कर कुछ नहीं सकता, अभिमान करता है, मिथ्यात्व सेवन करता है। मैं यह करता हूँ, यह तो मिथ्यात्व है। आहाहा!

श्रोता : यह तो जिसे संसार छोड़ना हो, उसकी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे भटकना मिटाना हो, उसके लिये है। संसार अर्थात् स्त्री, पुत्र—ऐसा नहीं। स्त्री, पुत्र कहीं संसार नहीं है। स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा वह संसार नहीं है। संसार तो पर्याय में मिथ्यात्वभाव, वह संसार है। समयसार में (आ गया), मिथ्यात्व वह संसार है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार वह परद्रव्य, वह कहीं संसार नहीं है। इसकी पर्याय में रहनेवाला मिथ्यात्वभाव, वह संसार है। आहाहा! उसे छोड़ना हो तो यह समझना पड़ेगा। संसार छोड़ो। संसार कैसा? आहाहा! आत्मा की भूल आत्मा में रहती है या बाहर रहती है? मिथ्या भ्रमणा करे (कि) मैंने किया, तो भ्रमणा तो इसकी पर्याय में रहती है। बाहर की चीज़ को क्या सम्बन्ध है? आहाहा! ऐसा है।

सर्व द्रव्यों का... आहाहा! **अपने परिणामों के साथ तादात्म्य है।** प्रत्येक द्रव्य को। उसमें कोई बाकी नहीं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, इत्यादि। आहाहा! धर्मास्तिकाय नहीं, इसलिए सिद्ध ऊपर नहीं जाते, ऐसा नहीं है। बहुत से ऐसा कहते हैं न? धर्मास्तिकाय नहीं है, इसलिए ऊपर नहीं जाते। (ऊपर) जाने का ऊर्ध्व स्वभाव है, ऊर्ध्व है परन्तु ऊर्ध्व स्वभाव (होने पर भी) धर्मास्तिकाय का अभाव है, (इसलिए नहीं जाते)। परन्तु उसकी पर्याय रहने का स्वभाव ही इतना वहाँ तक है। ऊर्ध्वस्वभाव में वहाँ तक रहने का इतना उसका क्रम में स्वभाव है; आगे जाने का स्वभाव नहीं है। धर्मास्तिकाय होता तो जाते, परन्तु वह नहीं है, और वहाँ होता तो जाते—प्रश्न कहाँ आया? आहाहा! बहुत विवाद उठाया है। आहाहा!

इस प्रकार जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होता है... है न? **इस प्रकार जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होता है, तथापि उसका अजीव के साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता,...** लो! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२४) **श्री नियमसार, गाथा १८७, श्लोक ३०६-३०७, प्रवचन - २०४**
दिनांक - १६-१२-१९७१

१८६ गाथा के दो कलश हैं। ३०६ वाँ कलश।

देहव्यूह-महीज-राजिभयदे दुःखावली-श्वापदे,
विश्वाशातिकरालकालदहने शुष्यन्मनीयावने।
नाना-दुर्णय-मार्ग-दुर्गम-तमे दृङ्मोहिनां देहिनां,
जैनं दर्शन-मेक-मेव शरणं जन्माटवी-सङ्कटे।।३०६।।

कहते हैं कि यह संसाररूपी अटवी विकट स्थल है। जिसमें **देहसमूहरूपी वृक्षपंक्ति से जो भयंकर है,...** एक देह, दूसरी देह ऐसे अनन्त देह, उनका जो समूह, उनकी पंक्ति-धारा। जैसे वन में वृक्ष की पंक्ति होती है, अटवी में जैसे वृक्ष की पंक्ति का समूह होता है, वैसे संसाररूपी अटवी में देहसमूहरूपी वृक्ष की पंक्ति है। एक के बाद एक... एक के बाद एक... एक के बाद एक देह इसे संसार में मिलती ही रहती है। जिसमें देहसमूह, देह का पूरा ढ़ेर। ऐसे **देहसमूहरूपी वृक्षपंक्ति से जो भयंकर है,...** संसार अटवी। **जिसमें दुःखपरम्परारूपी जंगली पशु (बसते) हैं,...** अटवी में जैसे सिंह और बाघ बसते हैं, वैसे दुःख की परम्परा एक के बाद एक... एक के बाद एक... दुःख तो चला ही करते हैं। संसार में (कोई) दुःखरहित है नहीं।

दुःखपरम्परारूपी जंगली पशु (बसते) हैं,... राग-द्वेष की आकुलता। चाहे तो स्वर्ग में हो, नरक में हो, सेठाई में हो, रंकाई में हो परन्तु उसे दुःख की परम्परा में जंगली पशु बसते हैं। वेरी चीर डाले, ऐसे पशु हैं, संसार अटवी ऐसी है। **अति कराल कालरूपी अग्नि जहाँ सबका भक्षण करती है,...** करालकाल क्षण में सबका नाश कर डालता है। **कराल कालरूपी अग्नि...** वन को जैसे जलावे, वैसे यह अपने अनेक प्रकार के शरीरादि का नाश कर डालता है। सुविधा-असुविधा सबका करालकाल संसार। पूरा संसार दावानल से सुलग रहा है।

जिसमें बुद्धिरूपी जल सूखता है... वहाँ अन्दर कहीं प्रश्न है। बुद्धिरूपी जल सूख

जाता है। आत्मा का ज्ञान क्या है, उसका इसे भान नहीं। संसार की चतुराई, वह भी आत्मा के ज्ञान को सूखा डालती है। समझ में आया? **और जो दर्शनमोहयुक्त जीवों को...** जिसकी श्रद्धा विपरीत है, ऐसे **जीवों को अनेक कुनयरूपी मार्गों के कारण अत्यन्त दुर्गम है,...** कुनय, कुतर्क, कुनय, कुशास्त्र। उसरूपी मार्ग के कारण अत्यन्त दुर्लभ है। उस अटवी में से निकलना... ऐसी अटवी होती है, उसमें जाल, बबूल, काँटे, उल्टे-सीधे भरे हों, उसमें से मार्ग निकालना मुश्किल है। इसी प्रकार यह दर्शनमोह जीव को अनेक कुनय, कुतर्कों द्वारा मार्ग के कारण अत्यन्त दुर्गम हैं। नीचे अर्थ है **कठिनाई से लाँघा जा सके ऐसा;...** यह है। **दुस्तर...** है। चौरासी के अवतार में से निकलना महादुस्तर है। **(संसार-अटवी में अनेक कुनयरूपी मार्गों में से सत्य मार्ग ढूँढ़ लेना...** अनेक जाल, झंखरा, बबूल के काँटे बीच में अटवी में पड़े हों, अब उसमें से मार्ग निकालना कि जिस शहर में पहुँचा जा सके, ऐसी पगडण्डी खोजना जैसे महामुश्किल है, वैसे इस संसार की अटवी में भटकते जीव को **कुनयरूपी मार्गों में से सत्य मार्ग ढूँढ़ लेना...** सत्यमार्ग क्या है, यह खोजना **मिथ्यादृष्टियों को अत्यन्त कठिन है...** कहीं न कहीं भर जाता है। समझ में आया? विपरीत नय के आशय से एकान्त में या पर्याय में या द्रव्य में या एकान्त भेद में अथवा एकान्त अभेद में ऐसा भर जाता है। वस्तु की स्थिति खोजना इस कुनय के कारण से बहुत मुश्किल है। **और इसलिए संसार-अटवी अत्यन्त दुस्तर है।** दुस्तर, तरना अर्थात् अटवी में से निकलना... कहो, धर्म के नाम से भी इतने कुनय वर्तते हैं, उसमें से निकलना और सत्य को खोजना दुस्तर-तरना, वह निकलना महामुश्किल है।

अहो! **उस संसार-अटवीरूपी विकट स्थल...** संसाररूपी अटवी का विकट मैदान... आहाहा! वही **जैनदर्शन एक ही शरण है।** आत्मा का वीतरागीस्वभाव, वह जैनदर्शन है। जैनदर्शन को यह कहा। तेरा स्वभाव वीतराग आनन्दस्वरूप त्रिकाल... आहाहा! वह एक ही शरण है, दूसरा कोई शरण है नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसी दुर्गम अटवी में से निकलने के लिये एक जैनदर्शन का शरण है। **एक ही शरण है।** लो! जैनदर्शन एक ही शरण है, दूसरा कोई नहीं। दूसरा कहाँ?

आत्मा का वीतरागी स्वभाव, वह जैनदर्शन है और उसकी पर्याय की प्राप्ति होना, वह जैनशासन है। त्रिकाली आनन्दमूर्ति भगवान वीतरागस्वरूप का शरण, उसका आश्रय एक ही उद्धार करने का उपाय है। एक श्लोक हुआ। किसी को ऐसा लगे कि यह तो एकान्त है। स्वयं जैनदर्शन की बात एकान्त में डालते हैं। परन्तु यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। वीतराग सर्वज्ञदेव ने कहा और प्रगट किया, ऐसा यह स्वरूप जैनदर्शन अर्थात् आत्मा। जिसमें राग

नहीं, जिसमें संसार है नहीं, ऐसा जो त्रिकाली स्वभाव, वह एक ही शरण है। समझ में आया? ३०७वाँ श्लोक।

लोकालोकनिकेतनं वपुरदो ज्ञानं च यस्य प्रभो-
स्तं शङ्खध्वनिकम्पिताखिलभुवं श्रीनेमितीर्थेश्वरम्।
स्तोतुं के भुवनत्रयेऽपि मनुजाः शक्ताः सुरा वा पुनः,
जाने तत्स्तवनैककारणमहं भक्तिर्जिनेऽत्युत्सुका।।३०७।।

उत्सुका, अत्यन्त उत्सुका, अति उत्सुक। अर्थ किया है न? नेमिनाथ भगवान को याद किया है। हाँ, वे तो स्वयं ब्रह्मचारी थे न? बालब्रह्मचारी थे। पद्मप्रभमलधारिदेव बालब्रह्मचारी (थे), इसलिए बालब्रह्मचारी तीर्थंकर को याद किया है।

जिन प्रभु का ज्ञानशरीर... नेमिनाथ भगवान का ज्ञानशरीर, हों! यह ज्ञान उनका शरीर, **सदा लोकालोक का निकेतन है...** घर है। निकेतन अर्थात् घर। भगवान नेमिनाथ प्रभु, जिनका ज्ञानरूपी स्वभाव शरीर, वह लोकालोक का घर है अर्थात् लोकालोक को जानने में समर्थ है, लोकालोक जिसमें ज्ञात होता है। कहो, शब्द तो ऐसा लिया है। भगवान ज्ञानस्वभाव लोकालोक का निकेतन, निकेतन अर्थात् रहने का स्थान है। पण्डितजी! घर है। लोकालोक यहाँ रहते हैं। इसका अर्थ (यह कि) नेमिनाथ प्रभु के ज्ञान में लोकालोक सदा समाहित हैं, ऐसा ज्ञात होता है। ऐसा उनका ज्ञानशरीर है। ज्ञानशरीर। देहशरीर तो जड़ है, मिट्टी है। समझ में आया?

उन श्री नेमिनाथ तीर्थेश्वर का— वे तीर्थेश्वर हैं। तीर्थ के ईश्वर हैं। तीर्थेश्वर। तीर्थ के ईश्वर—तिरनेवाले आत्माओं के भी वे ईश्वर हैं। वे साधक के परमेश्वर हैं, ऐसा कहते हैं। **कि जिन्होंने शंख की ध्वनि से सारी पृथ्वी को कम्पा दिया था...** आता है न? नेमिनाथ भगवान और कृष्ण की रानी रुक्मणि। नेमिनाथ भगवान ने स्नान किया तो वस्त्र अलग कर दिया और रुक्मणि को कहा धो डालिये। रुक्मणि कहती है कि तुम कहनेवाले कौन? हमारे एक बड़े श्रीकृष्ण, वे शंख की ध्वनि फूंकते हैं तो द्वारिका को हिला देते हैं, वे पुरुष भी हमसे नहीं कहते और तुम? नेमिनाथ भगवान गृहस्थाश्रम में थे, तीन ज्ञान के धनी थे। ऐसा कहा, इसलिए भगवान ने वहाँ से... जहाँ शंख था, नाग की शैय्या थी, नाग की शैय्या, पाटी होती है न? पलंग और पाटी। नाग... नाग। नाग की पाटी।

श्रोता : बहुत कोमल...

पूज्य गुरुदेवश्री : कोमली, पोची। श्रीकृष्ण के सोने के लिये नागशैय्या थी। नाग की शैय्या। वहाँ गये और वहाँ जाकर शंख लिया। शंख लेकर फूँका। द्वारिका काँप उठी। शंख फूँका, वहाँ इतनी आवाज का जोर कि द्वारिका काँप उठी। यहाँ तो पूरी पृथ्वी कम्पायमान की। परन्तु वह स्वयं जो स्थान है, उसे पूरा कँपा दिया। शंख को हाथ में लेकर फूँका वहाँ। **जिन्होंने शंख की ध्वनि से सारी पृथ्वी को कम्पा दिया था...** लो! शंख के कारण फूँक पड़ी, वहाँ पृथ्वी काँप उठी। निमित्त से।

श्रोता : मानना या नहीं मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ कहाँ सिद्ध करना है? यहाँ तो उन्होंने यह किया, उसमें ऐसा हुआ, इतना सिद्ध करना है। समझ में आया?

जिन्होंने शंख की ध्वनि से सारी पृथ्वी को कम्पा दिया था उनका—स्तवन करने के लिए तीन लोक में कौन मनुष्य या देव समर्थ है? उनका स्तवन करने में तीन लोक में कौन मनुष्य अथवा देव समर्थ हैं? ऐसी जिनकी शक्ति। नेमिनाथ भगवान केवलज्ञान को प्राप्त हुए, पूर्णानन्द की दशा को प्राप्त हुए, उनकी कौन मनुष्य, देव स्तुति करे? क्या करे? उसकी अलौकिक चीज जहाँ (पूर्ण रूप से प्रगट हो गयी), जिनकी पर्याय अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दरूप परिणमित हो गयी है, उसका क्या कहना? लोकालोक से भी अनन्त गुना काल, क्षेत्र होता तो जाने, ऐसा जिनके ज्ञान की पर्याय का परिणमन स्वच्छ और शुद्ध है, उनकी स्तुति करने में कौन समर्थ है? समझ में आया? **तीन लोक में कौन मनुष्य या देव समर्थ है?** ऐसा कहते हैं। गणधर भी समर्थ नहीं हैं, ऐसा कहते हैं।

(तथापि) उनका स्तवन करने का एकमात्र कारण जिनके प्रति अति उत्सुक भक्ति है... लो! उनके प्रति अति उत्सुक, उत्साहरूपी भक्ति जगी है, वह करते हैं। आहाहा! आता है न? यह तो विकल्प है। परन्तु उस अशुभ की जब स्थिति न हो, तब ऐसा भाव होता है। अन्दर में स्थिर न हो सके, तब ऐसा विकल्प होता है।

श्रोता : न होवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही है, न हो – ऐसा नहीं है। वीतराग पूर्ण हो, उसे न हो (तो) या वीतराग हो जाए, अथवा अज्ञानी हो जाए। समझ में आया? यह आता है न? वहाँ वीतरागता में कितना काल रहे?

कहते हैं कि **जिनके प्रति...** ऐसे वीतरागी भगवान के प्रति। जिनका स्वभाव अकेला

वीतराग पूर्ण हो गया। अहो! जैसा उनका सम्यक् स्वभाव था, उसकी व्यक्त दशा प्रगट हो गयी। जिनस्वरूप ही आत्मा था। वीतरागस्वरूप था, ऐसा पर्याय में पूर्ण प्रगट हो गया। उनके **प्रति अति उत्सुक भक्ति है, ऐसा मैं जानता हूँ।** स्तवन करने का कारण यह एक ही है, ऐसा कहते हैं। दूसरा कोई कारण नहीं है। कहो, समझ में आया? १८६ में आया था न? उसमें से यह निकाला। अब यह अन्तिम, गाथा १८७।

श्रोता : हे भव्य! अभक्ति न कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : भक्ति करना। यह निश्चयभक्ति की बात वहाँ तो है और इस व्यवहारभक्ति में निकालते हैं।

श्रोता : महापुरुष ऐसे दोष करें, उनका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष करे (नहीं), वह आता है। भाव होता है। भाव होता है न, नहीं होता, ऐसा नहीं है। शुभभाव भी व्यवहार से प्रशंसनीय है न? व्यवहार से। निश्चय से अप्रशंसनीय है। भूमिका के योग्य ऐसा भाव आता है, होता है।

अन्तिम गाथा १८७।

णियभावणाणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं।
णच्चा जिणोवदेसं पुव्वावर-दोस-णिम्मुक्कं।।१८७।।

सब दोष पूर्वापर रहित उपदेश श्री जिनदेव का।
मैं जान, अपनी भावना हित नियमसार सुश्रुत रचा॥१८७॥

ऐसा शब्द तो इन चार शास्त्रों में (नहीं आता)। इसमें ही यह आता है।

श्रोता : मेरे लिये...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, '**मए कदं**' मैंने किया है।

पूर्वापर दोष रहित... उपदेश को जानकर यह किया है, ऐसा कहते हैं। इसमें कोई विरोध है नहीं।

यह, शास्त्र के नामकथन द्वारा शास्त्र के उपसंहार सम्बन्धी कथन है। नियमसार शास्त्र यहाँ पूर्ण होता है। **यहाँ आचार्यश्री (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव) प्रारम्भ किये हुए कार्य के अन्त को प्राप्त करने से...** शुरु किये हुए कार्य के अन्त के छोर को पहुँचने से **अत्यन्त कृतार्थता को पाकर कहते हैं...** कृतार्थता को प्राप्त करके कहते हैं। कृत—मैंने किया-

हुआ। जो विचारा था, वह पूरा हुआ। **कि सैकड़ों परम-अध्यात्म-शास्त्रों में कुशल...** टीकाकार तो ऐसा लिखते हैं! कैसे हैं कुन्दकुन्दाचार्य? **सैकड़ों परम-अध्यात्म-शास्त्रों में कुशल ऐसे मैंने...** ऐसा वापस। '**मए कदं**' पूर्वापर जिन का उपदेश सब जाना है, ऐसा कहते हैं। अन्त में ऐसा अर्थ आया न? वह सब पूर्वापर उपदेश सैकड़ों...

श्रोता : इतने सब शास्त्र पढ़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : आये हैं वाँचन में।

श्रोता : परन्तु इतने सब?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतने सब क्या हजारों होंगे। कहो, समझ में आया? शास्त्र-स्वाध्याय का बहुत समय होवे तो वह आवे। मुनि को भी स्वाध्याय का काल ध्यान बिना होता है। ध्यान में कितना रह सके? तब स्वाध्याय काल भी होता है। नहीं तो उन्हें सच्चा ध्यान तुरन्त ही आता है, तो भी छठवें गुणस्थान में शास्त्र स्वाध्याय का भाव होता है। बताते हैं, उस स्वाध्याय में बताते हैं, वापस यह न? वीतरागता पूर्णानन्द पूर्णस्वरूप का शरण है, उसका आश्रय है। हेतु तो वहाँ यह है, भले विकल्प है। समझ में आया? उससे जाया नहीं जाता परन्तु यह बताते हैं वह। समझ में आया? आहाहा!

सैकड़ों परम-अध्यात्म-शास्त्रों में कुशल ऐसे मैंने... वे स्वयं। पद्मप्रभमलधारिदेव ने ऐसा कहा। निजभावना के कारण से **निजभावनानिमित्त से**—इसका अर्थ इतना किया। '**अशुभवंचनार्थं।**' विकल्प है अवश्य न? शास्त्र बनाने का विकल्प है, वह अशुभ टलने के लिये, अशुभ को टालने के लिये यह शुभभाव है, इतनी बात है। '**अशुभवंचनार्थं' नियमसार नामक शास्त्र किया है।** नियमसार नाम का यह सिद्धान्त मैंने किया है। **क्या करके (यह शास्त्र किया है)? प्रथम अवंचक परम गुरु के प्रसाद से जानकर।** देखा? '**णच्चा जिणोवदेसं**' पहले मेरे गुरु से जाना। गुरु कैसे हैं?—कि अवंचक हैं। **ठगें नहीं ऐसे; निष्कपट; सरल; ऋजु।** जैसा स्वरूप था, वैसा कहते थे। समझ में आया? प्राप्त किया था, तद्नुसार कहते थे। मूल तो ऐसा कहते हैं।

अवंचक परम गुरु के प्रसाद से जानकर। प्रसाद—मेहरबानी से। हमारे परमगुरु प्रभु की मेहरबानी से यह मैंने जाना, ऐसा कहते हैं, देखो! **क्या जानकर? जिनोपदेश को अर्थात् वीतराग-सर्वज्ञ के मुखारविन्द से निकले हुए परम उपदेश को** जाना। लो! वीतराग सर्वज्ञ के मुख-अरविन्द। मुखरूपी अरविन्द—कमल। उसमें से निकले हुए परम उपदेश को हमने

जाना है। ठीक। उसे हमने जाना है, ऐसा कहते हैं। **कैसे है वह उपदेश ? पूर्वापर दोष रहित है...** पहले कुछ कहा और बाद में कुछ, ऐसा विरोध इसमें है नहीं। पूर्व और अपर, पहले और बाद में। अपर अर्थात् बाद में, पूर्व और पहले और बाद में दोषरहित है।

अर्थात् पूर्वापर दोष के हेतुभूत सकल मोहरागद्वेष के अभाव के कारण... मोह और राग-द्वेष के विकार का जिनके अभाव है, उसके कारण पूर्वापर दोषरहित ही उनकी वाणी होती है। ऐसे जो **आप्त हैं, उनके मुख से निकाल होने से...** वह उपदेश **निर्दोष है।** कैसा है उपदेश है ? ऐसा कहा न ? कि वह निर्दोष है। भगवान की वाणी पहले-बाद में विरोध रहित है, इससे वह निर्दोष है।

और (इस शास्त्र के तात्पर्य सम्बन्धी ऐसा समझना कि),... यह सिद्धान्त के सार सम्बन्धी ऐसा समझना कि **जो (नियमसार शास्त्र) वास्तव में समस्त आगम के अर्थसमूह का प्रतिपादन करने में समर्थ है,...** ठीक। अरे ! यह तो प्रत्येक को होता है न ? अष्टसहस्री का रात्रि में कहा नहीं था पण्डितजी ने ? उसमें आता है न, एक अष्टसहस्री में सब आता है।

यह **(नियमसार शास्त्र) वास्तव में...** वास्तव में, ऐसा वापस। **समस्त आगम के अर्थसमूह का...** आगम का अर्थ। पदार्थ का प्रतिपादन करने में समर्थ है। तीन काल, तीन लोक के सभी पदार्थ भगवान ने जो देखे, उन सबको कहने में समर्थ है। यह नियमसार, एक में सब आ जाता है, ऐसा कहते हैं। यह तो समयसार में, उसमें सब प्रवचनसार में सब आ जाता है। ऐसा ही होता है।

जिसने नियम-शब्द से... अब नियमसार का अर्थ करते हैं। **नियम-शब्द से विशुद्ध मोक्षमार्ग सम्यक् प्रकार से दर्शाया है,** लो ! **नियम-शब्द से...** नियमसार है न ? तो **विशुद्ध मोक्षमार्ग...** शुद्ध मोक्षमार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग, यथार्थ मोक्षमार्ग सम्यक्प्रकार से नियमसार ने दर्शाया है। पर की अपेक्षारहित, व्यवहार की भी अपेक्षारहित ऐसा निरपेक्ष मार्ग, विशुद्ध, द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता, ऐसे मोक्षमार्ग को जिसेने दर्शाया है। कहो, रात्रि में नहीं थे, नहीं ? यह प्रश्न रात्रि में हुआ था, कि अभूतार्थ-असत्यार्थ है न ? पर्याय द्रव्य में नहीं, इसलिए असत्यार्थ है न ? द्रव्य में पर्याय गौण करके... द्रव्य में पर्याय गौण करके अर्थ... ऐसा न ?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यही कहा न ? द्रव्य में, ध्रुव में पर्याय है अवश्य, परन्तु उसे गौण करके कहने में आया ?

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तब किसमें आती है ? रात्रि में चर्चा हुई थी।

पर्याय है। उस पर्याय को गौण करके। द्रव्य की बात यहाँ कहाँ है ? द्रव्य जो त्रिकाल है, उसमें पर्याय है नहीं। वह बात यहाँ है ही नहीं। उसका यहाँ काम नहीं। त्रिकाल द्रव्य का मुख्यपना बतलाकर जो पर्याय वर्तती है, उसे भी गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा है। पर्याय है, उसे गौण करके 'नहीं', (ऐसा) कहा है। द्रव्य में पर्याय नहीं अथवा द्रव्य में पर्याय है, इसलिए गौण करके कहा, यह यहाँ प्रश्न है नहीं। समझ में आया ? ऐ... ! तुम भी नहीं थे। याद किया था। चले तब तो...

असत्यार्थ कहा है, वह तो त्रिकाली द्रव्य की मुख्यता दृष्टि कराने को; पर्याय, पर्याय में होने पर भी उसे गौण करके वह पर्याय नहीं है, अविद्यमान है, पर्याय स्वयं अविद्यमान है, वर्तमान अवस्था अविद्यमान है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? मोहनभाई थे या नहीं ? रात्रि में कहा था न ? यह चलता था या नहीं ? याद नहीं रहा होगा।

भगवान आत्मा के दो अंश हैं। दो अंश हैं, उनमें एक अंश नहीं, उस अंशरूप अंश नहीं।

श्रोता : पूरी वस्तु में अंश नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका यहाँ प्रश्न ही नहीं।

एक त्रिकाली अंश और एक पर्याय अंश, ऐसे दो अंश हैं। उनमें त्रिकाली अंश की अपेक्षा से पर्याय अंश स्वयं नहीं है। वह है, वह स्वयं नहीं। समझ में आया ? क्यों नहीं ? पर्याय है तो सही, परन्तु उसे वहाँ का लक्ष्य छुड़ाना है और द्रव्य की मुख्यता की दृष्टि करानी है, इसलिए है तो भी वह नहीं है, ऐसा कहने में आता है, ऐसी बात है। समझ में आया ? ११वीं गाथा को....

श्रोता : आप बहुत बार कहते हो कि द्रव्य में पर्याय नहीं है, यह इन्हें दृढ़ हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो यह बात छेड़ी है। हीराभाई! ....परन्तु वह किस प्रकार दृढ़ किया। ऐई! चेतनजी! तुम थे या नहीं ? द्रव्य में पर्याय है या नहीं, यह प्रश्न (ही नहीं है)।

श्रोता : आप जब कहते हो, तब इन्हें बहुत आनन्द आता है, बहुत आनन्द आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतनजी! ठीक। स्पष्टीकरण कराते हैं न!

श्रोता : इसमें तो साक्षी हाजिर है न, साक्षी की गैरहाजिरी में बात नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह रात्रि में कहा था, यहाँ जो व्यवहार असत्य कहा है, वह पर्याय को झूठी कहा है। द्रव्य में पर्याय नहीं, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। द्रव्य में तो पर्याय है ही नहीं। वह तो प्रश्न नहीं। यह तो पर्याय में पर्याय, पर्याय है, वह 'नहीं' ऐसा यहाँ कहना है। क्योंकि त्रिकाल सत्यार्थ का आश्रय लेने के लिये उसे मुख्यरूप करके, पर्याय होने पर भी उसे गौण करके वह 'नहीं' ऐसा कहा गया है। वह पर्याय गौण करके 'नहीं' कहने में आया है। यहाँ द्रव्य की बात नहीं है। द्रव्य में पर्याय नहीं, यह प्रश्न यहाँ है नहीं। ऐ..! चेतनजी! आहाहा!

श्रोता : सब बात में यह बात आवे तब...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात जैसी हो, वैसी जाने। द्रव्य वस्तु सामान्य है, उसमें तो पर्याय है ही नहीं। यह प्रश्न ही नहीं। समझ में आया? अब यहाँ तो पर्याय पर्यायरूप है, भूतार्थ है, व्यवहार, वह भूतार्थ है। उसे यहाँ निश्चय से असत्य है, ऐसा गौण करके (कहा गया है); अभाव करके असत् है, ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? दिलीप था या नहीं?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा लो! वृद्ध को समझावे।

श्रोता : वृद्ध कहाँ है? सब समान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वृद्ध है न! इनके पिता का पिता था।

(समयसार) ११वीं गाथा की क्या शैली है! वस्तु स्वयं ऐसे ध्रुव, नित्यानन्द, भूतार्थ, सत्यार्थ, परमार्थ वह वस्तु। बस, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा मुख्यरूप से उसे 'है' ऐसा कहकर, पर्याय को गौण करके 'नहीं' ऐसा कहने में आया है। यह मुख्यरूप से है, (ऐसा कहने में आया है) और पर्याय जो है, उसे गौण करके 'नहीं' ऐसा कहने में आया है। कहो, समझ में आया? ऐई! पण्डितजी! रात्रि में आया था।

'**व्यवहारो भूदत्थमस्सिदो...**' कहना है न? व्यवहार अर्थात् पर्याय। रागादि भले हो। उसका कुछ नहीं, अपने पर्याय मुख्य है यहाँ। कहा न कि अनित्य पर्याय नहीं ही, ऐसा मानना तो वेदान्त हो जाएगा। पर्याय पर्यायरूप से नहीं, हों! द्रव्य में नहीं, यह प्रश्न यहाँ है नहीं।

श्रोता : द्रव्य में पर्याय... ध्रुव में?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में कहाँ है ? यह अंश यहाँ है। यह अंश यहाँ नहीं। यह प्रश्न यहाँ नहीं है। यह अंश यहाँ है, यह अंश नहीं। यह अंश यहाँ नहीं, ऐसा नहीं। यह अंश यहाँ है, वह नहीं। क्यों ? मुख्य का आश्रय कराने को गौण करके 'नहीं', ऐसा गौण करके 'नहीं' ऐसा अन्तर्भेद निकाल डाला। समझ में आया ? यह बात की थी। रात्रि में बहुत की थी। नहीं ? अभी आज दोपहर में आयेगी। इसमें याद आ गया। यह आया न ? **विशुद्ध मोक्षमार्ग सम्यक् प्रकार से दर्शाया है,...**

श्रोता : आज दोपहर को अधिक आयेगा। क्योंकि ग्यारहवीं गाथा का यह विषय है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका ही है न ? यह विषय ही वह है। यह हमारे जेठाभाई ने सरीखा जवाब दिया था। पूछा था तो जवाब सरीखा दिया था। सवेरे पूछा था। रात्रि में क्या चला था। यह तो सीधी बात है।

भगवान आत्मा दो अंश से प्रमाण का विषय है। दो अंश से। एक अंश वर्तमान पर्याय और एक त्रिकाल। वस्तु द्रव्य वह। उसे द्रव्य कहना, पर से भिन्न पाड़ने के लिये। अब दो में से द्रव्य ध्रुव जो मुख्य है, उसे द्रव्य सिद्ध करके उसका आश्रय लेना, यह लक्ष्य छुड़ाने को, वह पर्याय होने पर भी वह नहीं है, वह नहीं, यह है, वह नहीं और यह है। वजुभाई ! देखो ! तुम रात्रि में नहीं थे।

श्रोता : दोपहर में इससे अधिक आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विचार तो पहले आ गया था। तब और... कोई पूछे कि ...थोड़ा सा ... चाहिए न। कुछ सूझ न पड़ती हो कि क्या पूछना ? आहाहा !

जिसने नियम-शब्द से विशुद्ध मोक्षमार्ग सम्यक् प्रकार से दर्शाया है,... यह स्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन हो, वह इसमें-नियमसार में दर्शाया है। कारणपरमात्मा को जहाँ-तहाँ वर्णन किया है न ? कारणपरमात्मा कहो या द्रव्य कहो। भूतार्थ कहो, सत्यार्थ कहो, कारणपरमात्मा कहो, कारणजीव कहो, सब एक ही है। आहाहा ! कहते हैं, **नियम-शब्द से विशुद्ध मोक्षमार्ग...** देखो ! यहाँ मोक्षमार्ग को, निश्चयमोक्षमार्ग को भी विशुद्ध शब्द प्रयुक्त किया जाता है। विशेष शुद्ध।

श्रोता : शुभ नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, शुभ नहीं। शुभ नहीं और अकेला शुद्ध भी नहीं। विशेष शुद्ध।

ऐसा **मोक्षमार्ग सम्यक् प्रकार से...** वापस। जैसा है, वैसा दिखलाया है। **जो शोभित पंचास्तिकाय सहित है...** पंचास्तिकाय से शोभायमान है। **(अर्थात् जिसमें पाँच अस्तिकाय का वर्णन किया गया है),...** जिसमें पाँच...

श्रोता : दूसरे परपदार्थ जानने का क्या काम?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे पर हैं, इसके बिना स्व भिन्न कैसे पड़ेगा? पर को जाने बिना...

श्रोता : परन्तु भिन्न ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न है, वह कहाँ इसे लक्ष्य में है? भिन्न है, वह तो वाणी में आया। यह पंचास्तिकाय और उसकी ज्ञान की पर्याय, पंचास्तिकाय को जानने की पर्याय, उस पर्याय को भी गौण करके इस पर दृष्टि देना चाहिए। वे पंचास्तिकाय तो कहीं आगे रह गये। समझ में आया? इसमें सब है, ऐसा कहते हैं। पंचास्तिकाय सहित शोभित। पंचास्तिकाय सहित है।

जिसमें पंचाचार-प्रपंच का संचय किया गया है... लो! देखो! उसमें पहला ज्ञानाचार लिया है। ज्ञानाचार, दर्शनाचार, देखो! पंचाचार-प्रपंच अर्थात् विस्तार। उसका संचय अर्थात् संरचना में आया है। यहाँ पहले ज्ञानाचार लिया, यहाँ समकिताचार पहले नहीं लिया। समझ में आया? यहाँ पहले शब्द में ही ज्ञान-दर्शन-चारित्र लिखा है। कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं। नियमसार के शुरुआत में आया न पहले? कल बताया था। '**णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं**' कुन्दकुन्दाचार्य के (शब्द हैं)। टीका में भी ऐसा कहा है। नहीं तो उस पद की संरचना में ऐसा आया। ऐसा कोई कहता है। टीका में ऐसा है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीन में से प्रत्येक का स्वरूप कहने में आता है। लो! और पहले से ही भाषा प्रयोग की है, देखो न! उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके ग्रहण करने योग्य निज परमरूप का परिज्ञान, वह ज्ञान है। जानना तो ज्ञान में आता है न!

यहाँ कहते हैं **जिसमें पंचाचार-प्रपंच का संचय किया गया है...** इसमें कितना ढ़ेर पड़ा है, ऐसा कहते हैं। नियमसार में सब वर्णन है। **अर्थात् जिसमें ज्ञानाचार, दर्शनाचार,...** ज्ञान का आचार निश्चय, दर्शनाचार निश्चय। व्यवहार भले हो, वह जाननेयोग्य है। **चारित्राचार, तपाचार...** इच्छानिरोध, **वीर्याचाररूप...** वीर्य की स्फुरणा का आचरण। **पाँच प्रकार के आचार का कथन किया गया है), जो छह, द्रव्यों से विचित्र है...** छह द्रव्यों के निरूपण से विविध प्रकार का सुन्दर। नियमसार में छह द्रव्य का वर्णन है। **(अर्थात् जो छह द्रव्यों के निरूपण से विविध प्रकार का—सुन्दर है), सात तत्त्व और नव पदार्थ जिसमें समाये हुए हैं,...** देखो! सात तत्त्व की व्याख्या है। पुण्य-पाप को आस्रव में समाहित कर दिया और सात

तत्त्व को तथा नौ पदार्थ को भिन्न करके **जिसमें समाये हुए हैं, जो पाँच भावरूप विस्तार के प्रतिपादन में परायण है,...** उदयभाव, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और पारिणामिक—ऐसे पाँच भावरूप, चार पर्याय और एक गुण, ऐसे **विस्तार के प्रतिपादन में परायण है,...** पाँच भाव में चार पर्याय है। उस पर्याय को ही यहाँ अभूतार्थ कहा है। परमपारिणामिकभाव भूतार्थ है, सत्यार्थ है।

जो निश्चय-प्रतिक्रमण,... निश्चय-प्रतिक्रमण—अपने स्वरूप में, राग से हटकर स्थिर होना। पंच महाव्रत के परिणाम और वह सब व्यवहार क्रियाकाण्ड है, परन्तु वह निश्चय होवे उसे। समझ में आया? **सकल परमार्थ क्रियाकाण्ड के आडम्बर से...** अर्थात् कि पुष्कल निरूपण है। आडम्बर का अर्थ इसमें बहुत है। **समृद्ध है...** आहाहा! **(अर्थात् जिसमें परमार्थ क्रियाओं का पुष्कल निरूपण है) और जो तीन उपयोगों से सुसम्पन्न है (अर्थात् जिसमें अशुभ, शुभ और शुद्ध उपयोग का पुष्कल कथन है)**—शुभ किसे कहना, अशुभ किसे कहना, शुद्ध उपयोग किसे कहना। दो मलिन और एक निर्मल। उसका इसमें पुष्कल वर्णन है।

—ऐसे इस परमेश्वर शास्त्र का... लो! **ऐसे इस परमेश्वर...** परमेश्वर। ग्रन्थाधिराज की जगह परमेश्वर शास्त्र। ठीक! ग्रन्थराज। परन्तु यह तो ग्रन्थ परमेश्वर! आहाहा! **परमेश्वर शास्त्र का वास्तव में दो प्रकार का तात्पर्य है:...** ऐसे परमेश्वर शास्त्र का वास्तव में दो प्रकार का सार है। एक **सूत्रतात्पर्य और (एक) शास्त्रतात्पर्य।** सूत्रतात्पर्य अर्थात् प्रत्येक गाथा में जो कहना है, वह सूत्रतात्पर्य। **सूत्रतात्पर्य तो पद्यकथन से प्रत्येक सूत्र में (-पद्य द्वारा प्रत्येक गाथा के अन्त में) प्रतिपादित किया गया है।** इस सूत्र में क्या कहना है, यह सूत्रतात्पर्य, गाथा में। **और शास्त्रतात्पर्य...** पूरा सब। यह सिद्धान्त शास्त्र इतने सब कहे, उन सबका तात्पर्य **यह निम्नानुसार टीका द्वारा प्रतिपादित किया गया है :**

यह (नियमसार शास्त्र) भागवत शास्त्र है। लो! भगवती शास्त्र है। **भागवत=भगवान का; दैवी; पवित्र।** भगवान का शास्त्र। भगवान का शास्त्र। लो! दैवी और पवित्र शास्त्र **जो (शास्त्र) निर्वाण-सुन्दरी से उत्पन्न होनेवाले,...** मुख्यरूपी सुन्दरी परिणति, मोक्षरूपी दशा, आत्मा की परम आनन्ददशा, अतीन्द्रिय आनन्द के अमृत की दशा, उसरूपी परिणति से **उत्पन्न होनेवाले, परमवीतरागात्मक,...** परम वीतरागस्वरूप **निराबाध,... बाधारहित; निर्विघ्न। निरन्तर और अनंग परमानन्द का देनेवाला है,...** मोक्षरूपी सुन्दरी अर्थात् परिणति, उससे उत्पन्न होनेवाले परम वीतरागस्वरूप निराबाध अर्थात् अब विघ्न न आवे, वापस निरन्तर, अन्तर पड़े बिना। **अनंग=अशरीरी; आत्मिक; अतीन्द्रिय** आनन्द। अनंग इस **परमानन्द का**

देनेवाला है,... अनंग परमानन्द। अनंग परमानन्द—अशरीरी, आत्मा का जो परम आनन्द, उसका यह शास्त्र देनेवाला है। समझ में आया?

और यह शास्त्र **निरतिशय,... जिससे कोई बढ़कर नहीं है ऐसे; अनुत्तम;...** अनुत्तम अर्थात् उत्तम में उत्तम। **श्रेष्ठ; अद्वितीय।** वैसे तो अण उत्तम का अर्थ ऐसा अर्थ हो जाता है। उसके जैसा कोई मुख्य नहीं। **निरतिशय, नित्यशुद्ध,...** ऐसा जो भगवान आत्मा कारणपरमात्मा **निरतिशय,...** उसके अतिरिक्त कोई ऊँचा नहीं, ऐसा **नित्यशुद्ध, निरंजन निज कारणपरमात्मा की भावना का कारण है,...** पूर्णानन्द प्रभु अखण्ड आनन्द का अभेदस्वरूप, उसकी भावना का यह कारण है। यह नियमसार उसकी भावना को बताता है। आहाहा! इसे मोक्षमार्ग कहा। समझ में आया? ऐसी भाषा भी कहीं नहीं है।

जो समस्त नयों के समूह से शोभित है,... इसमें बहुत नयों का वर्णन किया है। जो समस्त नयों का ढ़ेर, समूह, उससे शोभित है। व्यवहार किसे कहना? सद्भूत, असद्भूत, उपचार, अनुपचार, निश्चय, यथार्थ, परमार्थ इत्यादि। **जो पंचम गति के हेतुभूत है...** लो! ऐसा यह भागवत शास्त्र है। **पंचम गति के हेतुभूत है...** यह मोक्ष का कारण है। आहाहा! **जो पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र—परिग्रहधारी से (निर्ग्रन्थ मुनिवर से) रचित है—** निर्ग्रन्थ मुनि कुन्दकुन्दाचार्य ने रचित है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उन वस्त्रवालों ने रचा हो, वह यह नहीं है। पाँच इन्द्रिय के फैलाव से रहित है, मुनि अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त हैं और बाह्य में देहमात्र परिग्रह है। लो! निर्ग्रन्थ मुनिवर, उनसे यह रचित है।

—ऐसे इस भागवत शास्त्र को जो निश्चयनय और व्यवहारनय के अविरोध से जानते हैं,... जो यह निश्चयनय और व्यवहारनय का अविरोध, दोनों का मेल करके। निश्चय यह और व्यवहार यह। ऐसा। **वे महापुरुष—समस्त अध्यात्मशास्त्रों के हृदय को... हार्द; रहस्य; मर्म। (इस भागवत शास्त्र को जो सम्यक् प्रकार से जानते हैं, वे समस्त अध्यात्मशास्त्रों के हार्द के ज्ञाता हैं।)** इसे बराबर जाने, उसे समस्त अध्यात्मशास्त्र का हृदय उसके हाथ में आ जाता है कि इस जगह यह कहा है, इस जगह इस अपेक्षा से कहा है, इत्यादि। **समस्त अध्यात्मशास्त्रों के हृदय को...** मर्म को, उसके रहस्य को **जाननेवाले और परमानन्दरूप वीतराग सुख के अभिलाषी—** परमानन्दरूप वीतरागसुख आत्मा का आनन्द, उसके अभिलाषी **बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस परिग्रहों के प्रपंच को परित्याग कर,...** मुनि की बात लेनी है न? आहाहा! **बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस परिग्रहों के प्रपंच को परित्याग कर,...** चौदह प्रकार का अन्तर और दस प्रकार का बाह्य। परिग्रहों के विस्तार को छोड़कर।

त्रिकाल-निरुपाधि स्वरूप में लीन... तीनों काल उपाधिरहित द्रव्यस्वरूप में लीन। स्वरूप में लीन। **त्रिकाल-निरुपाधि स्वरूप में लीन निज कारणपरमात्मा के...** यह वस्तु तीनों काल स्वरूप में लीन ही है, ऐसा कहते हैं। तीनों काल निरुपाधि स्वरूप में यह वस्तु लीन है। ऐसा निज कारणपरमात्मा। लो! **त्रिकाल-निरुपाधि स्वरूप में...** निज कारणपरमात्मा के स्वरूप के। यहाँ अब यह लिया—श्रद्धा-ज्ञान और आचरण। ऐसा जो निरुपाधि तीनों काल स्वरूप में लीन ही वस्तु है। उसके **स्वरूप श्रद्धान**—उसका श्रद्धान, उसका **ज्ञान**—त्रिकाली कारणपरमात्मा के स्वरूप का श्रद्धान, निज कारणपरमात्मा के स्वरूप का ज्ञान, निज कारणपरमात्मस्वरूप में आचरण... आहाहा!

आचरणात्मक भेदोपचार-कल्पना से निरपेक्ष... तीसरी गाथा में कहा था। शुरु किया, तब तीसरी गाथा में कहा था। निरपेक्ष रत्नत्रय से शुरु किया। अन्त में योगफल आया। **भेदोपचार-कल्पना से...** व्यवहार की कल्पना। व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार उस सब उपचार से निरपेक्ष है। वह है तो निश्चय होता है ऐसा नहीं। उसकी अपेक्षारहित। **ऐसे स्वस्थ रत्नत्रय में परायण वर्तते हुए,... स्वस्थ=निजात्मस्थित। (निजात्मस्थित शुद्धरत्नत्रय भेदोपचार-कल्पना से निरपेक्ष है।) ऐसे स्वस्थ...** स्व अर्थात् अपने में रहे हुए **रत्नत्रय में परायण वर्तते हुए,...** ठीक! उसमें परायण वर्तते हुए। रत्नत्रय में परायण वर्तते हुए।

शब्दब्रह्म के फलरूप शाश्वत सुख के भोक्ता होते हैं। लो! समयसार में अन्तिम लिया, सुख पा जाता है। **शब्दब्रह्म के...** देखो! शब्दब्रह्म का फल यह। वीतरागी दिव्यध्वनि के शास्त्र का फल यह है। **शब्दब्रह्म के फलरूप शाश्वत सुख...** आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द, उसका यह जीव **भोक्ता होते हैं।** समझ में आया? अब इसके चार श्लोक कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२५) **श्री समयसार, श्लोक २११-२१२, प्रवचन - ४०६**
दिनांक - ०९-०६-१९८०

समयसार, २११ कलश, कलश है।

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत्।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः॥२११॥

क्या कहते हैं? '**ननु परिणामः एव किल विनिश्चयतः कर्म**' **वास्तव में परिणाम ही निश्चय से कर्म है,...** यह क्या कहा? प्रत्येक द्रव्य के जो परिणाम, जिस समय में होते हैं, वह परिणाम ही उसका कर्म; कर्म अर्थात् कार्य है। आहाहा! यह हाथ हिलता है, वह परिणाम है, परिणाम। वह परिणाम, वह कर्म अर्थात् कार्य है। वह कार्य परमाणु का कार्य है, आत्मा का नहीं। आहाहा! **वास्तव में परिणाम ही...** प्रत्येक वस्तु के परिणाम है, पर्याय है, अवस्था है, वही उसका कार्य है। वह दूसरे का कार्य करने जाए, यह नहीं हो सकता। वह अपना यह परिणाम कार्य स्वयं का है परन्तु दूसरे का कार्य करने जाए, (यह बन नहीं सकता)। आहाहा! कठिन काम है।

यह व्यापार-धन्धा, उसे तीन काल में आत्मा नहीं करता। उसे जो परिणाम होते हैं, वह परिणाम उसका कार्य है, परिणाम उसका कर्म है, परिणाम उसका कर्तव्य है। दूसरी चीज़ को कर सके, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा! यहाँ तो जीव परजीव की दया पाल सके— ऐसा नहीं है, कहते हैं। क्योंकि दया के जो परिणाम हैं, वे जीव के परिणाम उसका कर्म अर्थात् कार्य है। वह कार्य पर का कर नहीं सकता। आहाहा! दया के भाव आये, वह राग है। राग, वह आत्मा का अज्ञान में कर्म अर्थात् कार्य है परन्तु वह कार्य पर की दया पालने में काम करे, वह भाव पर की दया पाल सके, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। आहाहा!

श्रोता : दया, वह धर्म है - ऐसा क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सा दया-धर्म? यह तो इस आत्मा की दया। आत्मा को रागरहित, विकल्परहित अखण्डानन्द की श्रद्धा और प्रतीति (करना), वह अहिंसा है, वह दया है। आहाहा! बहुत अन्तर। कहीं बनिये को निर्णय करने की निवृत्ति नहीं मिलती। धन्धा आदि पाप में पूरे दिन पड़े हों।

श्रोता : बनिये ही निवृत्त होकर आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे की बात है न। आहाहा!

परिणाम वास्तव में वही कार्य है, भाषा देखो! आत्मा के परिणाम या इस परमाणु के परिणाम, यह अँगुली परमाणु है, इस अंगुली के जो यह परिणाम हैं, वह वास्तव में निश्चय से अंगुली-परमाणु का कार्य है; वह आत्मा का कार्य नहीं है, वह आत्मा का कर्म नहीं है, वह आत्मा के परिणाम से हुआ नहीं है। अँगुली हिलती है, वह आत्मा के परिणाम से नहीं हिलती। आहाहा!

वास्तव में प्रत्येक वस्तु की उस समय की जो पर्याय है, वही उसका कर्म अर्थात् कार्य है। आहाहा! एक द्रव्य का कार्य अपनी पर्याय, वह उसका कार्य है परन्तु वह द्रव्य दूसरे का कार्य कर सके, दूसरे परमाणु का या दूसरे आत्मा का... आहाहा! यह नहीं हो सकता, नहीं होता। मिथ्यादृष्टि मूढ़ मानता है, इसलिए वह मिथ्यात्व का सेवन करता है। दया पालनेवाला मैंने दया पालन की, उसका कार्य मैंने किया, यह मिथ्यादृष्टि मानता है। उसे जैनधर्म क्या है, इसकी खबर नहीं है। आहाहा! वह तो केवली सर्वज्ञ परमेश्वर का कथन है। भाषा कैसी की है, देखा?

वास्तव में **'ननु परिणामः एव किल विनिश्चयतः कर्म' वही निश्चय से कर्म है,...** आहाहा! आत्मा कर्म बाँधे, यह बात मिथ्या है, आत्मा कर्म बाँधे यह बात झूठी है। आत्मा के जो विकारी परिणाम ही है, वह उसका कर्म और कार्य है। उसकी स्थिति की हद वहाँ तक है। वे परिणाम हुए, वहाँ तक उसकी मर्यादा है। पश्चात् कर्म बाँधे और कर्म का फल आत्मा भोगे, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बात! सम्प्रदाय में पड़े हैं, उन्होंने सुना नहीं। यह क्रिया करो, दया पालन करो और यह करो। मर जानेवाले हैं, चार गति में भटकने, चौरासी के अवतार। आहाहा! यहाँ उसके माने परन्तु पर का कार्य करता हूँ, इसका फल (कठोर है)। यह एक आत्मा दूसरे आत्मा का कुछ भी कार्य करे, यह तीन काल में नहीं होता तथा एक आत्मा के परिणाम, दूसरे परमाणु के परिणाम को करे, इस भाषा की पर्याय को आत्मा करे, (यह) तीन काल में नहीं होता। आहाहा!

वास्तव में परिणाम ही... जिस द्रव्य के जो परिणाम-पर्याय-अवस्था है, वही निश्चय से उसका कार्य है। उस कार्य को उल्लंघकर दूसरे का कार्य करने जाए, कर नहीं सकता और मिथ्यात्व का सेवन करता है। आहाहा! भारी कठिन काम। दुकान के धन्धे में पेढ़ी पर बैठकर यह किया और यह किया, यह किया और यह किया। कहते हैं कि यह इसके अपने परिणाम का कर्म करे, परन्तु दूसरा कार्य ग्राहक को सम्हाले और माल दे, यह तीन काल में नहीं बनता। भारी कठिन काम। यह तो जैनधर्म की इकाई है। केवलज्ञानी परमात्मा का पहले नम्बर का एकड़ा यह है कि जितने अनन्त द्रव्य हैं, उनमें वह द्रव्य अपने परिणाम को करता है, अवस्था को करता है, हालत को करता है। दूसरे द्रव्य की अवस्था को, दूसरे के कार्य को अथवा दूसरे के परिणाम को एक द्रव्य तीन काल में नहीं कर सकता। आहाहा! कठिन काम, भाई! यह टोपी जो ओढ़ता है, वह कार्य आत्मा का नहीं है।

श्रोता : किसका सिर का है कार्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिर का नहीं, टोपी के परमाणुओं का है। टोपी के परमाणु का कार्य ऐसे (रहने का है)। चश्मा, वह कहीं आत्मा का कार्य नहीं है। यह परमाणु है, उसका कार्य यह चश्मा यहाँ रहना, वह है। आत्मा करे, वह परिणाम करे, परन्तु परिणाम के कारण वह चश्मा का कार्य करे, टोपी ओढ़ने का कार्य करे, कोट पहनने का कार्य करे, दियासलाई सुलगाने का काम करे, बीड़ी हाथ में पकड़ने का काम करे, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। आहाहा! गजब बात है। ऐसा वीतराग का मार्ग जैन के सम्प्रदाय में जन्मे, उन्होंने सुना न हो। पचास-पचास, साठ-साठ वर्ष अकेले पाप में निकाले। आहाहा!

और 'सः परिणामिनः एव भवेत्, अपरस्य न भवति' परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही होता है,... परिणाम जो अवस्था होती है, वह परिणामी, उसका द्रव्य जो है, उसके आश्रय से पर्याय होती है। आहाहा! यह कागज ऐसा ऊँचा होता है, वह आत्मा से नहीं, तथा इस अंगुली से नहीं। अंगुली से ऐसे ऊँचा नहीं होता। क्योंकि अंगुली के परिणाम अलग और इसके परिणाम-पर्याय, पर्याय अलग। अंगुली की पर्याय अलग, यह पर्याय अलग। अंगुली की पर्याय, पर्याय का काम करे परन्तु वह पर्याय इसका काम करे, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! भारी कठिन।

श्रोता : आत्मा ने भाव किया और कागज ऊँचा हुआ, दोनों का समय एक कैसे है?

पूज्य गुरुदेवश्री : समय एक ही है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का समय एक है न, परिणाम में... प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का समय एक ही है। वर्तमान परिणाम हों, वह वर्तमान,

बस ! वर्तमान प्रत्येक के वर्तमान परिणाम हैं तो वर्तमान जीव ने परिणाम किये, इससे वर्तमान दूसरे जड़ के परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा ! ऐसा कैसे बने ?—कि वर्तमान अनन्त द्रव्य हैं। अनन्त द्रव्य वर्तमान के समय के परिणाम रहित नहीं होता और वह पर्याय है, उसे दूसरा द्रव्य करता है, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। वह जैनदर्शन का शत्रु है। आहाहा ! कठिन काम है।

श्रोता : अनुरूप और अनुकूल इन दोनों का मेल किसने किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मेल कुछ नहीं है। यह निमित्त होता है, उसे अनुकूल कहा जाता है और यहाँ पर्याय होती है, उसे अनुरूप कहा जाता है। अनुकूल उसे कुछ करे, (यह) तीन काल में नहीं है। तथा अनुरूप, अनुकूल को लावे, यह तीन काल में नहीं है। समयसार में आता है—अनुकूल-अनुरूप। जो निमित्त है, वह अनुकूल कहलाता है और जिस द्रव्य के परिणाम हैं वे अनुरूप कहलाते हैं। वह अनुकूल परिणाम अनुरूप के कारण हुए नहीं हैं तथा अनुरूप के परिणाम, अनुकूल है, इसलिए उसके कारण आये हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा !

श्रोता : आपकी पाठशाला ही अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वीतराग का शासन अलग है, वीतराग का मार्ग अलग है। अभी तो फेरफार, पूरा फेरफार, सब फेरफार है। श्रद्धा एकदम विपरीत, मिथ्यात्व की श्रद्धा और उसे धर्म मानते हैं। आहाहा !

कहते हैं, **परिणाम अपने आश्रयभूत...** पर्याय होती है, पर्याय है, पर्याय कर्म है, पर्याय कार्य है परन्तु वह कार्य अपने-अपने द्रव्य के आश्रय से है। वह परिणाम, वह कर्म, वह कार्य, वह कर्तव्य, उस-उस द्रव्य के (आश्रित है), उसके परिणाम का जो द्रव्य है, उसके आश्रय से है। वह परिणाम दूसरे द्रव्य के आश्रय से होता है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा !

पैर उठाना, वह आत्मा का कार्य नहीं है। पैर को ऐसे उठाना और ऐसे रखना... वह पैर जमीन को छूता नहीं। पैर जमीन को छूता नहीं, जमीन पैर को छूती नहीं। क्योंकि पैर के परिणाम हैं, वे उसके आश्रय से—परमाणु के आश्रय से हुए हैं और इसके परिणाम हैं, वे इसके परमाणु के आश्रय से हुए है। यह चलने के परिणाम हुए, वह यह नीचे जमीन है, इसलिए पैर के चलने का परिणाम (कार्य) हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा !

कहा न ? परिणाम अर्थात् पर्याय। प्रत्येक परमाणु और आत्मा की अनन्त है। अनन्त द्रव्य-आत्मा, अनन्त परमाणु। उनकी समय-समय की पर्याय स्वतन्त्र है। उस पर्याय का

आश्रय वह द्रव्य है। वह पर्याय-परिणाम वह कर्तव्य और कार्य का आश्रय द्रव्य है। उस कार्य का आश्रय दूसरे द्रव्य के कारण से कार्य होता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! पागल ही कहे, ऐसा है न! पूरा अभिमान उतर जाए। आहाहा!

मैं बोलता हूँ, मैं चलता हूँ, मैं खाता हूँ, आहाहा! यह खाने की क्रिया के परिणाम, वह परमाणु के परिणाम है। यह आत्मा उसके परिणाम करे, खाने के परिणाम जड़ के परमाणु हैं, आत्मा वह खाने के परिणाम करे, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। आहाहा! यह दाढ़ जो हिलती है और होंठ हो हिलते हैं, वह परिणाम उसके-जड़ के हैं। वे परिणाम उस परिणामी के आश्रय से है - परमाणु के आश्रय से है। वे परिणाम आत्मा के आश्रय से नहीं है। आहाहा!

परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही होता है,... परिणामी का ही होता है। एकान्त है। कथंचित् पर से और कथंचित् स्व से, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह **परिणामी का ही होता है, अन्य का नहीं...** क्या? परिणाम जो हुए परमाणु के या आत्मा के, वे आत्मा के आश्रय से हुए हैं, वे अन्य के आश्रय से नहीं और वे परिणाम आत्मा के हैं, वे परिणाम परमाणु के नहीं और परमाणु के जो परिणाम हुए, वह पर्याय परमाणु के आश्रय के हैं, वे अन्य के आश्रय से परमाणु की पर्याय नहीं है। आहाहा! यहाँ तो मैं पर की दया पालन करूँ, वह मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं है, उसे जैन की श्रद्धा की खबर नहीं है। क्योंकि वह परद्रव्य है और यह स्वद्रव्य है। स्वद्रव्य अपने परिणाम को करे। उसकी दया पालने के परिणाम उससे होते हैं, उसके बदले मुझसे होते हैं, (ऐसा मानता है वह) जैनधर्म का विरोधी है, केवलज्ञानी परमात्मा का वह विरोधी है। आहाहा! कठिन काम है। अभी तो ऊपर बैठे हों, (उसमें) जी हाँ, जी हाँ किया हो। और पूरा बड़ा अन्तर है। आहाहा! 'दया वह सुख के वेलड़ी, दया वह सुख की खान'। यहाँ इनकार करते हैं। पर की दया, वह पर के परिणाम हैं। पर के परिणाम दूसरे परिणाम के आश्रय से नहीं होते। उसके द्रव्य के आश्रय से परिणाम होते हैं। वह परिणाम ही उस परद्रव्य का कार्य और कर्तव्य और काम है। आहाहा!

प्रत्येक द्रव्य कामरहित नहीं होता। काम अर्थात् पर्याय का कार्य। कार्यरहित नहीं होता। तो दूसरा द्रव्य उसका कार्य किस प्रकार करे? वह कार्यरहित तो कोई द्रव्य है नहीं। आहाहा! जीव राग के परिणाम करे, परन्तु कर्मबन्धन के परिणाम आत्मा नहीं करता। आत्मा कर्म बाँध नहीं सकता तथा आत्मा कर्म छोड़ नहीं सकता, आत्मा कर्म नाश नहीं कर सकता। आहाहा! कठिन बात है। क्योंकि परमाणु के परिणाम हैं। वह अकर्मरूप परिणमना, वह परमाणु

के परिणाम हैं। आत्मा कर्म का नाश करे या आत्मा कर्म को बाँधे, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। वे परमाणु अपने आप वहाँ कर्मरूप परिणमते हैं। वह कर्मरूपी परमाणु का कार्य करनेवाला वह परमाणु है और वह कर्म छूटकर अकर्मरूप होता है, वह कार्य कर्म का है। उस कर्म का ही अकर्मरूप परिणमना हुआ, वह कर्म का कार्य है। अकर्मरूप होना, वह कार्य जीव का है, ऐसा नहीं है। इसमें क्या करना? आहाहा! अभी तो सब यह चला है। यह करो और यह करो। प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, सामायिक करो... करो, करो और करो। मरो। करो और मरो। मर जानेवाले हैं। पर के परिणाम को मैं करता हूँ, इसमें आत्मा का मरण है। आहाहा!

जीवितज्योति जागृत जाननहार परिणाम है, वह जाननहार परिणाम पर का कार्य करे, ऐसा कहना, वह जाननहार परिणाम का नाश करता है और जाननहार परिणाम का नाश करता है; इसलिए जाननहार परिणाम का आधार जो द्रव्य है, उसका भी वह नाश करता है। आहाहा! ऐसी बातें सुनना कठिन पड़ती है। कभी की नहीं। वीतरागमार्ग जैन परमेश्वर सर्वज्ञ ने तीन काल, तीन लोक देखे। उनकी वाणी कोई अलग होती है। आहाहा! वह वाणी श्वेताम्बर में नहीं। स्थानकवासी और श्वेताम्बर में वह वाणी है ही नहीं। क्योंकि वे शास्त्र कल्पित बनाये। स्थानकवासी, मन्दिरवासी ने (किये हुए) शास्त्र भगवान के किये हुए नहीं हैं, साधु के किये हुए नहीं है, समकिती के किये हुए नहीं; मिथ्यात्वी के किये हुए हैं। आहाहा! अरर! ऐसी बातें। मिथ्यात्वी में भी गृहीत मिथ्यात्वी के किये हुए हैं। अगृहीत मिथ्यात्वी के नहीं। आहाहा! ऐई! मार्ग तो ऐसा है, बापू!

यह परिणाम अर्थात् पर्याय अपने आश्रयभूत परिणामी अर्थात् द्रव्य का ही होता है, अन्य का नहीं। **(क्योंकि परिणाम अपने-अपने द्रव्य के आश्रित हैं,...)** परमाणु में या आत्मा में समय-समय में जो पर्याय होती है, वह पर्याय अपने द्रव्य के आश्रय से होती है, पर के आश्रय से बिल्कुल नहीं। इसी प्रकार परमाणु में जो होता है, यह चलना, बोलना, चलना वह परमाणु की पर्याय है; आत्मा से नहीं। आहाहा! आत्मा बोलता नहीं, आत्मा हिलता नहीं। यह हिलने की और बोलने की पर्याय का कर्ता परमाणु है। आहाहा! दामोदरभाई! ऐसा कहाँ था? दामनगर (में) था? सर्वत्र घोटाला है। साधु भी (ऐसा कहे) यह करो, यह करो और यह करो। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय तीन काल में नहीं कर सकता। क्योंकि कोई पर्यायरहित द्रव्य है नहीं। पर्याय अर्थात् कार्य, पर्याय अर्थात् कार्य। कार्यरहित कोई द्रव्य है नहीं कि जिससे उसका कार्य दूसरा द्रव्य करे। आहाहा!

श्रोता : बीमार पड़े तब क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बीमार पड़े ? द्रव्य में रोग आवे परमाणु, वह उसकी परमाणु की पर्याय है। वह पर्याय किसी दूसरे के कारण हुई है, खाने में अन्तर हुआ, इसलिए उसमें- शरीर में रोग हुआ, इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा! वास्तव में तो दवा से कुछ रोग मिटता है, बात भी सत्य नहीं है। आहाहा! क्योंकि दवा के परमाणु के परिणाम, वह परमाणु ने किये हुए हैं और रोग मिटने का हो, वह परिणाम रोग के परमाणु हैं, उसने मिटने के परिणाम किये, उसने वह परिणाम किये। आहाहा!

(अन्य के परिणाम का अन्य आश्रय नहीं होता)... आहाहा! अन्य परमाणु और आत्मा उसकी जो वर्तमान पर्याय अर्थात् परिणाम। परिणाम कहो, पर्याय कहो, कर्म कहो, कार्य कहो, अवस्था कहो... आहाहा! उसे दूसरा द्रव्य कभी कुछ कर नहीं सकता। शरीर का अवयव है, वह दूसरे शरीर को स्पर्श नहीं करता। इस शरीर के अवयव हैं, वे दूसरे के शरीर को स्पर्श ही नहीं करते। भिन्न-भिन्न दोनों द्रव्य हैं। आहाहा! इस आत्मा का द्रव्य और दूसरे के द्रव्य, यह शरीर के द्रव्य और दूसरे के द्रव्य जड़ के बीच तो अत्यन्त अभाव है। आहाहा! बात-बात में अन्तर है। यह अधिकार ऐसा आया है।

'इह कर्म कर्तृशून्यम् न भवति' और कर्म कर्ता के बिना नहीं होता,... ऐसा कहा कि परिणाम कोई दूसरे के दूसरा नहीं करता परन्तु तब परिणाम कर्ता के बिना होते हैं ? किसी द्रव्य के परिणाम दूसरा द्रव्य नहीं करता, यह तो बराबर है परन्तु वे परिणाम कर्ता के बिना होते हैं ? वह कर्ता कौन है उसका ? आहाहा! है ? **कर्म कर्ता के बिना नहीं होता, तथा वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं होती...** तथा परमाणु और आत्मा एकरूप नहीं रहते। क्षण-क्षण में पर्याय बदलती है। ध्रुवपना रखकर क्षण-क्षण में अवस्था बदलती है। आहाहा! है ? वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं है। तेरी उपस्थिति में ऐसा पलटता लगे, इसलिए मैं हूँ, इसलिए यह होता है—ऐसा नहीं। क्यों ? वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं है। वस्तु कायम एकरूप नहीं रहती। वस्तु हमेशा बदलती है। बदले बिना नहीं रहती। इसलिए उसे तू बदलावे, तेरी स्थिति में व्यवस्था हो, होशियार होकर दुकान की व्यवस्था मैं करूँ... मूढ़ है। प्रवीणभाई! यह लोहे को बेचने के लिये... आहाहा! गजब काम, भाई! वीतरागमार्ग केवली परमात्मा ने कहा हुआ (अलौकिक है)।

प्रत्येक द्रव्य के परिणाम वे कर्ता के बिना नहीं हो सकते। तब तुमने तो कहा कि परिणाम पर के दूसरा करता नहीं। तब अब कर्ता के बिना तो परिणाम होते नहीं, तो कर्ता

कौन ? आहाहा ! **कर्म कर्ता के बिना नहीं होता, तथा वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं होती...** तथा एकरूप परमाणु या आत्मा रहते नहीं। वह तो उसका बदलने का स्वभाव है, वह बदला करता है, पर के कारण नहीं। आहाहा ! एक ही गाथा... आहाहा !

कर्म कर्ता के बिना नहीं होता,... तब तुमने ऐसा कहा कि कोई द्रव्य की कोई पर्याय कोई द्रव्य करता नहीं। तब मैं कहता हूँ कि कर्ता के बिना तो पर्याय होती नहीं, कर्ता के बिना पर्याय होती नहीं। तथा वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं है। वस्तु एकरूप नहीं रहती, बदलती तो है। तो वह बदलती है, उसका कर्ता कौन ? आहाहा ! **(कूटस्थ) स्थिति नहीं होती (क्योंकि वस्तु द्रव्यपर्यायस्वरूप होने से...)** वस्तु-द्रव्य कायम रहती है और पर्याय में क्षण... क्षण... क्षण में समय... समय में बदले ऐसा उसका स्वभाव है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु का द्रव्यरूप से कायम रहना और पर्यायरूप से पलटना, वह तो उसका स्वभाव है। आहाहा !

(द्रव्यपर्यायस्वरूप होने से सर्वथा नित्यत्व बाधासहित है);... तो प्रत्येक द्रव्य की पर्याय उसकी है, ऐसा न माने तो अकेला द्रव्य जो है, वह तो नित्य है, यह एकान्त है। आहाहा ! क्या कहा ? दूसरे के द्रव्य के परिणाम को दूसरा कोई द्रव्य कर ही नहीं सकता। तब अब वह परिणाम कर्ता के बिना तो हुए नहीं। तो वह कर्ता कौन ? आहाहा ! कि कर्ता उसका द्रव्य। क्योंकि **(वस्तु द्रव्यपर्यायस्वरूप होने से...)** प्रत्येक वस्तु द्रव्य अर्थात् कायम रहे और पर्याय अर्थात् बदले, वह तो वस्तु का स्वभाव है। उसे कोई दूसरा बदलावे, यह तीन काल में नहीं होता। ईश्वर कर्ता जैसा होता है। ईश्वर कर्ता माने और जैन पर की क्रिया का कर्ता माने, दोनों एक प्रकार के मिथ्यादृष्टि हैं। दोनों एक जाति के चार गति में भटकनेवाले हैं। आहाहा ! ईश्वर कर्ता माने जगत का और यह स्वयं पर के परिणाम / पर्याय होती है, उसका कर्ता माने। आहाहा ! दुकान की धन्धे की पर्याय मैं करता हूँ, मैं पैसा कमाता हूँ, मैं पैसा प्रयोग करता हूँ, यह सब कर्ता मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, वह जैन नहीं है। आहाहा ! भारी कठिन काम।

(वस्तु द्रव्यपर्यायस्वरूप होने से सर्वथा नित्यत्व बाधासहित है);... क्या कहा यह ? कि परिणाम कर्ता है, तो कर्ता बिना नहीं होता। तब कर्ता कौन ? तब कहते हैं, वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं है। इसलिए वह वस्तु स्वयं कर्ता है। वस्तु एकरूप नहीं रहती, बदलती है; इसलिए वह वस्तु कर्ता है। परद्रव्य कर्ता नहीं। आहाहा ! श्लोक बहुत ऊँचा है। तथा वस्तु की एकरूप मर्यादा नहीं है। **(क्योंकि वस्तु द्रव्यपर्यायस्वरूप होने से सर्वथा नित्यत्व बाधासहित है);...** सर्वथा नित्य ही रहे, ऐसा कहो तो पर्याय बदलती है, यह बात मिथ्या पड़ती है। तो उस पर्यायवाला द्रव्य है, वह झूठा होता है। आहाहा !

इस अंगुली के परमाणु हैं और यह उसकी पर्याय है। पर्याय बिना का परमाणु नहीं है। उस कर्ता के बिना पर्याय नहीं है। आत्मा उसे कर नहीं सकता, परन्तु उसके परमाणु कर्ता बिना पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात। पूरी जिन्दगी अहंकार में व्यतीत की। यह मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया! पर के कार्य मैंने किये, यह जिन्दगी अहंपने व्यतीत की, मिथ्यात्वपने, अजैनपने, (व्यतीत की)। उसके परिणाम... आहाहा! चार गति में भटकने के आयेंगे। नरक और निगोद। आहाहा!

मैं पैसा ले नहीं सकता, पैसा दे नहीं सकता, पैसा रख नहीं सकता। आहाहा! क्या कहा? मैं पैसा रख नहीं सकता। वह तो जड़ पर है। पर की पर्याय तो उससे होती है। तू क्या उसे रखे? इसी तरह पैसा प्रयोग नहीं कर सकता। क्योंकि वह तो परवस्तु है, उसके परिणाम बदलते हैं तो वह प्रयोग होते हैं। आहाहा! तथा पर्याय को रख नहीं सकता, पैसे को दे नहीं सकता, ले नहीं सकता। आहाहा! 'टोलिया' ऐसा सुना था? बाप-दादा ने वहाँ भी सुना नहीं था। फिर बहिन को लगनी होकर, उसके कारण यह पीछे-पीछे (चले) आये। आहाहा! ऐसी बात।

हमारे एक हीराजी महाराज थे केवल गिनाते थे। हिन्दुस्तान का हीरा। श्रद्धा एकदम भ्रष्ट। सब पर का कर सकते हैं और पर का कर सकते हैं और दया पालन कर सकते हैं। आहाहा! यह बात ही नहीं थी। बेचारे बहुत सज्जन थे परन्तु यह बात कान में नहीं पड़ी थी, उनके पास आयी नहीं थी। इसलिए हम यह सब कर सकते हैं, यह सबकी दया पाल सकते हैं और सबको मदद कर सकते हैं। व्याख्यान देकर दूसरे को सुधार सकते हैं। आहाहा! व्याख्यान की भाषा की जड़ की पर्याय आत्मा कर नहीं सकता और उससे दूसरा सुधरे, वह उसकी पर्याय का इस भाषा से तीन काल में नहीं होता। भाषा की पर्याय से पर में सुधरने की पर्याय होती है, ऐसा नहीं होता। आहाहा! सम्प्रदाय में सुना था कभी? कहीं है नहीं। स्थानकवासी और श्वेताम्बर में कहीं सत्य बात है नहीं। सर्वत्र गप्प ही गप्प है। भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकर की यह तो वाणी है। सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर। आहाहा!

मुमुक्षु : वे भी ऐसा कहते हैं कि हमारी वाणी तीर्थंकर की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहे न। उसके बिना माने किस प्रकार? बनायी है कल्पित। श्वेताम्बर शास्त्र मिथ्यादृष्टि ने बनाये हैं। ३२, ४५, ८४ मिथ्यादृष्टि ने बनाये और भगवान का नाम दिया, इसलिए लोग बेचारे उसमें मर गये। आहाहा! ३२ सूत्र और ४५, सर्वज्ञ भगवान के कहे हुए नहीं हैं। मिथ्यादृष्टि के किये हुए हैं, उस अज्ञानी के बनाये हुए हैं। लम्बा काल

हुआ (इसलिए) लोगों को खबर नहीं है। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर के पास कुन्दकुन्दाचार्य गये, वहाँ आठ दिन रहे। वहाँ से आकर यह सब बनाया है, तो केवली शासन में बात है। आहाहा! तेरापंथी भी ऐसा कहते हैं कि दूसरों को बचाना, वह पाप है, क्योंकि वह पाप करेगा इसलिए। परन्तु बचा सकता ही नहीं। तेरापंथी है न? वे ऐसा मानते हैं। दूसरे को बचाना, वह पाप है। क्योंकि वह वापस पाप करेगा। वह यहाँ बात नहीं है। वह करे या न करे, परन्तु दूसरे को बचा सकता ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

(यहाँ कहते हैं) वस्तु एकरूप नहीं रहती, बदलती है। बदलती है, इसलिए दूसरा उसमें कौन करे? स्वयं बदलती है उसमें। आहाहा! **(क्योंकि वस्तु द्रव्यपर्यायस्वरूप होने से सर्वथा नित्यत्व बाधासहित है);...** वस्तु बदलती नहीं और नित्य ही है, ऐसा कहो तो विरोध आता है। पर्याय बदलती है, दिखती है। प्रत्येक परमाणु, आत्मा में पर्याय बदलती है, द्रव्य तो ध्रुव है। आहाहा!

'ततः तद् एव कर्तृ भवत' इसलिए वस्तु स्वयं ही अपने परिणामरूप कर्म की कर्ता है... आहाहा! एक श्लोक में तो गजब किया है। **इसलिए वस्तु स्वयं ही....** परमाणु और आत्मा **अपने परिणामरूप...** कार्य (कर्म अर्थात् कार्य)। अपने ही परिणामरूपी कार्य का कर्ता है। **(-यह निश्चयसिद्धान्त है)।** यह त्रिकाली भगवान से सिद्ध हुई वस्तु है, ऐसा कहते हैं। निश्चय सिद्धान्त यह है। आहाहा! एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। दाढ़ रोटी को स्पर्श नहीं करती। रोटी के टुकड़े होते हैं, वे दाढ़ के कारण नहीं, क्योंकि प्रत्येक परमाणु भिन्न है। प्रत्येक परमाणु की पर्याय स्वतन्त्र भिन्न होती है। आहाहा!

इसलिए वस्तु स्वयं ही अपने परिणामरूप कर्म (अर्थात् कार्य) की कर्ता है (-यह निश्चयसिद्धान्त है)। आहाहा! एक तिनके के दो टुकड़े होना, वह आत्मा से नहीं होते। क्योंकि वे जड़ के परिणाम उस काल में उसके परिणाम का कर्ता वह परमाणु है। भिन्न पड़े, भेद हुआ, टुकड़े हुए, वह परमाणु का कार्य है। दूसरा आत्मा कहे कि यह मेरा कार्य है (तो वह) मिथ्यात्व है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यह तो एक ओर बैठ जाना, तो ऐसा हो इसमें। परन्तु एक ओर ही बैठा है। व्यर्थ का अभिमान करता है। प्रत्येक द्रव्य से भिन्न अकेला बैठा है। आहाहा! वह परद्रव्य के परिणाम करूँ, यह तो तेरी मान्यता, कल्पना खड़ी की है। बाकी परद्रव्य से भिन्न बैठा ही है। परद्रव्य में तेरा अभाव और उसके द्रव्य में तेरा अभाव है। इस प्रकार द्रव्य रहे हुए हैं। आहाहा! मान्यता में बड़ा अन्तर है। मान्यता उल्टी जड़ की मान्यता। आहाहा!

मैंने पुस्तक बनायी। आहाहा! दूसरे पुस्तक पढ़े तो उन्हें ज्ञान होगा। अरर! भाई! है? पुस्तक बना रखना तो दूसरे को ज्ञान होगा, एकदम मिथ्यात्व है। एक तो पुस्तक के परमाणु की पर्याय आत्मा से नहीं हुई और उस पुस्तक से सामनेवाले को ज्ञान नहीं होता। क्योंकि वह पर्याय बिना का द्रव्य नहीं है, इसलिए वह पर्याय उसके स्वयं से होती है, उसके बदले (माने कि) पुस्तक से होती है। आहाहा! गजब बात है। मार्ग ऐसा है, बापू! पूरी दुनिया चाहे जो माने। वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा तीन लोक का नाथ विराजमान है, उसकी यह वाणी है। आहाहा! भगवान परमेष्ठी सीमन्धर भगवान विराजते हैं। वहाँ से आयी हुई यह वाणी है। तीन लोक के नाथ साक्षात् हाजरा-हुजूर प्रभु! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य गये थे और यह लाये। आहाहा! उसे अनुसरण कर सन्तों ने टीका की है। एक (श्लोक) हुआ। २११ (श्लोक हुआ) पौन घण्टे हुआ।

अब आगे की गाथाओं का सूचक काव्य कहते हैं :— २१२

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनंतशक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम्।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते॥२१२॥

आहाहा! **जिसको स्वयं अनन्त शक्ति प्रकाशमान है ऐसी वस्तु...** आहाहा! परमाणु में भी अनन्त शक्ति है। जड़ में, हों! यह अँगुली अनन्त परमाणु का पिण्ड है, यह तो अनन्त परमाणु का पिण्ड है। उसमें एक परमाणु में अनन्त शक्ति है, एक परमाणु में अनन्त गुण हैं। जितने गुण आत्मा में हैं, तीन काल के समय से अनन्त गुणे, उतने ही गुण एक परमाणु में हैं। आहाहा! परमाणु जड़ है, इसलिए गुण नहीं है, ऐसा नहीं है। उसमें अनन्त गुण है। आहाहा! यह कहते हैं।

जिसको स्वयं अनन्त शक्ति प्रकाशमान है ऐसी वस्तु... 'बहिः यद्यपि लुठति' आहाहा! बाहर भले खड़ी रहे। प्रत्येक द्रव्य के परिणाम स्वतन्त्र होते हैं, वहाँ दूसरी चीज़ भले खड़ी रहे परन्तु निमित्त, उसका कर नहीं सकता। पर का कुछ कर नहीं सकता। आहाहा! वे माँगने नहीं आते? शंकर के। ऐसे-ऐसे करे... शंकर के बाबा नहीं आते। वे हाथ में रखें टोपी, लकड़ी। बाहर लकड़ी, अन्दर (टोपी) इसलिए ऐसे, ऐसे-ऐसे ऊपर बाहर करे वहाँ अन्दर में लोलक हिले। यहाँ कहते हैं कि वह लोलक अन्दर हिले, वह इस लकड़ी के कारण नहीं। आहाहा! भारी काम, भाई!

स्वयं अनन्त शक्ति प्रकाशमान है ऐसी वस्तु... अर्थात् प्रत्येक, हों! छहों द्रव्य। भगवान ने छह द्रव्य कहे, वे छहों द्रव्य। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश (ऐसे) छह द्रव्य। अनन्त प्रत्येक वस्तु अनन्त शक्तिवान प्रकाशमान है, ऐसी वस्तु **'बहिः यद्यपि लुठति' अन्य वस्तु के बाहर यद्यपि लोटती है...** आहाहा! भले कहते हैं कि यह अँगुली ऊपर ऐसे-ऐसे घूमती है परन्तु यह लकड़ी इसे स्पर्श नहीं करती। आहाहा! ऐसी बात जैन परमेश्वर के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। दूसरे सुने तो पागल कहे। अभी तो जैन में नहीं है। अभी जैन के सब बनिये कर्ताबुद्धि में पड़े हैं। आहाहा! हम करते हैं और हम करते हैं, हम कर सकते हैं। व्यवहार से तो कर सकते हैं न? निश्चय से नहीं। आहाहा! व्यवहार से या निश्चय से पर के परिणाम तीन काल में कोई नहीं कर सकता। क्योंकि परिणमन बिना का द्रव्य नहीं होता। बदलती अवस्था बिना का द्रव्य नहीं होता। और बदलता देखकर मेरी हाजिरी में यह बदला, इसलिए मुझसे बदला, (ऐसा मानता है) वह तेरा मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

अन्य वस्तु के बाहर यद्यपि लोटती है, तथापि अन्य वस्तु अन्य वस्तु के भीतर प्रवेश नहीं करती,... आहाहा! यहाँ भले स्पर्शे परन्तु अंगुली अन्दर प्रवेश नहीं करती। कर्म बँधें परन्तु उसमें आत्मा प्रवेश नहीं करता। आहाहा! आत्मा के राग परिणाम हों, उसमें कर्म के रजकण प्रवेश नहीं करते। आहाहा! ऐसी बातें! जो कर्म बँधते हैं, वे आत्मा के परिणाम से नहीं, उसकी स्वतन्त्र पर्याय के कारण कर्म बँधते हैं। यहाँ विकार होता है, वह कर्म के कारण नहीं। पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता, इसलिए विकार भी द्रव्य की पर्याय है। आहाहा! इसमें कितना याद रखना? **अन्य वस्तु के बाहर यद्यपि लोटती है,...** एक वस्तु से बाहर भले फिरे, टिके, बदले परन्तु **अन्य वस्तु अन्य वस्तु के भीतर प्रवेश नहीं करती,...** एक वस्तु में दूसरी वस्तु प्रवेश नहीं करती। अरे..रे..! आहाहा! यह रोटी होने में बेलन रोटी को स्पर्श नहीं करता। बेलन। लोई होती है और फिर चौड़ी होती है न? वह बेलन आटा को स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

श्रोता : किसने किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आटे ने किया। आटे के परमाणु उस प्रकार से पर्याय उस समय में परिणमने का उसका काल था। उस पर्याय का आश्रय उसके परमाणु हैं। उस पर्याय का आश्रय वह नहीं है, क्या कहलाता है? बेलन, वह आश्रय नहीं है। आहाहा!

क्योंकि समस्त वस्तुएँ अपने-अपने स्वभाव में निश्चित हैं... आहाहा! **ऐसा माना**

जाता है। देखा ? प्रत्येक रजकण और प्रत्येक आत्मा। इस हाथ में अधिक रजकण इकट्ठे होने पर भी एक-एक रजकण भिन्न है। एक रजकण दूसरे रजकण को स्पर्श भी नहीं करता। अपने-अपने परिणाम से प्रत्येक परमाणु अपने में रहा हुआ है। उसके परिणाम को दूसरे परमाणु करे और दूसरे का यह करे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! अब यह तो बाबा हो जाए। परन्तु बाबा हो तो भी कुछ नहीं कर सकता। मान्यता बदलनी है।

चक्रवर्ती राजा राज्य में पड़ा हो, तो भी समकिती होता है। भरत चक्रवर्ती छियानवें हजार स्त्रियों में (होने) पर भी एक रजकण का भी मैं कर्ता हूँ, ऐसा वे नहीं मानते थे। आहाहा! छियानवें करोड़ गाँव, परन्तु किसी एक गाँव का मैं स्वामी हूँ, ऐसा नहीं मानते थे। आहाहा!

श्रोता : दिखता है ऐसा कि एक कर्ता के दो काम और दो कर्ता का एक काम।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक कर्ता का एक काम, दो कर्ता के दो भिन्न-भिन्न काम। एक कर्ता का एक काम, दो कर्ता के दो काम। दो कर्ता भिन्न-भिन्न के दो भिन्न-भिन्न काम। आहाहा! ऐसा तो सुनने को कभी मिले। अधिकार आया हो तो पढ़ा जाए न ? अधिकार सामने आया हो, (तब स्पष्टीकरण होता है)। आहाह!

क्योंकि समस्त वस्तुएँ अपने-अपने स्वभाव में निश्चित हैं, ऐसा माना जाता है। आहाहा! प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक समय में अपने-अपने स्वभाव में है। प्रत्येक समय में अपने स्वभाव में है। चाहे तो जीव विकार करे तो भी वह अपने स्वभाव में है। आहाहा! विकार करे तो भी वह उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। किसी के कारण कोई विकार, कर्म के कारण विकार (होता है), ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा!

(आचार्यदेव कहते हैं कि—) ऐसा होने पर भी... अरे! वस्तु की स्थिति तो ऐसी है। वस्तु की मर्यादा तो तीनों काल भगवान ने-परमेश्वर ने तो ऐसी कही है, तो भी लोग मोह में क्यों उलझे हैं ? अनन्त केवलियों ने यह कहा है, आचार्यदेव कहते हैं। आहाहा! अरे..! **ऐसा होने पर भी मोहित जीव, अपने स्वभाव से चलित होकर आकुल होता हुआ, क्यों क्लेश पाता है ?** इसका कर दिया-मैंने अच्छा कर दिया, मैं बुरा कर दिया। क्या किया तूने ? कुछ किया नहीं, तेरे परिणाम तूने किया है। इस प्रकार... आहाहा! अज्ञानी अपने क्लेश को पाता है, दूसरा कुछ नहीं होता। पर का कर्ता मानना, वहाँ क्लेश खड़ा होता है, मिथ्यात्व (खड़ा होता है), तथापि वह पर का नहीं कर सकता। आहाहा!

श्लोक तो बहुत ऊँचे आये हैं। आहाहा! अनन्त द्रव्य का अनन्त कार्य है। भगवान ने देखे हुए अनन्त पदार्थ हैं, उन अनन्त के एक-एक समय में अनन्त कार्य प्रत्येक के अपने-अपने हैं। उसमें उस कार्य बिना का वह द्रव्य नहीं है कि जिससे दूसरा द्रव्य उसका कार्य करे। आहाहा! भगवान परमात्मा केवली ने अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु, अनन्त द्रव्य देखे। उन अनन्त द्रव्यों में किसी द्रव्य का द्रव्य दूसरे का कार्य करे तो अनन्तपना भिन्न नहीं रहता। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे का कार्य करे तो द्रव्य भिन्न अनन्त नहीं रहते। अनन्त में एक-दूसरे का करे, दूसरा तीसरे का करे, तीसरा चौथे का करे (तो शून्य लगे)। इसलिए यह बात है नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)